आरोग्य-निकेतन

(बंगला भाषा का उत्कृष्टतम उपन्यास)

लेखक

ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

अनुवादक

हंसकुमार तिवारी

साहित्य अकादेमी की ओर से

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
की ओर से
राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, द्वारा प्रकाशित

प्रथम हिन्दी संस्करण
१९५७
मूल्य छः रुपये

हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस क्वीन्स रोड दिल्ली में मुद्रित

सूचना

आरोग्य-निकेतन यानी चिकित्सालय। अस्पताल नही, खैराती दवाखाना नही—यह है देवीपुर के तीन पुश्त से चिकित्सा-व्यवसायी महाशय परिवार का चिकित्सालय।

यह चिकित्सालय स्थापित हुआ था कोई अस्सी साल पहले। आज टूटी-फूटी हालत मे है, कच्ची दीवारो मे दरारे पड गई है, कितनी ही जगहो मे ठाठ के जोड अलग हो गये हैं, बीच का हिस्सा धँसकर बैठ गया है, जैसा कुबडे की पीठ मे गढा पडता है। किसीकदर अब भी खडा है—राह देख रहा है अपने अत की, कब टूट गिरेगा, उसी घडी की बाट जोह रहा है।

लेकिन जिस रोज इसकी स्थापना हुई थी, उस रोज इसके सस्थापक जगवधु कविराज ने अपने अतरग मित्र ठाकुरदास मिश्र से कहा था—सुनते हो मिसिर, यावत् चद्रार्क मेदिनी तो खैर नही कहूँगा, लेकिन अपने वश के लोग जब तक भी यहाँ रहेगे, तब तक के लिए इसे अटल-अक्षय जानो। हँसकर बोले—इसे मेरा दम मत समझो, यह दम नही है। फिर दोनो हाथ बाँधकर अपने कपाल से लगाकर बोले—अक्षय लाभ का व्यापार है यह। जितना ही दान करो, उतना ही बढता चला जायगा—पुराने घी-जैसा दिन के साथ दाम बढता जायगा। सच पूछो तो दुनिया मे यह सबसे अच्छे मुनाफे का कारोबार है। इसमें देना और पावना, देने और लेने, दोनो ही दृष्टियो से खासा लाभ है और मजा यह कि दो में से एक भी पक्ष ठगा नही जा सकता।

लेकिन उनके मित्र ठाकुरदास मिश्र एक ही काइयाँ हिसाबी आदमी थे—पक्के दुनियादार। जमीदार के गुमाश्ता थे। बडे-बडे आँकडे समझ लेते थे, मामले-मुकदमे की बात समझ सकते थे, अर्जी-दस्तावेजो का मर्म मालूम था, मगर इन तत्त्वो की उन्हे खाक समझ नही थी। उन्होने जरा आडे ही भाव से कहा था—यह तो मै समझ सकता हूँ कि लता-पौधो को

पीस-पासकर गोलियाँ बनाने से रुपये मे कम-
मुनाफा तो जरूर है, लेकिन इससे बेचारे रोगियो का को... ...भ ह
जहाँ तुम्हारा मुनाफा है, वहाँ उसका खर्च है। कर्ज ही क्यो न लाना पडे,
यह खर्च करना है। उस बेचारे की तो धन और जान, दोनो तरफ से मौत है।

जगबधु महाशय ने बीच ही मे बाधा देकर कहा था—तुम चलते ही
टेढी राह हो मिसिर। पैसा तो बाद की बात है। मैने जिस लाभ की बात
कही, वह लाभ पैसे का नही, लेकिन ससार का श्रेष्ठ लाभ वही है। एक को
आरोग्य-लाभ और दूसरे को सेवा का पुण्य। पता है तुम्हे, ससार का सबसे
बडा लाभ आरोग्य-लाभ है? यक्ष रूपी धर्म ने युधिष्ठिर से जो-कुछ सवाल
किये थे, उनमें से एक था—'लाभानामुत्तम किं?' ससार मे सर्वोत्तम लाभ
कौन-सा है? युधिष्ठिर ने जवाब दिया था—'लाभाना श्रेय आरोग्य।' यानी
आरोग्य-लाभ ही ससार मे सबसे उत्तम लाभ है।

मिश्रजी उस रोज इस बात पर हँस पडे थे। बोले, देखो जग्गू, साग
डालकर मछली नही छिपाई जा सकती, फिर वह साग चाहे गगा-किनारे
का ही क्यो न हो! तुम्हारे इस श्लोक—धरमपूत युधिष्ठिर की बात से
लाभ होने वाले रुपये की बात नही छिप सकती। और अपनी बात खत्म
करके उसे आडे हाथो लेने की खुशी मे ठाकुरदास ठहाका मारकर हँस पडे
थे। लेकिन कुछ ही दिनो के बाद अचानक वे गठिया के शिकार हुए। तीन
महीने तक पगु बने पीडा झेलते रहे और उन्ही जगबधु महाशय के इलाज से
चगे होकर उन्होने कहा था, भैया जग्गू, तुमने मुझे बचा लिया, याद रखना,
अगर कभी जरूरत पडे तो मैं तुम्हारे लिए अपनी जान दे दूंगा।

हँसकर जगबधु महाशय बोले—यानी 'लाभाना श्रेय आरोग्य', यह
आज मान गए तुम?

हँसकर ही ठाकुरदास बोले-मान गया।

और दूसरे ही दिन मिसिर आरोग्य-निकेतन में गये, एक लकडी के सिरे
में लत्ता लपेटकर तेल-सिंदूर से अपने हाथो दीवार पर बडे-बडे हरुफो में
लिख दिया—'लाभाना श्रेय आरोग्य।'

उस समय तक इसका नाम आरोग्य-निकेतन नही पडा था। इलाके
कुछ लोग इसे या तो 'महाशय के यहाँ' या 'महाशय का कविराजखाना' कहा

करते थे।

आरोग्य-निकेतन नाम एक पुश्त के बाद पडा, उनके लडके जीवन महाशय के समय मे। जमाना बदल गया और एक एक नया ही समय शुरू हुआ। यह नई आवहवा देश के केंद्र, शहरो मे बहुत पहले जरूर शुरू हो गई थी, पर इन हल्को मे इसकी शुरूआत अब हो रही थी। जीवन महाशय ने दवाखाने का नाम बदला और एक तख्ते पर काले अक्षरो मे 'आरोग्य-निकेतन' लिखकर उसे बरामदे के आगे लगा दिया। इतना ही नही, इन्होने जगबधु के बनाये मकान मे भी काफी हेर-फेर किया। तखत पर दरी-चादर के रिवाज को तो ज्यो-का-त्यो रहने दिया, लेकिन बेंच, टेबिल, कुर्सी भी बढा दी।

यह आप आज भी देखेंगे। डगडग करती-सी मेज, टूटे हाथ वाली कुर्सी आज भी है। बेंच मगर मजबूत है। आज भी वैसी ही है।

आरोग्य-निकेतन का अब गिरा तब गिरा-जैसा वह घर काले हरुफो मे नाम लिखा हुआ वह तख्ता, यहाँ तक कि जाये तो आप जीवनबधु महाशय को भी देख पायेंगे।

महानगरी से सौ से भी ज्यादा मील जाना पडेगा। बड़ी लाइन की गाड़ी से जायँ। जकशन से छोटी लाइन की गाडी। दसेक मील पर एक सपन्न गाँव का स्टेशन। चारो ओर बदलते हुए समय की स्पष्ट छाप। वहाँ आपको किराये की एक मोटर मिलेगी, एक बस मिलेगी, साईकिल-रिक्शा और बैलगाडी मिलेगी। स्टेशन से आरोग्य-निकेतन खास दूर नही है, थोडा ही फासला है, मील-भर से जरा ही ज्यादा। चाहे तो किराये पर कोई बैल-गाडी ले लें, चाहे साईकिल-रिक्शा। मगर पाँव-प्यादे जाना ही ठीक है। ध्वस और निर्माण के बीच उस गाँव मे नये-पुराने का विचित्र ही समावेश नजर आयगा।

तो सुर्खी की लाल सडक से चल पडिये। पुराने जमीदारो के भूआ लगे पक्के के बडे-बडे मकान मिलेंगे, उजडे-पुजडे बगीचे, टूटी-फूटी दीवारें। काई-जमे मदिर। तालाबो के घाट टूटे। पुराने मंदिर। जिधर देखिये, धूलि धूसरता, गर्द-गुबार। परती पडी जमीनो मे जंगल-झाडी। पास ही खडा

एक बूढा बरगद मिलेगा—उसकी डालें और टहनियाँ जीर्ण हो गई हैं: नीचे एक चौंतरा बँधा है, उसमें भी दरारें। यह गाँव का देवी-थान है। इसीके आगे यह राह एक चौडी पक्की सडक से मिलकर खत्म हो गई है। लाल माटी और पत्थर के ढोको से बँधी सडक—सड़क के दोनो ओर दूकानें। यह है बाजार। चहल-पहल से जीवंत। लदी गाडियों की कतार, लोगों की भीड, शोर-गुल; अजीब-सी बू है यहाँ। दिन-दिन बाजार बढता ही जा रहा है। चाय की, मिठाई की दूकानें हैं। भूख-प्यास लगे तो किसी में जा बैठिये। नवग्राम मेडिकल स्टोर्स के पास ही मिठाई की सबसे अच्छी दूकान है। ढूँढ़ने की जरूरत नही पड़ेगी, नवग्राम मेडिकल स्टोर्स की चकमक इमारत, असबाब, दवाई के रग-बिरगे विज्ञापन जरूर ही आपका ध्यान अपनी ओर खीच लेंगे। पैंट और बुशशर्ट में आप वहाँ हरेन डाक्टर को बैठा देखेंगे, गले मे स्टैथिस्कोप। चाय वाली अच्छी दूकान वही पर है।

यही से उत्तर को जाने वाली एक दूसरी सडक मिलेगी। ज्यादा चौडी नही है, एक गाडी जा सकती है और दोनो तरफ लोग चल सकते हैं—इतनी ही चौडी।

पाव मील आपको जैसे छाया-वीथी से जाना पडेगा। दोनो तरफ चार-पाँच पोखरे हैं, पोखरो के बाँध पर आम, जामुन, शिरीष, इमली के पेडो ने अपने पत्तो की छाँह रास्ते पर फैला रक्खी है। इसके बाद उन्मुक्त प्रातर। यहाँ आपको विचित्र दृश्य देखने को मिलेंगे। नये-नये मकान—बिलकुल नये ढग के, नई वास्तु-कला के नमूने। नगर का दफ्तर खुल गया है। दफ्तर के आस-पास छोटे-छोटे क्वार्टर। एक ओर नई नहर बन रही है। इसके बाद और एक कतार मिलेगी मकानों की। कुछ छोटी-छोटी इमारतो के चारों तरफ बडे-बडे महल खडे हो रहे है। हर तरफ मचान बँधे, मजदूर काम कर रहे है, मजदूरिनें गाती हुई छत पीट रही हैं। हाथ से साइकिल थामे हैट-कोट वाले इजीनियर साहब चक्कर लगा रहे हैं। ये छोटी इमारतें अस्पताल की हैं। छोटा-सा अस्पताल। डाक्टर और कपाउडर के दो छोटे-छोटे क्वार्टर कुछ छोटे-छोटे कच्चे घर भी हैं, जिनमें नर्सें रहती हैं। कुछ हटकर आपको एक और घर दिखाई पड़ेगा, वह मोतिया डोम का है। और वह जो बडी-सी अधूरी इमारत है, वह भी अस्पताल की है। हल्के

का स्वास्थ्य-केंद्र वन रहा है।

मगर यह सव-कुछ देखकर ठिठक मत जाइये। इस नव-निर्माण में आशा है, इसमे भविष्यत् वन रहा है, लिहाजा मन मे मोह का सचार होगा, मनश्चक्षु के आगे सपने जाग पडेंगे और आप उन्ही सपनो में खो-से जायँगे, आरोग्य-निकेतन तक जाने को जी नही चाहेगा।

और आगे चल दीजिये, इन नगी इमारतो को वाँये हाथ, छोडकर आगे वढ जाइये। और मील-भर चलना पडेगा। दोनों ओर फ़सल के खेत- वीच से दौड गई है एक वैलगाडी के चलने लायक चौडी रोडी की लाल और आडी-टेढी सडक। मील-भर वाद पडेगा देवीपुर गाँव, पुराना आरोग्य-निकेतन वही है।

देवीपुर श्रीहीन-सा गाँव है, न केवल गरीवी से रौंदा हुआ वल्कि काल की जीर्णता ने भी उसे जर्जर कर दिया है। गौर करें तो पता चलेगा, जिन पेडो ने गाँव पर अपनी छाया फैलाई है, वे सव-के-सव प्रवीण और प्राचीन हैं, नये पेडो की श्री-शोभा शायद ही कही नजर आये। जीवन की नवीनता की शोभा वास्तव में सतेज तरुओ की श्याम शोभा है। सवसे पहले किसी आँधी से झुके हुए मौलसिरी के पेड पर नजर पडेगी। जिसके नीचे धर्मठाकुर का थान है। उसके वाद है लुहार की दूकान। इस लुहारखाने का अस्तित्व तो आपको वहुत पहले से ही मालूम होगा। वहाँ की ठन्-ठन् आवाज देवीपुर के दक्खिन तक—जहाँ वह नया स्वास्थ्य केन्द्र वन रहा है, गूंजती रहती है। नई दीवारो से वह आवाज टकराकर प्रतिध्वनि पैदा करती है।

लुहारखाने में लोगो की भीड लगी रहती है, पिघले हुए लोहे के लाल छींटेचटखते रहते हैं। वही से गाँव शुरू हो जाता है। छोटा-सा गाँव, शात। वाँसो की झुरमुटो मे, शिरीष के पेडो पर चिडियो की चहक। तरह-तरह की चिडियाँ।

कू - कू - कू!
कृष्ण कहाँ गये!
कहो कहो कहो!
का-का-का-का! क्-क् क-क् क-क्!
कही-कही अर्जुन गाछ की फुनगी पर चील चीख उठती है—चील् गरर्।

सडक पर ही मैनाओं की छीन-झपट—कें-कें कर्र्-कर्र् किचमिच, कट्-कट् और फिर गुत्थम-गुत्था।

आदमी मुश्किल से ही मिलेंगे। और एकाध जो मिलेंगे भी, वे देह से दुबले, मन से थके-हारे और दृष्टि में सदिग्ध। आपको देखकर भी बोल-चाल नही करने के। आशकित निगाहो से आपको घूरते हुए आगे बढ जायँगे, कुछ दूर बढकर फिर मुडकर ताकेंगे। आखिर है कौन? वामपथी या दक्षिण पथी? वोट तो नही माँगता? चदा?

लेकिन उन दिनो, जब आरोग्य-निकेतन पहले-पहल कायम हुआ था, और ही बात थी। देश की हालत भी और तरह की थी। गोलों मे अनाज था, गुहालो में गायें थी, भडार में गुड था, तालाबों में मछलियाँ थी। एक हाथ से लोग भरपेट खाया करते थे, दोनो हाथो जी भर मसक्कत किया करते थे। शरीर में कूवत थी, प्राणो में भरा था आनन्द। वे लोग ही कुछ और थे। आज जैसा जूता-कुरता वे नही पहनते थे: घुटनो तक धोती, खुली छाती। साफ-सफेद कपडों में आपको देखकर झुककर नमस्कार करके वे पूछते थे—आना कहाँ से हुआ बाबू? जायँगे कहाँ देवता!

आप जवाब देते—आरोग्य-निकेतन।

—ओ, उसके सिवाय इस गँवई-गाँव में आप-जैसे लोग जायँगे भी कहाँ! हाँ, यो चले जाइये! वह देखिये सामने, वह देवी-थान है, बाईं ओर चदू बाबू की लटकन की दूकान रही। दाएँ हो लीजिये! जगन वाला कुआँ मिलेगा, सरकारी कुआँ है, उसीके पास जीवन महाशय का दवाखाना है (यानी आरोग्य-निकेतन)। लोगो से ठसाठस भरा। बैलगाडियो की कतार लगी है' वही है। जाइये!

लेकिन आज वहाँ आपको वह भीड नही मिलेगी। ठसाठस भीड़ की बात आज अविश्वास्य ही नही, हास्यकर है। सुबह की तरफ दो या बहुत ज्यादा तो छ-सात रोगी तक आ जाते हैं, नब्ज दिखाकर चल देते है। आरोग्य-निकेतन में अब दवा नही मिलती। दवा की आलमारियाँ खाली पड़ी है। उनका पालिश चटख गया है, धूल की परतें पड़ गई है। दो-तीन के तो कब्जे भी उखड गए हैं। नब्ज दिखाने वाले नुस्खे लिखाकर चले जाते हैं, उसके बाद लगभग सारा ही समय सन्नाटा रहता है।

कही आप तीसरे पहर को जा निकलें तो देखेगे कि जीवनबंधु महाशय अकेले बैठे हैं। उत्तर-दक्खिन प्राय पच्चीस हाथ लम्बा एक कोठा, चौडाई होगी कोई बारह-चौदह हाथ की। सामने सीमेट का बरामदा, जो अब जगह-जगह टूट गया है, जहाँ-तहाँ मिट्टियाँ उभर आई हैं। तीन तरफ ईंट की जो मामूली गहरी दीवार है, जहाँ-तहाँ धँस गई है। चारो तरफ धूल जम गई है। सिर्फ बरामदे के दोनो कोनो मे लाल कनेर के दो पेड बेशुमार फूलो से लदे हवा मे झूम रहे हैं। बूढे जीवन महाशय उन्ही पेंडो की ओर ताकते हुए बैठे है—स्थविर, धूलि धूसर दिक्-हस्ती-जैसे बूढे। सत्तर के लगभग की उम्र। कभी के विशाल शरीर का ढाँचा सिकुडी त्वचा से ढँका, पँजरे की हड्डियाँ झाँक रही है, मोटे-मोटे हाथ और हाथ-जैसे ही मोटे दो पाँव; सामने ही पडे देखेंगे आप दो बडे-बड़े जूते, फटे-चिटे-से। मारकीन की मैली धोती—उसमे भी सिलाई, शोभा की एक ही चीज है, वह है उनकी हाथी-दाँत-जैसी सफेद मूँछ-दाढी। सिर के बाल भी सफेद, परन्तु छोटे-छोटे छँटे हुए।

पुराने जमाने की एक छोटे पैरो वाले तखत पर फटी हुई दरी डालकर बैठे रहते है और उन फूलो से भरे दोनो पेडो को देख-देखकर सिर्फ सोचते रहते है। जाने क्या-क्या, कितनी ही तरह की अजीब-अजीब बातें।

सोचते है, आदमी से पेडो की आयु कितनी ज्यादा होती है! कनेरो के उन दोनो पौधो को उनके पिता जी ने लगाया था, कोई साठ साल हुए! मगर आज भी उन पौधो मे जीर्णता नाम को भी न आई।

उनकी चिंता-धारा में बाधा पड जाती। कौन जानें कहाँ से अस्वाभाविक विकृत स्वर मे क्या कह उठता। वे चारो तरफ निगाहे दौडाते, मगर कही कोई नज़र नही आता। और दूसरे ही दम वे हँस पडते। मछुए की वह पोसी हुई चिडिया पास ही किसी पेड पर बैठी है। नीचे से किसी को जाते देखकर बोलने लगी है। कह रही है—मछली नही है! मछली नही है। मछली नही है!

यह चिडिया चिडियो मे एक व्यतिक्रम है। पोसी हुई चिडिया भी छूट जाने पर लौटकर नही आती। शुरू-शुरू मे घर के आस-पास मँडराती है, छप्पर पर बैठती है, आँगन में भी उतर आती है, लेकिन पिंजरे मे दाखिल

नही होती। लेकिन यह चिडिया कुछ ग्रौर ही किस्म की है। घर वाले सुवह इसे पिंजरे से बाहर निकाल देते हैं, यह उडकर जाती है ग्रौर शाम को ठीक लौट ग्राती है। पिंजरे का दरवाजा कही खुला मिला तो ग्रपने-ग्राप ग्रन्दर दाखिल हो जाती है। खुला न मिला तो पिंजरे के ऊपर बैठकर पुकारती है। माँ-माँ। बूढा, बूढा, ए-बूढा!

बूढा यानी वह मछुग्रा। उसकी बीबी उसे बूढा ही कहती है। वही कहना वह सीख गई है। लगता है, वह कही पास ही ग्रा वैठी है ग्रौर वोल रही है। मनुष्य के दर्शन से उसने जीवन को सार्थक किया है, कम-से-कम लोग तो यही कहते है। कहते है, पिछले जन्म की कोई साधना है। कोई-कोई यह भी कहते है—पूर्व जन्म में मनुष्य थी, किसी कारण से शाप पाकर चिडिया हो गई है।

जीवन महाशय ग्रपनी दाढी सहलाने लगते ग्रौर हँस पडते। ग्राज जीवन-जन्मान्तर के वारे मे धारणा पलट गई है। सो वे इसकी बात ही नही सोचते। तेजी से सहलाने लगते ग्रपनी दाढी—वार-बार। कभी-कभी छोटे-छोटे वने सिर के बालो पर भी हाथ फेर लेते। वडा ग्रच्छा लगता। हथेली मे गुदगुदी लगती।

फिर सोचते, मुखर्जी तो ग्रभी तक नही ग्राया?

वह ग्रा जाये तो शतरज की बाजी लगे—इस काल-समुद्र मे थोडी ही दूर, ग्रौर कुछ नही तो एक रस्सी-भर का फासला कागज की नाव द्वारा खुशी-खुशी पार किया जा सके। सावन का महीना ग्रौर तीसरे पहर का समय। जीवन महाशय ने ग्राँखे उठाकर राह की तरफ ताका। बदली घिरी थी। फिस-फिस पानी पड रहा था। ग्रपराह्न ही में ग्रकुलाई बयार वहने लगी थी, छाया ऐसी गहरी हो ग्राई थी कि लग रहा था, साँझ हो गई। लेकिन सफेद कपडा डाला हुग्रा सिताब का छाता मजे में दीख जायगा। जीवन महाशय की ग्राँखें खासी तेज हैं, गोकि उम्र काफी है। चश्मे के वावजूद उन्हें सुई में धागा डालने मे कठिनाई होती है, फिर भी। दूर की ग्रौर खासकर काले पर सफेद या सफेद पर काली चीज, छाते-जैसी कोई वडी चीज देखने-चीन्हने मे तकलीफ नही होती। ग्रगर उन्होने शुरू से तन्दु-रुस्ती का खयाल रखा होता, तो नजर की इतनी भी हानि नही हुई होती।

सिताव का डील-डौल भी खासा है। ये समय-समय पर उसकी नब्ज भी देख लेते—बूढे के चल वसने मे अभी देर है—अभी नब्ज की चाल कितनी है ?

जीवन महाशय नाडी की गति मे काल की पद-ध्वनि सुन सकते हैं। दौलत की यह पूँजी उनकी मौरूसी है, वाप-दादे की विरासत। वे सव कविराज थे, जीवन महाशय ही पहले डाक्टर हुए हैं। कविराजी भी जानते है। दोनो ही चिकित्सा करते हैं, जव जैसी जरूरत पडती है। लेकिन नब्ज की ऐसी पहचान ही उनकी निजी विशेषता है। नाडी के स्पदन मे रोगी जीवन के पदक्षेप से रोग का स्वरूप, काल से आक्रात जीवन के पदक्षेप से वे यह भी समझ सकते हैं कि मौत कितनी दूर है।

निदान-निर्णय मे उनका खासा नाम रहा है, आज भी है। अपने चिकित्सक जीवन मे उन्होंने नब्ज टटोलकर पहले ही वहुतो की मृत्यु-घोषणा की है। एक के वाद दूसरे रोगी की याद हो आती और पल मे खो जाती। याद आने की यह गति वेहद तेज थी। एक जगह आकर अचानक थम गई लेकिन, वहाँ थम गई जव सुरेन मिश्र के छोटे लडके शशाक की मृत्यु-घोषणा की वात आई। उन्हे शशांक की सोलह साल की पत्नी की वह अनोखी दृष्टि याद हो आई, याद हो आई उसकी मर्म-भेदी वातें।

उन्होंने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

जाने कितनी मौत, कितने रुदन, कितने मौन मर्मातक शोक उन्होंने देखे! रोगी का दम टूट गया और वे भारी और धीर चरणो कमरे से निकल आये। आखिरी साँस तक वे कोशिशो से वाज नही आये, मगर कोशिशे यह जानकर ही की कि सव वेकार जायँगी। ऐसे रोगी के घर से निकलकर तमाम राह मन मे डूवते-उतराते चलते। ऐसे मे राह से कोई अन्तरग वन्धु भी गुज़र जाता, तो वे देख नही पाते। रोग की वात? इलाज की सोचा करते, कभी-कभी मौत की वात भी। उस समय उनका भावविभोर मन देश-दुनिया से आँखे फेरकर चिकित्सा-विज्ञान के पन्ने पलटने लगता। इसीलिए आँखो के सामने से किसी के गुज़र जाने पर भी वे उसे देख नही सकते। वहुत वार खासकर दूर के किसी गाँव मे रोगी के मर जाने पर भी उन्हे लाचार इन्तजार करना पडता, वे उस शोक-पागल परिवार के वीच अचंचल भाव से वैठे रहते—घुटते हुए वायु-प्रवाह-हीन ग्रीष्म अप-

राह्ल की वनस्पति-जैसा। इन्ही बातो से लोग डाक्टरो को पत्थर कहा करते हैं। हकीकत मे उनका कहना वैसा गलत नही। ये डाक्टर कुछ कुछ पत्थर होते भी है। मृत्यु और शोक से चचल करने वाला मन का वेदना-बोध भी उनका जाता रहता है। गाँठ-सी पडकर वह बोध चेतना-शून्य हो जाता है। शशाक की बीमारी मे उसकी मृत्यु निश्चित जानकर भी इसकी घोषणा करने में उन्हे चोट लगी है, किन्तु एक चिकित्सक के कर्त्तव्य को उन्होने आँच नही आने दी है। अपने ही बेटे '।

उन्होने फिर एक लम्बी साँस छोडी और विषाद की हँसी हँसी। अपने बेटे की भी नाडी देखकर उन्होने उसकी मृत्यु-घोषणा की थी। वे इसे तीन महीने पहले ही ताड गए थे। अपनी स्त्री से उन्होने यह बताया था। बेटा डाक्टर था। उसे भी उन्होनें इशारे से बता दिया था। आज ऐसा सोचते हैं कि आखिर बताया क्यो था ?

क्या चिकित्सा-विद्या मे पारगत होने के दम से ?

अगर यह बात न होती, तो इस सचाई का एलान करने के बाद मन के कोने मे वेदना और अनुशोचना आज भी क्यो इकट्ठी है ? उसके स्मरण-मात्र से अन्तर से आखिर छि:-छि. क्यो उबल आती है ? आखिर क्यो परमानन्द माधव की याद नही आती ? डाक्टर अपनी उदास आँखें उठाकर आकाश की नीलिमा को देखते रह जाते। लेकिन लोगो को आगाह करना भी तो चाहिए, बताना चाहिए। ऐसा नियम है। यह चिकित्सको का कर्त्तव्य है। उनका क्षेत्र है।

एक

सन् उन्नीस सौ पचास—बँगला तेरह सौ छप्पन साल के सावन का एक अपराह्न। जीवन महाशय ठीक इसी तरह से आसमान की ओर देख रहे थे। रास्ते से किसी ने जैसे उन्हे आवाज दी।

—दडवत् डाक्टर चाचा!

—कौन? मोती! किधर की तैयारी है?

कोयले की बुकनी से काली हुई-सी अपनी आठ हाथ वाली ही धोती पहने मोती लुहार न जाने कहाँ जा रहा था। गोष्ठ लुहार का लडका है मोती। गोष्ठ को डाक्टर पर बडी भक्ति थी। डाक्टर भी उसे बहुत चाहते थे। गोष्ठ को कई निहायत अच्छी दवाएँ मालूम थी—सन्यासी की बताई दवाएँ। रघुवर भारती एक पहुँचे हुए योगी थे। दवाएँ गोष्ठ को उन्ही से मिली थी। गोष्ठ ने डाक्टर को वे सारी दवाएँ बतानी भी चाही थीं। डाक्टर नकार गये। लेकिन बहुतेरे योगियो को गोष्ठ के पास वे भेज जरूर दिया करते थे। खासकर ऐसे मरीजो को, जिन्हे दो-दो दिन बाद बुखार आता। बडा ही वाहियात बुखार है यह। पारी-बुखार यानी एक दिन के अन्तर से आने वाला बुखार फिर भी दवा सुनता है। लेकिन दो दिन बाद आने वाला यह जो बुखार है यह कमबख्त दवा सुनता ही नही। इसे कायदे पर लाने मे दिन लग जाते है। कुनैन की सुई तक से नही सुनना चाहता। लेकिन रघुवर भारती की दवा से सिर्फ एक दिन मे काफूर। पहले यह दवा गोष्ठ दिया करता था, अब मोती ही देता है। जिस रोज ज्वर आता है, हल्दी से रँगे पीले कपडे के एक टुकडे मे किसी जलज पौधे को मल-निचोडकर उसमे बाँधकर सूँघने के लिए देता है। इसीसे ज्वर जाता रहता है। निश्चित रूप से जाता है।

विचित्र द्रव्य-गुण-रहस्य। बहुत ही विचित्र। रोगी भेजने के सिलसिले से ही गोष्ठ की डाक्टर से अन्तरगता हुई थी। इस देश के सन्यासी-सम्प्रदाय में एक चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित थी और वह चिकित्सा विस्मयकारी

फल देने वाली थी। वह चिकित्सा-प्रणाली जानने की डाक्टर को एक बार इच्छा हुई थी, लेकिन—। लेकिन उनके गुरु का निषेध था। उन्होंने कहा था, जब डाक्टरी सीखी है, तो उस राह न जाना। वैज्ञानिक ढग से जिसके गुण का पता न हो, वैसी चीज का प्रयोग मत करना।

मोती ने कहा—आप ही के पास आया हूँ चाचा !

महाशय जैसे जी उठे। कुछ वतिया सकें, ऐसे किसी आदमी के लिए वे अधीर-से हो उठे थे। तखत पर अब ठीक से बैठ गए। पुराने तकिये को पास खीचकर बोले—आओ, बैठो ! क्या खबर है ?

—जरा मेरे घर चलना होगा।

—क्यो

—माँ को देखना है।

—तुम्हारी माँ को क्या हुआ ?

—जी, कोई एक महीना हुआ, तालाव में पैर फिसलने से गिर पडी थी। पैर में बडा दर्द होने लगा था। मै अस्पताल ले गया था। दवा-पट्टी करके कहा—दो-चार दिनों तक चलना-फिरना बिलकुल बद रक्खो, सब ठीक हो जायगा। ठीक हो भी गया था। लेकिन इधर कई रोज से फिर पुरानी पीडा जाग उठी है—रात-दिन दर्द। फिर ले गया अस्पताल। वहाँ यह बताया कि एक्सरे कराये बिना कुछ बताया नही जा सकता। एक्सरे तो बहुत खर्च का काम है—बडा झझट है। मैंने सोचा, एक बार चाचा को ही दिखाऊँ।

जीवन महाशय हँसे। बेचारा मोती ! बुढिया माँ गले मे काँटे-सी लगी है। मोती अपनी माँ को बेहद मानता है। माँ पर इतनी भक्ति होने के कारण ही लोग उसे बूढा मुन्ना कहते है। उससे माँ की तकलीफ भी नही देखी जाती और एक्सरे का झझट भी झेलते नही बनता। लाचार यहाँ आया है। बोले—ठीक तो है, कल चलूँगा।

—जी, कल नही, आज ही चलिये, अभी। बुढिया मारे दर्द के चीख रही है और मुझे गालियाँ दे रही है। कहती है, अगर अपनी बेटी होती, तो बिना दवा-दारू के ऐसी ही लापरवाही से रखता !

कहते-कहते मोती उच्छ्वसित हो उठा—जिन्दगी-भर में कभी मैंने माँ

के सेवा-जतन मे कोई कोर-कसर नही की, और आज वह मुझे···। रो पडा वह।

डाक्टर ने कहा—तो चलो, देख ही आऊँ!

डाक्टर नगे ही बदन चल पड़े।

व्यस्त होकर मोती बोला—और आपका छाता?

—छाते की जरूरत नही। फिस-फिस पड रहा है पानी, इसमे छाते का काम नही पडेगा।

डाक्टर बोझिल पाँवो मद-मथर गति से चलने लगे। मोती लपककर निकल गया—मै जरा पहुँचकर घर खबर कर दूँ चाचा!

—जाओ!

पहले पहुँचकर मोती को जरा घर-आँगन साथ-सुथरा कर देना था, बच्चो को सँभाल देना था। माँ शायद मैले-कुचैले कपडो मे लिपटी पडी होगी, उसे साफ कपडे पहना देने थे। डाक्टर का न जाना भी क्या था!

दरवाजे पर डाक्टर ने गले को साफ किया और आवाज दी—मोती!

मोती ने जवाब दिया—जी, आया!

आया यानी जरा देर और सब्र करे डाक्टर चाचा, तैयार नही हो पाया हूँ। डाक्टर खडे रहे। अच्छा ही हुआ, सामने दूर तक साफ दिखाई दे रही थी वह कच्ची सडक। इसी सडक से सफेद कपडे का छाता ओढे सिताब मुखर्जी आ रहा होगा। उसके एक हाथ मे होगा वह छाता, दूसरे मे बुझी हुई लालटेन और शतरज की पोटली। कहाँ आ रहा है सिताब?

मोती ने पुकारा—अन्दर आइये चाचा!

बूढी तकलीफ से कातर हो पडी है। मोती ने सच ही बताया था कि बड़े कष्ट मे है। घुटना सूज गया है। सूजन पर डाक्टर ने हाथ रक्खा। बुढिया तिलमिला उठी और डाक्टर चौक पडे। बुखार भी है शायद! घुटने पर से हाथ हटाकर बोले, जरा नब्ज देखूँ!

डाक्टर नाडी देखने लगे—यह बुखार कब से है?

मोती बोला—बुखार कहाँ है चाचा?

—बुखार है। नब्ज देखते-देखते ही वे बोले।

घूँघट के अन्दर से ही मोती की माँ फुसफुसाई—वह दर्द की वजह

से बुखार-सा लगता है। दर्द छूट जायगा तो वह भी जाता रहेगा।

—वेशक, ज्वर छूटेगा तो दर्द जायगा और दर्द जायगा तो बुखार भी जाता रहेगा।

—न-न, बुखार की दवा मैं नही खाने की। बुखार अपने-आप छूट जायगा। आप मुझे पाँव के दर्द की ही दवा दें। बुखार के इलाज की बिलकुल जरूरत नही—वह कुछ है भी नही। मुझसे न तो कुनैन खाते बनेगा, न सुई लेते बनेगी। फाका··· बुढिया चुप हो गई। बिना खाये नही रह सकूँगी, यह कहने में शायद उसे शर्म लगी।

डाक्टर ने हँसकर कहा—उपवास नही करना है। उपवास करने को मैं कहूँगा भी नही। तुम कुछ मेरी आज की मरीज तो हो नही। जब यहाँ नई दुलहिन होकर आई थी, तब से देख रहा हूँ। उस बार का पुराना बुखार, मैने ही तो अच्छा किया था। गोष्ठ ने मेरे सामने यह कबूल किया था कि वह आधी रात को रसोई से मछली और भात लाकर तुम्हे खिलाता था। मुझे मालूम है, इसीलिए मैंने तुम्हारे लिए भात बताया था।

डाक्टर हँसने लगे।

घूँघट के अन्दर जीभ काटकर शर्म से गड़-सी गई मोती की माँ। दरअसल गोष्ठ उसे छिपाकर नही खिलाता था, वह खुद चुराकर खा लेती थी। एक दिन गोष्ठ ने यह चोरी पकड ली। उसीके दूसरे दिन वह डाक्टर से उसके लिए भात की व्यवस्था करा लाया।

डाक्टर ने पूछा—खाने को जी क्या चाहता है, बताओ! मोती की माँ चुप रह गई। इस पर कह भी क्या सकती थी वह? धरती में समा जाने की इच्छा हो रही थी। छि! छि! छि!

—शर्माओ मत, बोलो! जो खाना चाहो, खाना! जो जी चाहे। मोती की तरफ ताककर डाक्टर बोले—माँ को जो भी खाने की इच्छा हो, देना!

—और दवा? शंकित होकर मोती ने पूछा।

—दवा-ववा नही। इसे अच्छी तरह से खिलाया करो। देवीथान की मृत्तिका लाकर लगा दे। बस!

मोती की माँ ने भी घूँघट को थोडा-सा ऊपर खींच लिया—लेकिन

दर्द से मेरी जान जो निकल जायगी !

—तो आग की सेक दो ! शत वैद्य सम अग्नि , उससे वढकर दद का दूसरी दवा नही। नमक की पोटली से सेको ! जो होना होगा, उसीसे होगा।

—जो होना होगा उसीसे होगा ? दवा नही देंगे ? जो जी चाहे वही खाऊँ ? तो अव मै नही जीऊँगी ? मोती की माँ ने घूँघट विलकुल हटा लिया और यह सवाल करके अपलक आँखो डाक्टर की तरफ ताकती रही। अजीब थी वह दृष्टि ! उस दृष्टि में कठिनतम प्रश्न उपस्थित था ! जीवन का शेष प्रश्न !

ऐसी दृष्टि के सामने शायद कोई ठहर नही सकता। ठहर सकते है तीन ही तरह के लोग। एक तो विचारक ठहर सकता है, जिसे प्राणदड देना पडता है। अगर मुलजिम सवाल कर वैठे कि मुझे मरना पडेगा ? तो *विचारक को कहना होगा, हाँ, पडेगा* !

और दूसरा ठहर सकता है जल्लाद, जो वह दड अपने हाथो देता है।

और तीसरा ठहर सकता है चिकित्सक।

जीवन महाशय पहले ऐसा कह सकते थे। अवश्य बूढे-पुरनिये रोगी को ही कहते थे कि अब और जिंदा रहकर करोगे भी क्या ? देख भी काफी चुके, सुन भी काफी चुके, भोगा भी वहुत, भुगता भी वहुत। अव जो है, उन्हे रखकर—। और वे खुलकर हँस पडते।

उनके दादा जगतबधु महाशय आखिरी दिनो कहा करते थे, अरे, गोविंद भज, हरिनाम ले। नाम की नौका घाट पर वँधी है।

जीवन महाशय के डाक्टरी सिखाने वाले गुरु जो रगलाल डाक्टर थे, वे वडे अजीव आदमी थे। मरीज के सामने साधारणतया मरने की चर्चा नही चलाते। लेकिन कोई पूछता तो कह बैठते Medicine can cure disease but cannot prevent death, और लवी डगें भरते हुए मरीज के कमरे से निकल आते थे।

जीवन डाक्टर ने मोती की माँ की ओर देखा और हँसते हुए वोले—वही हो तो कौन-सी तकलीफ की वात है। नाती-पोते, वहू-वेटे के रहते चल वसो ! अगर वने तो कही तीरथ चली जाओ !

बीच ही में मोती बोल उठा—आप भी क्या कहने लगे चाचा ! भला उसके लिए हमारे पल्ले कुछ है ?

—क्यो, दस कोस का तो फासला है। ट्रेन से जाओ, किराये का कोई कमरा लेकर रख आओ ! इसमें खर्च भी कितना होगा ? कटुआ में भीड ज्यादा होगी, पूर्वी बगाल के लोग वहाँ बहुत आ गए हैं। उद्धारणपुर ही जाना अच्छा होगा ! गाँव-गगा का किनारा, अगर सुधरने को होगा तो महीना-भर गगा की हवा लगने से ही रोग हवा हो जायगा ! देख लेना, नया कलेवर हो जायगा माँ का—रोज नहाया करेगी। और नही तो—

बात को अधूरी ही छोडकर डाक्टर कमरे से बाहर निकल आये। बरामदे में खडे होकर दोनो हाथ वढाते हुए बोले—मोती, जरा पानी दो !

दो

डाक्टर को कुछ वैसी तकलीफ न हुई। मोती की माँ की काफी उमर हुई, उमर के अनुपात से सेहत ज्यादा गिर गई है। वात-व्याधि, पेट की गड-वडी—यह-वह कई बीमारियाँ। इन आफतों पर आफत यह कि पाँव की हड्डी में चोट आ गई। टूट गई। शायद हो कि अन्त तक पक भी जाय। इकलौता लड़का है, बहू है, कई नाती-पोते हैं। चल ही क्यो नही बसती बुढिया; ऐसा चल बसना तो सुख ही का कारण है। मगर बूढी को मरने की इच्छा नही, इसे डाक्टर ने एक ही नजर में ताड लिया। मौत की बात सुनकर चौंक न पडें, ऐसे लोग ससार में शायद बहुत ही कम हैं, फिर भी डाक्टर कहते इसलिए है कि लोगो के आगे जाने की सीमा तो नही।

वेचारी मोती की माँ पीछे पडी है, अँधेरे में है। उसे दोष नही दिया जा सकता। बेटा, बहू, पोता, पोती, घर-गिरस्ती—सबमें बेतरह जकड़ गई है बुढिया।

> अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यम मन्दिर।
> शेषा स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमत. परम् !

आज बुढिया वही सनातन आश्चर्य हो पडी है। लेकिन उसे जाना ही पड़ेगा। और जाने में ही उसका कल्याण है। हाँ, कल्याण है। नही तो दुर्गत की सीमा न रहेगी।

डाक्टर का शरीर वजनी है। शरीर के भार से दोनो पैर जमीन पर जोर-जोर से पडते हैं। जब वे राह से गुजरते हैं, आस-पास के घर वाले लोग जान जाते हैं कि डाक्टर साहब जा रहे हैं। सावन की भीसी बारिश से नरम माटी और फिसलन वाले रास्ते में सम्हल कर चलना चाहिए। निगाहे नीचे की ओर चौकस रहनी चाहिएँ। डाक्टर के लिए दोनो ही बाते ऊब की है। मगर चारा भी क्या है। कही पाँव फिसले तो हड्डी-पसली की खैर नही। धरती को लोग माता कहते हैं, हरी घासो और शस्यो से ढँकी धरती को कहते है कोमलागी, मगर एक बार कोई गिरे तो गलती मालूम हो जाती है। डाक्टर अपने ही आप हँसने लगे।

अरे-रे-रे! रुककर—डाक्टर ने जोरो से आवाज दी। रास्ते के किनारे एक गड्ढे मे इस अनावृष्टि की वर्षा का थोडा-सा पानी जम गया था। दो लड़के बडे उत्साह से उस पानी को उलीच रहे थे। कदई पानी से रास्ते की उतनी जगह को उन्होने कीचड बना छोड था।

लडके थम गये। जीवन महाशय को इधर सभी मानते है।

—क्या कर रहे हो? यह हो क्या रहा है?

—मच्छी है। इत्ती बडी एक मच्छी।

—तू मदन घोष का बेटा है न?

—जी, मै मदना का बेटा बदना हूँ।

डाक्टर को हँसी आ गई—सिर्फ मदना का बेटा बदना क्यो, तू गधा है, पाजी है, उल्लू है।

—क्या, मैने ऐसा क्या किया?

—क्या किया? डाक्टर की आवाज अब मुलायम हो आई—बाप का, अपना नाम इसी तरह बताया जाता है? छि छि। कहना चाहिए—जी हाँ, श्री मदनलाल घोष का लडका हूँ मै। मेरा नाम है श्री बदनलाल घोष। समझ गया?

बदन ने अपनी गर्दन झुकाकर माथे को कधे पर रख लिया। बेहद खुश

। डाक्टर ने पूछा—और यह ? यह कौन है ?

देखने में वह लडका खूबसूरत था। बडी अच्छी शकल। लगता नहीं था कि इस गाँव का है। उसने डाक्टर के सवाल का जवाब नही दिया। बदन ने बताया—यह यहाँ सरकार के यहाँ आया है—अपने मामा के यहाँ।

—ओ, अहीद्र सरकार की बेटी अतसी का बेटा है ?

बच्चे ने दो बार अपना सिर हिला दिया—हाँ-हाँ।

डाक्टर ने कहा—पानी में भीगा नही करते, घर जाओ। जुकाम होगा, बुखार आ जायगा। सिर दुखेगा।

बदन बोला—आप क्यो भीजते है ?

डाक्टर खिलखिलाकर हँस पड़े। बोले—अबे, मै डाक्टर हूँ! बुखार मुझसे डरता है। जा, घर जा। चल, मेरे साथ हो ले।

दोनों बच्चो को डाक्टर साथ लिये लौटे। अगर सिताब मुखर्जी न आया हो, तो इन्ही से मनोरंजन रहेगा। राह चलते हुए बोले—जानता है, अमड़ा खाने से अम्ल बिगडता है और उससे बुखार होता है ? मगर डाक्टर अमडा खाते हैं। हम लोगों को कहते हैं कि हम अमडा खाते हैं, लेकिन लोगो को मना करते हैं कि अमडा मत खाओ।

आरोग्य-निकेतन के बरामदे पर सिताब मुखर्जी पहले से ही आकर बैठे थे। डाक्टर पर नजर पडते ही बोले—कहाँ गये थे ? मै आकर सोचने लगा : आखिर गया कहाँ ? यहाँ न तो नंदू है, न इदी। दो में से एक भी नही।

डाक्टर ने उन बच्चो से कहा—अपने घर जा। फिर सिताब से कहा—जरा मोती लुहार के घर गया था। उसकी माँ का परवाना पहुँच गया है। तुम बैठो, मै अन्दर चाय के लिए कह दूँ। चिलम की टिकिया को फूँको, इदी बाहर गया है।

सात-आठ चिलम में तंबाकू भरा पडा है—इसके सिवाय भी टिकिया-तंबाकू अलग से रक्खा है। नदू भरकर रख गया है, जरूरत पडने पर फिर रहता है तो इदी भर देता है या खुद डाक्टर या सिताब आग चढा लेते हैं। दोनो शतरज की बाजी पर वैठ जाते हैं। कौन जाने कब तक चलेगी बाजी ?

अदर रसोई ढँकी पडी रहती हे। सो तो पहले जैसी न तो शक्ति रही है, न उत्साह।

चाय की फरमाइश के वाद चिलम पर टिकिया सुलगा कर दोनो खेलने वैठ गये। खेल अचानक ही मानो जम गया। डाक्टर ने ठप् से सिताव के फर्जी का काम तमाम कर दिया। इधर आसमान मे घटा भी खासी घिर आई, वारिश भी अच्छी शुरू हो गई। झप्-झप् पानी पड़ने लगा, लगा वारिश अभी और होगी। खेल चुपचाप चल रहा था। सिताव ने कहा—डाक्टर, अन्दर चलो। सर्दी-सी लग रही है।

—सर्दी-सी लग रही है? ऐसा क्यो? मुझे तो आराम लग रहा हे।

—तुम्हारी वात ही जुदा है। इतनी चर्वी है कि सर्दी क्या लगे भला? मेरी तवियत भी अच्छी नही है।

—वुखार तो नही आयगा? नब्ज देखूं?

—माफ करो, नब्ज देखने की जरूरत नही। मर्ज हो गया है तुम्हे। नब्ज देखना मुझे भी आता है। देख चुका हूँ, नाडी चचल है थोडी-सी। कोई वात नही। चलो, अदर चलें।—सिताव ने हाथ समेट लिया।

मगर डाक्टर ने छुट्टी न दी। एक प्रकार से जवर्दस्ती उन्होने सिताव का हाथ खींच लिया। ठीक तो, नब्ज मे काफी उत्ताप है। किंतु नाडी की गति के अनुभव का अवसर न मिला। सिताव कलाई छुड़ाने की कोशिश करते रहे।

—कलाई छोड दे जीवन, छोड दे।

—पागलपन मत कर, नब्ज देखने दे।

—नही।—सिताव मुखर्जी चीख-से उठे।

—अरे, हो क्या गया तुम्हे? अरे?—जीवन महाशय हैरान रह गये।

—नही, नही, नही। छोड दे मेरी कलाई। छोड दे।—झटके से अपना हाथ छुडाकर सिताव उठ खडे हुए। उनकी लालटेन एक ओर को पड़ी थी। उन्होने उसे जलाया तक नही, हाथ मे उठाकर वरामदे से नीचे उतर पड़े।

—सिताव, यह रहा तेरा छाता।

सिताव लौट पड़े। अपना छाता लिया और लालटेन जलाते हुए

. . .—अपनी नाडी देख। मै कहे देता हूँ, अब तू जायगा। औरों की नब्ज देखकर निदान बताता फिरता है, अपनी भी सोच।

बारिश में ही सिताब चले गये।

डाक्टर चुप हो रहे। बीच-बीच में सिताब बेवजह ही बिगड़ उठते हैं। बेवजह कहना भी ठीक नही, जब चाल भूल होती है तो मन ही मन अपने आप पर नाराज होते हैं और कोई बहाना मिला नही कि झगड़ पडे। उठकर चल भी देते हैं। वापस लाना मुश्किल है। दूसरे दिन डाक्टर ही उनके यहाँ जाते हैं। डाक्टर को देखते ही सिताब कह उठते—आ-आ, बैठ। बस मै चल ही रहा था कि तू आ गया।

डाक्टर जरा हँसे और अदर जाने के लिये मुड़े। दवाखाने के किवाड़ बद करने गये कि ठिठक कर खड़े हो गये। सिताब का आज का गुस्सा प्रच्छन्न विकार तो नही है? उत्ताप से तो ज्वर ज्यादा नही लगा—। लेकिन सिताब ने नाड़ी तो देखने नही दी! भवें सिकोड़ कर जरा देर वे थिर खडे रहे। सोचने लगे—अभी ही उसके यहाँ जाऊँ?

न:। कोई लाभ नही। अगर ऐसा भी हो, तो सिताब हर्गिज नाडी नही देखने देगा। उलटे और बिगड उठेगा।

फिर इस बारिश में भीगना! जाने दो, होना था सो हुआ। मृत्यु-रोग का एक सयोग भी होता है, बड़ा ही विचित्र, बडा ही आश्चर्यजनक।

दूसरे दिन।

आम तौर से डाक्टर जरा देर से जागते हैं। आज लेकिन तड़के ही उठ बैठे। तमाम रात उन्हें अच्छी नीद नही आई। सिताब की दुश्चिता ने उन्हे बेचैन कर रक्खा। चिंता भी कैसी अद्भुत! रोगो के जितने भी विचित्र लक्षण और उपसर्गों की उन्हें अभिज्ञता थी, या उन्होंने अपनी आँखो देखा था, उन सब लक्षणों से वे सिताब के आचरण को मिलाकर देखते-सोचते रहे। जितना ही सोचा-विचारा, सब मिलता चला गया। उन्हे अफसोस हुआ आखिर सिताब को उन्होने जकड कर कमरे में बद क्यो नही कर दिया? बारिश में उसे जाने क्यों दिया? एक तो प्रच्छन्न विकार वाला बुखार ही निहायत बुरा होता है, फिर कही पानी में भीगकर सर्दी लग गई, तो असाध्य जानिये।

सिताव की उम्र हो चुकी है और कोई वधन भी जीवन मे नही। कहने को एक वधन है— उसकी स्त्री, लेकिन वह ऐसी समर्थ और आत्मपरायण है कि सिताव के न होने का अभाव उसे न चलेगा। सिताव के अभाव को उन्होने खुद महसूस किया। उसके विना डाक्टर के दिन नही कटते। कैसे रहेगे ?

सुवह ही डाक्टर उसके घर जाने को तैयार हुए। डाक्टर की स्त्री सवेरे जग जाया करती है और उनके विचित्र स्वभाव का विचित्रतम अंश जो है, वह सवेरे ही प्रकट होता है। उनका नाम है दुर्गा। दुर्गा दशप्रहरणधारिणी के समान सवेरे युद्धतत्पर ही जगती हैं। मिजाज सातवे पर और उसी आवेश मे मारे वकझक के सारे घर को थर्रा कर थोडी देर में आश्चर्यजनक ढग से धीर-स्थिर हो जाती हैं। डाक्टर के देरी से जगने के कारणो मे यह एक प्रधान कारण है। जव दुर्गा शांत हो लेती हैं तो वे निश्चित होकर विछावन छोडते हैं।

दुर्गा पहले ही जग गई थी और वालू-राख से वर्तन माजने के कारण महरी पर वकझक कर रही थी। ऐसे मे वर्तन कै रोज टिके ? दुनिया में जो पहुँचे हुए महात्मा हैं, मौत जिनके अपने हाथो है, उनके सिर पर डडा मारो तो उन्हे भी मरना पडेगा। और यह तो निर्जीव काँसे का ग्लास ही ठहरा। —महरी को वार-वार यह भी जता दे रही थी कि इन दिनो काँसा मँहगा कितना हो गया है। डाक्टर ने गला खखार कर सूचना दी फिर नीचे उतरे। गभीर होकर कहा—मै जरा वैहार की तरफ जा रहा हूँ। सुवह-सुवह पहली ही वात उन्हे झूठ कहनी पडी, न कहे तो पत्नी की निगाह भस्मासुर-सी भीषण और प्रखर हो उठती।

अपना छाता लेकर निकले। सीधे वाजार वाले टीले मे जा पहुँचे। सदर रास्ता छोड पगडडी पकड ली और सिताव के दरवाजे के सामने जाकर रुके।

सिताव।

सिताव भी जग चुके थे। चौकी पर वैठे नारियल पी रहे थे। डाक्टर को देखकर हँसते हुए वोले—आ गया ?

डाक्टर उनकी वगल मे वैठ गये। वोले—खैर ! वुखार तो नही है ?

चेहरे से तो लगता है कि नही है।

सिताव ने कलाई बढ़ाकर कहा—देख।

देखूं ? —डाक्टर हँसे।

—देख। कही डाल कुछ। अव नही रहा जाता। जिंदगी से नफरत हो गई है।

हँसते हुए डाक्टर ने कहा—यह मैं कल ही ताड़ गया। जो विगडा है तू कल मुझ पर!

मगर सिताव ने उस पर कान ही न दिया। वोले, कल वुड्ढी जिस कदर जामे से वाहर हुई मुझ पर कि क्या वताऊँ तुम्हे। मुट्ठी भर मुर-मुरा तक नहीं दिया खाने को। मैंने कहा: जुकाम है। बुखार-सा हो आया है। जीवन ने थोडा दूध और मुरमुरा खाने को वताया है। अगर घी-आटा हो, तो दो-चार गरमागरम पूड़ियाँ तो और अच्छी हो। जानते हो, आटा-घी घर में मौजूद था। इसीलिए मैंने जानकर ऐसा कहा। वाजार में आटा नदारद है। अपने खेत में कोई दो मन गेहूँ हुआ था। उसी का मैंने आटा पिसवाकर रख लिया है। नहीं कुछ भी तो घर में डेढ सेर तो दूध हो ही जाता है। उसके सारे मक्खन का वह घी वना लेती है। मक्खन का मुंह देखना कभी नसीव नही होता। कल ही उसने मक्खन का घी वनाया है। मगर अपने भाग्य मे न भूतो न भविष्यति और-तो-और, जो मुंह में आया, तुम्हे भी सुनाती रही। जगा हूँ और सुवह से ही मारे भूख के पेट जल रहा है, मानो खांडव वन की आग हो। मगर करूँ क्या आखिर, वैठा-वैठा हुक्के में दम मार रहा हूँ। इससे तो मर ही जाना वेहतर है। जी कर क्या करना है ?

डाक्टर ने सिताव की कलाई खीच ली। छूते ही समझ गये, वुखार उतर चला है। रात वीवी ने खाने न दिया सो अच्छा ही किया! जरा देर नब्ज देखते रहे, फिर वोले—आज जरा सब्जी का शोरवा और चावल खा ले। अभी न हो तो चाय के साथ खा कुछ। अव वुखार आने के आसार नहीं हैं।

कुछ खाओ! —सिताव ने रूखे स्वर से कहा—कुछ खाओ! और ठाकुर की पूजा ? वह कौन करेगा ?

—किसी और को कह दे, कर देगा पूजा।

—कर देगा ? आज कल किसी कवख्त को इसकी अकल भी है या करने की श्रद्धा है किसी मे ? बस बछिया का ताऊ एक वही लँगड़ा रह गया है, चटर्जी का लडका। लेकिन उसके पास जाय कौन ? कही उसे यह पता चल जाय कि मैंने खाना खा लिया है, तो एक ही वेला के लिए पूरे आठ आने माँग वैठेगा।

—माँग वैठेगा तो दे देना। पहले शरीर कि पहले पैसा ! भूख से पेट मे आग लग गई है, मैं खूब समझ रहा हूँ। तुम खालो। मै ही न हो तो इतजाम किये देता हूँ। मुहल्ले से मिसिर या और किसी को भेज दूंगा। भला ? तुम खाओ, भरपेट खाओ। चाय मे मुरमुरा डाल लो।

सिताव ने धीमे से कहा—तुम्ही जरा जाकर कहो न, थोडा-सा हलवा वना दे। आटे को छान दे, सूजी निकल आयगी। चीनी नही है। नही है तो न सही, गुड है। खजूर का गुड भी है उसके पास। मजा देखो, रोज रात को आप दूध-भात खाती है और खजूर का गुड निकाला करती है। वह सोचती है, मै सो गया हूँ। मै मटियाकर पड़ा तो रहता हूँ मगर मुझे वू मिलती है। जरा कहो तो उससे।

डाक्टर हँस पडे।

सिताव सदा का भोजनविलासी है। खाने का शौकीन है, इसीलिए उसकी वीवी ने उसका नाम रख छोडा है वालकदासी। कहती है, अपने ये जो है, खाने के वडे शौकीन हैं। राम कहो, ऐसी जीभ को काट फेको। खाये विना आदमी जी नही सकता, भूख लगे तो दुनिया अँधेरी दीखती है, इसीलिए खाना पडता है। मगर यह खाऊँ, वह खाऊँ, यह कैसी हरकत ! राम-राम !

खाने का शौक सच पूछिये तो मियाँ-वीवी दोनो को है। वुढापे के साथ-साथ वह शौक और भी वढ गया है। इसी वात पर वीच-वीच मे मियाँ-वीवी की ठन जाती है। डाक्टर को वीच-वचाव करना पडता है। इसीलिए सिताव की वात पर डाक्टर को हँसी आई।

भौह सिकोडकर सिताव ने कहा—हँसने क्या लगे ! डाक्टर ने कहा—निदान-निर्णय की कही थी न ?

लहमे में सिताब का चेहरा उतर गया। डाक्टर ने यह देखा और उनकी पीठ सहलाते हुए अभय देकर कहा—न-न, डरो मत, मेरा यह मतलब नही था। अभी तुम कुछ दिनो तक दुनियाँ देखोगे। जाने में देर है। अभी भी रुचि वैसी ही बनी है। लेकिन हलवा आज मत खाना। बुखार को एक बार भी भाग जाने दो। बल्कि एक शाम आज भात और शोरबा खाओ। शाम की तरफ अगर बुखार न आये—जरा देखूँ तो नब्ज ·····। बदन छूने से ही लगा, बुखार उतर रहा है, इसीलिए नाडी नही देखी। देखूँ जरा, बुखार आयगा कि नही आयगा।

डाक्टर ने नाडी देखी। हँसकर कहा—न, अब बुखार आने का तो लक्षण नही है। हलवा मैं तुम्हे कल खिलाऊँगा। आज भर रहने दो। लेकिन अचानक हलवे की याद क्या आ गई?

—चाय-मुरमुरे के जिक्र से ही जी मिचलाने लगा। देखा नही, अरुचि कैसी हो गई है? खैर, एक काम करो, कह जाओ, दुकान से दो-चार बिस्कुट ही मँगवा दे। यही कह जाओ। चाय मे डुबोकर बिस्कुट मजे का लगेगा।

डाक्टर यह बचन देकर उठ खड़े हुए कि मैं खुद ही बिस्कुट भिजवा देता हूँ। सिताब की बीवी से जिक्र किया नही कि वह तर्क करने लग जायँगी, बीमार के लिए ज्यादा उपयोगी मुरमुरा है कि बिस्कुट? और ऐसा तर्क करेंगी मानो समकक्ष चिकित्सक हो। तुरन्त सवाल कर बैठेंगी—देश में जब बिस्कुट नही था तो रोगी आखिर क्या खाते थे? और चूँकि वे बिस्कुट नही खाते तो इसीलिए क्या वे मनुष्य नही थे या उनकी बीमारी नही भागती थी?

सिताब की स्त्री नारी के बजाय पुरुष होती, तो खासा वकील हो सकती थी। गुस्सा कर चीख-पुकार नही मचाती, अपनी जगह अडिग रहकर कूट तर्क पेश करती, क्या मजाल कि कोई कदम-भर हटा दे उन्हे। इस युग में जन्म लेती, तो भी जीवन सार्थक होता। क्योंकि आज तो औरतें भी वकील, जज, मजिस्ट्रेट होने लगी हैं।

ये बातें डाक्टर के मन-ही-मन खेल गईं। उन्होने सिताब से कहा—देवी जी से कहना बेकार है, बल्कि लौटते समय किसी के मार्फत मैं ही भे ा

दूँगा। लेकिन तुम वाहर ही रहना, समझ गये ?

अपने पथ्य के वारे मे आश्वस्त होकर सिताव ने डाक्टर का हाथ थाम लिया। वोले—वैठो, वैठो, चाय पीकर जाना।

हँसकर डाक्टर ने कहा —चाय ही पीने लगूँगा तो तेरा विस्कुट कौन भेजेगा ? फिर कर्मफल का भोग, वह कौन करेगा ? दो-चार जने नब्ज दिखाने आते हैं। वे इन्तजार मे वैठे रहेगे। न, मै चलूँ।

और डाक्टर उठ खडे हुए।

सिताव के लिए जो दुश्चिन्ता उन्हे थी, वह जाती रही थी। परमानन्द माधव, परमानन्द माधव ! नाम जपते हुए वे धीमे-धीमे चल पडे।

उन्होने खुले हुए छाते को सिर के और करीव कर लिया। जिनके घर रोगी है, ऐसो की अगर नजर पड जायगी, तो जाने न देगे।—डाक्टर वावू, जरा रुकिये। वच्चे का नब्ज देख लीजिये जरा। या, जरा मेरे घर चलने की कृपा करे। पिता जी दस दिन से खाट पर हैं, नाडी देख ले।

फिर प्रशसा के पुल। खुशामद कहिये। विना पैसे के डाक्टर से दिखाना है आखिर ! मगर इसमे डाक्टर को खास कोई तकलीफ नही, एतराज नही। क्योकि वाप के समय से अपनी उमर-भर गरीव और मध्य-वित्तो के यहाँ विना फीस के ही रोगी देखते आ रहे हैं। पर इस उमर में अव पार नही पडता। फिर वदली के ऐसे दिन मे भी सर्दी के होते हुए, उनके कान झनझना उठे। लोग अव उन्हे पसन्द नही करते। हाँ, नही करते पसन्द। कहते हैं,— एक तो उस युग के डाक्टर फिर डाक्टरी पास भी नही। दरअसल टोटका चिकित्सा वाले हैं। आज चिकित्सा-विद्या की कैसी तरक्की हो गई है। ये वह सव कुछ नही जानते हैं।

कोई-कोई गऊ-वैद कह देते हैं।

डाक्टर के कदम तेज हो गये।

रास्ते के किनारे ही अस्पताल पडता है, नया स्वास्थ्य-केन्द्र तैयार हो रहा है। उसकी ओर निहारे विना न रहा गया उनसे। जाते हुए भी उस पर एक निगाह डालते गये थे। उस समय सन्नाटा-सा था। अव सव जाग पडे हैं। अस्पताल के वरामदे पर दो-चार रोगी आ वैठे हैं। झाडूदार दोनो मियाँ-वीवी चक्कर काट रहे हैं। नर्सों के क्वार्टरो से निकलकर दो

नर्सें अस्पताल की तरफ जा रही हैं। खैराती दवाखाने के बरामदे पर कई रोगी जुट गये हैं। आते भी जा रहे हैं। वहाँ, उस तरफ स्वास्थ्य-केन्द्र की नई इमारतें बन रही हैं। बहुत बड़ा मकान। बड़ी-बड़ी तैयारियाँ। बहुतेरे बिस्तर, बहुत-से विभाग—शिशु-मंगल, मातृमंगल, संक्रामक रोगो का विभाग, साधारण विभाग, सर्जरी का बहुत बड़ा विभाग खुलेगा; खून से लेकर जिन-जिन चीजो की भी जाँच हो सकती है, सब की व्यवस्था रहेगी।' खैर, अच्छा ही हो रहा है। देश में बीमारियो की जैसी बाढ़ आने लगी है, उसमें ऐसा विराट् प्रबन्ध न हो, तो प्रतिकार होने का भी नही। डाक्टर को याद आया, सबसे पहले यह खैराती दवाखाना यहाँ खुला था। सन् उन्नीस सौ दो या तीन के लगभग।

और उससे पहले—।

—प्रणाम डाक्टर साहब। कही रोगी देखने गये थे ?

चौककर डाक्टर ने आँखें फेरी। देखा, अस्पताल का कंपाउण्डर हरिहरपाल अपनी साइकिल थामे उनके पीछे खडा है। अस्पताल जा रहा था शायद, रास्ते में डाक्टर को देखकर घण्टी न बजाकर रथ से उतर पडा और पैदल चलने लगा उनके सम्मान में। खुशी-खुशी डाक्टर बोले—अच्छे तो हो हरिहर ?

—जी।

—और क्या खबर है ? कैसा चल रहा है तुम्हारा ?

—जी, किसी कदर।

डाक्टर समझ गये, हरिहर की आजकल अच्छी ही चलती है। वे मुड़ गये। बोले—पेनिसिलीन खूब चला रहे हो, क्यो ? यह तो उसी का जमाना है।

—जी, सो तो है। जो हो, सब में पेनिसिलीन। और काम भी अच्छा देता है। कहते-कहते उसने सामने की तरफ यानी जिधर डाक्टर खड़े थे, उनके पीछे की तरफ देखा। कुछ चचल-सा होकर बोला—हमारे डाक्टर साहब आ रहे हैं। आपही के गाँव की ओर से आते दीख रहे हैं। हाँ, शायद मोती की माँ को देखकर लौट रहे हैं। रात वह बुला गया था।

महाशय के मन में बिजली की एक लहर-सी दौड़ गई। तो मोती

मुझ पर भरोसा न कर सका, डाक्टर बुला ले गया ? उसी दम वे मुड़कर खड़े हो गये। अस्पताल के डाक्टर साइकिल पर तेजी से चले आ रहे थे। जीवन महाशय ने नमस्कार किया—नमस्कार !

अस्पताल के डाक्टर साइकिल से उतर पड़े। जवान आदमी—पहनावे मे पैंट और बुशशर्ट पर बरसाती, सर पर आयल स्किन से ढँका हैट। आँखो मे ऐनक। कलकत्ते के रहने वाले हैं—नाम है प्रद्योत बोस। उन्होंने महाशय को प्रति नमस्कार किया और पूछा—सकुशल हैं आप ?

—सकुशल ! रोग तो नही है कोई। दुनिया मे इसी का नाम कुशल से रहना है। मोती की माँ को देख आये ?

—जी देख आया। रात मोती आया था। उसी समय ले जाना चाह रहा था। उसकी माँ दर्द से बेतरह बेचैन थी। मान ही नही रहा था ! केस मेरा जाना हुआ था। जब वह गिर गई थी, कुछ दिनो तक अस्पताल मे रही थी। दर्द उसका बहुत हद तक जाता भी रहा था। फिर से दर्द बढ गया है। मेरा खयाल है, उसी हालत मे चलती-फिरती, काम-काज करती है। कही चोट-वोट लगा ली है फिर से। कल आपने भी तो देखा है, जानते ही हैं सब।

—देखा है, जभी तो पूछ रहा हूँ, क्या खयाल है आपका ?

—जरा पेचीदा-सा हो गया है। एक्सरे किये बिना ठीक व्यवस्था होना मुश्किल है। अन्दर हड्डी मे गहरी चोट है, फट भी गई हो शायद—अगर फ्रेक्चर होकर कही हड्डी की टुकडी-टुकडी हो, तो नश्तर लगाना पडेगा ! उपाय बन पडे तो चगी हो जायगी—ऐसा मारात्मक कुछ नही है। डाक्टर ने अपने दोनो होठो पर लापरवाही की रेखा दौडाई।

महाशय ने कुछ सोचा, फिर बोले—हड्डी की टुकडी-टुकडी नही है और न फ्रैक्चर ही है। दर्द घूम रहा है, सूजन भी। चीर-फाड मे अपना दखल नही है। समझता-बूझता नही हूँ। मैं नब्ज पहचान सकता हूँ। जैसा कि मेरा खयाल है, वह महज उपलक्ष्य है—उपलक्ष्य यानी हेतु। दरअसल—। और हँसकर इंगित से उन्होने अधूरी बात को समाप्त किया।

प्रद्योत बाबू ने उनके मुँह की बात छीनकर जरा रूखे ही स्वर मे

कहा—आपने तो ज्ञान-गङ्गा कराने का सुझाव दिया है। —वे हँसे और मजाक से कहा—मैंने जाकर देखा, बुढिया के इस कदर धड़कन हो रही है कि ज्ञान-गङ्गा तक की नौबत नही आने की। स्टेशन तक जाने के लिए, गाडी पर चढते-चढते ही दिल डूब जायगा।

प्रद्योत डाक्टर फिर हँसे। बोले—न., बच जायगी बुढिया। थोड़ा-सा खर्च करने को तो मोती तैयार है, बकिये का इतजाम अस्पताल से करके मैं उसे सम्भाल लूँगा—मरने नही दूँगा।

प्रद्योत के उन अन्तिम शब्दो में उपेक्षा का व्यग तीव्रता से बज उठा। लगा, उसने तीर छोडा हो और वह तीर महाशय के सिर के छोटे-छोटे वालो को छूकर निकल गया हो। तालु या कपाल में उसके चुभ जाने से जो यन्त्रणा होती, यह जलन उससे सौ गुनी मर्मान्तक थी।

गर्दन हिलाकर महाशय बोले—डाक्टर बाबू, मारना मुझे नहीं है, वह आप ही मर जायगी, आप ही। तीन महीने हो कि छै महीने—इसी अरसे में बुढिया जायगी। बहुत-सी व्याधियाँ पाल रक्खी हैं। इस चोट के चलते वे सब······

चौंक कर प्रद्योत बाबू ने गर्दन उठाई और बाधा देकर बोले—पेनि-सिलिन, स्ट्रेप्टोमाइसिन—एक्सरे के इस युग में ऐसा कहना सोहता नही। ठीक भी नही। हम जडी-बूटी और कफ-पित्त के युग से बहुत आगे निकल आये हैं—फिर ये बाते इनह्युमैन हैं—अमानुषिक।

महाशय को आगे और कुछ कहने का मौका न देकर प्रद्योत बाबू ने कहा—अच्छा, नमस्कार। अस्पताल को देर हो रही है—मैं चलता हूँ। वे अपनी साइकिल पर सवार हो गये और अस्पताल के अहाते में चल दिये। किसी को कटु बातें कहकर आँख की शर्म बचाने के लिए लोग ऐसे ही नाटकीय ढग से मुडकर चल दिया करते हैं।

कुछ दूर जाकर वे फिर उतरे। कहा—कभी आइये यहाँ, हमारी व्यवस्था देखकर ही सब समझ जायँगे। मेडिकल जर्नल से नये-नये केसो के इलाज का अजीवोगरीब इतिहास पढकर सुनाऊँगा आपको। जिन दिनों चिकित्सा के दूसरे साधन थे ही नही, उन दिनो जो किया सो किया। लेकिन आज, जबकि वैज्ञानिक व्यवस्था हो गई है, लोगो को वह उपलब्ध है, तो

ऐसी चिकित्सा एक वहुत वडा गुनाह है और कोई देश होता तो आपको सजा होती।

तरुण डाक्टर का चेहरा कठोर हो उठा।

जीवन महाशय स्तम्भित हो पडे। मैं गुनहगार हूँ। और कोई देश होता तो मुझे सजा मिलती ?

यह छोकरा डाक्टर इतनी वडी वात कह गया ? वे स्तब्ध-से खडे रह गये। अस्पताल जाने वाले कई रोगी उन्हे देखकर ठिठक गए, अचरज से उन्हे ताकते रहे। जीवन महाशय को इसका ध्यान न रहा। वे आत्म-संवरण कर रहे थे। उनके लिए यह कोई नई वात तो न थी। इस लम्बी जिन्दगी मे यहाँ पास किये हुए जानें कितने डाक्टर आये और गये। जिले से वडे डाक्टर आये, कलकत्ते से भी आये। मतभेद होता रहा है। कभी-कभी अवज्ञा भी सहनी पडी है उन्हे। लेकिन आखीर मे यही सावित हुआ कि जीवन महाशय निर्भ्रान्त हैं ! न, जीवन महाशय नही, वे नहीं, नाड़ी-ज्ञान योग अभ्रान्त है।

सारी वाते, सारी घटनायें याद आने लगीं।

यह ज्ञानयोग उनके पितामह दीनवन्धुदत्त को वैद्य-कुलतिलक कृष्ण-दास सेन से मिला था।

वे धीरे-धीरे आगे वढने लगे।

तीन

जर्जर आरोग्य-निकेतन के वरामदे पर दस एक रोगी अव तक आ वैठे थे। ज्यादातर मुसलमान। तीन पुश्त से—दीनवन्धु महाशय के समय मे यह वंश लगातार चिकित्सा करता आया है। जीवन महाशय वूढे हो गये हैं। न आसक्ति रही है, न उत्साह रह गया है। फिर भी ये लोग उन्हे नहीं छोडते। उनका इकलौता लडका गुजर गया है, अपना विपुल समारोह लेकर नया चिकित्सा-विज्ञान आया है, स्वय स्थविर हो पडे हैं, जीवन मे

शान्ति नही रह गई है, कभी-कभी वे सोचते, अब इसे छोड ही दूँगा। किन्तु छोडते-छोडते भी छोडा नही जाता। आज उन्होने तै किया, न., अब और नही, आज ही इसका अन्त कर दूँगा।

दवाखाने मे अब दवाई है ही नही, यह इन्तजाम ही उन्होने उठा दिया है। नुस्खा लिख देते हैं, नवग्राम का वी के मेडिकल स्टोर्स मरीजो को दवा देता है। दो-तीन महीने पर कमीशन कुछ मिल जाता है।

टूटी-फूटी जो तीन आलमारियाँ खडी हैं, उन पर आज भी हिसाव की वहियों का ढेर लगा है। वहियो की लाल जिल्दो को तेलचिट्टो ने चाट डाला है। भीतर के पन्नो को कीडो ने खा-खाकर चलनी वना दिया है। फिर भी वे वहियाँ रखी हैं। डाक्टर का दुर्भाग्य कहिये, दीमक नही हैं, कभी अगलगी नही हुई—कूडो का ढेर-सा पडा है। जीवन महाशय उनकी तरफ देखकर हँसा करते हैं। उनमे कम-से-कम पचीस-तीस हजार वाकी रुपयो का लेखा है, उससे भी ज्यादा का। तीनो पुश्त का हिसाव लें, तो लग-भग एक लाख रुपये का हिसाव। केवल उन्ही के समय का पावना कम-से-कम वीस हजार रुपया होगा।

उनके पितामह दीनवन्धु दत्त इस नवग्राम मे राय चौधरी वश के आश्रय मे एक पाठशाला चलाते थे। उनकी देवोत्तर जायदाद की वहियाँ लिखते थे, कुछ तहसील-वसूल भी किया करते थे। कविराज शिरोमणि कृष्णदास सेन उन्ही के यहाँ इलाज करने आया करते थे। दीनवन्धु दत्त को उन्होने अपना शिष्य वनाया था। रायचौधरी परिवार के वडे वावू के इकलौते वेटे को सान्निपातिक वुखार था, सवने उसके जीवन की उम्मीद ही छोड दी थी, माँ ने खाट पकडी थी, वाप स्थाणु जैसे वैठे रहते थे और तरुणी पत्नी की आँखो से गगा की धारा जारी थी। मगर कविराज जी निराश नही हुए थे। उन्होने कहा था, एक आदमी चाहिए, अथक परिश्रमी, सेवा करने के लिए फिर तो मै वादा कर सकता हूँ कि वीमारी दिन चाहे जितना ले, रोगी चगा होकर रहेगा। और सेवा के लिए तैयार हुए दीनवन्धु दत्त, लम्वे अडतालीस दिनो के वाद वुखार टूटा। कविराज जी ने दीनवन्धु से कहा—तुम्हे अभी छुट्टी नही मिलने की—अभी कम-से-कम और चौवीस दिन तुम्हे सेवा करनी पडेगी। ऐसे ही समय सेवा करना कठिन होता है। स्नेहाध स्वजन-सम्वन्धी

नेहवश सेवा के नाम पर रोगी का नुकसान कर बैठते हैं। वे रोगी को ज्यादा वकाते है श्रौर जो-सो खाने को दे देते हैं। इस समय तुम्हे बडी चौकसी रखनी पड़ेगी। —दीनवन्धु ने इसे भी वडी मुस्तैदी से निभाया था।

वेटे के चगे हो जाने पर वडे वावू ने उन्हे पुरस्कार देना चाहा था। लेकिन दीनवन्धु ने स्वीकार नही किया। कृष्णदास कविराज ने कहा, पुरस्कार तुम्हे मै दूँगा—अस्वीकार मत करना। तुममे असभव धीरज है, वुद्धि भी स्थिर है श्रौर तुम्हे लोभ भी नही छू गया है, तुम मुझसे चिकित्सा-विद्या सीखो।

श्रौर वैद्यक सीखकर वे यही इस छोटे-से, शात गाँव मे वस गये। नवग्राम मे नही रहे, इसलिए कि वह ब्राह्मणो की मिलकियत थी लिहाजा लडाई-झगडा लगा ही रहता; फिर चूँकि वहाँ वाजार भी करीव ही था, इसलिए शोरगुल भी होता। उन्होने इन झमेलो से दूर रहना चाहा था। कहा करते थे, देवता प्रसन्न तो सहज ही नही होते मगर नाराज वडी जल्दी हुश्रा करते हैं, महज मामूली-सी गलती पर जिन्दगी भर की सेवा की वात भुला बैठते है। श्रौर वाजार वनियो के रहने की जगह है, वहाँ चिन्तन का अवकाश कहाँ?

दीनवन्धु दत्त को ही महाशय की उपाधि मिली थी। विना कोर वाली धोती वाँधते, पाँव में चप्पल, नगे वदन गाँव-गाँव रोगी देखने जाया करते थे। हलके का एक-एक वच्चा उनको पहचानता था। वे वुला-वुला कर उनका इलाज करते, सवको शहद खिलाते। टिनो में भरा शहद रहता। साधुश्रो से उन्हें अपार प्रीति थी। साधुश्रो की सेवा-परिचर्या करके वडे ही विचित्र-विचित्र मुष्टियोगो का उन्होने सग्रह कर रक्खा था। वहुतेरे वने हुए सन्यासियो से ठगाये भी, किन्तु इसके लिए न तो वे शिकायत करते थे, न पछतावा। कोई उनके ठगाने का मजाक करता तो कहते, उसने मुझे ठगा है, मैने उसे नही ठगा। इसमें मेरे लिए दु ख श्रौर अफसोस का कारण नहीं। श्रौर केवल साधु-सन्यासी ही क्यो, जाने कितने नट, फकीर, गुणी आदि से भी उन्होने उनकी विद्या सीखी थी।

उनके वेटे जगवन्धु लायक लडके थे। उन्होने पिता से ये सारी ही विद्यायें सीखी थी। मरते वक्त दीनवन्धु महाशय अपने वेटे से कहते गये—

जीवन में मै विषय तो खास कुछ नही जोड सका, पर महत् आशय छोडे जाता हूँ—इस महदाशयता को बचाये रखना, लोक-परलोक दोनों सार्थक होगे।

जगबन्धु महाशय ने अपने पिता के इस आदेश का अक्षरशः पालन किया था। लोग उन्हे भी जगत् महाशय कहते थे। पिता महाशयता की जो पूंजी कमा गये थे, उन्होने न केवल उसकी हिफाजत की, बल्कि उसे और भी चमकाया। उन्होनें सस्कृत सीखी थी और आयुर्वेद का अध्ययन किया था। पारुलिया के वैद्यपाट के छात्र थे। चिकित्सक के लिहाज से आयुर्वेद में उनकी जैसी व्युत्पत्ति थी, वैसे ही निर्लोभ और रोगियो के प्रति स्नेहपरायण थे। फिर मनुष्य के नाते उनमें जैसा मर्यादा-बोध था, वैसी ही मधुर थी उनकी प्रकृति "प्रकृति की यह मधुरता उनकी मीठी बातो के सूक्ष्म रसबोध और रसिकता से जाहिर होती। उनकी रसिकता की कुछ स्मृतियो ने यहाँ के लोगो के अलिखित रस शास्त्र के इतिहास में कुछ अध्याय जोड़ दिये हैं। रसिकता की विशेषता यह रही थी कि उसमें कडवापन की बू-बास ही नही थी। लोग उसकी मिठास से नहाकर प्रसन्न हो उठते।

नवग्राम से लाल रोड़ो की यह जो सड़क इस गाँव तक आई है और इसके उस पार के सुदूर विस्तृत मैदान की छाती को चीरती हुई चली गई है, उसका जिक्र आते ही लोगो को जगत् महाशय की याद हो आती है, याद हो आती है उनकी रसिकता की बात और लोगो का मन सरस हो उठता है। आप-ही-आप हँसकर लोग लोटपोट हो जाते हैं।

पैंतालीस साल पहले की बात। तब इस गाँव की इस सडक का महज एक आकार ही रहा था—आयतन भी था—स्थिति भी रही थी कहिये, लेकिन कोई बनावट नही थी। ऊँची-नीची, ऊबड़-खाबड और बीहड़-सी थी। बरसात मे छाती भर कीचड हो जाता। उस कीचड की आज कोई कल्पना भी नही कर सकता। यह जगत् महाशय की रसिकता से ही समझ सकेंगे।

देवीपुर के पुराने खाई-खंदको के बारे में आज भी सुना जाता है। किसी भी जरा उम्रवाले आदमी से पूछ देखें, तुरत आपको बतायगा—चोर-पकड़ी, यानी उस कीचड में पडा तो चोर का निस्तार नही। गौमारी

नाला—उस नाले की दलदल में बिरिज नाई की गाय फँसकर मर गई थी। जहाँ इस बात की याद आई कि लोग हँसकर बेहाल हुए। हँसे बिना रहे भी कैसे ? आप ही सोच देखें जरा, बिरिज की मरी गाय, मगर गाय के मरने से बडी मुसीबत यह आन पड़ी कि प्रायश्चित्त के लिए उसका सर कौन मूडे ? हजाम तो वह खुद ही था, उस्तरा भी था उसके पास, लेकिन उस्तरा चलाये कौन ? आज की तरह उन दिनो सभी को उस्तरा चलाना थोडे ही आता था ! और आता भी तो अपने से अपना सर मूडना तो हर्गिज नही हो सकता। आखिर मे जगबन्धु महाशय ने ही बिरिज नाई का माथा घोट दिया ! कविराज ठहरे, बहुत बार विकारवाले रोगी का सर उन्हे घोटना पडता था। ऐसे रोगियो को वे हजाम के भरोसे नही छोडा करते थे। उस रोज बिरिज के माथे को बायें हाथ से थामकर वे हँस पडे थे और बाल बनाते समय हँसकर ही कहा था—क्यो बिरिज, चुकाऊँ बदला ?

जी !—बिरिज अवाक् हो गया था—बदला ? काहे का बदला ?

—हजामत करते वक्त बहुत बार खून बहाया है तुमने, आज मेरी बारी है। बदला चुकाऊँ ?

खैर। इस रास्ते का सुधार उन्होने यानी जीवन महाशय ने किया। लकडी की तख्ती पर यह जो नाम लिखा टँगा है, यह उन्ही का कराया है। जगबन्धु महाशय कविराज थे। जीवन महाशय डाक्टर-कविराज दोनों हैं। उन दिनो घर-घर एक कहावत-सी चल पडी थी—जगत् खाओगे कि जीवन खाओगे ? कोई बीमार पडता तो घर के लोग मरीज से पूछते—जगत खाओगे कि जीवन खाओगे ?मतलब यह कि डॉक्टरी दवा खाओगे—जीवन डॉक्टर को बुलाऊँ ? या कविराजी दवा खाओगे, जगबन्धु कविराज को बुलाऊँ ?

अब आज से लोग सदा के लिए यह बात ही भूल जायँ !

—महाशय बाबू जी !

चोट खाये हुए-से जीवन महाशय दवाखाने मे स्तब्ध होकर आ बैठे, फिर अनिमेष आँखो बाहर की ओर देखते रहे। बस, आज से किस्सा खत्म ! वश की महाशय उपाधि और चिकित्सक के काम का आज से अन्त हो जाय !

इतने में शेखटोले का बूढा मकबूल द्वार के पास आकर बैठ गया पुकारा—महाशय, बाबू जी !

जीवन महाशय की छाती के भीतर से आप-ही-आप एक लम्बी उसाँस निकल पडी। कौन ? उन्होंने मकबूल की तरफ मुडकर गौर से देखा।

मकबूल ने कहा—जरा नब्ज देख लो बाबू जी। इस बुढारी में बडी तकलीफ उठा रहा हूँ। सारे बदन में दर्द। हलका बुखार। चलने की तैयारी है, यह मै जानता हूँ, मगर यह तकलीफ तो अब नही सही जाती। कोई उपाय कर दें।

गर्दन हिलाकर महाशय ने कहा—अब मेरे पास मत आया करो मकबूल। अब मैं इलाज नही करूँगा। अब बहुत तरह का अच्छा इलाज निकल गया है, अस्पताल खुल गये हैं, नये डॉक्टर आ गये हैं। तुम वही जाओ।

मकबूल अवाक् रह गया। ऐसा जीवन महाशय कह रहे हैं ! दीनू महाशय के पोते, जगत् महाशय के बेटे जीवन महाशय ऐसा कह रहे हैं ? जिनके नब्ज पर हाथ धरते ही मकबूल को लगता कि आधी बीमारी गायब हो गई, उनके मुँह से ऐसी बात !

उसके चेहरे की तरफ ताकते हुए उदास हँसी हँसकर डाक्टर ने उसे समझाया—मुझे अब अच्छा नही लगता मकबूल। फिर उम्र हो चुकी, गलती भी हो जाती है—

—अरे भई डाक्टर, तुम इलाज करना छोड दोगे तो अपने लोगों का क्या हाल होगा ? हम कहाँ जायँगे ? रहने भी दो, नाडी देखकर विदा भी करो लोगों को। गलती होती है, गलती अगर होती है तो मानना पडेगा कि अपनी किस्मत का फेर है ! नई चिकित्सा, नये डाक्टर, विराट् व्यापार। उसके लिए न तो अपने लोगो की औकात है और न उस पर विश्वास ही है।—यह कामदेवपुर के दाँतू घोषाल ने कहा। बेचारा बडे कष्ट से ही इतना कह सका।

एक साँस में इतनी बात कह जाने के बाद वह जोरो से खाँसने लगा और खाँसने लगा। खाँसी के मारे पँजरे की हड्डियाँ कमार की टूटी भाथी-सी धौंकने लगी। लगने लगा, जानें कब उसका दम अटक जायगा और वह जमीन पर लुढक पडेगा। डाक्टर ने एक पखे की खोज मे चारो तरफ नजर

दौडाई—या कोई भी ऐसी चीज मिल जाय, जिससे उसे हवा की जा सके। दाँतू के ललाट पर पसीने की बूंदे झलक पडी थी। डाक्टर को ऐसा कुछ भी नही दिखाई पडा। कम्वख्त नन्दू के मारे कोई चीज रह भी पाये ! शीशी-बोतल मे लेकर मिनिमग्लास, मलहम बनाने के सरोसामान, थर्मामीटर की डिव्वी यहाँ तक कि निकम्मे स्टैथिस्कोप की रवर की नलियाँ तक समेट ले गया है। जब कुछ नजर ही न आया तो उठकर डाक्टर ने पुरानी आलमारी मे से हिसाव की एक पुरानी वही निकाली, जिस वही में लाख रुपये का हिसाव था, उसी की जिल्द फाडकर वे दाँतू को झलने लगे। जो रोगी वैठे थे, उनमे से एक से कहा—जरा अन्दर से एक ग्लास पानी ले आओ। जल्दी।

बुड्ढे दाँतू घोषाल की तमाम जिन्दगी इसी तरह गुजरी। यह जैसा अभागा है, वैसा ही लोभी, आजीवन जीभ की तृप्ति के लिए सारी दुनिया घूमकर खाता फिरा, लेकिन इससे उसका लोभ तो नही भरा, रोग वढा। स्वस्थता के वदले शरीर का क्षय ही हुआ। ऊपर से गाँजा पीने की आदत। कभी यह इसलिए गाँजा पिया करता था कि इससे भूख वढेगी। दम लगाकर खाने को कोई वैठे तो पाकस्थली शायद वेलून-सी फूल उठती है, ज्यादा खाया जाता है। डॉक्टर ही के यहाँ एक वार न्योते मे दाँतू ने टोकरी भर अन्न-व्यजन चट कर डाला था, उस पर से जव मिठाई आई तो उसने पूरे सैंतालीस रसगुल्ले की खवर ली। जेठ के महीने मे एक पूरा का पूरा पका कटहल खाकर वह कितनी वार विछावन पर पडा-पडा तडपता रहा है, नही कहा जा सकता ! चार-चार वार हैजा होते-होते रहा। मगर जो भी हो, लोभ छोडते न वना। वदहजमी से अव दमे का शिकार है। उस पर भी नशे की चाट। गाँजे के कश खीचकर जव नारियल लेकर पीने वैठता है; पीता जाता है और खाँसता जाता है ! खाँसते-खाँसते दम फूलने लगता है। हफ्ते में दो दिन डाक्टर के यहाँ हाजरी वजा जाता है—डाक्टर, कोई दवा दो। अव नही सहा जाता।

दाँतू को दवा अच्छी चाहिए, मगर दाम न लगे—सेंत ! दाँतू जीवन महाशय का सहपाठी रहा है वचपन में। पाठशाले मे साथ पढा है। अनेक अच्छे-बुरे कामो मे साथ देता रहा है, इस नाते उनकी चिकित्सा और दवा

का उसे बेरोक दावा है। फिर यजमान-सेवी ब्राह्मण ठहरा घोषाल। गलत मन्तर पढ-पढकर पूजा कराता फिरता है। इस नाते भी उसका हक है। अंग्रेजी डाक्टर उसके इस हक को नही मानते। वे न भी मान सकते हैं, मगर जीवन क्यो न मानेगा ? दीनबन्धु महाशय के समय से ही वह इसका हकदार रहा है, अब कैसे छोड़ दे, क्यों छोड़ दे ? मगर दाँतू मे गुण भी है। जहाँ कोई आयोजन हो, ऐसे घर से काए के मुँह ही संवाद भेज दो, दाँतू हाजिर है। रात-दिन काम में जुट जायगा, सब कर-कराकर भोजन करके तब वापिस। दक्षिणा दो-दो न दो, दाँतू को कोई उज्र नही। दो-एक पुडिया गाँजा भर मिल जाय, निहाल हो जायगा बेचारा ! मुर्दा ढोने में उसका जोड नही। इस लिहाज से इलाके का वह एक वास्तविक बन्धु है, इसमें कोई सन्देह नही ! उत्सव के मौके पर वह है, मसान यात्रा में है और राजद्वार में भी है। मुकदमो का वह पेशेवर गवाह है।

आपे में आने मे दाँतू को खासा समय लग गया। उसने औ-औ करके दो-तीन बार डकारने की कोशिश की और अन्त मे जोरो से दो-तीन डकार लेकर लम्बी साँस खीचते हुए कहा—आः, जान बची ! उसके बाद फिर बोला—न हो तो तुम बाकी लोगो का नब्ज देखो डाक्टर, मै जब तक साँस ले लूँ।

मौका पाकर सबसे पहले मकबूल ने ही अपनी कलाई बढा दी। डाक्टर ने नब्ज पकडी। एक अजीब हँसी से उनका चेहरा खिल उठा। आखिर उपाय क्या है ? आप छोडना भी चाहे तो ये लोग उन्हे नही छोडने के—ये मकबूल वगैरह ! नये से इन्हे डर लगता है, उसे अपनाने जैसी सामर्थ्य इनमें नही है, मन की भी नही, माली हालत की भी नही। मकबूल की बनावट भी अजीब है। एक ग्रेन कुनैन खा ले तो पसीना छूटने लगता है और अन्त तक नाडी छूटने की नौबत। वह अंग्रेजी दवा से ऐसा डरता है मानो जहर हो। डाक्टर ने एक-एक कर सब रोगी को देखा, उन्हे व्यवस्था बताई, अन्त में दाँतू को देखा।

घोषाल की हालत इतनी ही देर में काफी सुधर चुकी थी। उसने डाक्टर की तरफ अपना हाथ बढा दिया। डाक्टर ने कहा—तुम्हारा हाथ देखकर होगा भी क्या दाँतू ? तुम्हारी बीमारी अच्छी होने की नही !

तुम्हारी असली बीमारी तो तुम्हारा लाभ है। और यह कम्बख्त लोभ दवा से नही जा सकता। ऊपर से है तुम्हें नशे की चाट। ऐसी हालत मे भी तुम सवेरे-सवेरे गाँजा पीकर आये हो।

दाँतू शर्मिन्दा नही होता। उसने अप्रतिभ भाव से ही कहा—यह गाँजे का नतीजा नही है जीवन, है बीडी का! बीडी! दई मारी बीड़ी की ही सारी खुराफात है। तुम्हारे बरामदे पर आकर बैठा ही था कि क्या नाम है कि ताहिर शेख बीड़ी पीता दीखा। प्यास लग गई बीडी की। उसी से एक बीडी ली। एक कश लगाया और समझ लो कि दम फूलने लगा। फिर एक साँस मे तुम्हे उतनी बाते कह गया। कह गया कि समझ लो अचानक '

दाँतू ने अपने दोनो हाथ हिला दिये—हाथ हिलाकर ही बता दिया कि अचानक बीमारी बढ गई। इसमे उसका कौन-सा कसूर? उसने बेकसूर की तरह एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—यह सब ग्रहो का फेर है, समझा। खैर! जो भी हो, कोई ऐसी दवा दो कि यह दम का फूलना और खाँसी कम हो जाय। साँझ-बिहान चाय के साथ सिझाकर दो-दो तेलचिट्टे खा रहा हूँ, फिर भी कोई नतीजा नही।

डाक्टर ने कहा—गाँजा और तम्बाकू पीना छोड़ देना पड़ेगा। दूसरो के यहाँ खाते जो फिरते हो, वह भी बन्द। केवल सब्जी का शोरबा और चावल। बस। नही तो दवा से कुछ नही होने का और मै ऐसे मे दवा दूँगा भी नही तुम्हे।

—तो और एक बार अच्छी तरह से मेरी नाड़ी देखलो।—दाँतू ने कलाई आगे बढा दी।—देखो, देखकर बता दो कि मै मरूँगा कब। फतवा दे दो। इसमे तो तुम वाचासिद्ध हो। कह दो। सुना, उस लुहार बुढिया को तुमने आगाह कर दिया है। गगा-सेवन की सलाह दी है। मुझे भी बताओ।

डाक्टर चौक पड़े। सवेरे की बात सहसा दिमाग मे खेल गई। कुछ बेचैन-से होकर वे सम्हल कर बैठे। बोले—ठहर जा दाँतू, ठहर।

जल्दी-जल्दी उन्होने कागज का एक टुकडा लिया, नुसखा लिखा और दाँतू को देते हुए बोले—लो। जड़ी-बूटी है, मोदी की दूकान से सिर्फ दो-

तीन चीजें खरीद लेना और उन्ही को तैयार करके खाना।

डाक्टर उठ खडे हुए। कुर्सी खिसका दी और कमरे से बाहर निकल पडे।

अमरकुण्डी का प्राण खाँ बाहर खडा था उसने सलाम किया। पास हो टप्परवाली गाडी खडी थी। प्राण की तीसरी बीवी अरसे से बिमार है। छै महीनो से वह खाट पर पडी है। उसने एक मरे हुए बच्चे को जन्म दिया और तब से भूल रही है बिस्तर पर। हफ्ते मे प्राण दो बार डाक्टर को लिवा जाता है। आज जाने की बारी है। जाना पडेगा। खाँ एक खुशहाल खेतिहर है। बराबर डाक्टर को फीस देता है। वे हँस पडे: अचानक एक बात याद आ गई। मुफ्त इलाज कराने वाले रोगियो से जब उन्होने यह कहा कि अब मैं इलाज नही करूँगा, तब वे इस बात को कतई भूल गये कि आखिर गुजारा कैसे चलेगा? जीना तो पडेगा ही। कुछ भी तो नही रहा है सम्बल। फिर महज आप ही नही हैं, स्त्री है। वह भी ऐसी स्त्री जो क्षमा का नाम नही जानती।

प्राण ने पूछा—देरी होगी अभी?

—न, देरी कैसी? डाक्टर ने कदम बढाया, चलो।

प्राण ने इधर-उधर जरा देखा और कहा—आप गाडी पर सवार हो। मै पैदल ही चलता हूँ। लपककर तुरन्त पकड लूँगा गाडी को। —आगा-पीछा करके कहा—थोडी-सी सब्जी ले आया था। नन्दू अन्दर ले गया है। टोकरी ले आये वह।

प्राण पुराने जमाने का आदमी है, नेह की कीमत आज भी चुकाता है। जब-तब खेत का नाज, तालाब की मछली डाक्टर के यहाँ भेजा करता है, कभी-कभी खुद भी पहुँचा जाता है। जब से बीवी बीमार पड़ी है, सौगात भेजना जरा ज्यादा बढ गया है। डाक्टर पर उसे अगाध विश्वास है। नये इलाज पर यकीन हो चाहे न हो, जवान डाक्टरो पर उसे एतबार नही आता। तीसरी बीवी—जवान है, खूबसूरत भी है, तिस पर प्राण को है सन्देह की बीमारी। बीवी को बचाने के लिए वह बेचैन है, स्वयं चाहे जो हो पर्वाह नही, मगर उसका आबरू गँवा कर बचने से मर जाना बेहतर समझता है। जीवन महाशय की बात ही और है। सर सुफेद हो

गया है, आँखों मे वाप-चचा वाली निगाह-सिरोपा, वह आदमी जाड़े की गगा नदी के पानी जैसा निर्मल है।

गाडी धीरे-धीरे चल पडी।

प्राण-जैसे ही दो-चार नियमित यजमानो के चलते जीवन महाशय नून-तेल-लकडी की फिक्र से वरी रहते हैं। वरसात मे चावल की कमी पड जाय, तो वे लोग चावल पँचा देते हैं। डाक्टर के अभाव को जान पाये कि पूरा करते है। फिर भी डाक्टर ने एक लम्बी उसाँस छोडी।

क्या नही था ?

गाडी वैहार मे आ पहुँची थी। चारो ओर के उपजाऊ खेतों पर आप ही आप नजर पड गई। इन खेतो मे से अधिकाश महाशय परिवार के ही थे। पजा का वह विशाल तालाव, घोप का वह वगीचा! केवल खेत और तालाव ही क्यो, उनके पिता जगवन्धु महाशय ने इस गाँव का भी थोडा-सा हिस्सा खरीदा था। काफी दाम देकर एक आना हिस्सा उन्होंने लिया था।

गाडी के अन्दर वैठे-वैठे उन्हे पुरानी वातें याद आई। तव वे किशोर थे।

नवग्राम माध्यमिक विद्यालय मे पढते थे। स्कूल में उनका वह आखिरी साल था। उस समय जमीदार होने का एक रौव था। उन दिनों जिसने भी जमीदारी खरीदी, उसी का मिजाज वदला। जमीदारी खरीदते ही लोग समझा करते थे कि अव अपने यहाँ लक्ष्मी कैद हो गई। यात्रामण्डली के अधिकारी कण्ठ महाशय का गीत मशहूर था—आशय था, पहले जमीदारी खरीदो, फिर पक्के का मकान वनाओ। उन्ही का एक रिश्तेदार, घोषग्राम का राधाकृष्ण मित्र नवग्राम के उस स्कूल मे पढता था। स्कूल के सस्थापक उस गाँव के प्रतिष्ठित जमीदार के भाई से उसकी होड चलती थी। पढने-लिखने की होड नही, जमीदार खानदान के होने की होड। जव-तव झगडा-झडप हो जाती और हर वार इसकी शुरुआत राधाकृष्ण से होती। वह कहा करता—He is a zamindar's son, I am also a zamindar's son. अभी तो झड़प ही होती है, वडे होने पर दगा की नौवत आयगी।

जगबन्धु महाशय के जमींदारी खरीदने के बाद जीवन महाशय के मन मे भी यह उपाय थोड़ा-बहुत जगा था। लोगो ने, सहपाठियो ने कहा, प्यादा अब फर्जी हो गया। होशियार!

अपनी किशोरावस्था के रूप की याद आई। रूप, जो रूप कोमल, सुकुमार और उज्ज्वल होता है, वह उन्हे कभी नही था; मगर रूप था। बलिष्ठ गठीला कदम, गोल चेहरा, चमकती आँखें और बेखौफ, साँवला रग-दुर्दांत किशोर। कबड्डी में डू-डू करके जब वह पिल पड़ता, तो विरोधी दल के लोग और पीछे हटकर किले बन्दी करते। लगता कि कोई खिलाड़ी आ रहा है!

एक चक्कर काटकर लौटने के बहाने विभाजक रेखा तक आकर फिर बों-बों करके हमला करते और किसी-न-किसी को मात देकर ही वापिस होते।

घर के पीछे ही अखाड़ा था। देह को मजबूत बनाने के लिए लँगोट पहनकर मुलायम मिट्टी पर पछाड़ खाया करते थे। ऊपर से मुद्गर थे, जो आज भी पड़े हैं।

सिर पर जगबन्धु महाशय नही रहे होते तो जीवन खूँखार हो उठते। मगर जगबन्धु महाशय का चित्त जरा भी उत्तप्त नही हुआ। उनके लिए वंश की परम्परागत महदाशयता ही सबसे बड़ी चीज थी। उन्होने दम्भ के मोह से जमीदारी नही खरीदी थी। उस पर उन्हे कोई मोह भी न था। जमीदारी के दम्भ की गर्मी से राहत पाने के लिए ही उन्होने जमीदारी खरीदी थी। जमीदारी खरीदने के दिन की एक बात याद आई।

जगबन्धु महाशय के मित्र गुमाश्ता ठाकुरदास मिश्र ने, जिन्होंने आरोग्य-निकेतन की दीवाल पर लिख दिया था, लाभाना श्रेय आरोग्य, उन्होंने ही श्लेष से पूछा था—यानी तुम जमीदार हो गये! आशय से विषय आखिर बडा होकर रहा। अब तक लोग महाशय कहकर आदर देते थे, अब से लोग प्रणाम किया करेंगे जमीदार साहब कहकर! बाबू महाशय कहकर! बात की पीडा और आरोग्य का आनन्द ठाकुरदास एकबारगी भुला चुके थे। दिन हो चुके थे।

जगबन्धु ने कहा था—भई, ढाल और तलवार, दोनों ही हथियार हैं।

जिसे उनमे से एक भी है, वह योद्धा है। लेकिन तलवार के वजाय उसकी चोट से सर बचाने के लिए जो केवल ढाल ही रखते हैं, उनमे और तलवार वाले मे फर्क है। है या नही फर्क, तुम्ही बताओ। भाई मितिर, यह महज ढाल है मेरी, ढाल। यहाँ के खड्गधारी जमीदार की उद्यत तलवार के कोप से आशय का सर बचाना मुश्किल हो उठा था। इसलिए अस्त्र होते हुए भी ढाल की शरण लेनी पड़ी। तुम्हे खोलकर ही सब कह दूँ। यहाँ के जमींदार से मान बचाना दूभर हो उठा है। जब देखो, लडने को आमादा। नवग्राम के रायचौधुरी परिवार की तलवार टूट गई है, वे उसकी मूठ ही के वार से अब लोगो का सर तोडना चाहते हैं। नये जमींदार ब्रजलाल बाबू गाँव के आठ आने के मालिक हैं। उनकी तलवार अभी पैनी है। पिछले छै महीने से मै गौर कर रहा हूँ, उनके यहाँ कोई बीमार पडता है तो बुलाहट चपरासी के मारफत आती है। सलाम बेशक बजाता है। कहता है, डाक्टर बाबू, सलाम। जरा बाबू के यहाँ जाना है। उनकी देखा-देखी रायचौधुरी के यहाँ के लोग राह-बाट मे, जहाँ भी भेट हो, कहने लगे हैं—महाशयजी, जरा हमारी तरफ से होते हुए जाइयेगा। ब्रज बाबू के यहाँ फीस मिल जाती है, इनके यहाँ वह भी नदारद। समझ गये, बहुत सोच-विचार कर ही यह ढाल खरीदी है। यह अपने लिए तलवार नही है। एक हाथ मे यह ढाल रही, दूसरे मे खरल। छाते के बदले समझ लो।

जीते जी उन्होने इस बात की सच्चाई भी प्रमाणित की थी। उस ढाल के नीचे गाँव के बहुतो को उन्होने पनाह दी थी। और इस ढाल से उन्होने हथियार वाले की उद्दण्डता से किसी गाँव वाले का कभी अपमान नही किया।

जीवन महाशय ने ये बातें अपने कानो सुनी थीं। उस रोज वे बगल वाले कमरे मे बैठे पढ रहे थे।

इतना होने पर भी जीवन महाशय के मन मे विषय-वैभव के दम्भ का उत्ताप सचारित हुआ था। करते भी क्या वे? उत्ताप लगने पर उत्तप्त होना स्वाभाविक है। इससे छुटकारा पाना आसान नही। ऐसा न होता तो वे डाक्टर नही होते, अपने पिता से कविराजी ही सीखते। गर्म हुई चीज स्वाभाविकतया आकार मे बढना चाहती है। जमीदार और धनी के लडके का,

वैभव और अहकार से उत्तप्त हुआ चित्त अपने बाप-दादे की जीवन-परिधि से बढना-फैलना चाह रहा था। इसीलिए जगवन्धु ने मिड्ल स्कूल की पढाई खत्म हो जाने पर उन्हे सस्कृत पाठशाला में भेजना चाहा था। उनकी इच्छा थी, व्याकरण की पढाई समाप्त करके लडका आयुर्वेद पढे। लेकिन जीवन महाशय ने कहा—मेरी इच्छा डाक्टरी पढने की है।

—डाक्टरी !

—जी। अब तो डाक्टरी का ही रिवाज चल पडा है। वैद्यक पर लोगो का विश्वास घटता जा रहा है। वर्दवान में डाक्टरी-स्कूल खुल गया है। मै वही जाऊँगा।

वास्तव में ऐलोपैथिक चिकित्सा राजकीय समारोह से रथ पर सवार होकर निकल पडी थी। कलकत्ते में मेडिकल कालेज, अस्पताल; वर्दवान में मेडिकल स्कूल; हर जिले के सदर मे अस्पताल, खैराती दवाखाना; अग्रेज डाक्टर, नामी देशी डाक्टरो की पोशाक थी : वन्द गले का कोट, पतलून, गोल टोपी, गार्ड चेन, लकडी के पालिस किए हुए औजार वक्स, लेविल लगी शीशियो में तीखी और रग-विरगी दवा, दवा बनाने की बडी सक्षिप्त प्रक्रिया : सव मिला-जुलाकर एक अभियान ही समझिये। इस हलके में तव भी कविराजी का वोलवाला था। जैसे सँडसी से हमला किया जाय, वैसे ही उत्तर और दक्खिन-पूरव कोने मे दो डाक्टर आ जमे थे। एक वडे-से लाल घोडे पर सवार ब्रिचेस और बन्द गले का कोट पहने भुवन डाक्टर जव-तव इस ओर होकर जाते-आते हैं। और उत्तर की तरफ से आया करते हैं डाक्टर रगलाल—पहनावे में तशर का पतलून, वन्दगले का कोट, काले धागे में गले से झूलती जेव घडी। ये पालकी पर जाया-आया करते हैं। कोई चार मील के फासले पर रहते हैं। हलके में ऐलोपैथी के अग्रदूत होकर यही आये हैं। गजव के चिकित्सक हैं। खासी प्रतिभा वाले। मेडिकल कालेज या स्कूल में नही रहे, घर बैठे ही चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया है। नदी से, मसान घाट से लाशें ला-लाकर ग्रन्थों में बताए मुताबिक चीर-फाड करके उन्होने शरीर विज्ञान सीखा है। अद्भुत साधना है उनकी और वैसी ही मिली है सिद्धि। कहाँ हुगली जिले के रहने वाले, वहाँ से एक हाईस्कूल के शिक्षक बनकर यहाँ आये। अंग्रेजी पर उन्हे शायद

असाधारण अधिकार था। वैसा ही अगाध था उनका आत्मविश्वास।

अपने जमाने के मशहूर हैडमास्टर शिवबाबू के लिखे मसविदों में जहाँ-तहाँ निशान लगाकर कहा करते कि ये दो-तीन जगहें सुधार दें। इसकी जगह यह लिखने से अच्छा रहेगा। यह कहने में उन्हें हिचक नहीं होती। अचानक जाने किस आकर्षण से उन्होंने मयूराक्षी के तट के एक निर्जन गाँव में आकर तपस्वी की तरह ऐसी साधना की और उसके बाद एक दिन बोल उठे—अब मैं चिकित्सा करूँगा। कुछ ही दिनों में उन्होंने इलाके में बड़ी प्रतिष्ठा पाई। उनकी चिकित्सा ने न केवल उन्हें इज्जत दिलाई बल्कि ऐलोपैथिक चिकित्सा का भी मान बढ़ाया। चारों तरफ से नई चिकित्सा को लोग श्रद्धांजलि देने लगे।

कैशोर और यौवन के संधिकाल में जीवन महाशय कविराजी के बजाय डाक्टरी की ओर आकृष्ट हुए। सम्मान चाहिए, यश चाहिए, अर्थ चाहिए और लोगों की असीम श्रद्धा चाहिए। इसकी प्रेरणा उन्हें अपनी छोटी-सी जमींदारी ने दी। सोचा, पिताजी ने जब जमींदारी खरीदी है, तो मुझे डाक्टरी जरूर पढ़ा सकेंगे। इसलिए मिडल पास करके वे कांदी राज हाई-स्कूल में भर्ती हुए। इन्ट्रेन्स के बाद एफ ए पढ़ेंगे, फिर डाक्टरी।

*   *   *

बैलगाड़ी के रुकते ही डाक्टर की तन्मयता टूट गई। सामने प्राण की दहलीज थी। आ पहुँचे। बीते काल से वास्तव वर्तमान भी है।

चार

प्राण खाँ की बीबी पहले से अच्छी ही थी। उसे इससे भी अच्छा होना चाहिए था, पर नहीं होती। नाड़ी की गति से डाक्टर को जैसा लगता, उससे रोग के उपसर्ग का बिल्कुल मेल नहीं बैठता। बीमारी से बीमारी का भ्रम ही ज्यादा था। यहाँ दर्द, वहाँ दर्द, बिस्तर पर पड़े-पड़े छटपटाना, अँतड़ी में जलन जरा भी नहीं घटता। मजे की बात तो यह थी कि जहाँ

यह कह दिया कि अच्छी तो है, बस बीमारी बढ गई। डाक्टर करें भी तो क्या, इसका कोई इलाज उनके पास नही। उन्होने यह समझा कि वह अच्छी होना ही नही चाहती। खाँ की बीवी के रूप में भली-चगी-सी रह-कर घूमना-फिरना उसे पसन्द नही। डाक्टर ने इसीलिए एक तरकीब निकाली है; वे लगातार एक ही बात कहते चले जा रहे हैं कि रोग नाम को भी नही घटा। आज भी उन्होंने वही बताया और कहा—मगर कोई खतरा नही है खाँ। घबराना मत। इसके सिवा खाँ से और कहे भी क्या। अगर सच्ची बात बता दे तो खाँ जो रूप धारण करेगा, वह डाक्टर से छिपा न था। बेचारे बुड्ढे की जिन्दगी अशान्ति से भर जायगी। पति-पत्नी मे पटरी न बैठने से बढकर अशान्ति दूसरी नही। डाक्टर खुद सारी जिन्दगी इसी आग में जल रहे हैं। यह आग कभी न बुझ सकी। आज भी मरीज देखकर घर लौटे तो देखा, वह आग जैसे सुलग उठी है। समझ नही सके कि उसमें आहुति कौन-सी पड गई।

अतर बहू मारे खीझ के बकती चली जा रही है, अभी भी अपने आप बक-झक कर रही है। उन्हे और नवग्राम के शशि डाक्टर को फटकार रही है। आग मे घी के छींटे शशि ही दे गया है, उनकी गैरहाजिरी में वह आया था। डाक्टर मिले नही, सो अन्दर बैठकर अतर बहू का ही दिमाग चाट गया है। तम्बाकू पीता रहा और राख और गुल से सारे बरामदे की हालत बिगाड गया। बहू को वह दुनिया भर की खबरें बता गया और उसी सिल-सिले में उसने वह बात भी बहू के कानो रख दी, जो अस्पताल के डाक्टर ने जीवन महाशय से कही थी। बदनसीब शशि पर बहू को जितनी ममता है, उतना ही क्रोध भी।

शशि उनका शिष्य है। आरोग्य-निकेतन मे ही उसने डिसपेंसिंग सीखी—चिकित्सा का अक्षरारम्भ यही हुआ। उसके बाद गया बर्दवान। कपाउण्डरी पास की और नवग्राम के खैराती दवाखाने में पहला कम्पाउण्डर बहाल हुआ। कम्पाउण्डरी उसे अच्छी आती है और मामूली तौर पर दवा-दारू करना भी सीख गया है। उन्होने ही उसे नाडी देखना, रोग पहचानना सिखाया था। मगर बेहद गन्दा आदमी। हजामत की झझट से दाढी-मूँछ रख छोडी है। नहाता शायद ही है, दाँत भी शायद नही साफ करता। एक

कुरते को पन्द्रह दिनो तक पहने रहता है। जब तक उसमे से जोरो की बदबू नही आने लगती, बदलने का नाम नही लेता। जब देखो, तम्बाकू पी रहा है। तम्बाकू टिकिया, सलाई हरदम जेब मे मौजूद है, हाथ मे हुक्का। शराब भी चलती है। कभी-कभी बदहोश होकर पडा रहता है। इस हुक्के की बदौलत ही उसकी अस्पताल की नौकरी गई थी। हुक्का तम्बाकू, चिलम, टिकिया का डब्बा—यह सब कुछ पाकेट मे लिए बिना वह एक डग नही चलता। कहता है, भई, लोग छिपे-छिपे बाप के हुक्के मे दम लगाकर तम्बाकू पीना सीखते है, मैंने अपने बाप के बाप से पीना सीखा। और कुछ लुक-छिप कर नही सीखा, वे खुद चिलम भरकर मुझे पिलाते थे। तम्बाकू के बिना चलना मना है। अपने बच्चो से मैंने कह रखा है कि मैं मर जाऊँ तो मेरी चिता पर हुक्का, चिलम, तम्बाकू टिकिया जरूर रखना। दिया-सलाई की जरूरत नही पडेगी—चिता की आग से ही काम चल जायगा। अस्पताल में दवा की आलमारियो मे तम्बाकू टिकिया रक्खा करता था। चिलम की राख एक कोने में ढेर कर देता था। डाक्टर के आ जाने पर कागज, कपडा या पैकिंग बक्स डाल कर ढँक देता। फिर भी बात जाहिर हो जाती थी। तीन-तीन बार इस जुर्म मे पकडाया, किसी कदर नौकरी रह गई। चौथी बार में न बच सकी नौकरी। न बची, न सही, अपने हुनर से ही उसने कमाया-खाया और आज भी गुजर चला रहा है। अब शराब पीना कुछ कम हो गया है। लडके नौकरी करते है। आप जैसे भी हो, कम-से-कम एक रुपया जरूर कमाता है। सलाह की जरूरत पडने पर जीवन महाशय के पास आ जाया करता है। उन्हे गुरुजी कहता है। उनसे बहुत कुछ सीखा है।—जितना भर जानता हूँ, उसका बारह आना!—और यह कहकर खूब हँसता है। बात मे एक सकेत होता है। उसने उनसे सिर्फ डिसपेंसिंग और डाक्टरी ही नही सीखी, शतरज खेलना भी सीखा। और सीखा, कीर्तन में दोहार देना। इन दो बातो मे उसे कमाल हासिल था, जिसे कहते हैं, शिष्य विद्या गरीयसी।

शतरज पर शशि को बिठाकर यार लोग उसके घर से खाना लाकर चट कर जाते। घर पर जाकर कहते—भैया को कॉल मिलाहै, रात उन्हे रोगी के पास रहना है। सो उन्होने हमसे कहा भैया, घर से जाकर खाना

ला दो तो नसीब मे भोजन जुटे वरना···। उनका खाना दे दीजिये।

शशि रात मे रोटी खाया करता और उसकी बीवी के हाथ की रोटी मशहूर थी। रात के दो बजे जब वह खेल से फ़ारिग होता तो खाली बर्तन उसे थमाते हुए दोस्त कहते—भैया, इसे लेते जाओ। थाली तुम्हारी है।—बस, शशि का घर लौटना रहा! गाली-गलौज करके वही भूखा सो रहता। यो घर लौट जाने से उसके कॉल की मर्यादा जो जाती! दूसरे दिन किसी से दो रुपये पैंचा लेकर तब घर जाता। जाते ही कहता—ये कॉल के रुपये हैं, सहेज लो।

जीवन महाशय से सीखी हुई तीसरी विद्या सगीत मे वह असुर है—असुर कहने से भी ठीक व्याख्या नही होती, विकटासुर कहिये। एक तो बेहद भद्दी आवाज, तिस पर बेताला फिर पिए बिना मच पर जा नहीं सकता। बड़े-बड़े उस्तादों का हवाला देता।

कीर्तन में वह गले फाडकर चिल्लाता।

सिर ठोंककर हँसते हुए जीवन महाशय कहते—अपना नसीब!—कभी-कभी शशि से कहते—देखो शशि, यो एक साथ हरि और तान का खून तो न करो। शिष्य का पाप गुरु को फलता है! मुझे नरक होगा।—शशि कहता—आप फिक्र न करें! आपका रथ रोके कौन-सा···

और वह ह हा-ह हा हँसने लगा।

यही है शशि डाक्टर!

कभी-कभी वह राय-मशविरा के लिए आता—यह केस तो पक गया डाक्टर बाबू!

जीवन महाशय कहते—रोगी कच्चा है या पका, पहले यह बता। अगर पका है तो टूट जाने दे। तुम्हारे इलाज के बजाय उसकी उम्र का दोष ज्यादा है।

मगर रोगी जवान होता, तो वे उसकी बात सुनते, सोच-समझकर राय देते।

कभी-कभी शशि उन्हे भी बुलाकर ले जाता। ऐसी बुलाहटे ज्यादातर मुफ्त वाली होती, फीस के पैसे नही मिलते। क्योकि शशि कम्पाउण्डर जहाँ डाक्टर के रूप मे बुलाया जाता, वहाँ गरीबी का ही राज्य होता। वह महज

चार आठ-आने से ही सन्तुष्ट हो जाता। ऐसी जगहों में जीवन महाशय को फीस का एक रुपया कहाँ से दिया जाय! और जीवन महाशय यहाँ की माटी, मनुष्य, पेड़-पौधों तक को हृदय से पहचानते हैं। उनके दुख का उन्हें पता है। उनके बाप-दादे के दवाखाने का द्वार ऐसों के लिए सदा मुक्त पड़ा है। अपना भी दरवाजा उन्होंने उनके लिए बन्द नही किया। वे बेचारे जब तक एकबारगी लाचार नही हो जाते तब तक उन चार आने पैसों को बचाने के लिए टेंग कर भी खैराती दवाखाने तक आते हैं। भला ऐसों से जीवन महाशय फीस ले सकते हैं?

इधर शशि के सामने एक नई मुसीबत आ धमकी है। लड़ाई के दौरान मे चिकित्सा-शास्त्र के कुछ जो आश्चर्यजनक आविष्कार हो गए हैं, उनसे ताल मिलाकर चलना उसके लिए कठिन हो गया। अब तक ऐसी कठिनाई नही पडी थी। फिर सल्फा-ग्रूप की गोलियो के निकल जाने से बेचारे को मुश्किल हो गया है। उसके बाद पेनिसिलीन है, स्ट्रेप्टोमाइसिन है। नये डाक्टर इन दवाओं का बेहिसाब इस्तेमाल करने लगे हैं। पेनिसिलीन छोड़-कर तो बात ही नही करते। मगर शशि को इन दवाओं के प्रयोग मे थोड़ा डर लगता। डर लगने की बात भी है, डरना ही चाहिए। नतीजा यह होता कि बिगडकर कभी-कभी शशि ऐसा कुछ कर बैठता, जो चिकित्सा-शास्त्र मे अभूतपूर्व है। कुछ दिन पहले कूडाराम बाउरी की बेटी के न्यूमोनिया हुआ। कूडाराम ने शशि से कहा—डाक्टर साहब, अस्पताल के डाक्टर ने बताया कि सुई वाली दवा से जल्द आराम हो जायगा। सो ·

शशि समझ गया, कूडाराम का मतलब पेनिसिलीन से है। शशि आपे से बाहर हो गया। बोला—ले आ रुपये, लगा देता हूँ सुई। खच् से सुई चुभाकर अँगूठे से दवा दूँगा—मुझे तो इतनी ही तकलीफ होती है। बाकी जलन आप सम्हालना। रुपये की गर्मी है, सम्हाल ही लोगे। हाँ, सुई देने की फीस एक रुपया लगेगी, कहे देता हूँ।

—फिर ?

—फिर जो जी मे आये सो करो। अस्पताल के डाक्टर ने जब बताया, तो उसने अस्पताल से सुई दे क्यो नही दी ? रोगी को भर्ती क्यो नही कर लिया ?

—जी, अस्पताल में तो जगह नही है। और वहाँ भी ये दवाएँ नही दी जाती।

—फिर जो मै कहूँ, वह करो। एक-से-एक बीमारी अब तक खाने की दवा और मालिश से ही छूटती रही है; और तुम्हारी बेटी की छाती मे थोडी-सी सर्दी क्या लगी है, पेनिसिलीन के बिना नही जाती!

—तो वही करे।

नशा और बुढापे के चलते शशि के दिमाग मे कुछ विकृति आ गई है, फिर नाकामयाबी के गुस्से से वह और भी बढ जाती। गहरे सोच-विचार के बाद उसने यह तै किया था कि मालिश मे सरसो के तेल के बजाय मिट्टी का तेल मिला देने से ज्यादा फायदा होगा। मिट्टी के तेल से आग जलती है, लिहाजा उसके तेज से पँजरे में जो सर्दी जम गई है, तेजी से पिछल जायगी। जैसा सोचा, वैसा ही किया। नतीजा यह हुआ कि बेचारी की छाती में फफोले निकल आये। शशि दौडा-दौडा जीवन महाशय के पास पहुँचा।

जीवन महाशय ने बिगडे को सम्हाल भी दिया था, ज्यादा जिल्लत नही उठानी पडी। चूँकि काफी सेवा-जतन हुआ, इसलिए जख्म नही हुआ। फफोला फूट गया और छुट्टी मिल गई। जो भी उठी बीमारी से। इसका श्रेय किसे है, जीवन डाक्टर को नही मालूम। चाहे शशि की इस सूझ मे हो, चाहे उस लडकी के भाग्य से, फफोला हो जाने के बावजूद न्यूमोनिया का जोर जाता रहा। न तो पेनिसिलिन पडा न मालिश, न ऐंटिफ्लजेस्टिन की पट्टी बँधी—कुल कै दिनो मे मरीज खतरे से बाहर निकल आई।

आज यही शशि जीवन महाशय के यहाँ पहुँचा था। क्यो गया था कौन जाने! मगर कम्बख्त ने अतर बहू का पारा गरम कर दिया। ढंग से ही पता चलता है कि उसने मोती लुहार वाली बात की भी चर्चा की। छि।

उसी छोर को पकडकर बहू अब उन पर उबल पडी है। आखिर आजीवन आदमी का एक ही सुभाव रहे? ठोकर खाकर भी सबक नही मिला? यह फतवा देने का अहङ्कार क्या है? किसी को यह कहने का लाभ भी क्या कि तू फलाँ दिन मर जायगा? डाक्टरी पास की होती तो बात थी! घर बैठे पढ-पढा कर कोई सर्वविद्या विशारद भी होता है? छि-छि। जरा सुन आयें जाकर अपने कानों कि नवग्राम के डाक्टर क्या कहते हैं। और यह जलमुँहा शशि, छई का मारा क्या तो बोगस बताता है।

पाँच

इस वोगस शब्द के ही इस्तैमाल मे शशि ने एक झझट खडा कर दिया। यद्यपि बहू को इस शब्द का मतलब नही मालूम है, मगर उसकी ध्वनिगत व्यजना और सारी बातो से उसे लगा कि यह बडा अपमान-जनक है।

मगर इसमे शशि का भी कोई कसूर नही। वह भी इसीलिए आया था कि उसे यह बात लग गई थी। नवग्राम मे प्रद्योत डाक्टर ने इस पर काफी हो-हल्ला मचा रक्खा है। ससार मे अन्याय का प्रतिकार मनुष्य का धर्म है। फलस्वरूप जब एक ने खिलाफ मे आवाज उठाई, तो और भी दस आदमी उस में शामिल हो गये। वह एक सबल-प्रबल आन्दोलन हो गया।

नवग्राम मे जितने भी उपाधिधारी डाक्टर हैं, प्रद्योत ने शायद सबसे ऐसा कहा है और डाक्टरो की जमात से ही छिटककर यह बात बाजार मे फैली है। कहावत है, मरने से बढकर गाली नही। हकीकत मे मौत से बढकर कठोर और भयावनी कोई चीज नही होती। मनुष्य तो मरते ही रहते हैं, रोज मरते हैं, हर घडी मरते हैं, लेकिन मौत को आज तक किसी ने नही देखा, उसकी आवाज किसी ने नही सुनी, वर्ण, गध, शब्द, स्पर्श, स्वाद–किसी मे किसी ने आज तक उसका कोई आभास नही पाया। उसकी व्याख्या नही हो सकती, किसी ने आज तक व्याख्या की नही उसकी। साधारणतया कोई किसी को मरने की कहे तो डर नही लगता। लेकिन कोई डाक्टर कहे तो खौफ होता है और खास कर रोगी को ऐसा कहा जाय तो उसके और फाँसी के मुजरिम के खौफ मे कोई फर्क नही होता। प्रद्योत डाक्टर का यही कहना है। उसने कहा है, ऐसी हृदयहीन बात दूसरी नही हो सकती। इससे किसी डकैत या गुडा या खूनी का छुरा लिये किसी को खेदने से क्या अतर है ? उसकी इच्छा है कि जिलाधीश के पास इस आशय की दरख्वास्त

दी जाय, उस पर सभी डाक्टरों की सही हो।

नवग्राम में वहरहाल तीन डाक्टर हैं। एक तो प्रद्योत स्वयं, अस्पताल मे है, बाकी दो में से एक है हरेन्द्र, इसी गाँव का है, उम्र में प्रद्योत से कुछ साल वडा है। मेडिकल स्कूल मे पास किया है और गाँव ही में प्रैक्टिस करता है। अपना छोटा-सा दवाखाना है। तीसरे हैं चारु वाबू, प्रौढ डाक्टर।

इन सबमें प्रवीण है चारु बाबू; पचास से ज्यादा की उम्र। यहाँ के सव से पहले एम० वी० वही हैं। आज से लगभग पच्चीस साल पहले डाक्टरी पास की और नौकरी में यहाँ के अस्पताल में आये। दस साल पहले नौकरी छोड दी। अपनी प्रैक्टिस करने लगे। पिछले चार वर्षो से प्रैक्टिस भी एक तरह से छोड ही दी है। अब युनियन वोर्ड, स्कूल वोर्ड से ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे हैं। लोग अवश्य यह कहते हैं कि चूँकि उनकी चलती मद हो आई थी, इसलिए दूसरी तरफ झुक गये। उनके लडके भी लायक हो गए हैं। वडा लडका किसी अच्छे सरकारी ओहदे पर है। छोटा डाक्टरी पढ रहा है। जो भी हो, चारु वाबू आदमी सच्चे हैं। खुले दिल के आदमी और वडे हिसावी। रोज शाम को मेजर ग्लास से नाप कर दो आउन्स ब्रांडी पिया करते हैं।

इस इलाके के वहुतेरे डाक्टरो का कुछ-न-कुछ वाकी जरूर डूब गया है, लेकिन चारु वावू की वही में जैसे तिल की भूल नही रहती, वैसे ही फूटी पाई बाकी भी नही रह सकती। हर महीने उनका कपाउण्डर युनियन कोर्ट में वाकी का दो-चार मामला दायर कर आता है। बाजे-बाजे लोग इस बात की शिकायत करते हैं, खरा-खोटा सुनाने से भी बाज नही आते, मगर चारु वाबू कहते है—लुक ऐट जीवन महाशय। पहले उस बूढे की गत देख लो फिर ऐसी वात कहो। वही में पचास हजार वाकी का हिसाब और उस बही को दीमक चाट गई। ठोकर खाकर सीखने की सलाह मत दो भैया! थोडी वहुत प्रैक्टिस जो वे आज भी करते हैं, वह इसीलिए कि निजी खरच चलता रहे। प्रैक्टिस कम होते ही उनकी डिसपेंसरी भी छोटी हो गई है। चार आलमारियो में से सिर्फ एक मे दवाई है और एक के पाँच खानो में से तीन खाली पडे हैं।

पास किये हुए एक डाक्टर और है—चक्रधारी बाबू। उमर मे चारु बाबू से भी बडे है। एल-एम-एफ है। चारु बाबू से पहले यहाँ के खैराती अस्पताल के डाक्टर वही थे। उन्ही की जगह पर चारु बाबू की बहाली हुई थी। अब वे सन्यासी-से हो गये है। रहते तो घर ही हैं पर गेरुआ कपडे पहनते है, पूजा-पाठ मे लगे रहते हैं। प्रैक्टिस तो छोड ही रक्खी है, भूले-भटके कोई नब्ज भी दिखाने आ जाता है तो कहने लगते है—यह सब बेकार है, बेकार। नाडी देखकर होगा क्या? कोई कुछ जानता भी है? यह सब अँधेरे में ढेला फेकना है भैया, अँधेरे में ढेला फेकना है। लगा तीर, न लगा तुक्का। फीस के रुपये तो जेब मे आ ही जायँगे। बीमारी सच पूछो तो अपने आप ही ठीक होती है। चगा होने की शक्ति रोगी की अपनी ही देह मे होती है। ये डाक्टर तेज और कडवी दवायें महज अदाज से देते है। रोगी समझता है, दवा से बीमारी भागी। लेकिन हाँ, दो-चार ऐसे डाक्टर है, जो वास्तव मे चगा करते है।

और तम्बाकू का कश खीचते हुए चक्रधारी अपनी जवानी के दिनो के देखे हुए डाक्टरो की कहानी शुरू कर देते। सर नील रतन, विधान राय, नलिनी सेन गुप्त आदि डाक्टरो की कहानी। अजीब-अजीब कहानी। चक्रधारी कहते जाते—अपनी आँखो देखा है सब। यहाँ के रगलाल डाक्टर को देखा—डाक्टर ही था! यहाँ एक आदमी और है, यह जवीन महाशय। यह नब्ज पहचान सकता है। उनका खुद का लडका बनविहारी भी डाक्टर था। दोस्त था अपना। साथ बैठकर शराब पी है, मौज-मजे किये है। उस बनविहारी को हुई बीमारी। मौत की बीमारी—हमे इसकी भनक भी न हो सकी लेकिन महाशय—

रोगी का धीरज छूट जाता। वह उठकर चल देता। चक्रधारी हँसकर कह उठते—गोविंद-गोविंद। फिर कहते, मुफ्त मे नब्ज बहुत देखा—अब नही।

प्रद्योत चक्रधारी को डाक्टर ही नही मानता। इसीलिए उसके हिसाब से नवग्राम में पास डाक्टरो की सख्या सिर्फ तीन है। उसकी बातो का विरोध किन्ही ने नही किया, न तो हरेन्द्र ने, न चारु बाबू ने। समझना होगा कि चुप रहकर सबने उसकी बात मान ही ली। किसी के मुँह पर यह कहना

अब जिन्दे नहीं रहोगे—इससे निष्ठुर बात और हो क्या सकती है? यह भी सत्य है कि इससे रोगी का आत्मबल टूट जाता है, रोग से लड़ाई करने में कमजोर पड़ जाता है। जीने की आकांक्षा, जीऊँगा—यह विश्वास ही जीने की सबसे बड़ी दवा है, इसे कौन अस्वीकार कर सकता है? प्रद्योत की इस शिकायत से सहमत होते हुए भी हरेन्द्र ने हाथ जोड़कर माफी माँगी यानी इससे मुझे बख्शें। प्रद्योत ने उनकी बड़ी लिहाड़ी ली—आप क्या डाक्टरी को केवल अपनी आजीविका कमाने का पेशा समझते हैं हरेन्द्र बाबू? आपका कोई पवित्र कर्त्तव्य नहीं है? ऐसा फतवा देने वाले और गेरुआधारी पोंगा पडितों में फर्क क्या है? जडी-बूटी, झाड़-फूंक, पानी पढ़कर देने वाली चिकित्सा से नटों के अनाचारी इलाज का डिफरेन्स क्या है?

हरेन्द्र शुरू से आखीर तक हाथ बाँधे ही खडा रहा। प्रद्योत का कहना जब खत्म हो गया, तो हँसकर उसने कहा—मैं इसी गाँव का हूँ। छुटपन में मुझे इन्होंने ही बचा लिया था।

जरा देर रुककर फिर कहा—कभी वे बहुत अच्छा इलाज करते थे प्रद्योत बाबू। अवश्य मैं एक निहायत मामूली डाक्टर हूँ, अपनी समझ-बूझ बहुत थोडी है। इतना कह सकता हूँ, नाडी देखकर रोग की पहचान गजब की करते थे। अब बूढे हो गये हैं, शायद हो कि······। मुनिना च मतिभ्रम। इससे भी पार कर गई है अवस्था। ऐसे में—फिर किशोर बाबू अभी मौजूद नहीं हैं। उसके एब्सन्स में ऐसा करना ठीक न होगा। किशोर बाबू! किशोर बाबू! प्रद्योत जामे से बाहर हो गये। किशोर बाबू कौन? वे और कुछ न कहकर चल दिये।

चारु बाबू ने कहा—आप जवान आदमी हैं—लहू में तेजी है। फिर आज यहाँ हैं, कल नहीं रहेंगे। और कहीं चल देंगे। कोई कह तो रहा था कि आपकी यह नौकरी ट्रापिकल डिजीज़ के एक्सपीरियेंस के लिए है। स्पेशलाइज करेंगे। उस बूढ़े आदमी पर बिगडना आपको शोभा देता है? जाने दीजिये। ऐसी दरखास्त देने से उस आदमी के साथ-साथ बहुतों की रोजी जायगी। सौ की जान लेकर आदमी वैद्य होता है, हजार के प्राण लेकर डाक्टर। पराई जान पर खेल कर ऐसे वैद अपनी जीविका चलाते हैं,

औरो का भी उपकार करते है। आप जैसो के लिए ऐसा गुस्सा करना ठीक नही। मै बल्कि उन्हे मने कर दूँगा कि इस तरह फतवा न दिया करे। हम लोगो के वक्त एक गीत चल पडा था—हम लोग उसे खूब अलापा करते थे, इस भाव का था—'जो भी करना हो बाबा, धीरे करो, आहिस्ते करो, चुभो कर जख्म मत करो।' और चारु बाबू खुलकर हँस पडे।

आज प्रद्योत को चारु बाबू बडे अच्छे लगे। यहाँ आने के बाद उनसे उसका परिचय जरूर हुआ, लेकिन वह परिचय ऐसा था, मानो भलमनसाहत का मुखडा पहन कर हाथापाई! आज चारु बाबू ने उस मुखड़े को उतारकर बाते की। मजे के आदमी हैं। प्रद्योत का मन बहुत हद तक नर्म हो आया। कुछ लजा भी गया—चारु बाबू ने कह जो दिया कि उस बूढे आदमी पर इस तरह बिगडना तुम्हे शोभा नही देता।

प्रद्योत बोला—खैर, आप ही की बात रही। लेकिन उन्हे आप सावधान कर दें। यह अच्छी बात नही। एक तो बात ही बडी कठोर है फिर बिलकुल अन-साइंटिफिक है। नब्ज देखकर, पित्त, कफ, निदान—यह सब क्या!

चारु बाबू ने कहा—एक वक्त गुजरा, जब महाशय की बात बेहद फलती रही। आना-पाई ठीक उतरती रही—और आज भी। उन्होने अपने कण्ठस्वर को थोडा मुलायम करके कहा—लेकिन आपने मोती की माँ को कलकत्ता या बर्दवान भेजने की जो सोची है, भेज ही दे। वरना कही हो गई बूढे की बात तो—

—नही होगी सही।—दृढता से उनकी बात का विरोध और आत्मविश्वास जताकर प्रद्योत साइकिल पर सवार होकर चल दिया। He must prove himself—प्रमाणित मैं करूँगा! इस टोटका चिकित्सा की पोल मैं खोलकर रहूँगा। मेरा एक लक्ष्य है, केवल रुपयो से जेब भरने के लिए मैं डाक्टर नही बना हूँ।

बात छिपी नही रही। कुछ ही घण्टो मे तमाम नवग्राम में यह खबर फैल गई कि डाक्टर प्रद्योत जीवन महाशय को जेल भिजवा कर ही रहेगा। महाशय ने यह कह दिया है कि मोती की माँ मर जायगी, प्रद्योत उसे बचा लेगा और तब जरूरत होगी तो मुकदमा करेगा। ऐसी अर्जी देगा कि ऐसे

टुटपुंजिया इलाज को कानूनन बन्द कर दिया जाय। इन बातों की सबसे गरम और तीव्र आलोचना बी० के० मेडिकल स्टोर्स में हुई।

विनय की यह दूकान—बी० के० मेडिकल स्टोर्स इस हलके में दवा की सबसे बडी दूकान है। जो डाक्टर अपनी प्रेक्टिस के साथ-साथ दवा का भी कारोबार करते हैं, सब यही से थोक दवाएँ खरीदते हैं। इलाके में दूकान की बडी प्रसिद्धि है। दवा यहाँ से नही खरीदते हैं एक चारु बाबू। उन्ही की दूकान की प्रतियोगिता में यह दूकान खुली थी। चारु बाबू ने जब अस्पताल की नौकरी छोड़ दी और अहीन्द्र बाबू, दूसरे नये एम० बी० डाक्टर उनकी जगह यहाँ आए, यह दूकान उसी समय खुली। अहीन्द्र बाबू ने ही विनय से दुकान खुलवाई। उनके सारे नुस्खे वही आते, शाम को खुद भी घण्टे-दो-घण्टे दूकान मे बैठा करते। मुफ्त में रोगियो को देखा करते। अहीन्द्र बाबू के बाद अस्पताल मे तीन डाक्टर आये—उन सबने भी विनय की मदद की। मगर प्रद्योत ने उनकी लीक पर कदम नही बढ़ाया। उनसे कुछ बातों में विनय का दर-दस्तूर हो गया था।

विनय को चिकित्सा का कोई ज्ञान नही, लेकिन डाक्टर कविराज के इतिहास में उसे शुकदेव ही कहिये तो अत्युक्ति न हो। रात-दिन डाक्टरो की चर्चा ही उसका काम है। शशि डाक्टर वही से होकर हरिजनों के मुहल्ले की ओर रोगी की तलाश मे जा रहा था। विनय ने आवाज दी—डाक्टर, तम्बाकू पीलो।—फिर मजाक से कहा—अब तुम लोग गये डाक्टर, गये! डाक्टर प्रद्योत अब तुम लोगों की रोजी-रोटी लिये बिना नही मानने के! कहता है, इन कम्बख्तो को जेल भिजवा दूँगा।

इसके बाद गरमागरम आलोचना जम गई।

शशि ने वही सारी बातें जाकर महाशय की स्त्री से कह दी।

—आखिर जरूरत क्या थी? मुफ्त मे मोती की माँ को जाकर देखना और देखकर ऐसा फतवा देना—इन सबो का काम क्या था? यह युग विज्ञान का है। यह समय उन डाक्टरो का है, जिन्होंने डाक्टरी पास की है। वायु-पित्त-कफ वाला जमाना लद गया! अब उसकी चर्चा ही बेकार है। हूँ।

इससे डाक्टर का बडा जी दुखता। यह जीवन के सारे दु.ख दर्दों का

उत्स था। किसी तेज धार वाली चीज से अचानक किसी के कही चोट लगे और उसी से सारे बदन में जहर फैल जाय, यह मानो वैसी ही बात थी। नसीब उनका! नसीब के सिवा कहा भी क्या जाय! अवसर होते हुए भी उनका डाक्टरी पढना न हो सका। अगर कालेज से निकलकर उन्होने डाक्टरी पढी होती, तो इस घर मे अतर वहू का भी आना न होता।

अजीब-सी बात है। याद आते ही डाक्टर ने लम्बी उसाँस ली। एक छलनामयी उनके सारे जीवन को व्यर्थ बनाकर चली गई। उसी छलनामयी के चलते कादी के स्कूल मे पढते समय अभिजात वश के एक छोकरे से उनकी ठन गई। छोकरा अपनी ही जात का था—कायस्थ। गिरती हुई अवस्था के एक जमीदार परिवार का था।

मगर हाय री किशोरावस्था! अपनी सामर्थ्य और योग्यता की सोचकर कभी होड नही लेती। ताड के पत्ते की तलवार हाथ मे लेकर किशोर राक्षसो से लोहा लेता है। चरवाहे का वेटा राजकुमार से प्रतिद्वन्द्विता मे पीछे नही हटता, नही डरता।

छः

उन्हे याद आया, एक किशोर सखुए और किशोर तमाल मे ठन गई थी। तमाल इस पर शर्मिन्दा नही हुआ।

नवग्राम से मिड्ल पास करके एन्ट्रेस पढने के लिए जीवन महाशय कादी गये। वहाँ के राज हाईस्कूल में भर्त्ती हुए। वहाँ से निकलकर वर्दवान मेडिकल स्कूल में भर्ती होंगे—कितनी कल्पनाएँ, कैसी-कैसी आशाएँ थी मन में! डाक्टर जीवन की कैसी-कैसी तस्वीरे हृदय-पट पर आँकते! सोचते, डाक्टर रगलाल की तरह तशर का पतलून और बन्दगले का कोट पहनकर सादे घोडे पर सवार हो इलाके भर में घूमा करेगे। सोने की जंजीर लगी जेबघडी—थरमामीटर, स्टेथिसकोप, कॉल में जाने वाला वैग। घर में दौलत थी, पिता भी स्नेही मिले थे, घर मे लक्ष्मी थी, अपनी देह मे शक्ति

'१८ मन में उत्साह था। लिहाजा कांदी में उत्साह या मौज-मजे की कमी न थी। इधर खूब सैर-सपाटे चलते और उधर वोर्डिंग के तखत पर सोये-सोये स्वप्न देखते आगे के कि डाक्टर जीवन सुफैद घोडे पर सवार चले जा रहे हैं। अचानक एक दिन सारा नकशा ही पलट नया। नौजवान जीवनदत्त मुहव्वत की चपेट में आ गये। एक गरीब कायस्थ-शिक्षक की लडकी से उन्हें प्रेम हो गया। उनकी उमर अट्ठारह की और नायिका की बारह की थी। उस समय चौदह ही साल की उम्र में लडकियाँ जवान हो जाती थी। पीठ पर वेणी लटकाये चलने वाली आज की इन सत्रह साल की युवतियों से वे तन-मन से काफी परिपुष्ट होती थी। फिर यह लडकी तो कुछ ज्यादा ही तन्दुरुस्त हो गई थी। अगर कहिये कि असमय में पक गई थी तो जीवन महाशय को इसमें एतराज होता है। असमय के पकने और समय पर के पकने में फर्क होता है। जो अकाल में पक जाती है, उसकी बनावट में त्रुटि होती है, उपादान की खामी होती है। किन्तु जो समय पर पूर्णतया परिपुष्ट होकर पकती है, उसमें खामी नही रहती, जिन-जिन उपकरणो की रस-घनता मे लावण्य निखर कर, चाहे वह तन का हो, चाहे मन का, अपनी मीठी खुशबू से हृदय को खीचता है, वे सारे ही उपादान उसमे मौजूद रहते हैं। वल्कि यो कहिये कि परिमाण में वे कुछ ज्यादा ही रहते हैं, नही तो पहले पक कैसे जाती हैं? मजरी कुछ पहले ही खिल पडी थी।

नाम था उसका मजरी।

तन्दुरुस्ती उसकी वहुत अच्छी थी। वारह साल की वह लडकी, आज की कालेज में पढने वाली षोड़शी या पूर्णिमा से स्वास्थ्य और शक्ति में पूर्णांगी थी। केवल उसके वालो से यह सन्देह होता कि यह षोडशी नही है, क्योकि लटें कमर को पार कर नीचे नही पहुँच सकी थी। घने काले वालों की राशि जव कमर के नीचे तक झूल जाती है, तव षोडशी के रूप की पूर्णता समझी जाती है। कैसी, जानते हो? मानो शरद् पूनों की लक्ष्मी प्रतिमा खडी हो, पर उसके पीछे राँगे के साजो की मेड न लगी हो! वह लग जाय तो प्रतिमा सर्वांगीण पूर्ण हो उठे। वस इतनी ही कमी थी।

कुछ अतिरजना हो गई, डाक्टर मन-ही-मन सशोधन कर लेते। प्रतिमा तो लक्ष्मी की थी, मगर श्यामवर्ण और इसीलिए मानो वह और भी

मनोरम लगती थी। मजरी का रूप भुँईचपा की हरी डंठल-सा था, जिसपर फूल का गुच्छा अभी नही फूला था, फूलने के सारे आयोजन हो चुके थे।

जहाँ तक मन का सवाल है, उधर से भी मजरी षोडशी से कुछ कम न थी। देह की पुष्टि और स्वास्थ्य के ऐश्वर्य से उसे किशोरी का मन मिला था। सोलहो आने की अधिकारिणी, बल्कि अट्ठारह आने की कहिये और कहिये क्या, जीवनदत्त के हिसाब से यही होता। सोलह साल मे अगर कैशोर होता हो तो नियमत उम्र के हिसाब से बारह आना तो होना ही चाहिए, बाकी चार आने में से दो आने की पूर्ति उसकी तदुरुस्ती ने की थी और बाकी दो आना उसने घर की शिक्षा तथा माँ के पढाये ससुराल जाने के मत्र से हासिल किया था। इसके सिवा भी और दो आने की पूँजी उसकी थी। यह पूँजी उसे कही पडी नही मिली थी, मिली थी पढने-लिखने से। गरीब होते हुए भी पिता शिक्षक थे। उन्होने मामूली हिन्दी उसे पढाई थी। और कहा था, रामायण, महाभारत पढा करो। लेकिन वह रामायण-महाभारत तक ही आबद्ध न रही। पदावली-साहित्य पढा, पुराने काव्य पढे। ये ग्रथ घर ही थे। बहियो मे लिखी पूर्वजो की विरासत। इसके बाद बकिम-साहित्य हाथ आया। प्रताप शैवलिनी, जगतसिंह आयशा से परिचय होते ही सोलह आना फूलकर अट्ठारह आना हो गया। बकिम-साहित्य उसे उसके बडे भाई ने ही दिया।

जीवन को सहपाठी मिला मजरी का बडा भाई बकिम। बोर्डिंग में जीवन की चर्चा रहती—खुले हाथो खर्च करता। बाप ने जो जमीदारी खरीदी थी, जीवन ने वहाँ उसके खूब गीत गाये—उसमें अच्छे तबाकू की बू जरा ज्यादा थी। उसी बू से पहुँच गये चतुरानन। बंकिम का पुकार का नाम था चतुरानन। लडके कहा करते थे, बकिम चार मुँह से तंबाकू पीता हैं और चार मुँह से बात करता है। तबाकू की गध से बकिम खिचा आया। घनिष्ठता कर ली। इसी सिलसिले मे उसने यह भी ईजाद कर लिया कि जीवन उन सबके रिश्ते में कुछ लगता है। बकिम के मामा जीवन की अपनी मामी के देवर के खास अपने साढू के पोत-दामाद हैं। सो एक दिन उसे खीचकर अपने घर ले गया। अपने पिता से उसका परिचय कराते हुए कहा—यह अपना रिश्तेदार ही है। बकिम के पिता नवकृष्णसिंह ने सबध को

तो वैसा महत्व नहीं दिया, लेकिन उसका उन्होंने बड़े उत्साह से समादर किया।

—तुम दीनबंधु महाशय के पोते हो? जगबंधु दत्त के लड़के? तुम तो महाशय परिवार के हो! आयुर्वेद तुम्हारे यहाँ की वंशगत विद्या है। मैंने सुना है, तुम्हारे पिता जी ने जमीदारी खरीदी है?

जीवन यह सुनकर पुलकित हुआ। शर्म से सिर झुकाए खड़ा रहा। यह प्रशसा उसे अच्छी ही लगी।

नवकृष्ण ने कहा—अरे भई,अपना भी तो घर उसी तरफ है। नौकरी-पेशा आदमी, दशहरे की छुट्टियो में जाया करता हूँ। गर्मियो में नहीं जाता। वहाँ खास कोई जायदाद नही है। पाँच-सात बीघा जमीन है। हिस्सेदारों में बनती नहीं। जाकर करूँ भी क्या? नही तो महज पाँच कोस का फासला, अपना संबंध भी कुछ-न-कुछ है, परिचय होता। खैर। तुमसे परिचय हुआ, बडा अच्छा हुआ। लेकिन—

जरा भौं सिकोड कर उन्होंने पूछा—लेकिन तुम अंग्रेजी क्यों पढने आये?

जीवन उनके सवाल का आशय नही समझ सके। उत्तर में उन्होंने प्रश्न जैसा ही कहा—जी?

—आयुर्वेद ही तो तुम्हारी कुल-विद्या है, बल्कि कुल-धर्म भी कह सकते हैं। अरे भई, इसके लिए तो तुम्हें सस्कृत पढनी चाहिए थी? अंग्रेजी पढने क्या आगये? और केवल विद्या की बात नहीं, यजमान की तरह घर तक बँधे हैं। उसी की बदौलत तो तुम्हारे घर की प्रतिष्ठा है, महाशय की उपाधि मिली है; जमीन-जगह, जमीदारी, तालाब सब तो उसीसे हुआ है।

—मेरी इच्छा डाक्टरी पढने की है।

—डाक्टरी। वाह-वाह। बहुत ही अच्छा सोचा, यह बहुत ही अच्छा होगा। नवकृष्ण मुग्ध हो गये थे। उसके बाद उन्होंने कहा था—जाओ, अदर जाओ। बंकिम, अपनी माँ के पास ले जाओ। सब कुछ तो दर असल वही हुई। हम लोग तो उन्ही के रिश्ते से अपने हुए! जाओ।

मंजरी उस समय अपनी छोटी भाई-बहनों के साथ 'आनी-पानी' घूम रही थी। कमर बाँधे दोनो हाथो को दोनों तरफ फैलाये लट्टू की तरह

चक्कर खा रही थी। कहती जा रही थी—

"आनी पानी जाने ना
अपना क्या पर माने ना
चोट लगे तो लगे न दोप
नही मानती गुस्सा रोप
हट जाओ जी हट जाओ
नही तो लो धक्का खाओ।"

और उसी तरह घूम-रहे भाईयो में से किसी से टकरा जाती थी। वह चाहे वहन हो, चाहे भाई, धक्का खाकर भद् से जमीन पर जा रहता। ऐसे में गिरकर वास्तव में कोई गुस्सा नही होता—आँखे वन्द किये पडा ही रहता। उसे लगता, धरती डोल रही है—आसमान हिल रहा है—मकान तक हिल रहे है। और ऐसा लगने लगता है कि जाने किस अतल या पाताल की तरफ हम चले जा रहे है। वदन मे कैसी तो सिहरन-सी होती रहती।

वकिम जव जीवन को लेकर अदर दाखिल हुआ, मंजरी चक्कर खाते-खाते किसी से टकराना ही चाह रही थी। उस चक्कर के आवेग मे वह अदाज न कर सकी और भाई के धोके उसने जीवन की छाती में मारा एक धक्का और खिलखिला कर हँस पडी। जीवन तो काठ के मारे-से खड़े रह गये। इधर मजरी की हँसी भी सन्न हो गई। अपनी गलती उसे मालूम पड गई। भैया के धोके उसने एक अजाने आदमी के टक्कर मार दी है, जानते ही विस्मय और लज्जा से दोनो आँखे तरेर कर वह मैया री मैया, कहती हुई भीतर भाग गई। भागकर उसने फिर जोरो से हँसना शुरु कर दिया। जीवन विह्वल-से खडे रह गये।

उस जमाने मे इतना ही काफी था।

घटना यही खत्म नही हो गई, इसका और भी वाकी है। भागती हुई मजरी को लक्ष्य करके हँसते हुए वकिम ने कहा था···· मर भी जा अभागिन! उसके वाद उसने अपनी माँ से जीवन का परिचय कराया। जीवन ने प्रणाम करने की कोशिश की कि उन्होने कहा—अरे नही, रिश्ते मे तुम मुझसे वडे होते हो। मेरे भैया तुम्हारी मौसी के देवर के साढू के पोत-दामाद हैं। इस हिसाव से तुम मेरे भैया के श्वशुर या ऐसा ही कुछ लगोगे।

मेरे भी लगभग वही हुए। बैठो-बैठो। प्रणाम न मैं तुम्हे करूंगी, न तुम मुझे करना।

यह रिश्ता तै पा जाने से वंकिम को भारी खुशी हुई—तव तो अपने से तीसरे पुश्त का सम्बन्ध हुआ—पोते-दादे का।

माँ जलपान लाने के लिए जैसे ही उठकर गई, वंकिम ने अन्दर जाकर मंजरी से कहा—अरी ओ अभागन, चल दादा जी को देख।

कौन ?—मजरी बोल तो रही थी दवी आवाज से, फिर भी जीवन को सुनाई पड रहा था।

—दादा जी रे, दादा जी।

—धत् ! यह दादा जी क्यो होने लगा भला ! बनैले सूअर-सी तो शकल है—बापरे ! काला-कलूटा।

—छि. तू दिन-दिन बडी वैसी होती जा रही है। अरे, अपने वडे मामा उनकी मौसी के देवर के अपने पोत-दामाद लगते हैं।

—क्या खूब कहा ! सखी की वहू की सहेली के वहिन-वेटे की वहू की वहन की लड़की का दामाद !

—चल भी। मेरा दोस्त है। सपन्न घर का लडका है।

—संपन्न घर का है तो वनैले सूअर की-सी शकल क्यो है ?

क्या अंडवंड वकने लगी तू ! वहादुर की शकल है, मुदगर भाँजता है या नही !

—तो फिर पढने के वजाय नाटक मडली मे भीम क्यो नही वनता—। हमें गदायुद्ध देखने को मिलता ! तू जा, मै नही जाती।

वंकिम विगड कर लौट आया।

जीवन भी जगली वाराह जैसा सिर झुकाए वैठा था—अच्छा नही लगा। जवानी में ऐसी वातें किसी को भी पुलकित नही करती। वह लौटने के लिए उतावला हो पडा। वोला—तो आज अव इजाजत दो, काम है।

इतने में जलपान की थाली लिये माँ आ पहुँची। थाली रखकर उन्होंने आवाज दी—मंजी कहाँ गई, मजी ! एक ग्लास पानी ले आ। मजी !

माँ जरा भरकम सुभाव की हैं, उनकी वात आसानी से टाली नही जा सकती। उनकी वात पर कहते-कहते भी वह ना न कह सका। एक ही

मिनट के अन्दर पानी भरा ग्लास हाथ मे लिये मजरी भी आ गई।

माँ ने कहा, नमस्ते कर। तेरे भैया के दोस्त ही नही हमारे अपने है। तेरे दादाजी लगेंगे।

मंजरी मुँह पर कपडा रखकर हँसने लगी।

—अरे, हँस रही है! प्रणाम कर!

—इतना बडा भला दादा जी होता है?

—जरूर होता है। मामा-चाचा उमर मे छोटे नही होते? तुलसीदल का भी छोटा-बडा देखा जाता है?

मजरी ने अब प्रणाम किया। उस जमाने मे जमीन तक झुक कर प्रणाम किया जाता था—आज जैसे पाँव छूकर माथे मे लगा लिया जाता है, ऐसा नही। मजरी उठकर फिर हँसने लगी।

खीझ कर माँ ने पूछा—हँसती क्यो है?

—दादा जी मिलते नही हैं, इसी से हँस रही हूँ।

—क्या नही मिलते?

—इनके लबादा कहाँ है। किताब मे लिखा है—बूढे दादा-लिये लबादा।—हँसती हुई मजरी चली गई।

इसके बाद किशोर जीवनदत्त की क्या हालत हुई, कहने की जरूरत नही।

वह तो उन्मत्त हो उठा। मजरी! मजरी का हृदय जीतना ही पडेगा। किन्तु अचानक उसके रास्ते मे एक दूसरा आदमी आ खडा हुआ।

यह वही लडका है, जिससे झगडकर जीवन की सारी आशाएँ छोडकर वे घर लौट आये थे। भूपति कुमार बसु—अभिजात वश का दम्भी युवक। लोग उसे भूपी बोस कहा करते थे। भूपी बोस वहाँ का मशहूर शैतान था। बीच में झूमते हुए मतग चाल का जो फैशन शहर-बाजार मे चल पडा था, कादी में वह चलन यह भूपी बोस ले आया था। वह जब जिस पाँव को बढाता, तब उधर को सर्वांग झुक जाता, मानो लोगो की आँखो मे अँगुली गडाकर दिखाता हो। जो उसके आगे-पीछे रहते थे, उन्हे तो देखना ही पडता था; जो बगल से चलते थे और यह देखने का उन्हे अवकाश नही रहता, वे उसके वैसे चलने से धक्का खाकर डर से अलग हो जाते थे—भूपी

जा रहा है ! वह रंग का गोरा और डील-डौल का था। सिर में घुंघराले बाल—जमींदार का लड़का ठहरा ! भूपी भी बंकिम का दोस्त था। उसने बहुत पहले ही से मंजरी पर नजर गड़ा रक्खी थी। सो उससे प्रतियोगिता चल पड़ी। कौतुकप्रिय विधाता ने बाघ-बाराह संवाद की रचना शुरू की। बाघ हुआ भूपी बोस, बाराह जीवनदत्त। ये नाम मंजरी ने रक्खे थे।

सात

बोर्डिंग में जो पास रहते थे, उन सहपाठियों ने उन्हें होशियार तो कर दिया था, मगर तब तक देर हो चुकी थी। यह गलती न तो उनकी थी, न नौजवान जीवन की थी।

सहपाठियों को इस बात की खबर नही थी कि जीवन की छाती में मंजरी का धक्का लगा है और धक्का खाने के बाद भी वह उसी तरफ दौड़ रहा है। और जीवन को भी पता न था कि भूपी रूपी बाघ मजरी पर ताक लगाये बैठा है। उस समय किसी वजह से भूपी मंजरी के परिवार से नाखुश हो गया था और जाना-आना बन्द करने का बहाना किये था। ठीक ऐसे ही मौके से बाराह ने प्रवेश किया।

भूपी उमर में जीवन से कई वर्षों का बड़ा था। लेकिन फेल हो-होकर उससे सिर्फ एक दर्जा ऊपर पढ़ रहा था। कांदी स्कूल का एक-एक लड़का उसे जानता। उन दिनों जो भी वहाँ का छात्र रहा है, सबने उसे पाँच या सात दिन के अन्दर ही पहचान लिया है। उसके झूमकर चलने पर सबकी पहले नजर पड़ती, फिर उसका वाक्य-विन्यास सुनने को मिलता।

घर कहाँ है बे छोकरे ? —गाँव-घर के ग़रीब लड़कों से यही उसका पहला प्रश्न होता।

उसकी शकल, पहनावे और बोल-चाल से नये आने वाले गरीब लड़के शंकित होते, आज की तरह बगावत करना उनके लिए मुमकिन नहीं था। समय विरूप था। सो वे अपने गाँव का नाम बा-अदब बताते। गाँव का

नाम सुनकर भूपी कहता—ओ, थाना क्या है वे ? परगना ? कौन-सी तौजी ?

फिर कहता—वही पर अपनी एक तौजी पडती है। पाँच सौ सात या सात सौ पाँच, चट कोई-सा नम्बर वह बता देता।

मगर पहली मुलाकात मे जीवनदत्त से उसने इस लहजे से सवाल नही किया। जरा खातिर करते हुए कहा—छोकरे, मकान कहाँ है तुम्हारा ? जीवन का डीलडौल और साफ-सुथरी पोशाक देखकर रे-वे नही किया।

जीवन को कैसा तो लगा था उस दिन। खीझ भी उठा था वह। किन्तु अपनी खिजलाहट को जब्त करके बताया था—नवग्राम।

बताकर ही वह चल दिया था। दाँत वाले, नाखून वाले और सींगवाले से दूर रहना ही ठीक है—उसे इस नीति-वचन की याद हो आई थी और भूपी को उसने इसी कोटि मे गिना था। मगर भूपी ने उसका पीछा न छोडा। दो-चार दिन बाद वह खुद ही आया, जीवन के कमरे में जाकर बोला—मुझे पता चला है, तुम तम्बाकू पीते हो शायद। मुझे भी पिलाओ तो जरा। देखूँ, कैसा तम्बाकू पीते हो तुम ! उसकी आवाज मे पृष्ठ-पोषक का स्वर था।

जीवन दुर्दांत तो था, किन्तु अभद्र नही था, फिर जमीदारी के जितनी पुरानी नही होने पर जमीदार परिवार मे सडाँद उठती है, उसकी एक आने हिस्से की जमीदारी अभी उतनी पुरानी नही हो सकी थी। सच पूछिये तो भूपी बोस के लिए उस दिन उसने मन-ही-मन जरा सम्मान भी अनुभव किया था। सम्पन्न परिवार का लडका, खासा चेहरा, ऐसी बोल-चाल और जीवन ठहरा परदेशी—भूपी वही का था, लिहाजा ऐसा होना स्वाभाविक ही था। जीवन ने उसे तम्बाकू पिलाया भी ना उस रोज। लौटते समय भूपी की निगाह जीवन के मुद्गर के जोडे पर पडी। हिला-डुला कर उसे देख गया था। हँसते हुए उसका नाम रख छोडा था—मुद्गर सिंह।

दोनो में लडाई अचानक ही हो गई।

भूपी नवकृष्ण बाबू के यहाँ से निकल रहा था और जीवन अन्दर जा रहा था। भूपी के मुँह मे पान, साथ मे था वकिम, उसके पीछे वकिम की माँ। गर्मियो में जीवन नही था, उसकी गैरहाजिरी मे उनके आपसी झगडे

चुक गये थे।

जीवन के पीछे-पीछे एक मोटिया था। गाँव का ही था। गर्मी छुट्टियों के बाद घर से आया था। घर से एक बडे-से टोकरे में थोडा-सा बगीचे का आम, ककडियाँ, साग-सब्जी लेता आया था—पुआल में लपेटे एक बडी-सी मछली भी लाया था।

भूपी ठिठक गया। भौएँ सिकोड़कर उसकी ओर ताकता रहा। बोला—अच्छा, खैरियत तो है? मुद्गर सिंह यहाँ कैसे? इस घर में?

पीछे से तीखे शब्द तीर-से आये—ये हमारी सखी की बहू की सहेली के बहिन-बेटे की बहू की बहिन की लडकी के दामाद होते हैं। रिश्ते मे हमारे दादाजी लगते है! आप ले क्या आये हैं दादाजी?

मुँह में कपड़ा डाले हँसती हुई मजरी सबके पीछे से आगे आकर खडी हो गई।

सबके साथ भूपी भी लौट पडा। बोला—चलो-चलो, जरा हम भी देख ले कि दादा मुद्गरसिंह क्या ले आये हैं? उतार, टोकरा उतार।

चीजे देखकर उसने शकल बनाई। एक आम उठाकर दाँत से उसे काटा, जरा देर स्वाद लेकर थू-थू करके थूक दिया—राम-राम, अमडा है! मैंने इसे आम सोचा था। आम मै कल भेज दूँगा। गुलाब खास और क्या तो नाम है, किसनभोग। उन आमो पर कागज की चिट पर लिखा रहेगा कि कौन-सा कब खाना है। खाना लेकिन उसी हिसाब से पडेगा, नही तो वह मजा नही आयगा।

भूपी चला गया। मजरी की माँ बोली—आओ बेटे, कुशल तो हो?

—जी, सब ठीक है। मै अभी जाता हूँ। तुरत ही पहुँचा हूँ—बोर्डिंग के बरामदे पर सारे सामान डालकर चला आया हूँ। गाडीवान पर सब छोडकर ये चीजें देने आ गया था। —उससे खडा नही रहा जा रहा था। भूपी की बातो से वह क्षुब्ध हो उठा था।

—नाश्ता नही कर लोगे?

—जी नही। गाडीवान पक्का देहाती है। उसे डर लगेगा। मैं अभी जाता हूँ।

नौजवान जीवनदत्त ने भूपी के जहर को उसी दिन महसूस किया और

इसीलिए बगल की सीट वाले अपने सहपाठी से मजबूरन उसने सारी बातें कही। कहे बिना उपाय नही रह गया। इतनी बडी मछली, ककडियाँ, इतने-इतने सामान, ये सब गये किसके यहाँ, यह जानने के लिए लडको के भी कौतूहल का अन्त न था। क्योकि उन्हे भी लोभ था। लाचार जीवन को सब बताना पडा।

दोस्त उसके सिहर उठे—बाप-रे-बाप, यह तू जा कहाँ निकला ? शेर की माँद मे स्यार का बसेरा ? अरे, वह तो भूपी बोस की मंजरी है !

—भूपी बोस की ?

—हाँ भैया, हाँ। भूले भी उधर हाथ मत बढाना, हाथ काट लेगा।

जीवन कुछ देर तक गुम-सुम बैठा रहा, उसके बाद पूछा—तुम्हे पता है, बात पक्की हो गई है ?

—नही हुई है। फिर

—ठीक है, फिर देखा जायगा कि मंजरी किसकी है ? अभी तो वह अपने बाप रूपी पेड पर फूली है, जिसमें दम होगा, वही उसे गूँथकर अपने गले पहनेगा। मेरा नाम भी जीवनदत्त है।

उसने गाडीवान के मार्फत माँ को एक गुप्त चिट्ठी भेजी। "तुरन्त पचास रुपये भेजो।" उस समय के पचास रुपये आज सन् उन्नीस सौ पचास के कम-से-कम दो हजार रुपये के बराबर होंगे।

ठन गई दोनो मे।

शुरू में तो भूपी बोस ने कुछ लगाया ही नही। सोचा, मेरे प्रतिद्वन्द्वी इस बाराह ने बकिम या मजरी, किसी-न-किसी से अपने इस सम्बोधन का हाल जरूर ही सुना होगा और सुनकर उसे बेहद कौतुक और परितृप्ति हुई होगी ! चूंकि मजरी ने उसे जगली सूअर कहा था, इसलिए भूपी भी उसे बाराह कहा करता था। मुद्गरसिंह भी कहा करता था। वह उसे इन्ही नामो से पुकारा करता। लेकिन आड-ओट मे। फिर मछली, खट्टे आम या कुछ ककडियो को वह गिनता ही नही था। वह खूब समझता था कि कुछ लंगड़ा या बबई या किसनभोग आम, दस-बीस लीचियाँ, या कुछ और फल की कीमत उससे कही ज्यादा है। लिहाजा उसने कोई परवाह न की। अपने रूप और जवानी के बारे में वह काफी सचेतन था।

और रूप के उस अभाव की पूर्ति में जीवन इधर विलासी हो उठा। घर से रुपयों की माँग बढती गई। जगबंधु महाशय चिंतित हो पडे। फिर भी इकलौते बेटे की माँग को वे आसानी से नही टाल सके। बाप के अलावे अपनी माँ से भी वह रुपये मँगाया करता—जरूरत के सारे रुपये बाप से माँगने की हिम्मत नही पड़ती।

जीवन को इसकी शिकवा-शिकायत कभी न रही, आज भी नही है।

हो भी क्यो ? जवानी का सपना, नारी के प्रेम की प्रतिद्वन्द्विता, इससे मोहक, इससे बढकर कामना की वस्तु जवानी में और हो क्या सकती है ? केवल जवानी में ही क्यो, आजीवन जिसने किसी नारी को पूर्णतया जीत-कर अपने जीवन में पाया है, उससे बढकर सौभाग्यशाली कौन है ? मंजरी के प्रेम की होड में अगर जमीदारी का गडा-कौडी का हिस्सा बिक ही जाता तो क्या था। फिर भी उन्हें अफसोस न होता।

यही होता भी शायद। बाप से जब पैसे नही मिलते, वह उधार लेता। उसके रवैये ऐसे हो गये थे कि लोगों में यह बात फैल गई थी, जीवनदत्त ऐसा-वैसा नही, प्रसिद्ध धनी का लाडला है। सो उसे कर्ज मिलने में दिक्कत नही होती। बंकिम के यहाँ वह नित्य नया सौगात भेजने लगा।

कांदी में वह बाबूजी के नाम से विख्यात हो गया। जिधर से गुजरता—दूकानदार पूछते, किधर जाना होगा बाबूजी ?

खास लालबाग की बू लगे कादी में अमीरी के जमाने का 'जी' शब्द अब भी जिंदा था। कपनी के समय के 'बाबू' में इस 'जी' को लगाकर कहना ही सम्मान का संबोधन समझा जाता था।

जीवन हँसा करता।

उसमान शेख वहाँ की सबसे बड़ी पारचून की दूकान का मालिक था। जीवन ने उससे खासा जमा लिया था। उसे वह चचाजान कहा करता। दूकान बहुत बड़ी थी—कई शाखाएँ थी उसकी। मनिहारी, जूते की, तंबाकू की। उधारी बही में उसमान ने जीवन के लिए एक पन्ना खोल दिया था। चचा आदमी की पहचान रखते थे। जरूरत न होने पर भी चचाजान जीवन को बुलाते—जीवन, सुनो-सुनो बेटे !

—क्या बात है चचाजान ?

—आज चार-पाँच दिन से तुम्हारी तलाश में हूँ। नई खुशबू ले आया हूँ। गया था शहर (यानी मुर्शिदाबाद), महाजन ने दिखाकर कहा—यह खुशबू देखो उसमान मियाँ। इत्र मात है। राजभवन के लिए ले जाओ। खरीदी मैंने, राजभवन के लिए ली, तीन जमींदारों के लिए ली, हाकिमों के लिए ली। फिर बाद में मैंने कहा . दो शीशियाँ और दे दो। मैं जानता था, तुम्हें दो की जरूरत पड़ेगी। एक अपने लिए और एक .....

हँसकर चचाजान कहते..... " और एक शीशी घर के लिए। ले जाओ।

फौरन कागज में लपेटकर उसे दे देते।

—और कीमत ?

—कीमत मिल जायगी, तुम इसे ले जाओ। मेरे लिए रखना अब मुश्किल है। इसी बीच में भूपी दो बार चक्कर लगा गया है। उसे वकील साहब के यहाँ इसकी बू मिल चुकी है। दो शीशियाँ माँगने लगा। मैंने कह दिया नहीं है। बोला जरूर है; मैं दूकान की तलाशी लूँगा। तुमने जीवन के लिए छिपाकर रक्खा है। बड़ी-बड़ी मुश्किल से बचाकर रक्खा है। ले जाओ। कीमत तुम्हारे नाम लिख लूँगा। उसकी फिक्र न करो।

जीवन रूमाल में वह खुशबू डाल लेता। भूपी के सामने जाकर जेब से रूमाल निकालकर मुँह पोछने लगता। भूपी चकित हो जाता। प्रश्न भरी निगाह से उसकी ओर ताकता। जीवन भाँप लेता और हँसने लगता। भूपी का सवाल यह होता कि मंजरी के कपड़ों और इस बाराह के रूमाल में एक ही मीठी खुशबू कैसे आ गई ?

मगर भूपी कुछ ऐसा-वैसा तो था नहीं, दूसरे ही दिन अपने रूमाल में वही खुशबू मलकर निकलता। जीवन सोचने लगता, यह कोई जो-सो आदमी तो है नहीं। उसमान की दूकान में न मिली, तो मुर्शिदाबाद से मँगा ली होगी।

लेकिन हाय, तब उन्हें यह थोड़े ही पता था कि उनकी दी हुई भेंट ही अनोखे ढंग से भूपी के पास आ पहुँची है !

खैर, जाने भी दो। उस पर अफसोस क्या करना ? आज उन्हें किसी भी बात का शिकवा नहीं है। मजाक करते हैं। प्रेम वास्तव में एक तरह

का सामयिक उन्माद रोग है ! नौजवान जीवन को उसी रोग ने दवोच लिया था।

इस द्वन्द्व में हार जाने की चरम घडी आने के पहले पल तक उसे यकीन था कि जीत उसी की है—अनिवार्य है। सोचा था, हार की आशंका से भूपी का मुखड़ा फीका हो गया है।

जीवन की शाहखर्ची देखकर भूपी वोस की परेशानी खासी बढ़ गई थी। जव-तव किसी वहाने झडप हो जाती। जीवन को मजा आता। वह डवल भाँजने की तरह दो-चार वार भूपी के सामने ही हाथ भाँजता। मुद्गर तो रोज भाँजता ही था। रात में सहपाठियों से होड़ लगाकर पच्चीस-तीस रोटियाँ खा जाता। उसका तगड़ा शरीर देखकर भी भूपी को डर लगता। जीवन हँसता रहता। जीत जरूर होगी। धन की होड में तो वाजी अपनी ही रही, बल में तो मुकावला ही क्या है ! स्वयम्वर के लिए और चाहिए भी क्या ?

हाय-हाय ! हाय रे मनुष्य का दम्भ ! और मन भी मनुष्य का अजीव होता है ! खास कर औरत का मन ! उस मन को कोई कैसे पा सकता है, कोई नही जानता।

अचानक एक रोज उसका यह भ्रम टूट गया। भूपी वोस से खासी लडाई हो गई और धन-वल में श्रेष्ठ होते हुए भी जीवनदत्त के सपने चकनाचूर हो गये।

होली का दिन।

एक वडी-सी टोकरी में कीमती भेंट लिये जीवनदत्त मजरी के यहाँ पहुँचे। उस समय तक मजरी के वदन में अवीर की जरा निशानी भी नहीं लगी थी। जीवन की इच्छा थी, उसके खूबसूरत चेहरे को मैं ही पहले रंग से लाल कर दूँगा। पहले मजरी की माँ से ही भेंट हो गई। भेट की टोकरी उनके सामने रखकर उसने कहा—माँ ने भेजा है। मुझसे उन्होने आप लोगों के बारे में सुन जो रक्खा है।

मजरी की माँ जरा गम्भीर-सी औरत हैं। जीवन उन्हे ठीक समझ नही सकता था। कैसा तो डर लगता उनसे और वह कुछ अच्छी भी नही लगती उसे।

उन्होने कहा—न-न, यह सब अच्छी बात नही जीवन. उन्होंने टोकरी उठाई और छतपर चली गई। नीचे रह गई मजरी। उसके सारे चेहरे पर, आँखो मे निठुर कौतुक खेल रहा था। जीवन को यह निठुर कौतुक मानो अच्छा ही लगता और इसी निठुरता से उसका कौतुक उसे और भी मीठा लगता, वह उसे मौन हो और अधिक खीचा करता।

उसे अकेली पाकर जीवन ने जेब से गुलाल निकाला और बोले—आज लेकिन गुलाल जरूर मलूँगा।

मजरी ने हँसकर कहा—मै भी अबीर डालूँगी, घोल कर रखा है, ठहरिये।

वह दौडकर अन्दर चली गई। दोनो हाथ पीछे की ओर छिपाये लौटी। जीवन को सुध नही रही। उसने उसके चेहरे पर, सर मे अबीर मल दिया। और तब मजरी के दोनो हाथ उसके चेहरे की तरफ बढ आये—दोनो हथेलियो मे कोलतार।

जीवन पीछे हटने लगा और पीठ दिखाकर दरवाजे की तरफ भागा—बनैले सूअर की तरह।

दरवाजे पर ही था बाघ और बाघ के पीछे प्रजापति चतुरानन बकिम।

बाराह और बाघ की घनघोर ठन गई। भागते हुए जीवन के तगडे शरीर का भूपी बोस को धक्का लग गया, बकिम इतने मे उछलकर उस बरामदे पर जा रहा, जहाँ मजरी खडी थी। भूपी से जीवन का धक्का सम्हाले न सम्हला। भूपी जमीन पर चारो खाने चित्त जा रहा। टकराकर जीवन ठिठककर खडा हो गया। चोट उसे भी कम नही आई थी, मगर उतना झेलने की शक्ति उसे थी। अपने को सम्हालकर वह सचमुच ही, सहानुभूतिपूर्वक भूपी बोस को हाथ पकडकर उठाने लगा। उसे लगा अनजाने ही चाहे हुई हो, मगर भूल अपने से ही हुई है। और उसने सिर्फ हाथ पकडकर उसे उठाया ही नही, देखने लगा कि उसे कही चोट तो नही आई, अपराधी की नाई उसने उसकी धूल झाड दी।

इतना जो मौका मिल गया, सो भूपी ने छिटके हुए चप्पल को उठाकर जीवन की खबर लेनी शुरू कर दी, चेहरे पर, सर पर, पीठ पर—दे चप्पल और दे चप्पल। गालियाँ देने लगा—सूअर का बच्चा, हरामजादा, उल्लू!

फिर क्या था, उन्मत्त की तरह जीवन भूपी बोस पर टूट पड़ा। उस दिन वह नशे में भी था। भंग पी रक्खी थी। कैसी कुश्ती हुई, इसका उसे पता नहीं; मगर छाती पर सवार होकर सारे शरीर की ताकत से उसने भूपी की नाक पर एक घूँसा जमाया था। मारते ही लगा, उसकी नाक बैठ गई और साथ ही लहू की धारा फूट निकली, भूपी की नाक लहूलुहान हो गई, उसका हाथ लाल हो गया और कुरता-धोती में भी लहू लग गया। बंकिम चीख उठा—अरे-अरे, यह क्या किया तुमने! एक और भी आर्त्त स्वर उसके कानों तक पहुँचा—बाप-रे-बाप, खूनी डकैत ने खून कर डाला, खून!

चौंककर उन्मत्त जीवन आपे में आया।

ठीक ही तो! यह किया क्या मैंने! उसकी छाती पर से ही उसे अनुभव हुआ कि भूपी के होश नहीं है। उसे आफत का खतरा लगा। इलाका यह भूपी का है। दिवालिया जमीदार का लडका। वड़े खौफनाक हैं वे लोग। जिसके दाँत और नाखून टूटे होते हैं, आदमखोर वही बाघ होता है। और मंजरी का ऐसा रोना सुनकर भी उसका सपना टूट गया। लहमे में वह उठ बैठा और भागा। भागा-सो-भागा। सीधे अपने घर की ओर। दस कोस का फासला। लेकिन वह सीधी राह नहीं लौटा, राह-बेराह, मयूराक्षी के किनारे-किनारे भागा। तेरह-चौदह कोस का चक्कर काटकर घर पहुँचा। नदी में अपने कपड़े धोये, कीचड़ लगा-लगाकर लहू के दाग छिपाये, तब घर गया।

मेडिकल कालेज में पढने का जो सपना था, शेष हो गया। शेष हुआ मंजरी के मोह में पड़ने से। उसीने सारी आशाओं पर पानी फेर दिया।

जगबन्धु महाशय और उनकी स्त्री, बेटे का हाल देखकर सिहर उठे। घबराकर पूछा—हुआ क्या है? तुम इस तरह से क्यो भाग आये? बात क्या है?

जीवन सर झुकाए खड़ा रहा। उत्तर नही दिया।

जगबन्धु महाशय जैसे सख्त आदमी के सामने भी वह अटल रहा। चाहे जो हो, मंजरी का नाम जाहिर नही होने देने का। अन्त में उसने बताया—एक अमीर के लड़के ने मुझे चप्पल से पीटा था, मैंने उसका बदला चुकाया

है। मार उसपर जरूर कुछ ज्यादा पड गई—लहू वहा, इसीलिए वहाँ से भाग आया। वहाँ रहता, तो वह शायद मेरा खून करा देता। अब वहाँ नही जाऊँगा। और कही पढूँगा। सिउडी या वर्दवान के सरकारी स्कूल मे पढूँगा।

—न, अब नही।

जगवन्धु महाशय ने कहा—अब मै तुम्हे वाहर नही भेजूँगा। अपनी जो पुश्तैनी विद्या है, वही पढो।

उनकी आवाज कठोर थी, किन्तु कोमल। उस स्वर से जीवन का सर्वाग मानो हिम हो गया। याद हो आया, यह वही कठस्वर है, जिस कठ-स्वर मे कहने से जगवन्धु महाशय की वात टाली नही जा सकती। याद आया, नवग्राम के वावुओ के यहाँ एक अनाचारी-व्यभिचारी प्रौढ का इलाज करते-करते एक दिन अचानक इसी कठस्वर से इलाज करने से इन्कार कर दिया था। वावू साहव शरावी थे, जगवन्धु महाशय ने उन्हे शराव छोड देने को कहा, मगर उन्होने उनकी आज्ञा का उल्लंघन किया था। वे मरीज के यहाँ गये और यह वात जानकारी मे आते ही वहाँ से लौट पड़े। सगे-सम्वन्धी मना-मनू कर उन्हे लौटाने आये। उन्होने वैसे ही कठिन मृदुस्वर में कहा—नही।—वस एक छोटी-सी 'नही' पर लोग चौक पड़े। उस 'नही' की 'हाँ' फिर कभी हो ही नही सकी। आज की यह 'न' भी वैसी ही 'नही' थी। उसके साथ उन्होने और भी जो शव्द कहे, उनमें भी वही मृदुता और कठोरता थी।

चौककर जरा देर के लिए जीवन ने पिता के चेहरे की ओर देखा और फिर अपना सिर झुका लिया था। उन्हे इसमे लेशमात्र भी सदेह नही रह गया कि इस 'न' की अव 'हाँ' नही हो सकती।

जगवन्धु महाशय ने पत्रा खोला। वोले—विद्यारभ की तिथि तै करेगे।

आठ

शुभकर्म में देर नहीं करनी चाहिए फिर निकम्मों के मन में बुराई के बेरोक इशारे चलते रहते है। फागुन के अन्त ही में जगबंधु महाशय ने जीवन को व्याकरण का पहला पाठ दे दिया। आयुर्वेद पाँचवाँ वेद है। चारो वेदों के समान वह भी स्वयं प्रजापति की सृष्टि है। वह देवभाषा में कहा गया है, देव भाषा में लिखा गया है। सो पहले देवभाषा पर अधिकार कर लेना जरूरी है। लेकिन जीवन को व्याकरण उतना पसन्द नही आया—नरः नरौ नरा. से लेकर आखिर तक रटना कोई आसान बात नही। लेकिन एक बात अच्छी लगी। सबेरे जब जगबन्धु महाशय रोगी देखा करते, तो उन्हें अपने पास बिठाते। आयुर्वेद भवन की दवाइयाँ बनाने का कुछ-कुछ काम उन्हें देते। लता-पौधे, मूल-फूल चीन्हने का मौका दिया करते। उन्हे सबसे अच्छी लगी नाडी-परीक्षा! विचित्र विस्मयकारी है यह विद्या! कविराज के घर के लडके ठहरे, किशोरावस्था में ही नब्ज की पहचान थोडी-बहुत आ गई थी। बुखार है या नही, बुखार छूट गया कि नही, इतना भर नब्ज देखकर वे बता सकते थे। जिस दिन जगबन्धु महाशय ने उन्हे नाडी-परीक्षा का पहला पाठ दिया, वे अचरज में डूब गये। आज भी वह घटना याद है।

इष्ट को प्रणाम करके उन्होने बताया था—रोग-निर्णय के लिए सबसे पहले तो विवरण संग्रह करना चाहिए, उसके बाद रोगी के कमरे की गंध का अनुभव करना चाहिए फिर सिर से पाँव तक रोगी को गौर करना चाहिए। इन सबके बाद रोगी से पूछना चाहिए कि उसे तकलीफ क्या है। इसी से उपसर्ग का पता चलेगा। तब प्रत्यक्ष परीक्षा की पहली और प्रधान बात—नाडी परीक्षा। फिर जीभ देखनी चाहिए, मूत्र, पाकस्थली, मल-स्थली आदि। नाडी सबसे पहले।

आदौ सर्वेषु रोगेषु नाड़ी जिह्वाग्रे सम्भवाम,
परीक्षा कारयेद्वैद्यं पश्चाद्रोग चिकित्सयेत।

नब्ज की जाँच मुश्किल काम है। बहुत मुश्किल। कोई बीमार पडा है—रोग दुष्ट नाडी—स्वस्थ नाडी—यह समझना बेशक कठिन काम नही। मैंने गौर किया है, यह तो तुम भी देखते हो।

जगबन्धु महाशय हँसे। तुरन्त ही फिर गभीर होकर बोले—लेकिन जिस बोध से रोग का निर्णय, उसके भोग-काल का निर्णय और अगर मृत्यु-रोग से पीडित हो तो मृत्युकाल तक का निर्णय किया जा सकता है, वह बडा ही सूक्ष्म ज्ञान सापेक्ष है , ज्ञान नही, वह बोध है—इसके लिए सबसे पहले चाहिए ध्यान योग। हम आँख बन्द करके नब्ज देखा करते है, इसका मतलब ही है कि नाडी की गति के लिए ध्यान मग्न होकर फिर कुछ निर्णय करते हैं। आसपास की और किसी बात से मन का यह योग नष्ट नही होना चाहिये। इन्द्रिय अगोचर शक्ति और रहस्य, जो कि जगत के निगूढ अन्तर मे प्रवाहित और प्रकाशित है, वह शक्ति जिस प्रकार ध्यान योग से योगियों के गोचरीभूत होती है,—ठीक इसी प्रकार आयुर्वेदज्ञ जब रोगी की नाडी-परीक्षा करते है, तब आँखो से न दीखनेवाली देह के भीतर की रोगशक्ति और उसकी क्रिया का रूप आयुर्वेदज्ञ के ध्यानयोग मे ठीक-ठीक देखा जाता है। वायु, पित्त, कफ—इन तीनो मे से जिसके या जिनके कुपित होने से रोगी के रक्त-प्रवाह में क्रिया होती है, नाडी मे उसकी गति या वेग क्या है—यह सब सही अकफल की तरह निर्भ्रान्त जाना जा सकता है। और—

जगबन्धु महाशय का कण्ठस्वर गभीर हो उठा। उन्होने कहा—ज्ञान-योग से, नाडी-ज्ञान से और मन की एकाग्रता यदि अनुभूति में बदल सके, तो समझ लोगे कि रोग की आड मे कोई है या नही है।

बेटे की ओर देखकर उन्होने कहा था—मेरे पिता जी कहा करते थे, एक सन्यासी ने उन्हे बताया था, उस सन्यासी ने उन्हे साँप काटे की दवा बताई थी—कहा था साँप के काटने का जो जहर होता है, उसकी दवा है, लेकिन जो साँप काल का आदेश लिये आता है, उसके काटे मृत्यु ही निश्चित है, उसकी कोई दवा नही होती। ठीक उसी तरह रोग की तो दवा है, इलाज है, किन्तु जो रोग काल के निर्देश से आता है, उसकी न तो दवा है, न ही कोई इलाज। हम वैद हैं, चिकित्सा हमारी आजीविका है, इसलिए इलाज तो करना ही पडता है, मगर उसका कोई नतीजा नही निकलता। इस

नाड़ी-बोध के जरिये ही यह जाना जाता है कि रोग निश्चित अवधि तक रहकर ही शान्त होगा या अन्त तक काल रोगी को अपने गाल में ले लेगा।

जीवन मुग्ध होकर सुन रहे थे। सुनते-सुनते उनके मन की दुनिया ही जैसे उलट-पुलट हो गई।

उस समय डाक्टर रगलाल की वडी चलती थी—जीवन की निगाह उसी पर थी। तशर का कोट-पाजामा, सोने की जंजीर, सफेद घोडा और भी वहुत कुछ, उनकी आमदानी, दौलत, इज्जत। लिहाजा डाक्टरी पढना ही उनका स्वप्न था। लेकिन इस वात को वे कवूल करते हैं कि उस दिन शास्त्र तत्व की चर्चा में ये सारी बातें वे भूल बैठे थे। उनके पिता, उनके गुरु ने उन्हे एक अनोखे ज्ञान लोक के सिंहद्वार पर लाकर खडा कर दिया था। कहा था, इसके अन्दर प्रवेश कर सको, तो अमृत का पता पाओगे। उन्होने मानो उसका आभास भी पाया था।

उनके पिता कहा करते थे, यह मैं भी मानता हूँ कि किसी शास्त्र को जानना और उसका ज्ञान, ये दोनों अलग-अलग बात हैं। कहते, बेटे, हमारे शास्त्र में लिखा है, गुरु की कृपा हुए बिना ज्ञान नही होता। शिक्षा हो सकती है। रट ले सकते हो। मगर वह शिक्षा जव ज्ञान में वदल जाती है, तो दुनिया की शकल ही पलट जाती है। जो आँखो के अगोचर है, वह प्रत्यक्ष हो उठता है, जिसे हम छू नही सकते, वह अनुभूति मे प्रकट होता है। यह नाडी-विद्या अगर ज्ञान में परिणत हो जाय तो तुम जीवन में मृत्यु का अनुभव कर सकते हो।

यह सत्य बात है। जीवनदत्त ऊँची आवाज से घोषित कर सकते हैं कि यह सत्य है, सत्य है।

जीवन की इस लम्बी अवधि में कितना कुछ तो देखा—धरती की सीमा जम्बू द्वीप से बढकर पच्छिम गोलार्द्ध. पूरब गोलार्द्ध, उत्तर मेरु, दक्षिण मेरु तक फैल गई। पिछले दिनों जिसे लोगों ने सत्य मान रक्खा था, वह झूठ साबित हुआ। नये सत्य को अपनाना पडा, किन्तु यह सत्य झूठ नही हुआ। यह सनातन सत्य है।

गोताखोरो की बात पढी है। ये समुन्दर के अन्दर जाते है। खास तौर से वनी पोशाक पहने ससुद्र के भीतर मोती चुनते हैं। समुद्र-गर्भ की शोभा

से मुग्ध होकर जरा देर तो वे मोती चुनने की बात भूल ही जाते हैं। ठीक इसी तरह जीवनदत्त उस दिन सब कुछ भुला बैठे थे—इज्जत, दौलत, मान-सम्मान—सब कुछ। इस प्रसग मे जगवन्धु महाशय ने उन्हे एक कहानी सुनाई थी। मौत कौन है ? इसी के बारे में थी कहानी।

जगवन्धु महाशय कथावाचक जैसे निपुण थे बातो में। उनके सफल वाक्-विन्यास से जीवन अभिभूत हो उठे थे।

उन्होने कहा—रोग चाहे जो हो, मृत्यु का स्पर्श उसमे होता है। महाभारत में लिखा है—मन के आनन्द से भगवान प्रजापति ने सृष्टि शुरू की रचते ही गये, एक के बाद दूसरी! एक से एक अजीब और अनोखी। उस समय पृथ्वी पर मात्र एक सृष्टि ही थी, उसका लय या सृष्टि की मृत्यु नही थी। ऐसे मे उन्हे जाने किसकी तो धीमी-सी आवाज सुनाई पडी। कातर स्वर। वे उत्सुक-से हुए। इतने मे कोई बू उनकी नाक मे घुस पडी। उन्होने अपनी सृष्टि की ओर निहारा। अरे यह क्या! उनकी सृष्टि का एक बहुत बडा अश जीर्ण, मलीन, स्थविर और कर्कश हो उठा था। धरती की छाती अनेक जीवो से भरी थी—किन्तु उच्छृङ्खल होते हुए भी जैसे उच्छ्वास हीन हो बुझे-बुझे से। और पीडित पृथ्वी कातर होकर चीख रही थी। और वह बू ? वह बू उठ रही थी जर्जर सृष्टि की जरा-ग्रस्त देह से।

प्रजापति ब्रह्मा सोच मे लीन हो गये—क्या किया जाय ? कपाल पर चिंता की रेखाएँ फूट उठी। एकाएक उनका चेहरा यो ही कुटिल हो उठा। प्रसन्न भाल पर भृकुटि तन गई। हँसी भरे चेहरे पर अप्रसन्नता झलकी। मानो स्वच्छ नीले आसमान पर दिगत से बादल आ घिरे। उसी समय उनके अग से छाया जैसी क्या तो बाहर निकली और उस छाया ने धीरे-धीरे काया ग्रहण की। हाथ जोडे एक नारी मूर्ति उनके सामने खड़ी हो गई। गले और मणिबन्ध मे कमल बीज के गहने, पिंगल केश, पिंगल नेत्र और पिगल वर्ण—गेरुआ वसन। उस नारी मूर्ति ने प्रणाम करके भगवान से पूछा—पिता, मै कौन हूँ ? मेरा कर्म क्या है ? आपने मेरी रचना किस लिए की ?

भगवान प्रजापति बोले—तुम मेरी कन्या हो—मृत्यु। सृष्टि में संहार-

क.र्य के लिए तुम्हारी रचना हुई है। वही तुम्हारा कर्म है।

मृत्यु चौंक उठी—मृत्यु यानी वह नारी मूर्ति। आर्त्त स्वर में बोली—पिता होकर आपने ऐसे कठिन-कठोर हृदय के कार्य में मुझे नियुक्त किया? यह भला नारी का कर्म है? मेरा नारी-हृदय, नारी-धर्म इसे बर्दाश्त कैसे करेगा?

भगवान हँसकर बोले—करूँ क्या मै, कोई उपाय नही। जब रचना मैने की, तो अब वही कर्म तुम्हे करना पडेगा।

मृत्यु बोली—मगर मुझसे यह नही होने का।

—होना ही पडेगा।

मृत्यु ने तपस्या शुरू की। बडी कठोर तपस्या की। भगवान आए। बोले—वर माँगो।

मृत्यु ने वर माँगा—इस कठोर कर्म से मुझे मुक्ति दें।

भगवान लौट गये—यह नहीं होगा।

मृत्यु ने फिर तपस्या की, पिछली बार से भी कठिन तपस्या।

प्रजापति फिर आये। मृत्यु ने फिर वही वरदान माँगा—पिता, इस निष्ठुरतम कर्म से मुझे मुक्त करें।

प्रजापति चुप खडे रहे। गर्दन हिलाकर उन्होने जताया—यह नही हो सकता।

प्रजापति गायब हो गये।

मृत्यु बडी देर तक आसमान की ओर देखती खड़ी रही। फिर तप में बैठी।

यह तीसरी बार तप में मग्न हुई मृत्यु। अब की जो तपस्या उसने की, इससे कठोर तपस्या कभी किसी ने नही की। ब्रह्मा को फिर आना पडा। मृत्यु ने फिर वही वरदान माँगा। उसके होठ वर माँगते हुए काँप उठे। आँखों से आँसू की बेरोक धारा बह चली। जल्दी-जल्दी अंजलि पसार कर ब्रह्मा ने उसमें आँसू सहेज लिये। बोले—बेटी, तुम्हारे आँसू पड़ते ही सृष्टि ध्वस हो जायगी।

देखते-ही-देखते उन आँसुओ से एक-एक विकट मूर्तियों का आविर्भाव हुआ। भगवान ने कहा—ये रोग हैं। ये तुम्हारी ही सृष्टि हैं और यही

तुम्हारे सहचर रहेंगे।

मृत्यु ने कहा—मगर नारी होकर मैं पत्नी की वगल से उसके पति को कैसे उठा लाऊँगी? माँ की छाती से संतान छीनूँगी '' इस हृदयहीन कर्म का पाप—

टोककर भगवान बोले—तुम पाप-पुण्य के परे हो। तुम्हे पाप नही स्पर्श करेगा। फिर उनके कर्मफल रोग के माध्यम से तुम्हे बुलाया करेंगे। मनुष्य अनाचार, व्यभिचार, अत्याचार से रोग के शिकार हुआ करेंगे और तुम उन्हे दिया करोगी पीडा से मुक्ति, ज्वाला से शान्ति, पुराने से नया जन्म।

—किन्तु—, व्याकुल होकर मृत्यु बोली—शोक-कातर स्त्री, पुत्र, माता-पिता तडपते रहेंगे, छाती पीटा करेंगे, सिर धुना करेंगे, ये सारे दर्द-नाक नज्जारे मैं देख कैसे सकूँगी?

भगवान ने कहा—तो लो, तुम अन्धी हुई। तुम्हारी दृष्टि न रही। तुम्हे कुछ देखना नही पडेगा।

मृत्यु बोली—और उनका वह जार-बेजार रोना? नारी कण्ठ का करुण चीत्कार?

भगवान बोले—तुम बहरी रहो। कोई आवाज तुम्हारे कानों नही पहुँचेगी।

जगवन्धु महाशय ने कहा था—यह मौत अन्धी है, बहरी है। ये रोग ही उन्हे हाथ पकड़कर सदा साथ लिये फिरते हैं। हाँ, उसे नियन्त्रित रक्खा है, नियम ने, काल ने। जिसका समय पूरा हो जाता है, उसे जाना ही पडता है। अकाल मृत्यु भी होती है। मनुष्य अपने ही पाप मे अपनी आयु घटाता है और असमय मे काल को न्योता देता है। यह जो पाँचवाँ वेद, हमारा आयुर्वेद है, उसकी शक्ति वह है कि जहाँ काल रोग का सहायक नही है, वहाँ वह उसे रोकता है। ऐसी हालत मे रोग वापस लौट जाता है, उसके साथ मौत भी लौट जाती है। लेकिन जब समय पूरा हो आता है, वहाँ रोग के हमले से नाडी के वेग में जो विलक्षणता देखी जाती है, उससे पता चल जाता है कि यहाँ मौत काल के इशारे पर आई है। यहाँ तक कि नाडी देखकर इतना भी कहा जा सकता है कि कितनी देर, कितनी घडी,

कितने दिन, हफ्ते या महीने में मौत अपना काम पूरा कर लेगी।

जब यह बात हो रही थी, घर के कोने में एक छिपकिली बोल उठी थी। माटी पर अँगुली की ठोकर लगाकर जगबन्धु महाशय ने कहा था—वह देख लो।

पहले तो जीवन ने यह समझा कि पिता यह कहना चाहते हैं कि छिपकिली ने इस बात का समर्थन किया। लेकिन नही। जीवन ने उझककर देखा, छिपकली ने झपटकर एक पतिंगे को दबोच लिया। पतिंगा छटपटा रहा है।

जगबन्धु महाशय बोले—अनुरूप अवस्था में—मसलन किसी को अगर मगर ने धर दबाया या कोई दो सख्त चीजों के बीच दब गया, पिस गया, ऐसे में उसकी नाडी देखी जाय तो उसमे जीवन की चीख साफ समझ सकते हो, प्रत्यक्ष अनुभव होगा, मानो आँखो देख रहे हो।

नाडी-विज्ञान में मौत की घोषणा करने की उनकी जो पहली अभिज्ञता थी, उसकी कहानी कही थी जगबन्धु महाशय ने। कहा था—गिरीश बाबू की माँ, यही नवग्राम के गिरीश बाबू—बरसात में उनकी माँ पोखरे के घाट में फिसल कर गिर पडी। गिरते ही बेहोश हो गई। मेरे पिताजी स्वर्गवासी हो चुके थे। मेरी उम्र तब कम थी। गया मैं। नाडी देखकर मैं आशंकित हुआ। मगर ठीक-ठीक कुछ समझ नही सका। मैंने देखा, चोट लगने से नाडी जैसी स्पन्दन हीन हो जाती है न, वही हो गई थी। ऐसे में स्थिति असाध्य तो नही होती है। फिर भी कैसा तो शुबहा हुआ मुझे। मैंने खोलकर ही कह दिया। ऐसे में मौत हो भी सकती है, नही भी हो सकती है। आप किसी अनुभवी कविराज को दिखा सकते है। साँझ को पारुलिया के बूढे कविराज आये। उन्होने जाँच की। जाँच करके कहा—तीन दिन किसी तरह कट जायँ तो समझिये रिहाई हुई। लेकिन—

उन्होने फिर से नाड़ी देखी। कंठ और बाहुमूल में नाडी को परखा। बोले—बच भी जायँ तो साल भर के अन्दर ही इनका देहान्त होगा और देहान्त से पहले वहाँ पर असह्य पीडा होगी, जहाँ पर आज चोट लगी है। उस दिन ऐसा लगेगा, मानो आज फिर से चोट लगी है।

गिरीश बाबू दूसरे ही दिन माँ को पालकी पर गंगा के किनारे ले गये।

सबने यह समझा—ये तीन दिन के अन्दर ही चल बसेंगी। माँ की बडी इच्छा थी कि मैं गगा के तट पर ही शरीर त्यागूँ। लेकिन वहाँ जाकर चौथे दिन सवेरे बुढिया को होश आया। धीरे-धीरे वह चगी भी हो उठी। मरने के लिए गगा तट जाने के बाद लौटने का नियम नही हे। वही रह गई वह। साल खत्म होने को आया। एक हफ्ता पहले उन्हे उस जगह पर पीडा मालूम हुई, जहाँ चोट लगी थी। वह पीडा बढती ही गई। चौबीस घटे दर्द से बेचैन रहकर वह बेहोश हो गईं। बारह घटे के बाद गुजर गईं।

यह मेरी पहली प्रत्यक्ष अभिज्ञता है। फिर तो मैंने खुद ही बहुत देखा। तुम भी देखोगे। यह समझाने की बात नही है—इसकी व्याख्या बेकार है। यह उपलब्धि की शक्ति और भाग्य पर निर्भर करता है। अगर तुम्हारा वैसा भाग्य है, वैसी शक्ति अगर तुम पैदा कर सको तो तुम भी यह समझ सकोगे।

नौ

अचानक आज जीवन महाशय ने अपनी नाडी पकडी—कितनी देर है और ? कितनी दूर ? बडी देर तक नाडी थामे बैठे रहे। लेकिन कहाँ, कुछ भी तो समझ नही पाते। कहाँ गई अनुभव की वह शक्ति ? उस नौजवान डाक्टर के हमले से क्या वे भीतर-ही-भीतर अवश हो गये ?

—हो क्या रहा है ? आप अपनी नाडी देख रहे हो ?—अतर बहू ने पूछा।

डाक्टर ने अपनी नाडी छोड दी। अतर बहू आ पहुँची। आना ही था। आजीवन उसका यही नियम रहा है, खा-पीकर सबको खिला-पिलाकर वह हाथ में पखा लिये उनके बिछावन के पास आकर बैठती है। पान-जर्दा खाती हैं और पखा झलती हैं। कपूर दिये पानी का ग्लास सिरहाने रख देती हैं। हाथ से सेवा करती है और जबान से जी को चोट करने वाली लेकिन मीठी बाते कहती चली जाती हैं। सीधे उनको कुछ नही कहती,

प्राय अपने नसीव को सुनाती है। नियमत उसे इलजाम नही लगाया जा सकता। जीवन महाशय अगर टोकते तो कहती—मै तुम्हे तो कुछ कहती नही, कहती हूँ अपने नसीव को। तुम क्यो फुफकारने लगे ?

वहुत दिन पहले की वात है, एक वार उनके धीरज का वाँध टूट गया था। उन्होने कहा था—ईश्वर ने तुम्हारे नसीव से मुझे जो वाँध दिया है। चोट करने से मुझे ही लगती है !

अतर वहू ने गर्दन टेढी करके तिर्यक् दृष्टि से देखकर पूछा था—तुम्हे चोट लगती है ?

—हाँ। तुम्हे मालूम नही होता !

अतर वहू ने पत्थर से अपने कपाल को फोडकर लहू-लुहान कर लिया और पूछा—कहाँ लगती है, कहाँ, कहाँ ?

उसके वाद से ही जैसे ही जीने पर पैरो की आहट होती है, जीवन महाशय आँख मूंदे सोने का वहाना किये पडे रहते हैं। आज पुरानी बातो की याद मे इस कदर डूव गये थे कि आहट सुन नही सके।

अतर वहू ने फिर पूछा—तबीयत ठीक नही है ?

जीवन महाशय ने झूठ वोलने की कोशिश की। कहना चाहा कि जी अच्छा नही है। मगर यह कहे तो अतर वहू की मूर्ति ही और हो उठेगी। उन्हे शिशु जैसा बेबस बनाकर सेवा-जतनो के मारे नाक मे दम कर देगी।

कितनी ही वार जीवन महाशय के मन मे हुआ कि यह अतर वहू ही उनके जीवन मे छद्मवेशिनी मृत्यु है। उनके पिताजी कहा करते थे और उन्होने खुद भी अपने दीर्घकालिक चिकित्सा के अनुभव से यह समझा है कि मृत्यु अवगुठनमयी होती है। दूर से उसे पहचानना मुश्किल है। उसे देखकर डर जरूर लगता है क्योकि वह जलन-यन्त्रणा वाली बीमारियो के पीछे-पीछे आती है—जैसे कि वैशाखी ववडर के पीछे झडी उतरती है। बीमारी जीवन को जला-तडपा जाती है और मौत बारिश-सी आकर जलन-यन्त्रणा को जुडा देती है, शान्त-स्निग्ध कर देती है। ठीक ऐसी ही है अतर वहू। जब तक वह दूर रहती है, भयकर लगती है। आँसू रुके उसकी जलती हुई बाते रोग की जलन जैसी ही ज्वालामयी होती है। लेकिन—।

न। अतर बहू उनके जीवन मे महज रोग है। मृत्यु है हकीकत मे वह

मजरी। आयु के रहते जिन्दगी मे कोई मौत को नही पा सकता। इसलिए वे मजरी को नही पा सके। मृत्यु बीच-बीच मे छल जाती है, आते-आते लौट जाती है, पकडाई देना नही चाहती। वह अपने आघात की निशानी छोड जाती है, बहुत बार न छूटने वाली व्याधि रख जाती है। मंजरी उन्हे छलकर चली गई है, रोग रूपिणी अतर बहू को रख गई है।

जीवन महाशय ने चुपचाप एक ठडी साँस छोडी। उसके प्रश्न का जवाब क्या दें, सोच नही सके। उनकी इस चुप्पी से अतर बहू लेकिन लहक उठी। मगन मन रहने पर जीवन महाशय कहते—अतर बहू के गुस्सा आता है तो तापमान मलेरिया बुखार की तरह चढता है—देखते-ही-देखते एक सौ पाँच।

हकीकत मे वह उनके जीवन का मलेरिया बुखार ही है, पोसा हुआ; जहाँ जरा बदपरहेजी हुई कि जाहिर हो गया। बदपरहेजी न भी हो तो पूनो-मावस पर उत्ताप होकर दर्शन देना जरूरी है।

आज लेकिन कबख्त शशि उसे अपने सच्चे रूप मे जगा दे गया है। अतर बहू शशि को मानती भी है। शशि इस घर मे काफी दिनो तक रह चुका है, अतर बहू के यह-वह हुक्म बजाता रहा है, बच्चो को भुलाता-फुस-लाता रहा है। यहाँ से चला भी गया है, लेकिन नाता नही तोड लिया है। जब-तब आता रहता है। जीवन महाशय कहा करते हैं—यह शशि जो है, यह है मलेरिया का प्लीहा। इसमे खुजाहट जहाँ आई कि मलेरिया जागा।

अतर बहू उत्तप्त हो उठी थी। बोली—मै पूछती हूँ, मेरी बात का जवाब देते भी तुम्हे निदान समझने में अडचन पडती है?

अबकी जीवन महाशय ने सीधा सवाल किया—बताओ तो, शशि तुम्हे क्या कह गया है?

—शशि? शशि क्या कह जायगा मुझे? यह राख फेंकने के लिए टूटा सूप! कोई बात हो, शशि आ टपका। किसे यह खबर नही है कि तुमने लुहार बुढिया की मौत का एलान किया है? किससे यह बात छिपी रह गई है कि सरकारी डाक्टर ने सबके सामने तुम्हारा अपमान किया है! कहा है, ऐसी घोषणा मत किया करें। वे दरखास्त देने वाले है, मुकदमा दायर करने वाले हैं। बेचारे शशि ने कहने को इतना ही कहा है कि जब

उसकी टाँग टूटी है, तो मौत की घोषणा नही ही करते, तो क्या होता। निदान के रोगी होते जरूर है। वहाँ पास किये डाक्टरो की अकल काम नही करती। खुद शशि का ही मरीज है, डाक्टरो से कुछ करते न बना। शशि तुम्हे बुलाने आया था। उस पर ऐसी तोहमत क्यो ?

बूढे जीवन महाशय चुप हो रहे। कहे भी क्या। जमाना बदल गया है। चिकित्सा-विज्ञान काफी आगे निकल गया है। वही पीछे रह गये हैं। वरना, बीते दिनो की चिकित्सा के हिसाब से उन्होने गलत नही कहा। बुढिया को मरना ही चाहिए। इस चोट से चला-चली की ही नौबत आनी चाहिए। हाँ, चीर-फाड की इधर काफी तरक्की हुई है, एक्स-रे का ईजाद हुआ है—ये बाते उनकी अजानी नही, लेकिन यह इलाज काफी खर्चीला है।

खर्चीला है, इसीसे उसकी उन्होने सोची ही नही। फिर इसी समय बुढिया का उठ जाना अच्छा है, यह जाना समारोह का जाना होगा। पिताजी कहा करते थे—।

पिताजी क्या कहते थे—उन बातो को याद करने का मौका नही मिला। बाहर से किसी ने आवाज दी—डाक्टर साहब।

चौक पडे डाक्टर। अतर बहू भी चकित रह गई। यह तो नवग्राम के किशोर की आवाज है। दोनो का मुखमडल पल मे खिल पडा। किशोर। किशोर का आना वैसा ही है जैसे वर्षा की कठिन रात के बाद शरत् का प्रसन्न प्रभात आता है। उम्र मे प्रौढ होते हुए भी किशोर, सदा का किशोर ही रह गया है। आजीवन कुमार किशोर उन्नीस सौ सैंतालीस तक राज-नीतिक कर्मी और समाजसेवी था। अब उसने वह सब कुछ छोड दिया है—होम्योपैथी इलाज करता फिरता है। लेकिन चूँकि पुरानी आदत है, इसलिए लोगो का कुछ उपकार किये बिना रहा नही जाता और लोग भी नही छोडते उसे। यह किशोर जीवन डाक्टर के जीवन का एक अध्याय है। उनके जीवन मे उसने अपना एक बहुत बडा स्थान बना रक्खा है।

—डाक्टर साहब। किशोर ने फिर आवाज दी।

—जवाब तो दो। उसे आने को कहो। अतर बहू ने खुशी-खुशी झिडकी सुनाई। उन्होने पति की अपेक्षा न की और नीचे उतर कर कहा—

आओ किशोर, आओ।

मोटी खादी की धोती, आधे बाँह का कुरता, उस पर एक चादर—यही किशोर की सदा की पोशाक रही है। प्रसन्नचित्त, प्रशान्त और खूब-सूरत-सा आदमी। जो भी पोशाक हो चाहे, उसे खूब फबती है। तन्दुरुस्त शरीर, कर्मठ, सरल प्रदीप्त मन, उसके अन्दर आते ही घर जैसे हँस उठता है।

वह आकर जमीन पर ही बैठ गया और बिना किसी भूमिका के बोला—आपको जरा बाहर चलना पडेगा।

अतर बहू ने एक आसन डाल दिया—इस पर बैठो। जमीन पर क्या बैठना।

हँसकर डाक्टर बोले—महाराज अशोक जमीन पर बैठकर राजा हुए थे। किशोर राजा चाहे न हो, मिनिस्टर होगा! क्यो किशोर?

किशोर ने हाथ जोडकर कहा—उससे तो इस उम्र में भी व्याह करना मुझे कबूल है डाक्टर साहब। शनि की दशा आये, वह भी मजूर। खैर, आपको लेकिन जल्दी ही चलना है।—आखिरी शब्दो मे उसके कठस्वर में उसकी उत्कठा जाहिर हुई। उसने आगाह कर दिया कि सरस परिहास की रुचि उसकी अब नही रही।

—आखिर बात क्या है? कहाँ जाना है?

—मेरे गाँव। रतन बाबू हेडमास्टर के लडके विपिन की तबीयत खराब है। वही जाना पडेगा आपको।

डाक्टर अचम्भे मे आ गये। बूढे रतन बाबू नामी हेडमास्टर रह चुके है—वैसे दृढचरित्र का आदमी मिलना मुश्किल है। बेटा भी बाप का बेटा है। अच्छे सुभाव का है। नामी वकील है। रक्तचाप की बीमारी से सालो से पीडित है। इधर बीमारी कुछ ज्यादा बढ गई, सो इलाज के लिए कलकत्ते गया था। वहाँ से दवा-दारू लेकर लौटा है। आराम कर रहा है। आराम ही इस व्याधि का इलाज है। नवग्राम के डाक्टर हरेन्द्र चटर्जी इस सिलसिले मे उसके साथ कलकत्ते गये थे। इलाज का ढर्रा वहाँ से समझ-बूझ आये हैं और उसीके मुताबिक इलाज चला रहे हैं। इस बीच अचानक ऐसी क्या बात आ पडी कि किशोर मुझे बुलाने आया है?

किशोर बोला—चलिये, राह में सब बताऊँगा।

रास्ते मे किशोर ने जाते-जाते रोग की बातें बताईं।

रक्तचाप घटाने के खयाल से कलकत्ते के बडे डाक्टर ने लहू निकाला था। मूत्राशय मे दोष पाया गया। अभी ग्लुकोज की सुई ही मुख्य चिकित्सा है। साथ में कुछ दूसरी दवायें भी हैं। इससे विपिन बाबू कलकत्ते में अच्छे ही थे। इसीलिए लौट भी आये। डाक्टर हरेन्द्र ने भरोसा दिया था और बड़े डाक्टर ने भी लौटने की राय दी थी। मगर अब रोग अचानक मानो मुडकर प्रकट हो गया है। एक अजीब ही उपसर्ग दिखाई पडा है—वह है हिचकी। पाँच दिन हो गये, हिचकी वैसी ही है। अस्पताल के प्रद्योत डाक्टर को भी बुलाया गया था, मगर दवाओ का कोई नतीजा नही निकला। एक ही अच्छा लक्षण अब तक है कि नाडी या हृदय की गति पर कोई प्रतिक्रिया नही हुई है। मगर होने में देर भी क्या लगती है? कल मैंने होम्योपैथी दवा दी थी। कोई फल न हुआ। इसीलिए आपको बुलाने आया हूँ।

डाक्टर प्रद्योत के नाम से जीवन महाशय जरा सजग-से हो गये। बोले—अस्पताल का डाक्टर अभी भी इलाज कर रहा है? वह भी वहाँ होगा क्या? फिर हरेंद्र? उसकी राय ले ली गई है?

किशोर ने उनकी तरफ देखकर कहा—मैंने प्रद्योत वाला वाकया सुना है। यो वह आदमी तो बुरा नही है, मुझे तो वह अच्छा ही लगा है। लेकिन अचानक ऐसी अभद्रता—।

—यह भद्रता अभद्रता की बात नही है किशोर! यह बात है सच और झूठ की। अगर प्रद्योत का ऐसा ही विश्वास हो कि नाडी देखकर मै जिस ढंग का इलाज करता हूँ, वह भूल है, वह झूठ है, तो वे मुझे कड़े शब्दो में तिरस्कार कर सकते हैं। खैर। इसे यही रहने दो। अभी मै जो पूछना चाहता हूँ, उसका जवाब दो।—और डाक्टर राह में ठिठक गये।

किशोर ने कुछ अचरज से ही डाक्टर की तरफ ताका। डाक्टर ने कहा—किशोर मुझे साफ-साफ बताओ। तुम सबकी राय-सलाह लेकर मुझे बुलाने आये हो? कि अपने मन से आये हो? क्योंकि यो आने का मर्ज भी तुम्हें है। गंजी खोपड़ी वाले के लिये वह शोभन ही होती है, तुम्हारे लिये भी यह अशोभन नही। जो दूसरों की भलाई किया करते है, उन्हें

दूसरो के घर के कायदे-कानून को पलट देने का भी हक है।

किशोर ने जरा हँसकर कहा—जिंदगी के आखिरी दिनों मे आपने ऐसा मान किया डाक्टर साहव ! और इतना मान !

—हाँ किशोर, किया है। और, इसे तोड भी नही सकूँगा।

—डाक्टर वावू, आपको मैंने ही नही वुलाया है। रोगी के पिता ने आपको वुलवा भेजा है, रतन वावू ने वुलाया है ! उन्होंने वताया, जीवन डाक्टर एक वार नब्ज देख ले तो मैं निश्चित हो सकूँ, कम-से-कम इस दुविधा की चोट से तो राहत मिले। जीवन डाक्टर विल्कुल ठीक कह देगे।

यानी मौत की वात !

जीवन महाशय विचलित हो उठे। रतन वावू उन्ही की उम्र के है। महज दो साल छोटे। उनसे एक दर्जा नीचे पढते थे। जिस साल जीवन महाशय भूपी वोस की नाक तोडकर कादी से भाग आये थे, रतन उसी साल एम ई के इम्तहान मे वृत्ति पाकर कादी के स्कूल में दाखिल हुए थे। रतन को एन्ट्रेस की परीक्षा मे भी वृत्ति मिली थी। सदा से ही धीर स्वभाव के आदमी। और उस रतन ने ऐसा कहा ? कहा कि जीवन नब्ज देख ले तो फिक्र से रिहाई मिले ! वह सव ठीक कह देगा।

क्यो न ऐसा कहे रतन। जीवन डाक्टर ने तीन महीने पहले ही अपने वेटे की मौत का ऐलान कर दिया था। फिर रतन ऐसा क्यो न कहे।

यो रतन वावू ने पूछा तो कोमल ही कण्ठ से, मगर कोमल होते हुए भी कण्ठ काँपा नही। पूछा—क्या खयाल है ? कैसा देख रहे हो ?

जीवन ने हाथ धोने के वाद खडे होकर वताया, इस हिचकी की फिक्र न करो, यह दो ही तीन दिन में जाती रहेगी।

अस्सी की उम्र के वावजूद रतन वावू का शरीर सीधा है, जरा भी नही झुका। लम्वे वहुत नही है वेशक, और वदन के भारी भी वैसे नही। फिर भी कुछ झुकना चाहिए था, सो नही झुके है। नजर धुधली जरूर हो आई है, पर स्थिर और नीरस है। पानी नही आता जल्दी। जव तीस के थे, पत्नी गुजर गई। खुद रसोई वनाते रहे और वच्चे को पाला। आदर्शवादी है, नीति परायण। रतन वावू जरा हँसकर वोले—लेकिन मेरा यह सवाल

तो नही। मैंने जो पूछा है, उसे तुमने समझा है ?

—समझा है, लेकिन .

—तुमसे 'लेकिन' की उम्मीद नही करता। चूँकि तुम साफ-साफ बता देते हो, इसीलिए तुम्हारा इतना आग्रह है मुझे।

डाक्टर जमीन की ओर देखते रहे।

—जीवन ? रतन बाबू ने हौले से पुकारा।

—मैं सोच रहा हूँ।

—मेरे लिए ? मेरे लिए न सोचो। यस्य छायामृत यस्यमृत्यु—वहो तो परमानन्द हैं।

डाक्टर चौक उठे। बीते दिनो की सारी स्मृतियाँ मानो एक पल में आलोडित हो उठी। नाडी ज्ञान दिलाने वाले उनके गुरु भी यही कहा करते थे। जीवन और मृत्यु ? यस्य छायामृत यस्य मृत्यु······ वही आनन्द-स्वरूप हैं।

कहते-कहते जगत् महाशय ने सुँघनी ली थी, जीवन डाक्टर को आज भी वह बात याद है। जाने सुँघनी लेने से या हृदय के आवेग से, जैसे भी हो, उनकी आवाज भारी हो उठी थी। और उस भारी आवाज में बातों की प्रतिध्वनि से जीवन डाक्टर का हृदय बरसाती बादलो की गरज से जैसे पृथ्वी के होती है, एक पुलकित अनुभूति से अभिभूत हो उठा था। उन्होंने कहा था, बेटे, इसमें दोनो ही तत्व होते हैं—इहलोक और परलोक, दोनो। जो परमानन्दस्वरूप है, अपने माधव वही हैं ··· अपने इष्ट देवता।

ध्यानयोग में पहुँचा हुआ। कोई चिकित्सक जब गहरी एकाग्रता से नाडी की परीक्षा करता है, तो जिन्दगी और मौत की लड़ाई वियोगान्त नही लगती, लगती है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड की चिरन्तन लीला है और तब सहज ही यह बताया जा सकता है कि सूर्यास्त का समय आ गया है। सूर्योदय और सूर्यास्त का आनन्द एक ही है, भिन्न नही।

रतन बाबू उन्ही की तरफ ताकते हुए कुछ इंतजार कर रहे थे मानो। उन्होंने पुकारा—जीवन ?

जीवन सचेतन हो गये। रतन बाबू का चेहरा देखकर काँप उठे। बोले—रतन, अभी तो वैसा कोई लक्षण नही पा रहा हूँ मैं—मगर······

—मगर क्या ? बताओ, हिचक कैसी ?—रतन बाबू हँसे—बडी ही विषाद भरी और करुण हँसी। उस हँसी के आगे खडा रह सकना बडा कठिन है—कम-से-कम आँख-से-आँख मिलाकर झूठा दिलासा नही दिया जा सकता। सिर झुकाकर बात करनी पडती है।

जीवन डाक्टर लेकिन उन्हे झूठ नही बताना चाहते थे। सत्य ही बताने का इरादा था, शायद इसीलिए उन्होने अपनी गर्दन नही झुकाई। बोले—यह रोग अचानक ही जानमारू हो जाता है। यह धीरे-धीरे नही बढता और उसके बढने का लेखा भी हेतु से परे होता है। किसी भी आघात का बहाना मिला, वह आघात चाहे दैहिक हो, चाहे मानसिक, कि यह सर्वनाश की देहली पर पहुँचा देता है।

—यह पता है मुझे।

—फिर तो मेरे कहने को कुछ नही रह जाता। रोग अपनी पूर्णावस्था मे है। फिर भी ऐसा कोई लक्षण मुझे नही दीखता कि मै इसे असाध्य कहूँ। दुःसाध्य जरूर है—असाध्य मै नही कहूँगा। लेकिन इस मर्ज की फितरत ऐसी है कि किसी भी घडी असाध्य हो जा सकता है। भगवान की कृपा और उस कृपा के तुम दोनो बाप-बेटे अधिकारी हो।

—अधिकारी ? इस दया पर भी किसी का अधिकार है जीवन ?

जीवन चुप हो रहे। कोई जवाब नही था इसका।

रतन बाबू ने कहा—खैर, इस हिचकी को तुम रोक दो।

—मेरी दवा से डाक्टर को एतराज तो न होगा ? ऐलोपैथी मे इसकी जो दवा हो सकती है, उसके बारे मे उनसे ज्यादा जानकार तो मै नही हूँ। मै इसकी दवा दूँगा अपनी पद्धति से।

डाक्टर हरेन्द्र पास ही खडे थे। उन्होने कहा—अगर हम दवा देंगे, तो आपको तो आपत्ति न होगी ? जरूरत होगी तो हम एकाध सुई देंगे, ग्लूकोज देंगे और खासकर सुई लगाये बिना उन्हे नीद नही आती। फिर अगर दबाव बढ जाय, तो कुछ-न-कुछ देना जरूरी हो जायगा। एक बात और—

हरेन्द्र रुक गये। हजार कुछ हो, आखिर हरेन्द्र इसी गाँव का ठहरा। जीवन डाक्टर को वह श्रद्धा करता है, उनकी बहुत बार दवा खाई है।

आज भी बाजे-बाजे रोगी को बता दिया करता है कि भई, इसके लिए जीवन महाशय के पास जाओ। उनकी दवा से ज्यादा फायदा होगा।

उस दिन निदान के बारे मे प्रद्योत डाक्टर से उसने जो भी कहा हो चाहे, पर जीवन महाशय अगर नाडी देखकर रोग का निर्णय कर दे तो मल-मूत्र की जाँच किये बिना भी वह उनके निर्देशानुसार चिकित्सा जारी रख सकता है। इसीलिए कहने मे उसे सकोच हो रहा था।

—आपको बताने की जरूरत नही—तो भी—। उसने माफी माँगी और हँसा। बाकी बात बोला नही।

जीवन डाक्टर कुछ असहिष्णु-से हो उठे। उन्हे डा० प्रद्योत का चेहरा याद हो आया। दोनो नये युग के हैं, लगभग एक ही समय दोनो ने डाक्टरी पास की है। चूंकि दिनो से चीह्न-पहचान है, इसलिए प्रद्योत की तरह फट-कार न सके चाहे, उपदेश के बहाने तिरस्कार कर सकता है। अधीर होकर जीवन महाशय बोले—कहने की जरूरत है हरेन्द्र। जो कहना है, साफ-साफ कहो।

हरेन्द्र ने कुछ सोचा, फिर सम्हल कर ही कहा—हम लोगो ने हर्ट और किड्नी का खयाल रक्खा है और उसकी दवा दे रहे है। अफीम वाली दवा से हिचकी रुक सकती है, लेकिन रोगी के हर्ट को देखते हुए उसका व्यवहार नही किया है। नुस्खा तो आपने देखा ही है।

—मै जो दवा दूंगा, उससे दिल पर कोई बुरा असर न पडेगा। खातिर जमा रक्खो, मै कोई अफीम वाली दवा न दूंगा।

दस

डाक्टर जरा तेजी से कदम बढाते जा रहे थे। मन मे मानो उत्ताप घुमड रहा था। कौन-सी दवा देनी हैं, तै कर चुके थे। दवा को वे खुद अपने हाथो तैयार करेंगे। एक मुष्टियोग। कई देशी चीजो का बना। मगर लोगो को बतायेगे नही कि दवा है क्या? जो वस्तुएँ ससार मे सुलभ होती हैं, उन पर लोगो की दिलजमई नही होती। सो हर्गिज नही बतायेंगे।

महज एक रोज मे रोगी की हिचकी बन्द करके उन्हे यह दिखा देंगे कि अपने पास अजीब इलाज और अनोखी दवाई है। राह चलते-चलते अचानक ठिठक पडे। एक वार सिताव को देख लेना था। मगर अब लौटना पडेगा। मन की उलझन मे उलझे वे सिताव के घर जाने वाली गली पीछे छोड आये थे। रहे भी, बुड्ढे का बुखार आज जरूर उतर गया होगा। शायद अकेले ही शतरज बिछाकर मुहरे चला रहा होगा। न होगा, कल सवेरे देखा जायगा। चलकर जल्दी से दवा ही तैयार कर ले।

अरे, जीवन महाशय है क्या ? ओ जीवन महाशय ! — वगल की गली से औरतानी गले से किसी ने पुकारा।—जरा सुन लीजिये, रुकिये।

जीवन महाशय रुक गये। गली से एक प्रौढा विधवा निकल कर आई। वह थी निशि ठकुराइन। गाँव मे मशहूर। आज के लडके लुक-छिप कर उन्हे कहा करते है—मिसेज़ शरीफ आव नवग्राम। गाँव में उनका वेहद रौव-दाव है।

आते ही उन्होने पूछा—अच्छा, उसे, यानी रतन बाबू के लडके को देख आये ? कैसा है वह ?

जीवन महाशय फेर में पडे। आवाज से उन्हे निशि ठकुराइन का अनुमान ही न हो सका था। होना चाहिए था। लेकिन, क्योकि इस गली मे ऐसी साधिकार वाणी मे पुकार कौन सकती थी ? वह अपने वरामदे में बैठी रहती और जब जिसे चाहती उसी को बुलाकर मन की पूछती-ताछती। जीवन डाक्टर ने मुख्तसर में कहा—उसे बीमारी वडी कठिन है लेकिन नाउम्मीदी नही है। खैर, मै चलूं। दवा देनी है।

—आपके घोडा होता तो जानें क्या करते आप ! रुक जाइए जरा।

—दवा देनी पडेगी।

—समझती हूँ मै। साथ मे आदमी भी है इसीलिए। ऐ भैया, तू वढ जा। डाक्टर साहव अभी आये ! मेरे ममेरे भाई की वेटी वीमार है। उसके पेट का मर्ज जाता ही नही। एक वार उसे देख लीजिये। आज के इन डाक्टरो के चपेटे मे आकर इतना-इतना पैसा खर्च किया, मगर कोई नतीजा नही। आजकल आप तो इस तरफ आते नही—हम लोगो को एकवारगी छोड रक्खा है। निहार अरी ओ निहार···

—पुकारने की जरूरत नही, चलो देख ही आऊँ।

महाशय के अन्दर जाते ही निशि ने मानो उनकी राह रोक कर पूछा—मुझे ठीक-ठीक बताइये, रतन मास्टर का बेटा अच्छा होगा कि मर जायगा ?

निशि की बात पर जीवन महाशय को अचरज न हुआ। उसकी आदत ही यही है। दुनिया की हर गोपनीय बात का पता उसे लगाना ही चाहिए। और सिर्फ जान ही लेने से उसे छुट्टी नही मिल जाती, उसे तमाम फैलाकर उसे सुख मिलता है।

महाशय ने गम्भीर होकर कहा—मैंने तुमसे कुछ छिपाकर नही कहा है निशि। नाडी से मैं कुछ समझ नही सका।

—समझ नही सके! आप ठहरे जीवन महाशय, आप समझ न सके यह भी मुमकिन है भला! लोग कहते हैं, जीवन महाशय के नब्ज पकडते ही मौत की बीमारी अपने मरण के पाँव की चुटकी बजाकर बता देती है। आप छिपा रहे हैं।

अबकी डाक्टर ने तेवर बदला। निशि बाज तो आगई पूछने से, पर उसे डर नही लगा। बोली—समझ गई, समझ गई। हुआ वही है। अरी ओ नीहार, चली कहाँ जाती है तू ?

—क्या है फूफी! नीहार ने कमरे के अन्दर से जवाब दिया। उसने दरवाजा खोलकर बाहर झाँका। झाँकना था कि जीवन महाशय को अचार की गन्ध मिली। वह भीतर चुराकर अचार खा रही थी। यह आमाशय रोग का एक उपसर्ग है। बीमारी अब लाइलाज हो गई है, वरना नुकसान पहुँचाने वाली चीजों की ऐसी चाट ही क्यो होती ?

वह लडकी बाहर आई।

दुबली-पतली, उभरी हुई हड्डियाँ, बासी अतसी फूल जैसे रंग वाली एक किशोरी। माँग में सिंदूर! किशोरी थी, मगर बच्चे की माँ हो चुकी है।

चौंक उठे जीवन महाशय। सारे शरीर पर मानो किसी की परिछाईं पडी है।

निशि ने कहा—प्रसूतिका हुई है। दो बच्चे हैं। बुरा हाल होगा। और

वह एक लम्बी साँस लेकर रो पडी।

—दो बच्चे हैं? कितनी उमर है इसकी? चौदह?—डाक्टर ने अचरज से पूछा।

निशि ने आँखें पोछ ली। कहा—बारह की उम्र मे पहला बच्चा हुआ है और जो गोद मे है, वह चौदह साल में। चाँद-सा बच्चा है, क्या बताउँ देखकर जी जुडा जाता है।

चाँद क्या, यम-है-यम। अपनी माँ को खाने आया है। यह बाप की सरासर ज्यादती है। जीवन डाक्टर का सारा हृदय तिक्त हो उठा। ऐसे अनाचारियो को सजा नही होती? डाक्टर ने एक साँस भरी। उनके पिताजी ने कहा था, बेटे, जब रोगी को देखो, तो किसी भी कारण से उस पर क्रोध या घृणा मत करो। करना उचित नही। वे कहा करते थे, इसमे मनुष्य का अपना वश भी क्या, मनुष्य तो खिलौने हैं।

जीवन महाशय के ऐलोपैथी चिकित्सा के गुरु डाक्टर रंगलाल कहते थे, मनुष्य बडे ही असहाय होते है। उनमे काम, क्रोध और लोभ तो पशु का होता है, लेकिन शरीर मे पशु की ताकत नही होती। उन पर गुस्सा मत हो, यो गुस्सा हो सकते हो, होने का हक तुम्हारा है, किन्तु ऐसे में इलाज का पेशा अख्तियार नही कर सकते।

लम्बी साँस लेकर डाक्टर बोले—आखिर इतने दिनो तक कर क्या रही थी तुम?

—यह-वह कुछ-न कुछ कर रही थी। फिर प्रसूतिका तो होती है, यह हाल हो जायगा, मै क्या जानती थी! इधर कुछ दिनो तक इन नये डाक्टरो को दिखाती रही। ये तो जाने क्या-क्या बताते हैं। खर्च की इतनी लम्बी फिहरिश्त। उतना खर्च कहाँ से जुटाऊँ मै।

हुँ।—डाक्टर चुप हो रहे।

निशि की बात अभी पूरी नही हुई थी—जडी-जतर, देवता का प्रसाद, बहुत कुछ कर चुकी।

यह तो डाक्टर देखकर ही समझ गये थे। गले मे ताबीजो का मेला। कलाई पर कपडे में बँधी जडी।—मगर करे क्या—क्या करे डाक्टर? एक कविराजी दवा है—सूचिकाभरण।

—खिला सकोगी निशि ? पानी पिलाना बिल्कुल मना है इसमें ?

पानी पिलाना मना है ?—निशि चौक पडी ।—कहते क्या हैं आप ?

—हाँ, पानी पिलाना मना है। फिर एक बार नब्ज देख लूँ बच्ची ।

मौत की मरीज बच्ची मुंह मे कपडा देकर हँसने लगी । दो-दो लडको की माँ हूँ, मै बच्ची हूँ ! डाक्टर भी हँसे और उन्होंने एक लम्बी साँस ली । विष ही एकमात्र दवा रह गया है। विषम रोग की विषज औषधि । नब्ज में उन्हे पैरो की आहट मिल रही है ।

निशि ने झूठ नही कहा था। मौत के पैरो की अगर इस देश की औरतो-जैसी चुटकी हो तो डाक्टर को उसकी रुनझुन सुनाई पडती । लोग कहा करते, आखिर डाक्टर के बाप कैसे थे, कैसी थी शिक्षा उनकी ! बाप गुरु थे, नाडी जाँच की विद्या में सिद्ध । दीक्षा का दिन, व्याकरण का पाठ देने के बाद का दिन, जिस दिन नाडी-विद्या का श्रीगणेश हुआ, बडा ही शुभ दिन था । वैशाख की अक्षय तृतीया थी ।

इस बुढापे में भी उन्हे ये बातें कल की-सी लग रही थी। साफ याद आ रही थी सब । राह चलते हुए वे सोचते जा रहे थे ।

* * *

डाक्टर ने हिचकी की दवा बनाई। पुर्जे पर खिलाने के तौर-तरीके लिखकर साथ के आदमी को दिया और आयुर्वेद-भवन के बरामदे पर बैठकर उन्होंने एक लम्बी साँस ली। उन्हें निशि ठकुराईन की बातें याद हो आईं ।

नौकर इन्दिर नारियल लेकर आ खडा हुआ ।

डाक्टर ने उसके चेहरे की तरफ देखा। वे रतन बाबू के लड़के की हिचकी की सोच रहे थे । कल सुबह तक शायद हिचकी बन्द हो जाय । बन्द होगी हिचकी । फिर डाक्टर प्रद्योत क्या कहेगे ।

तम्बाकू पीजिए। माँ जी ने कहा है , चाय का पानी उबल रहा है।

—मतलब यह कि अतर बहू ने अन्दर पहुँचने का सन्देशा भेजा है। डाक्टर ने नारियल को थाम लिया। बोले—न हो तो, चाय तुम यही ले आओ—उठने को अभी जी नही चाहता ।

—आखिर यहाँ खुले मे बैठे रहेंगे। आसमान मे बदली है, जाने कब

वारिश शुरू हो जाय।

डाक्टर ने आसमान की तरफ ताका। सावन के आसमान मे फीके मेघो की एक परत के नीचे वदली मँडरा रही है, एक आती है, तो दूसरी जाती है।

इन्दिर फिर भी खडा रहा। डाक्टर को याद आ गया, वह रोजमर्रे के सौदे के लिए पैसे के इन्तजार मे है।

नियम-सा है कि डाक्टर जव रोगी देखकर लौटते हैं, तो आमदनी की रकम अतर वहू के हाथो दे देते हैं। आजकल पेशा लगभग छोड ही वैठे है वे। कभी ऐसा भी था कि रोज पचीस-तीस रुपये कमाकर घर आते थे। अब कभी तो चार रुपये, कभी छै और कभी दो ही। किसी-किसी दिन कोई वुलावा ही नही आता और कभी दूर से कोई वुलाने आता भी तो डाक्टर जाते नही। आज डाक्टर ने अतर वहू को रुपये नही दिये थे। परानी शेख के यहाँ से लौटने के वाद खा-पी चुकने पर अतर वहू से डाक्टर की झडप हो गई थी। उसके वाद किशोर आकर वुला ले गया रतन वावू के यहाँ। इसी वीच उन्होंने कुरता उतार दिया था। नगे वदन वैठे थे। उन्होने कुरता इन्दिर को दे दिया। वोले, जेव मे रुपये है।

—चार रुपये हैं।

—अतर वहू को दे दो जाकर। मुझे अव तग मत करना।

—दो चिलम और भरकर रख जाऊँ ?

—रख जा, जा। तू वडा बकवक करता है।

इतनी वाते डाक्टर आसमान की ओर ताकते हुए कर रहे थे। आँखो से देख रहे थे वादल, कान थे इन्दिर की वातो पर, रह-रहकर मुँह से जवाव भी देते जा रहे थे, मगर उनके मन मे घुमड रही थी, विपिन की हिचकी, डाक्टर प्रद्योत की वात, निशि की वात—लोग कहते हैं, जीवन डाक्टर नव्ज पकडते है तो मौत पाँवो की चुटकी वजा कर पता देती है। कैसे थे वाप, कैसी थी उनकी शिक्षा!

*　　　　*　　　　*

उस रोज वैशाख की अक्षय तृतीया थी। पुत्र की दीक्षा के लिए इसी शुभ दिन का निश्चय जगत महाशय ने किया था। उस दिन एक एकात

कमरे में बेटे को बैठाकर उसकी चेतना को उन्होने प्रबुद्ध करना चाहा था। घर में सबको कह रखा था, खबरदार, उन्हें पुकारकर कोई बाधा न दे।

जीवन नाडी देखना थोडा-बहुत जानते थे। चिकित्सक के घर के लडके। छुटपन में खेल-कूद में सगी-साथियो की नब्ज देखा करते, धूल-मिट्टी की पुडिया बनाकर दवा देते। जीवन की माँ भी नब्ज देखना जानती थी। नाडी तत्व का पहला पाठ पढाकर, मृत्यु की कहानी कहकर पिता ने उस दिन के रोगियो की नाडी खुद देखकर उनसे कहा—लो, इनकी नाड़ी देखो।

रोगियो के नुस्खे लिखकर दवाई-विभाग की तरफ भेज जीवन को उन्होने नाडी की विशेषता बताई। जगत महाशय की शिक्षा-पद्धति इस तरह की थी।

आयुर्वेद-भवन का काम-काज खत्म करके वे लडके को कई रोगियो के घर ले गये। लौटते हुए रास्ते में बताया—बेटे, जो चिकित्सक नाडी-ज्ञान में सिद्ध हो जाते हैं, मौत को उनके साथ सुलह करनी पडती है। जहाँ मौत का अपना हक होता है, वहाँ तो वह राह से हट जाने को कहती है। कहती है, यह मेरा अधिकार है। और जहाँ उसका अधिकार नही है और वह गलती से झाँकने लगती है, तो चिकित्सक कह देते हैं, देवी, अभी समय नहीं आया है, तुम्हें लौट जाना पडेगा।

—वजह यह है कि इस कोटि के जो चिकित्सक होते हैं, न तो उनसे रोग-निर्णय में भूल होती है, न दवा तै करने में। मृत्यु जैसी अमोघ होती है, पंचमवेद आयुर्वेद के स्रष्टा ब्रह्मा का बनाया भेषज और ओषधि की शक्ति भी वैसी ही अव्यर्थ होती है। जिस ब्रह्मा की भृकुटि कुटिल दृष्टि से मौत का जन्म हुआ है, उसी ब्रह्मा की प्रसन्न दृष्टि से भेषज की सृष्टि हुई है। यह शास्त्र ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति को दिया था, दक्ष से यह अश्विनी कुमारों को मिला, अश्विनी कुमारो से पाया इन्द्र ने और इन्द्र ने दिया धन्वन्तरि को। यहाँ आयुर्वेद के दो भाग हुए। धन्वन्तरि ने शल्यचिकित्सा का भाग पाया था—बाद में पाया पुनर्वसु और अत्रेय ने। उसके बाद उसे पाया अग्निवेश ने। अचार्य अग्निवेश ने अग्निवेश सहिता की रचना की। इसी संहिता से चरक संहिता बनी। पचनद (पंजाब) प्रदेश के मनीषी चरक ने

नये सिरे से उस संहिता का सस्कार किया था। चरक चिरजीवी हुए।
—बाप-बेटे बातें करते हुए राह चल रहे थे। दूसरे गाँव को जा रहे थे। आमतौर से जगत महाशय गाडी या पालकी का व्यवहार नही करते थे। ज्यादा दूर जाना हो तो बैलगाडी और जल्दी जाने का काम हो तो खटोले का व्यवहार करते थे। उस दिन उन्होने बेटे को एक रोगिणी दिखाई थी, ठीक जैसी आज की निशि ठकुराइन की भतीजी थी। हु-ब-हू ऐसी ही। किशोरी—बहुत ज्यादा होगी तो होगी सोलह की उम्र की। वह दो सतान की माँ हो चुकी थी, तीसरी सतान होने वाली थी।

उस दिन चलते-चलते जगत महाशय ने बताया था—शास्त्र मे निर्दिष्ट आयु की चर्चा है। लेकिन कर्मफल से वह आयु घटती-बढती है। मनुष्य व्यभिचार करके मौत को न्योत लाता है। ऐसे मौको पर वही होता है—फिर भी—

जगत महाशय चुप हो गये थे। शायद उनके मन मे शका जगी थी। जरा देर चुप रहकर बोले थे—कभी-कभी शास्त्र की बात पर शका होती है जीवन। हमारे शास्त्रो का कहना है। पति के पाप का हिस्सा स्त्री नही लेती। लेकिन यह जो कुछ तुमने देखा, इसे हम क्या कहे? स्वामी के अनाचार का नतीजा यह बेचारी लडकी भोग रही है, इसी कारण इसे अकाल काल कवलित होना पडेगा।

फिर थोडी देर चुप रहकर बोले—शायद हो कि यह इस लडकी के पूर्वजन्म का कर्मफल हो, उसी के फलस्वरूप यह अल्पायु होकर पैदा हुई। मगर यही कौन कहे?

उस रोज जीवन महाशय ने भी इसी बात पर एतबार किया था। मन-ही-मन उन्होने अपने भाग्य विधाता को प्रणाम किया था कि उसने उन्हे बचा लिया। मजरी थी तो खासी तन्दुरुस्त, मगर बारह ही साल की तो थी। कौन कह सकता है कि उसकी भी यही गत नही होती?

एक लम्बी साँस लेकर बूढे जीवन महाशय ने आज फिर आसमान की ओर देखा। उनके होठो पर एक अजीब हँसी खिल पडी। अपनी दाढी पर हाथ फेरा उन्होने। आकाश मे रक्त सध्या दिखाई पडी। सुदूर प्रसारी मेघो के स्तर लाल हो रहे थे—नीचे उडी जा रही थी बगलो की पाँत।

अचानक उनकी निगाह पड़ी—चाय का कटोरा सामने ढँका पड़ा है। जाने कब रख गया है इन्दिर। अतीत में उलझे रह जाने के कारण चाय की याद ही नही रही। इन्दिर ने कहा जरूर होगा, उसने याद दिलाने की भी जरूर ही कोशिश की होगी, पर इन्हे याद नही आरहा है। आज रहे चाय।

पिछली बातों को बिसूरने का भी एक नशा है। बडा ही सुन्दर होता है उसका वर्ण-विन्यास। निगाह पड जाय तो आँखें हटाई नही जा सकती। खास कर इस समय जहाँ की बात याद आई है, वह जगह मानो आकाश की इस रक्तसन्ध्या जैसी ही गाढी लाल हो।

राह में मजरी से छुटकारा दिलाने के लिए वे भाग्यविधाता को धन्य-वाद देते आये। और घर आते ही देखा—।

फिर हँसे वे। कई बार अपनी दाढी को सहलाया। हाँ, कर्म के चक्कर से जिन्होने चक्र की रचना की, वे जैसे चक्री हैं, वैसे ही रसिक भी है।

*　　　　*　　　　*

उस रोज वे तीसरे पहर के बाद घर लौटे थे। जीवन की माँ इन्तजार में थी कि ये लोग लौटें तो चावल उबालें। मगर यह कोई खास देर नही हुई। चिकित्सक के खाने का समय तीसरा ही पहर है।

मुँह-हाथ धोकर, ओदा अँगोछा पीठ पर फेरते हुए जगत् महाशय ने कहा—जीवन को आज कुल-कर्म की दीक्षा देकर मैं निश्चिन्त हुआ। मगर तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यो लग रहा है जीवन की माँ ?

—कैसा लग रहा है ?

—लग रहा है, बड़ी चिंतित हो। कुछ सोच रही हो ?

—सोचूँगी क्या ? जीवन की माँ टाल गईं।

—क्या सोचोगी ! क्या खूब कहा ! औरतो को गहनो की फिक्र रहती है, बेटे-बेटी के ब्याह की चिंता होती है। तुम इन दो में से कोई सोच सकती हो।

जीवन की माँ हँसीं। रसोई में जाकर उन्होंने चूल्हे पर चढ़े बगुने का ढक्कन हटाया और कलछुल से निकालकर चावल देखने लगी।

उस दिन जगत् महाशय का चित्त प्रसन्न था—शरत्काल के मेघहीन आकाश जैसा। उन्होने खुशी-खुशी पूछा—क्यो, कोई जवाब नहीं दिया ?

उलटकर जीवन की माँ वोली—मैं क्या कहूँ। तुम तो अन्तर्यामी हो। मैंने कहा, कुछ सोच नही रही हूँ, फिर भी तुम कहते हो कि सोच रही हो। फिर तुम्ही बताओ कि मैं क्या सोच रही हूँ।

जीवन अब भी अभिभूत-से थे। पिता के गभीर स्वर की वे वाते अभी भी उनके दिमाग में गूँज रही थी।

एक आकस्मिक आघात से उनकी यह तन्मयता टूट गई। वे चौंक उठे।

खाना-पीना जब खत्म हो गया तो एक रकाबी मे हर्रे के टुकडे लाकर सामने रखती हुई वह बोली, तुम सचमुच ही अन्तर्यामी हो—मैंने यह कुछ मजाक नही किया है। दोपहर को चिट्ठी लेकर कादी से आदमी आया है। चिट्ठी मे लिखा क्या है, यह मै नही जानती, लेकिन भेजने वाले का नाम जानकर मै चिंतित हो उठी हूँ। चिट्ठी नवकृष्णसिंह ने लिखी है—यह देखो।

उन्होने चिट्ठी सामने रख दी।

जगत्‌ वन्धु महाशय ने चिट्ठी पढी। जीवन चकित और उद्विग्न आँखो वाप के चेहरे की तरफ देखते रहे। किन्तु उनके चेहरे से कुछ अनुमान नही कर सके। उन्होने चिट्ठी खत्म की और वैशाख के तपे आसमान की ओर देखने लगे स्थिर आँखो।

जीवन को सारा कुछ याद आ रहा है।

सूरज पच्छिम को झुक गया था। तीसरा पहर वीत रहा था। पूरब दरवाजे वाले घर के वरामदे पर वैठे थे, सामने पच्छिम द्वार वाले इकतल्ला रसोई के ऊपर दीखने वाले पीछे के पुरोहित-ब्राह्मण के घर के मौलसिरी पेड के माथे पर धूप से जला वैशाखी आसमान मानो तपस्या मे तल्लीन रुद्र के अधखुले तीसरे नेत्र की ज्वाला से विलप्ट हो। कही कोई आवाज नही। हवा भी नही हिल रही थी। लग रहा था, शाम होते-होते आँधी आयेगी। पच्छिमी क्षितिज पर उसके आसार दीखने लगे थे। जीवन उसी ओर देख रहे थे, लग रहा था, उनके हृदय मे तूफान उठेगा। नवकृष्णसिंह ने क्या लिखा है? मजरी, शायद मजरी की माँ—ये उस दीवालिया अभिजात परिवार के वर्वर लडके पर लट्टू हैं, इसमे सन्देह की गुंजाइश नही। वकिम

और मंजरी परतो सोचना ही बेकार है—वे उसे नचा रहे हैं। और यही क्यों कहे। दरअसल वह खुद ही बन्दर है—उनके यहाँ बन्दर-नाच नाचता है, वे लोग मजे लेते हैं। बन्दर-नाच नहीं—भालू-नाच। भालू और बन्दर में भेद भी कितना है? दोनो ही जानवर हैं और दोनों के दोनों मूरख। लेकिन नवकृष्णसिंह ने आखिर लिखा क्या है? खिलाफ में शिकायत तो नही लिख भेजी है? झूठा इलजाम—घिनौना इलजाम। जीवन क्या करें? भगवान साक्षी है, किन्तु वे तो गवाह देने आते नही। वे तो यह नहीं कहेंगे—अगर हृदय से प्यार करना गुनाह है, तो जीवन गुनहगार है। इसके सिवा जीवन ने कोई अपराध नही किया है। वह मौत की सजा पाये हुए मुजरिम की तरह इन्तजार करता रहा।

महाशय ने नजर नीचे झुकाकर पुकारा—जीवन की माँ! —उनका कंठस्वर गम्भीर था।

जीवन की माँ चिन्तान्वित-सी प्रतीक्षा मे खडी थी। आग्रह के साथ बोली—बोलो। सुनने ही को तो खडी हूँ।

—जीवन की शादी का इन्तजाम करो।

—किसके साथ? नवकृष्ण की उस लडकी के साथ?

—हाँ, उसीसे। ब्याह करना ही पड़ेगा। नवकृष्ण ने लिखा है, उस घटना से उसकी लडकी की बदनामी फैली है। वह जो बदचलन लड़का है, उसने जीवन और मजरी के बारे में बहुत तरह की अफवाहें फैलाई हैं। कहा है, जिस रोज का वाकया है, उस रोज उसने अबीर मलने के बहाने जीवन को मजरी के बदन पर हाथ लगाते देखा है।

माँ ने लड़के की तरफ देखकर कहा—जीवन!

जीवन ने माँ को इस मूर्ति में और कभी नही देखा था।

माँ फिर बोली—बोलो, मेरा पैर छूकर बोलो...

उस दिन बाप के साहचर्य, उनके अन्तर के स्पर्श से जीवन को मानो नया जन्म मिला था। वह उठा, माँ के पैरों हाथ रखकर बोला, मैंने उसके कपाल पर अबीर का टीका लगाया था, और कोई दोष नही किया है मैंने।

महाशय बोले—छि-छि. तुम यह सब क्या तमाशा करने लगी जीवन की माँ। मैंने जब ब्याह के इन्तजाम की कही, तो फिर यह सब क्या

हकीकत मे जीवन हृदय से उस लडकी को चाहता है। ऐसी दशा मे शपथ भी कराता है कोई। तुम व्याह का इन्तजाम करो।

—वाह, ऐसा भी होता है। टिप्पणी देखो, खुद जाकर लडकी को देख लो—उसके बाद बातचीत, लेन-देन

—नही, ऐसे मे यह सब कुछ न होगा। चिट्ठी के साथ उसने वह भेजा है, मैं फाडे देता हूँ उसे। शायद उसीसे अडचन आये। और लेन-देन क्या ? उन्होने लिखा क्या है, जानती हो ? लिखा है, आपके परिवार की उपाधि महाशय है। ऐसे वश के हैं आप। स्वय इलाके के एक मशहूर चिकित्सक हैं। आपके लडके डाक्टरी पढने की तैयारी कर रहे हैं। ऐसे मे मेरी यह कोशिश वामन के चाँद पकडने की चेष्टा है। लेकिन जो स्थिति पैदा हो गई है, इसमें अगर आप इनकार कर दें तो मुझे अपनी लडकी को गगा मे बहाना पड जायगा।—बस, इसके बाद दूसरी कोई बात ही नही हो सकती। वैशाख के गिने-चुने कै दिन रह गये हैं। इतनी जल्दी होना दुश्वार है और जेठ मे जेठे लडके का विवाह नही होता। पहले आसाढ को होगा व्याह।

ग्यारह

पुरानी बातो को बिसूर कर मनमे जितना ही विचित्र रस का सचार होने लगा, जीवन महाशय उतना ही अपनी दाढी मे जल्दी-जल्दी हाथ फेरने लगे। सुफेद दाढी, तम्बाकू के धुएँ से कुछ हिस्सा ताँबे के रग का हो गया है। चूँकि हिफाजत नही होती, इसलिए रुखडी हो गई है। फिर भी सहलाये बिना रहा नही जाता। सहलाते हुए हँसते, इस हँसी मे जवानी के दिनो के अपने को परिहास करते है। केवल अपने ही को क्यो, सभी लोगो को।

पता नही जवानी मे ऐसा क्या तो है, ढालवे की तरफ जैसी गति पानी की होती है, वैसी ही गति। जवानी का मन जब किसी की तरफ दौडता है, तब उसी वेग से दौडता है; उस समय शास्त्र की बात, अच्छे-बुरे का खयाल,

समाज की बाधा—हजारो बातो का कुछ नही होता, मन लगाम नही मानता। अगर शास्त्रो की ऐसी बातो को बालू की भीत कहें, तो मन को पानी का वेगवान सोता कहना चाहिए। या तो वह भीत ढहती है या पानी सूख जाता है।

इसीसे आज जीवन महाशय हँस रहे हैं। उस दिन जब वे किशोरी मरीज को देखकर लौट रहे थे तो उन्होने इसलिए भाग्य विधाता को धन्य-बाद दिया था कि वह बला उनके गले नही पडी। मन्जरी की असली सूरत देखकर उस पर उनकी विरक्ति का भी अन्त न था। लेकिन जैसे ही जगत्-महाशय ने स्त्री से पहले आसाढ को व्याह की बात बताई, तरुण जीवन उस समय सब भूल बैठे थे। और भूल ही क्या गये, लगा उन्होने हाथ बढाकर चाँद को लगभग छू लिया। जो थोडी-सी दूरी रह गई है, वह आसाढ तक में पूरी हो जायगी।

जीवनदत्त के आशा-पुलकित मन के पात्र मे से छलक कर मानो आनन्द चारो ओर बिखर गया था। धरती का जितना भी हिस्सा उनकी आँखो मे आ सका, सब मानो आनन्दमय हो उठा था। सब कुछ मधु। मधुवाता ऋतायते।

उधर चिट्ठियाँ जा-आ रही थी। जगत् महाशय ने नवकृष्णसिंह को पत्र दिया था। दो ही चार दिन के बाद उसका उत्तर आया।

दूसरे पत्र मे नवकृष्ण ने लिखा—लज्जा और दु.ख से मेरी मजरी ने खाट पकड ली थी। आपकी चिट्ठी आने से उसके होठो पर हँसी की रेखा फूटी है। वह उठ बैठी है। अपनी माँ से उसने कहा है, मेरी शिव-पूजा बेकार नही हुई।

खुशी मे अपने को खो बैठे थे जीवनदत्त। लज्जा और दु ख से मजरी ने खाट पकडी थी और मुझसे व्याह होगा, यह सुनकर वह उठ बैठी है? उसके होठो पर हँसी आई है? खाट छोडकर मजरी के हँसकर उठ बैठने की बात से उनकी आँखो के सामने फूलो से खचाखच भरे गुरीच के पेड की तसवीर थिरक उठी।

उन्होने लपककर जाकर सिताब, सुरेन्द्र और नेपाल को वह चिट्ठी दिखाई थी। चुराकर वह चिट्ठी ले गये थे।

अपने यहाँ का सुरेन्द्र और नवग्राम का सिताब और नेपाल उनके दिली दोस्त थे। सुरेन्द्र और नेपाल ने तब तक शराब शुरू कर दी थी। उस समय इस इलाके पर कहावत-सी चल पडी थी कि यहाँ की माटी शराब पीती है। और सचमुच ही पीती थी शराब माटी। तेरह-चौदह की उम्र से ही शराब की लत लग जाती। तान्त्रिको का इलाका, सबके सब तान्त्रिक, खासकर ब्राह्मण लोग। दीक्षा हो जाने के बाद यह लत धर्म का अग बन जाती। मतलब कि खुले आम पीने की छूट मिल जाती। शराब नही पीता था एक सिताब। ब्राह्मण तो वह भी था, शाक्त, मगर वह दूर भागता था। जीवन भर वह पीतल के बर्त्तन में नारियल का पानी उँडेल कर तान्त्रिक-तर्पण करता आया।

सुरेन्द्र ठाकुरदास मिश्र का लडका। पटवारी का काम सीखा है उसने। चालाक है। उसने कहा—देखो, आज खिलाना-पिलाना पड़ेगा। शराब और मास। रुपये निकालो।

नेपाल बाप का दुलरुआ लडका। सब रजिस्ट्री आफिस का किरानी। बाप की आमदनी काफी थी। लोगो ने लटका बना दिया था,

है विनोद के लम्बी जेब,
रिजगारी भरने की टेव।

सच ही विनोद मुखर्जी घर लौटते तो दोनो जेबें रिजगारी से बुरी तरह भरी होती और दोनो हाथो उन्हें सम्हाले आते। नेपाल आदमी मजे का था, बक-बक करता, हा-हा करके हँसता, और पैर पटक कर चलता। सादे सुभाव और खुले दिल का आदमी। एक बार वह राघवपुर जा रहा था न्योता खाने। रास्ते मे अचानक याद आ गया, गले में जनेऊ नही है। कही गिर पडा है। रास्ते मे काली बाउरी से उसने पूछा—अच्छा बता तो कैला, किया क्या जाय! जनेऊ तू दे सकता है?—जीवन के यहाँ पहुँचता। महाशय के दवाखाने मे दाखिल हो जाता। मोदक के बदले मजे मे हर्रे खा लेता। स्वाद की भी खबर नही होती उसे और उसीसे नशा भी आ जाता!

नेपाल ने सुरेन्द्र की बात का जवाब दिया था—जरूर खिला दूँगा, जरूर।

और उस दिन खिलाने की वारी नेपाल ही की रही। तीन रुपये की चपत पडी। पूरी, मास, मिठाई, शराब। रात के दो वजे तक गाने-वजाने का दौर चलता रहा। तवले पर सगत किया था सुरेन्द्र ने, नेपाल और जीवन ने गीत गाया। सुनने वाला था सिताव।

चण्डीदास और विद्यापति की पदावली। तीनो जने मिलकर पूर्वराग के सारे पद गा गये। गर्दन हिला-हिलाकर सिताव वाहवाही देता रहा।

भूल हो रही है। बूढे जीवन महाशय ने अव, इतनी देर के वाद लम्बी साँस छोडी। उस दिन खुद उन्होंने चम्पा और गुरीच के फूलों की माला गूँथी थी, चारो मित्रो ने पहनी थी माला।

नेपाल और सुरेन्द्र ने वडी जिद की। हाथ जोड़े, पाँवो पडा—थोड़ी-सी पी ले। इतनी अच्छी खवर मिली है आज पी ले थोड़ी-सी। जरा-सी पी! इत्तो-सी।

मगर जीवन ने अपना धर्म नहीं गँवाया।

महाशय वश वैष्णव सत्र का उपासक था। सो जीवन ने नही पी। उन्होंने कहा, माफ करो भाई, वावूजी को तो जानते ही हो तुम। फिर मंजरी के घर वाले भी हमारी तरह वैष्णव हैं।

उधर घर में विराट समारोह की तैयारी चल रही थी। जगवन्धु महाशय के इकलौते वेटे की शादी। ब्राह्मण भोजन, स्वजाति-वधु भोजन, गाँव के आपुस-वन्धुओं का भोजन—यहाँ तक कि आस-पास के मुसलमानों के खान-पान का भी प्रवन्ध। आयोजन में कोई कोर-कसर नही रख रहे थे। वाजे-गाजे, आतिशवाजी—दो दिन नाटक कराने की भी वात चल रही थी। सुरेन्द्र, सिताव और नेपाल से लेकर ठाकुरदास मिश्र जैसे मातवर आदमी भी इस पर अड़े थे कि नाटक के विना भी कही सोहता है! फीका लगेगा।

महाशय ने कहा था, आसाढ का महीना होगा। वारिश आई तो सारा गुड़ गोवर। शामियाने से पानी नहीं वच सकेगा। उसमें जो खर्च पडेगा। वेहतर है कि उस रकम से गाँव के काली-मन्दिर का वरामदा पक्का कर दिया जाय, फर्श वना दिया जाय और उसका संस्कार किया जाय।

प्रतीक्षा की अवधि जितनी मीठी होती है, उतनी ही होती है उद्वेग-

मयी। उद्वेग मे दिन महीना जैसा लगता है, महीना हो जाता है वरस। फिर भी दिन निकल गये। आसाढ की ग्यारह तारीख को विवाह था। आसाढस्य प्रथम दिवसे का आगमन हुआ। आसमान में मेघ आये। ये मेघ विश्वविदित पुस्कर वश के मेघ नही थे। ये विजली छिपाए रखने वाले, खल सुभाव के अज्ञातनामा मेघ थे कोई। उससे अचानक गाज गिर गई।

मजरी चल वसी।

दोपहर मे खत लेकर वहाँ से आदमी आया। उसमे लिखा था, मेरी कन्या मजरी रोग से परसो चल वसी।

एक पल मे सुख के सारे सपने धूल मे मिल गये। उस युग के नौजवान थे जीवनदत्त। उस युग मे किसी की पत्नी गुजर जाती, तो छाती फटकर चौचीर होने के वावजूद मुँह से आर्त्तनाद नही निकलता था। यह तो होने वाली पत्नी की वात थी। जीवन रोये नही। दवाखाने के ऊपर वाले कमरे मे चुपचाप वैठे थे। अचानक ठाकुरदास मिश्र की चीख-पुकार से वे चौक उठे थे।

वे चीख रहे थे—मै ठाकुरदास मिसिर हूँ—मेरी आँखो मे धूल झोकने की कोशिश! लोग डाल-डाल तो मै पत्ता-पत्ता। पटवारीगिरी से गुजारा करता हूँ। इधर इस खबर से हलचल-सी मच गई और उसी सुयोग मे वह कम्वख्त चुपके से उतर पडा रास्ते पर। आखिर मतलव क्या है उसका? पूछा, कहाँ जा रहे हो? वोला—जरा मैदान जा रहा हूँ। पहले तो छाती धड़क उठी। उधर हैजे का प्रकोप चल रहा है। कही यह कम्वख्त भी तो वही तोहफा नही ले आया? वह जल्दी-जल्दी आगे वढ गया। गया तो गया—सीधे उसी राह, जिससे होकर आया था। पास में जो तालाव पडा, झाडियाँ मिली, सवको छोडकर आगे वढ गया। मेरी निगाह पडी, अपने छाते को वह वगल मे दवा रहा है। झट मै चौकन्ना हो गया, हो न हो, यह भाग रहा है। मै भी गली मे वैहार के पास जा पहुँचा। देखा, उसने दौडना शुरू कर दिया है। यही शका थी मुझे। मगर भागकर जायगा कहाँ। हल छोडकर खेतो से किसान लौट रहे थे। मैने आवाज लगाई—पकडो उसे, पकड लो।

—सुलेमान, करीम, सन्तन—तीन आदमियो ने उसको पकड लिया।

मैंने कहा, टाँगकर ले आओ कम्बख्त को। ले आये। सुलेमान के हाथ से पैना लेकर जमाया मैंने कसकर—बता, सच-सच बता कि बात क्या है। सच बता, वरना हँसिये से जीभ काट लूंगा। फिर क्या था, सब उगल दिया।

बीच में जगत्‌बन्धु महाशय की गम्भीर वाणी गूंज उठी थी—ठाकुरदास उसे छोड दो। उस गरीब का कसूर भी क्या? वह कर भी क्या सकता है? उसे उन लोगो ने भेजा है, आ गया। दूत को नही मारना चाहिए। वह दूत है। जो कुछ बुराई नवकृष्ण ने की है, उसका प्रायश्चित्त वह कैसे करेगा?

ठाकुरदास बोले—यह सारा दोष तुम्हारा है। एक चिट्ठी पर तुमने व्याह पक्का कर लिया। न खुद गए, न उसे आने को लिखा।

महाशय ने अपने पिता की बातों को दुहराया—धोका मैंने नही दिया है भाई, धोका दिया है नवकृष्ण ने। इसमें मेरा कौन-सा दोष है बताओ।

जीवन ऊपर से नीचे उतर आये थे।

हैजे में मजरी के मरने की खबर गलत थी। उनत्तीस जेठ को भूपी बोस से उसकी शादी हो गई थी।

जीवन को ऐसा लगा था—होली के दिन मंजरी उसके मुंह पर कोलतार पोतने आई थी, उस दिन तो वह कारगर नही हो सकी थी, आज वह कोलतार उसने बेशक पोत दिया। और दूर खडी वह वही खिल्-खिल् हँस रही है।

भूपी हँसकर कह रहा है—बनैला सूअर!

बेटे के मुंह की तरफ देखकर जगत् महाशय ने कहा था, बेटे, ईश्वर तुम पर दयालु हैं। उन्होंने तुम्हें जीवन भर के धोके से बचा लिया है। उस लड़की से जुडकर तुम हर्गिज सुखी नही होते। न केवल धोका होता बल्कि जिन्दगी भर वह तुम्हें अशान्ति की आग से जलाती रहती। फिर बात यह भी है, जो जिसके भाग्य में है। यह तो मेरी-तुम्हारी इच्छा से नही होता। शर्मिंदे न होओ, दु:ख मत मानो। अपने मन को शान्त करो।

जीवन को अन्त के शब्द रुचे न थे। वह सिर झुकाकर वहाँ से चल दिया था।

महाशय ने कहा था—सुनो, कहीं जाना मत। तुमसे जरूरी बात करनी है। सुरेन्द्र, तुमसे भी। जाओ बगल के कमरे में मेरा इन्तजार करो।

जीवन ने बगल के कमरे मे बैठे-बैठे सारा किस्सा सुना। ठाकुरदास धीमे बोलना जानते ही न थे और न उन्हे दूसरो से धीमे सुनना पसन्द था। जगत महाशय के अनुरोध से उन्होने दूत को रिहाई तो दे दी, पर उसे धमकी बहुत दी। उससे सवाल-जवाब मे जो कुछ जाहिर हुआ वह यो है

हकीकत मे यह धोका नवकृष्ण ने नही दिया।

धोका दिया था मजरी, बकिम और उनकी माँ ने। जीवन के घूंसे से भूपी बेहोश हो गया था। होश मे आते ही उसने आसमान सिर पर उठा लिया। मैं खून करूँगा, उस बनैले सूअर को मैं मार डालूँगा। उसके बाद ही उसकी निगाह मंजरी आदि पर पड़ी। उसका सारा गुस्सा उन्ही लोगो पर फट पड़ा। उसने बकिम को ढकेलकर अलग कर दिया और मजरी के सामने हाथ हिलाकर अजीब ढग से मुँह बनाकर बोला था—यह सारी जालसाजी तुम्ही लोगो की है! तुम्ही लोगो की। भाई, बहन माँ—सबने मिलकर मुझे भगाने का षडयन्त्र रचा था। रुपये के लोभ मे उस सूअर से, उस नीच के बच्चे से प्रेम करने में शर्म नही आती। छि छि.! उसके बाद राह-बाट में उसने उनकी निन्दा करनी शुरू कर दी थी। कुछ दिनो से उसे यह आशका होने लगी थी कि मजरी के घर के लोग जीवन को प्राश्रय देने लगे हैं। जीवन दोनो हाथो जिस कदर खर्च करने लगा था, उसी से उसे यह धारणा हो गई थी कि प्रश्रय पाकर ही जीवन आपे में नहीं है। वह इसका सबूत दे सकता है। ऐसा न होता तो दादा-पोती के नाते उनके हँसी-मजाक की सीमा पार न कर जाती। नहीं तो मजरी कीमती इत्र का उपहार उससे न लेती—आज उसे कोलतार पोतने नही जाती। उस दिन अपनी चूर नाक लिए उसने तमाम यह निन्दा फैलाई थी। अपने साथियो के साथ चारो ओर जीवन की तलाश मे उसने मानो सागर-मथन ही कर डाला था। जीवन नही मिला तो उसके मुद्गर को ही उसने कुल्हाडी से काटकर टुकड़े-टुकडे कर दिया।

नवकृष्णसिंह अथाह सागर मे गिर पडे थे। ओर-छोर न था। सारे बाजार में चर्चा की वही एक बात थी। मां ने मजरी से कहा—मर जा तू, मर जा !

मर तो नही सकी मजरी, मगर उसने खाट पकड ली।

वकिम ने सनक कर कहा था—मै भी वकिम हूं, देख लूंगा।

बाप ने उसके गाल पर एक चपत जड दी—हरामजादे, इन सारे अनर्थो की जड तू है। तू ही दोनो को यहाँ ले आया था।

वकिम उससे भी ठडा न पडा, हुकार कर उठा—मैं उसका खून कर दूंगा।

नवकृष्ण ने तिरछी निगाहो उसे देखते हुए पूछा—किसका खून करेगा तू ? किसका ?

वकिम इसका जवाब न दे सका।

उधर भूपी बोस रोज एक नया शिगूफा छोडने लगा। बेतरह गुस्सा था उसे। हार पाकर नवकृष्ण ने जगवन्धु महाशय को पत्र लिखा। उत्तर आया, तो खुश हो गए। मजरी भी उठ बैठी। भूपी बोस ने उसके बारे मे जो अफवाहे फैलाई , उनसे उसे बेशक दुःख हुआ था। बिछावन पर पडी-पडी रोई भी थी वह। चोट लगी थी। तमाम कादी में उसकी निन्दा जो फैल गई थी ! जगत् महाशय के खत से वह सब कुछ धुल गया। नवकृष्ण का झुका सर उठा। वह सबको वह पत्र दिखाते फिरे। उन्होने लिखा था—लक्ष्मी को सम्मान के साथ अपने घर लाऊँगा, इसमे और कहना क्या है ?—मजरी भी उठ बैठी थी। उधर पिंजडे मे बाघ की तरह भूपी बोस गर्जन करने लगा। और कह क्या सकता था वह ? फिर भी नवकृष्ण कादी से अपने घर चले गये, वहाँ से व्याह करने की उन्हे हिम्मत न पडी। गरमी की छुट्टियो के कुछ ही दिन बाद व्याह की तिथि पडती थी। छुट्टी के लिए स्कूल मे दरखास्त भेज दी। वकिम दरखास्त ले गया। वहाँ क्या जो हुआ, कोई नही जानता। इतना ही कहा जा सकता है कि भूपो से स्नेह का जो धागा टूट गया था, वह और भी मजबूत हो गया। लौटकर उसीने सारा किया-कराया चौपट कर दिया।

उस आदमी ने बताया—उन्हें यह पता था कि लडका डाक्टर होगा।

लेकिन जगत् महाशय ने अपने खत मे लिखा था कि लडका डाक्टरी नही, कविराजी करेगा। मुझी से वह कविराजी सीख रहा है। सुनना था कि माँ का मुँह टेढा हो गया, लडकी का चेहरा भारी-सा हो उठा।

नवकृष्ण ने दवाने की कोशिश की, इससे क्या होता है ? मजरी की माँ ने कहा—कविराज ? छि छि । आज कविराज को कौन-सी पूछ रह गई है और उसके आमदनी भी क्या होती है ? उन्हें लिख भेजो कि लड़के को डाक्टरी पढना होगा।

इस पर नवकृष्ण विगड उठे। लडका उनका है, वे अगर अपने लडके को डाक्टरी न पढाएँ ? यह वोझा अपना है कि उनका ?

शायद मजरी छिपकर रोई थी। उसका रोना उसकी माँ से छिपा न था। वह वोली थी—न:, यह न होने का। एक तो राक्षस जैसी शकल है लडके की। और उस पर कही कविराज हुआ तो नगा वदन रहेगा। वहुत हुआ तो कुरता-चादर—न वावा—।

नवकृष्ण ने धमकी दी थी खवरदार, अगर यह शादी टूटी तो मै कहे देता हूँ, तुम्हारी लडकी को क्वाँरी रहना पडेगा। भूपी वोस विपधर का वच्चा है, उसके जहर से तुम्हारी विटिया की जिन्दगी नीली हो गई है। यह तो जगत् महाशय ही हैं कि उसे अपना रहे हैं। कविराज हैं, इसलिए इसे टालो मत।

मजरी की माँ जवाव नही दे पाई थी, परन्तु वुद-वुदाती रही थी वह।

इधर मामला यहाँ पहुँचा था और उधर से भूपी से साँठ-गाँठ मिलाकर आया वकिम। दो दिन तक घर मे खूब झगडा चलता रहा। तीसरे दिन की रात नवकृष्ण घर मे नीद मे वेखवर पडे रहे और वकिम के साथ उसकी माँ और मजरी किराये की वैलगाडी पर कादी जा पहुँचे। दूसरे दिन, २६ वैशाख को, शादी का दिन था।

नवकृष्णसिह दौडे-दौडे कादी पहुँचे, मगर कुछ करते न वना।

उस समय मजरी भूपी वोस से गाँठ जोडकर उसके पुराने मकान मे पहुँच चुकी थी।

भूपति के वाएँ मजरी को देख आनन्द के आँसू वहाती हुई मजरी की माँ कह रही थी, अहा, कैसे फव रहे हैं दोनो, मानो मदन-मंजरी हो।

वह भूपी के घर गई, उसके सगे-सम्बन्धियो से नातेदार के नाते हँसी-मजाक कर आई, दुमजिले की छत पर बैठकर खाया-पिया।

ठाकुरदास ने कहा था, चिटिंग केस कर दो, करना ही पडेगा।

जगबन्धु बोले—मुकदमे के पहले एक अच्छी-सी लडकी देखो। जो ग्यारह तारीख तै है, उसी दिन शादी होगी। अच्छे कुल की कोई सुन्दरी लडकी ढूंढो। पहले शादी हो ले, मुकदमा उसके बाद। हँसी-खुशी, खाना-पीना हो ले, फिर प्रसन्न चित्त से अदालत मे हाजिर होकर कहेगे—उन्होने हमे ठगना चाहा था, लेकिन हम ठगाए नही। मौका निकालकर मुकदमे के लिए तैयारी कर रक्खो।

और महाशय खिलखिला कर हँस पडे थे।

सब अवाक् होकर उनके चेहरे की तरफ ताक रहे थे। इस अपमान के बाद भी महाशय इस तरह हँस रहे है!

जगत् महाशय एक ही जिद पर अडे थे—लडकी तलाशो। ग्यारह तारीख को ही शादी होगी। एक दिन भी इधर-उधर नही। सुरेन्द्र, तुम और सिताव मेरे साथ लडकी देखने चलो। तुम्हे पसन्द आये तो गर्दन हिला देना। उसके बाद मे हामी भरूँगा। तलाशो, कहाँ, किस गरीब परिवार में खूबसूरत लडकी है। हाँ, खानदान अच्छा होना चाहिए।

सिताव, सुरेन्द्र और नेपाल के उत्साह की सीमा न रही। वे लडकी की खोज मे जी-जान से जुट गये। जैसे भी हो, पता लगाना ही पडेगा। भोले-भाले सिताव ने कहा, यह तो राजकुमार, मत्री के बेटे, सौदागर के बेटे और नगर-रक्षक के बेटे की कहानी हो गई—सब राजकुमारी की खोज मे निकल पडे! लेकिन भैया जीवन, तू जरा हँस तो दे।

सिताव ने अपने मामा को पत्र लिखा था—अगर किसी रूपवती सुन्दरी कायस्थ कन्या का पता हो, तो खबर दे। दहेज नही देना पडेगा। पात्र के पिता हैं यहाँ के नामी कविराज जगत् महाशय। काफी आमदनी है। जमीन-जगह है। तालाब है। जमीदारी है। लडका खुद भी कविराजी सीख रहा है।

और सुरेन्द्र तो सचमुच ही सत्तू बाँधकर इसके पीछे पड गया। उसने जगत् महाशय से कुछ रुपये माँग लिये और बोला—मै जरा शहर मे ढूंढ

देखूं। ऐसे वकील और मुख्तारो की कमी नही है, जिनकी ज्यादा नही चलती है। उनमें से कायस्थ भी बहुत-से हैं। ऐसो के घर वयस्क लडकियाँ मिल सकती हैं।

जगत् महाशय ने सुरेन्द्र को उसीका जिम्मा दिया।

नेपाल शुरू से ही अधपगला-सा था। लडकी ढूंढने का उसका तरीका अजीव था। उसका वाप सवरजिस्ट्री आफिस में काम करता था। नेपाल उसीके दलाल का काम करता था। रजिस्ट्री पहले हो, इसके लिए दस्तावेज दाखिल करता था, कही लिखने मे काट-छाँट होती तो उसकी कैफियत देता, शिनाख्त करने वाला न मिलता तो आप वन जाता। यानी यह कह देता कि इस आदमी ने अपना नाम-गाम जो वताया है, वह सही है। मैं नेपालचन्द्र मुखोपाध्याय वल्द श्री विनोदलाल मुखोपाध्याय, घर नवग्राम—मैं इस व्यक्ति को जानता-पहचानता हूँ।—और नीचे अपनी सही मार देता। दो आना लेता मिहनताना। दफ्तर के वाहर वरगद के नीचे वैठा रहता। जो मिलता उसी से पूछता, अच्छा चटर्जी वावू, आपके जानते कही कोई कायस्थ पात्री है?

—सुनिये क्या नाम है आपका? किसी कायस्थ पात्री का पता दे सकते हैं आप?

—शेखजी, घर कहाँ है आपका? आपके आस-पास कायस्थ लोग रहते हैं? किसी अच्छे कायस्थ परिवार मे आपके जानते कोई सुन्दर लडकी है? वतायेंगे मुझे?

राह-वाट में जो मिल जाता, उसी से ऐसा सवाल करता नेपाल। कोई कायस्थ पात्री है? एक दिन उसने अपनी जमीन के वटाईदार नवीन वाग्दी से कहा—नवीन, जरा तू तो पता कर। कायस्थ घर की कोई वडी-सी लडकी।

नवीन कामर लेकर गगाजल भरने के लिये कटवा जा रहा था। नेपाल वोला—पाव-पयादे इतनी दूर जाना है, खोज करना तो जरा।

* * *

आज जो जीवन महाशय है, उस समय वे महज जीवन थे, किसी ने वहुत कहा, तो जीवनदत्त। उस समय जीवन को यह आघात जोरो से

लगा था। गनीमत था कि वे मायूस न हुए बल्कि ब्याह के लिए क्रोध और आक्रोश से ज्यादा ही उत्साहित हो उठे। लोगों को उनका वह उत्साह कैसा-कैसा तो लगा था। उस दिन तरुण जीवन मन के क्षोभ और उल्लास से उन्मत्त हो उठा था।

आज बूढे जीवन महाशय हँसे। लम्बे जीवन की अभिज्ञता की पूँजी लेकर एक रसज्ञ द्रष्टा की तरह वे अपने तरुण जीवन की ओर देख रहे हैं।

साँप के जहर से जर्जर आदमी की जीभ को नीम भी शायद मीठा लगता है और मीठा लगता है कडवा।

न।

भूल हुई। बूढे जीवन महाशय ने दो-तीन बार गर्दन हिलाई—न-न।

मजरी ने उनसे जो विश्वासघातकता की, उससे मजरी के प्रति उनके प्रेम का क्या सम्बन्ध है? प्रेम से साँप के जहर की तुलना हो सकती है कभी? यह तो उन्होने खुद विष की नली मुँह से लगाकर उसकी आखिरी बूंद तक का पान किया था।

क्षोभ और चिढ से तरुण जीवनदत्त ने उस दिन दो प्रतिज्ञाएँ की थी।

एक तो कि वडी खूबसूरत स्त्री लाएँगे और जो सबसे बढकर सुख है, वही सुख उठाएँगे। पत्नी को वैसा ही प्यार करेंगे, जैसा राजा अज इन्दुमती को करते थे।

दूसरी प्रतिज्ञा यह की कि डाक्टर जरूर बनूँगा। स्कूल-कालेज में पढने की गुंजाइश न रही, तो क्या हुआ, घर बैठकर डाक्टरी पढूँगा। इसका एक जलता हुआ उदाहरण तो इनकी आँखों के आगे ही था।

इस इलाके के पहले मशहूर डाक्टर थे—रगलाल मुखर्जी। उस समय नये सूरज की तरह उनका उदय हो रहा था।

गजब के आदमी, गजब की उनकी प्रतिभा और बड़ी रोमाचक थी उनकी साधना। इलाज भी वैसा ही। गोरा रंग; गठा वदन, तीखी निगाह। सौ आदमी की भीड में भी देखते ही डाक्टर रंगलाल को पहचाना जा सकता था। वे ऐसे ही लोगो में से थे, जो चेहरे में ही प्रतिभा का स्वाक्षर लिये आते हैं। ऐसे लोग दुस्साहसी होते ही हैं। कम बोलते थे, लेकिन उनके वे थोड़े ही शब्द रूढ तो नही कहेंगे, दृढ होते थे और लोगों को रूढ-

से लगते। जन्म हुआ था हुगली जिले के एक पुराने ब्राह्मण परिवार में। वही स्कूल मे पढा, कालेज से एफ ए पास किया। बाप से कुछ मनमुटाव हुआ और घर से निकल पडे। जिन दिनो हुगली मे पढते थे, उनपर वहाँ के मिशनरियो का प्रभाव पडा था। वे उनके यहाँ जाते थे, उनके साथ खाते-पीते थे। इसी बात को लेकर बाप से अनबन हुई थी।

उन्होने पिता के मुँह पर ही सुना दिया था कि मै जात-पाँत नही मानता। धर्म भी नही मानता। लिहाजा उन लोगो के यहाँ जाना या उनके साथ खाना मै दोष नही गिनता। इस जिले में आये। पहले एक पाठशाला मे बने गुरु जी। गुरु जी से एक स्कूल मे मास्टर हुए। एक राज स्कूल मे जगह थी। खबर पाकर उन्होने दरखास्त दी और बहाल हो गये। यही रहते-रहते उनका ध्यान चिकित्सा-विद्या की ओर गया। राजा के अस्पताल के डाक्टर से उनकी मिताई हो गई थी। उनके पास बराबर जाया करते थे। अस्पताल मे घूम-घूम कर रोगियो को देखा करते थे। उनसे डाक्टरी की किताबे ले जाकर पढते। रात-रात भर इसी की चर्चा करते उनसे। चर्चा से तर्क पर जा उतरते और तर्क लडाई मे बदल जाता।

एक दिन जाने दोनो में क्या लडाई हुई, न तो इसकी चर्चा जीवन मे कभी रगलाल ने की, न डाक्टर ने। मगर दोनो दोस्त जुदा हो गये, नतीजा यही हुआ। कई दिनो के बाद ही रगलाल ने मास्टरी छोड दी और किताबों की गाडी लेकर इस इलाके में आ पहुँचे। यहाँ से दो मील दूर एक लाल-माटी के गाँव मे, जहाँ ज्यादातर मुसलमान रहते थे, वे किराये के एक घर में रहने लगे। बाद में मयूराक्षी के किनारे अपना बगला बनवा कर रहे। सामने दूर तक फैली मयूराक्षी—अपने बरामदे पर बैठकर उन्होने शुरू कर दी अपनी साधना। पिशाच साधक की तरह कभी-कभी रात मे निकलते। कन्धे पर फावडा और साथ मे एक ठेला ले जाते। कब्रगाह मे जाते। नई कब्र को खोद डालते। उसे फिर से मेहनत करके उसी तरह भर देते। और लाश को ठेले पर उठा लाते। उसके बाद दो-चार दिन बाहर उनके दर्शन नही होते। बँगले के पीछे घिरे हुए अहाते मे उन्होने काँच वाला एक कमरा बनवाया था। उसमें घुसने की किसी को इजाजत नही थी। वहाँ किताबो के सहारे लाश को चीरकर शरीर-विज्ञान सीखते थे। कुछ ही रोजो

के बाद दूसरा साधक जुट गया मन्ना हाडी। वह मयूराक्षी में नाव चलाता था। एक बात और थी कि वह श्मशान-बन्धु था—बडा ही शराबी। इन सबसे बडा परिचय उसका यह था कि लोग उसे राक्षस कहते थे। उसकी भूख कभी नही बुझती थी। एकबार का जिक्र है, उसने एक हाँडी भात खाया। श्मशान पहुँचा। थोडी ही दूर पर एक बकरे को देख उसकी भूख फिर जग गई। उसने बकरे की गर्दन उमेठ दी और चिता की आग मे उसे पकाकर चट कर गया। डाक्टर रगलाल का भक्त यही मन्ना था। दो साल बाद वह उनका रसोईया बना। उसी के हाथ की रसोई रगलाल खाते। लाश जुटाने मे वही उनकी मदद करता। जो लाश मयूराक्षी नदी मे बहती जाती, उसे उठा लाता। बहुत बार श्मशान से पडी हुई लाश उठाकर ला देता था। इस तरह पाँच साल की साधना के बाद रगलाल ने एक दिन घोषणा की कि मै डाक्टर हूँ। जिस रोगी को यहाँ कोई चगा नही कर सकता, उसे मेरे पास लाओ। मै अच्छा कर दूँगा।

कुछ ही दिनो मे उन्होने अपनी घोषणा को सच साबित कर दिया। लोग उनकी योग्यता पर दग रह गये। सब कहने लगे, धन्वन्तरी हैं। रोगी के यहाँ जाने के लिए डाक्टर ने पालकी खरीदी।

मन्ना बोला—डाक्टर बाबू, एक घोडा खरीद लीजिये। कहाँ घोडा और कहाँ आदमी की चाल!

रगलाल बोले—अबे तू क्या जानता है, आदमी के कन्धे और घोडे की पीठ की तुलना? आदमी के कन्धे पर चलने मे आराम कितना है!

—ऐसा?

—यह तेरी समझ मे नही आने की! घोडे से हाथ-पैर तुडवाऊँ आखिर?

जीवन दत्त ने उस रोज आकाश-कुसुम कल्पना नही की थी। उनका आदर्श वास्तव में जीवत था। उनकी इच्छा थी कि काफी इज्जत कमाकर अपनी स्त्री को जेवरो से मढकर एक दिन वे कादी ले जायेगे। अपने चलेंगे सफेद घोडे पर, स्त्री रहेगी किमखाब की पालकी पर।

मुरशिदाबाद जाने के बहाने कादी मे भूपी बोस के टूटे-फूटे मकान के सामने घोडा रोककर कहेगे—रात भर के लिए ठहरने की इजाजत मिल

जायगी क्या ?

जानकर कुछ रात होने पर उसके दरवाजे पहुँचेंगे। स्त्री को मजरी के पास अन्दर भेज देंगे।

मजरी से वह कहेगी—रात भर के लिए हमे यहाँ ठहरने की जगह देगी ? आप तो हमारी अपनी है। सखी की वहू की सहेली के वहिन-वेटे की वहू की वहिन-वेटी के दूल्हे का नाता होने पर भी नाता तो आखिर है !

इसके वाद होना है सो होगा।

लेकिन व्याह हो जाने के वाद ये सारे खयाल ही हवा हो गये। जीवन-दत्त अवाक रह गये थे, ऐसा क्यो हुआ ?

वारह

उस दिन तो उन्हे अचरज लगा था, आज लेकिन नही लगता।

विवाह के पहले जीवन का जो उच्छ्वास शुक्ल चौदस के समन्दर की तरह उमड आया था, विवाह के ही दिन वह उच्छ्वास प्रतिपदा-द्वितीया के भाटा पडे सागर के समान उदास हो उठा। जिदगी मे पूनो का दिन कभी आया ही नही जैसे। लेकिन क्या अमावस आई ? नही, आजतक वह भी नही आई कभी। इकलौते वेटे वनविहारी की मौत से भी नही आई।

शादी ग्यारह आसाढ को ही हुई। लडकियो की उस देश मे कमी नही।

लडकी इस देश मे दाय है और जो दाय है, वही दुर्वह वोझ है। वल-वान उस वोझ को ढो सकते है और कमजोर उसे उतारते हुए गिराकर जान मे जान पाते हैं। इस दुनिया मे ऐसे दुर्वलो की ही तो तादाद ज्यादा है।

दस लडकियो के रिश्ते आये। उनमें से छै को तो जगत् महाशय ने परिचय भर से ही टाल दिया। चार को उन्होने देखा और शहर के एक वूढे मुख्तार की माँ-विहीना भानजी को उन्होने पसन्द किया। दहेज तै

पाया एक हर्रे। लडकी का नाम था कृष्णभामिनी। अरक्षणीया हो उठी थी बेचारी लडकी। दो महीने बाद चौदह साल पूरा करके पन्द्रह में पाँव रखने जा रही थी। सुरेन्द्र इस लडकी की खबर ले आया था।

उत्सव समारोह में कोई कोर-कसर न था, न घर, न बाहर। कविराज के नाते प्रसिद्धि और रुपये-पैसे की दृष्टि से सामाजिक प्रतिष्ठा में उस समय जगत् महाशय को यो कहिये कि एक ही आकाश में चाँद-सूरज का साथ ही उदय ! एक तो इकलौता बेटा, तिस पर ऐसी विचित्र परिस्थिति मे उसका विवाह। कादी में मंजरी और भूपी का व्याह जितना ही चुपचाप हुआ था, उतना ही समारोह से हुआ यहाँ जीवन और कृष्णभामिनी का विवाह। शहनाई, ढोल-ढाक, यहाँ तक कि बैंड भी बजे। राढ के इलाके मे सबसे पहले बैण्ड वालो की जमात मुर्शिदाबाद में हुई, फिर कांदी में। नवग्राम से कादी का फासला दस कोस का था। यहाँ के बाजे की आवाज दस कोस यानी बीस मील की दूरी तै करके नये दम्पति की नीद में बाधा चाहे न दे, बजानेवालों के मारफत यह खबर पहुँचनी चाहिए थी। इतने उत्सव-समारोह के होते हुए भी जीवन जब दुलहिन के घर पहुँचे, तो म्लान और मायूस हो गये। कोहवर में वह थके-हारे-से सो गये। हाथ जोड़कर बोले—मुझे माफ करेंगी, मेरी तबीयत खराब है।

मगर औरतों ने छुट्टी नही दी। उन्हें गाना भी पडा और उन दिनों के रिवाज के मुताबिक कृष्णभामिनी को गोद में भी बिठाना पडा।

पक्का सोने का रग था कृष्णभामिनी का। अगर मुखश्री कोमल और सुन्दर होती तो क्या कहना !

पन्द्रह साल की उम्र में दुलहिन बनकर कृष्णभामिनी जिस दिन महाशय के घर पहुँची, उसी दिन उसका नाम रक्खा गया—अतर बहू। उसका रग देखकर लोगों की आँखें चौंधिया गई थी। बहू का नया नाम रखकर जीवन की फूफी ने कहा था—तुम्हारे स्वभाव के सौरभ से यह घर महमहा उठे !

सुहागरात भी एक उदासीनता में ही बीती। जीवन हँस रहे थे, दादी-भाभियो के मजाक में उसने हिस्सा भी लिया मगर सब वैसा ही निष्प्राण, जैसी कि कठपुतली। आज इस बुढापे में भी उन्हे याद आ रहा है कि बदला

चुकाने का वह आनन्द बुझे दिये-सा कैसा तो काला हो उठा था। एक गाढी वेदना उन्हे ढँक लेने की कोशिश कर रही थी।

उन्होने अपमान का बदला चुकाने के लिए व्याह किया था। किन्तु व्याह के बाद उन्होने समझा, अपमान का बदला नही लिया जा सका, केवल व्याह हुआ।

दुनिया में अपमान की ग्लानि जी को जलाने वाली होती है। वह जलन केवल बदला लेने के उल्लास से ही बुझा करती है, उसकी जो ज्वाला जी मे दहक उठती है, वह प्रतिपक्षी को जलाकर राख करके शान्त होती है। अगर ऐसा नही होता, तो वह आग तिल-तिलकर जलती हुई खुद ठण्डी पड जाती है, जो बडे लोग हैं, महत् है, उनकी बात जुदा है। वे अपमान की आग को क्षमा के पानी से बुझा देते है।

जीवन महाशय महत् नही है, खुद भी ऐसा कहते है। इसीलिए उनके मन की वह आग आज भी दहक रही है। बाहर से किसी को इसका अन्दाज नही होता। किसीको इसका अन्दाज लगने भी नही देते थे। एक ही इसे समझ सकती है—अतर बहू। वह इसे पहले ही दिन से जानती है।

जीवन की यह पीडा सारे ससार से छिपी थी, मगर नई बहू से छिपी न थी। इतना ही क्यो, उसने छूत की बीमारी की तरह बहू पर भी आक्रमण किया। सुहागरात को ही जीवनदत्त की पीडा बहू के मन पर चोट करके लौट आई।

सुहागरात की शेष घडियो मे जीवन ने बहू को अपनी छाती के पास खीचा था। वह रूखे-तीखे स्वरो मे कह उठी थी—आ, छोड दो मुझे।

—क्यो, क्या बात है ?

—बात क्या होगी, अच्छा नही लगता।

—अच्छा नही लगता ?

—नही। तुम्हारे पैरो पडती हूँ, छोड दो मुझे, छोड दो।

—हुआ क्या ?

—होगा क्या ? दया करके मुझसे विवाह किया है, मेरा उद्धार किया है। दासी होकर आई हूँ, दासी बनकर ही रहूँगी। काम करूँगी, दो मुट्ठी खाऊँगी। आदर पाने का मेरा हक नही है। छोड दो।

आज भी वही हाल है।

अतर बहू ज्वालामुखी हो रही है। आग उगलना शुरू हो जाय कही, तो रुकना नही जानती।

इसमे अतर बहू का कौन-सा कसूर है ? उसके कलेजे मे उन्ही के कलेजे के सस्पर्श से आग लगी है।

* * *

लेकिन इसीमे एक समृद्ध ससार विकसित हुआ था। जैसा कि अतर-बहू कहा करती है—कैसा नाम-यश था, दोनो हाथो कमाया, चार हाथो लुटाया। इज्जत-आबरू, धन-दौलत इसीको तो कहते हैं। आदमी इसके सिवा और चाहता क्या है ?

भरी-पूरी दुनिया—तीन लडकी, एक लडका। सुरमा-सुषमा-सरमा। लड़का वनविहारी। सबको माँ का ढग और बाप की तन्दुरुस्ती मिली थी।

प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा भी खूब मिली, वह प्रसिद्धि किशोर-जीवन की आकाक्षा के हिसाब से समुद्र के मुकाबले न भी हो तो एक सुदूर प्रसारी झील के मुकाबले मझोले आकार का सुन्दर-सलोना सरोवर तो उसे बेशक कहा जा सकता है। जिसमें पक्के का घाट हो, पानी मे मछलियाँ हो, नाम भी जिसका मालिक के इच्छानुरूप श्यामसर या श्यामसरोवर हो। पानी भी उसका निर्मल रहा था, उसमे नहाकर तपे ग्रामवासी तृप्त भी हुए थे। प्यासो ने उसका पानी पिया और मालिक को खुले दिल से दुआएँ दी। लेकिन वह सरोवर दिगन्त तक फैली हुई झील की तुलना मे कितना तुच्छ था, कितना नगण्य, यह तो उसका मालिक ही जानता है. जिसने वैसी ही एक झील बनाने की इच्छा की थी। जिसकी कल्पना ऐसी थी कि उस झील के घाटो पर जाने कहाँ-कहाँ की नावें और बजरे आकर लगेगे !

इस उमर में आकर जीवन के सारे ही मोह जाते रहे है। लाल, नील, हरे, बैगनी—सात रगो का इन्द्रधनुष उन्हे अब नही दीखता। आँखो के सामने आज महज दो ही रग रह गये हैं—सुफैद और काला। उजाला और अँधेरा। आज वे अचरज से सोचा करते हैं—उस समय इन्द्रधनुप के समान रंगों की विविध छटा वाली वैसी आकाक्षा कैसे जगी थी ?

मन मे इस प्रश्न के आते ही जीवनदत्त हँसे उठते। आप ही अपने से

पूछ बैठते—क्यो ? आखिर तुम्हारे मन मे वार-वार यह प्रश्न उठता क्यों है ? इस प्रश्न के आने की वात तो नही है।

दो रग—दिन और रात के उजले और काले रग को छोड़ वाकी सव रगो को तुमने अपने ही हाथो तो धो दिया है। सामर्थ्य हीनो के रंग विफलता से धुलते है , दु ख से वहने वाले आँसुओ से धुल जाते हैं। लेकिन तुमने तो उन्हे झूठ कहकर धो दिया है—अपने महागुरु जगत् महाशय के उपदेश को भूल क्यो जाते हो ? उन्ही उपदेशो मे तो तुमने अपने आपको डुवो दिया था उस दिन। आप ही अपनी भूल सुधारकर जीवन महाशय ने गर्दन हिलाई। वार-वार अपनी दाढी पर हाथ फेरा—ठीक है ! ठीक !

सहसा रोशनी की एक किरण आँखो से टकराई। रोशनी ? ओ, साँझ गुजर गई। रात हो आई। खयाल ही नही था। पुरानी वातो को विसूरने में वर्तमान की सुध ही नही रही उन्हे।

रोशनी अन्दर से आ रही थी—शायद इन्दिर या नन्दू रोशनी लिये आ रहा है। लेकिन नही तो। पैरो की ओर कपडे के घेरे से औरत जैसी लग रही है। अतर वहू आ रही है। जीवन महाशय सत्रस्त हो उठे। असमय मे उसका आना उनके लिये शका की वात है।

वही थी। अतर वहू ने रोशनी नीचे रख दी और जाकर उनके पास खडी हुई। लम्वा गठन, गोरा-चिट्टा रग—कपाल मे सिन्दूर का टीका आज भी लगाती हैं, माँग में झलमलाती रहती है सिन्दूर की रेखा। मौका मिलता तो कठोर वोलने वाली अतर वहू किसी राज्य का शासन कर सकती थी। मजाक मे जीवन महाशय ने यह वात वहुत वार कही है। अतर वहू ने जवाव में कहा है—एक ही आदमी को अपनी मुट्ठी मे नही कर सकी, तो राज्य का शासन ! जवाव देकर वह सदा ही एक अजीव हँसी हँसती है।

क्या वात है ? —गर्दन ऊपर करके जीवन महाशय ने पूछा। अतर वहू का चेहरा आज वडा मीठा लग रहा है। वर्षा से भीगी हुई धरती जैसा कोमल, ममता से भरा।

कुछ उत्कठा से अतर वहू ने पूछा—तुमने आज चाय नही पी ?

—भूल गया पीना।

भूल गये ! —अतर वहू हँसी।—आदमी चाय पीना भी भूल जाता है। नंदू ने जाकर बताया—तम्बाकू भी नही पिया है। उसने आवाज दी, तुमने कोई जवाब नही दिया ! तबियत ठीक है तो ? कि जी अच्छा नही है ? क्या हुआ है तुम्हे ?

अप्रतिभ-से होकर जीवन महाशय बोले—हुआ नही है कुछ। यो ही सोच रहा था। नवग्राम से रतन मास्टर के लडके को देख आया। रास्ते मे निशि ठकुराइन ने अपनी भतीजी को दिखाया। रतन मास्टर के लड़के की बीमारी बडी सख्त है, फिर भी कुछ कहा नही जा सकता। मगर वह लडकी, उसका·· ··

डाक्टर ने गर्दन हिलाई। फिर बोले—कल की बच्ची, मुश्किल से पद्रह साल की होगी—इसी उमर मे दो बच्चे हो चुके है। निशि ने बच्चे को दिखाया। बोली चाँद है।—मैंने समझा, लडका चाँद नही, यम है। अपनी माँ को खाने आया है। मन कैसा तो हो उठा।

यही तुम निशि से भी कह आये क्या ? —अतर वहू सिहर उठी।

—नही। लेकिन निशि भाँप लेगी। कह दिया है, पानी पीना रोकना पडेगा। उसके सिवा दूसरी दवा नही।······कौन ?

कोई आकर अतर वहू के पीछे खडा हुआ। ओ ·········तुम हो, इंदिर।

—हाँ। मै उसे चाय बनाने को कह आई थी। लो, पी लो। तुम भी खूब आदमी हो। चाय नशे की चीज है—उसके बिना भी तुम्हे कोई तकलीफ नही होती। तम्बाकू पीना तक भूल जाते हो !

इन्दिर ने चाय से भरा पत्थर का ग्लास उनकी ओर बढा दिया। अतर वहू बोली—मै खडी हूँ, पी लो, ग्लास लेकर तब जाऊँगी। इन्दिर के हाथ मे सनीचर बसता है। छै महीने के अन्दर तीन ग्लास तोड चुका। इन्दिर जा तो, अन्दर ताख पर इलायची की बुकनी रखी है, ले आ।

इन्दिर जब वहाँ से चला गया तो अतर वहू बोली—तुमने मुझसे छिपाया है। अस्पताल के डाक्टर की बातो से तुम्हे बडी चोट लगी है। नये जमाने का डाक्टर, नई उम्र—घमण्ड बहुत है। उसे खबर भी नही कि उसने किससे कहा और क्या कहा। मै जानती हूँ कि तुम्हारा निदान कभी

गलत नही होता। जब मोती की माँ गुजर जायेगी तो वह समझ जायगा। सुबह मैने तुम्हे कुछ खरी-खोटी सुना दी। यह मुँहजला शशि, जिसने यही नब्ज पकडना सीखा, कम्पाउडरी सीखी, वह भी कम्बख्त क्या कहता है कि हाथ-पाँव टूटने पर तो मौत की घोषणा की बात मैने नही सुनी, नही समझ सकता हूँ मै। पता नही, महाशय ऐसा क्यो बोले ? उसके मुँह से ऐसी बात सुनकर मेरा जी जल-भुन गया। मैने फौरन उससे कहा . शशि, तू किस मुँह ऐसी बात बोला ? शरम नही आई तुझे ? अगर यह कलयुग नही होता, तो तेरी जीभ गलकर गिर जाती।

जीवन महाशय हँसे। उन्होने कोई जवाब नही दिया। अतर बहू शशि पर बेतरह खफा हो उठी हैं।

अतर बहू ने जवाब का इन्तजार किया। जवाब नही मिला, सो बडी तीखी निगाह से पति की ओर ताका। लेकिन स्वामी का चेहरा उन्हे अच्छी तरह नही दीखा। सावन की घटाओ से घिरी रात। तीन तरफ काफी खुली जगह के बीच बरामदे मे, पुरानी लालटेन से जो रोशनी मिल रही थी, वह निहायत ही नाकाफी थी। फिर बुढापे की फीकी नजर ठहरी। उन्होने लालटेन की बत्ती उसका दी। झुककर स्वामी की तरफ देखा। नाराज होकर बोली—तुम हँस रहे हो ? तुम्हारा चमडा क्या गैडे का है ?—उनको हँसते देख अतर बहू नाराज हो गईं।

डाक्टर ने लेकिन थोडा और हँसकर ही कहा—और क्या करूँ, कहो ? रोऊँ ?

रोओगे ?—जलती आग मे घी के छीटे पडे—रोओगे ? तुम रोओगे ? ईश्वर ने तुम्हारी आँखो में आँसू तो दिये नही है। रोओगे कैसे ? जो आदमी अपने बेटे के मरने की घोषणा कर सकता है, मरते समय बाहर बैठा रह जाता है, कहता है कि देखूँ क्या उसे ? छै महीना पहले ही देख चुका हूँ मै

डाक्टर ने बाधा दी—रुको भी अतर बहू, रुक जाओ। निहोरा करता हूँ मै। रुक जाओ। मुझे जरा सोचने दो। रतन बाबू के लडके को देखकर लौटा हूँ, मुझे जरा सोचने-समझने दो।

प्रत्यचा टूटे धनुप की तरह छिटक पडी अतर बहू। बोली—मुझसे

अन्याय बन गया है। तुमसे बात करने के लिए आना ही मेरा अन्याय है। मेरा हक भी क्या है? दया करके तुम लोग मुझे लिवा आये थे। माँ-विहीना लडकी, मामा के टुकडो पर पल रही थी, दया करके बिना दहेज लिये उठा लाये थे—लाये थे कि बाँदी-नौकरानी-जैसी काम करेगी। उसके सिवा मेरा और कोई अधिकार तो है ही नही। मैंने यह अपराध किया है, हजार बार अपराध किया है। माफ करना।

वह उठकर अँधेरे मे चली गई।

यह रही अतर बहू! सदा से ऐसी ही! डाक्टर हँसे। लेकिन कोई अजीब-सी आवाज की बाधा पाकर वह हँसी आधे ही रास्ते में थम गई। साथ ही वह जगह गहरे अँधेरे मे ढक गई। अब की डाक्टर खिलखिलाकर हँस पडे। अतर बहू ने बत्ती उसकाई थी। वह शायद जरूरत से ज्यादा बढ गई थी। बातो के सिलसिले मे उस तरफ किसी ने ध्यान नही दिया। उसकी चिमनी तड् से टूट गई और बुझ गई लालटेन।

* * *

उनका वह खिलखिलाकर हँसना भी थम गया। मन की बिखरी हुई चिन्ताएँ आ जुडी। अतर बहू अभी कह गई कि विधाता ने तुम्हे आँखो मे आँसू देकर नही भेजा है। इस बात की याद आते ही अचानक उनकी हँसी थम गई। एक लम्बी उसाँस भरकर वे मन ही मन बोले—विधाता ने तो भेजा था अतर बहू, बहुत, अपरिमित, तुम अनुमान भी नही कर सकती—समुद्र के समान अथाह लोना जल इन दो आँखो की ओट में भरकर भगवान ने भेजा था। उसकी तुम्हे खबर ही नही है। लेकिन इस चिकित्सा-शास्त्र के ज्ञानयोग ने अगस्त्य मुनि की तरह उस समुद्र को आचमन करके समाप्त कर दिया। अब यह अन्तर सूखे समुद्र की सतह जैसा सूखा, बालू से भरा है। उसमें बहुत-से मूँगे, बहुत-से मणि-माणिक शायद हो, मगर उसमे आँखो के पानी का खारापन है। तुमने तो यह कभी भी नही समझा, न कभी समझने की कोशिश की! मजरी और तुम, तुम दोनो ही तो मृत्यु हो, तुमने अमृत तो कभी चाहा नही। अगर अमृत चाहा होता, तो पास आती, समझती। उन्होने फिर एक लम्बी उसाँस भरी।

आखिर मजरी और अतर बहू को ही अकेले क्यो यह दोष दे रहा हूँ

मै ?—खुद मै ? जीवन में अमृत को पाने का मैने ही क्या अनुभव किया है कभी ? इस बात को और कोई नही जानता। दो ही जने इसे जानते थे। एक तो उनके पिता, उनके शिक्षा और दीक्षा-गुरु।

उनके असतोष की बात जगत् महाशय जानते थे। अमृत को न पा सकना ही अशात अतृप्ति है। मरते समय जगत् महाशय ने पास बुलाकर जीवन से यह बात कही थी। चिकित्सा-शास्त्र की जीवन को दीक्षा देने के बाद भी वे दस वर्षो तक जीवित रहे थे। उन्हे ज्ञानगगा कराई गई थी। गगा के तट पर उन्होने शरीर त्यागा था। माँ उनके पहले ही चल बसीं थी। उन्हे भी इसका थोडा-बहुत पता था। मगर उन्हे इस असतोष के कारण की जानकारी नही थी। उन्होने बिल्कुल वास्तव जगत् में इसका हेतु ढूंढा था। पिता की तरह गम्भीरता से उनके हृदय को टटोलने की चेष्टा नही की थी।

विवाह के बाद जीवन ने आयुर्वेद की शिक्षा में तन-मन लगा दिया। स्कूली जीवन में उनका चित्त जिस पढने-लिखने मे नही लगा, उसी पढाई-लिखाई मे वे डूब गये थे। जगत् महाशय ने कहा था—स्कूल मे पढाई की ढिलाई देख मैने सोचा था, जीवन की बुद्धि शायद मोटी है। किन्तु देखता हूँ, आयुर्वेद मे उसकी बुद्धि बडी प्रखर है। लेकिन—। कहते-कहते रुक गये थे वे। लडके की ओर देखकर दीर्घ निश्वास छोडकर कहा था—लेकिन इसके साथ-साथ सगीत सीखो। आनन्द मनाओ, गाओ। भगवान का नाम लिये बिना इस इलाज के पेशे को अपनाकर जियोगे कैसे ?

ठाकुरदास मिश्र उस समय मौजूद थे। उन्होने कहा था—अरे भई, यह तो उसके लहू मे है। वशगत विद्या की यह खासियत होती है। मेरे उस हरामजादे लडके का रवैया जानते हो ?

मतलब सुरेन्द्र से था। ठाकुरदास कहते ही रह गये—

हरामजादे ने शराब शुरू कर दी है। यह तो मालूम ही है। पढना-लिखना भी कबका छोड बैठा है। सोचा था, इस कम्बख्त को जमीदारी-सिरिश्ते में नही लगाऊँगा। पूजा-अर्चा के मन्तर सिखाकर देवग्राम के विश्वेश्वरी-मन्दिर का पुजारी बना दूँगा। वहाँ के पुजारी के बाल-बच्चा नही है। वही सेवायत है। पन्द्रह बीघा जमीन है। उनकी पूजा किये बिना,

पूजा का फूल लिये विना खेती होने की नही। आमदनी भी खूब है। मगर किसी भी तरह राजी नही। कहता है, यह मन्तर मुझसे रटा नही जायगा। मगर इधर की सुनो—उस दिन वह दस साल पहले का एक जमा-खर्च लाकर मुझे दिखाते हुए बोला, यहाँ गलती रह गई है।—जरा मजा देखो! गलती का मुझे पता है—मेरी ही कलम की नोक से पोखरा गायब। दस साल गुजर गये, कोई पकड नही सका। जमींदार के यहाँ अब उसे कोई पकड भी नही सकता। मगर कम्बख्त की सूझ देखो। चुपचाप पुराने कागज पलटता रहा और बाप की गलती निकाल ली। मैंने तो उसके एक चपत जड दी। कहा, चुप रह बेटा।

पुत्र के गौरव मे ठाकुरदास जैसे उच्छ्वसित हो उठे थे, वैसा जगत् महाशय नही हुए थे। शायद हो कि ठाकुरदास को चोट लगे, इसलिए वे मुस्कुराकर रह गये थे, बाधा भी नही दी। सिर्फ मुस्कुराये थे। जगत्बन्धु थे ज्ञानयोगी। उसी बाप के बेटे और उन्ही के शिष्य होकर भी वे असली चीज को अपना न सके। पिता ने कहा था—आयुर्वेद मे उनकी बुद्धि पैनी है।

बुद्धि उनकी पैनी थी, रोग और उपसर्ग, यहाँ तक कि रोग और उपसर्ग के पीछे अन्धी-बहरी मौत अपने दो हिमशीतल हाथ बढाए जीवन को ले जाने के लिए तैयार खडी है या नही वे इसका भी अन्दाज लगा सकते थे। तुम आज नये डाक्टर हो, तुमने जीवन डाक्टर का मजाक उडाया है, उनका तिरस्कार किया है, करो। तुमने नई चिकित्सा-विज्ञान के अहकार से उनकी अवहेलना की है, करो। लेकिन उस समय कोई ऐसी हिम्मत नही कर सकता था।

पुरानी स्मृतियो को दुहराते हुए जीवन महाशय मानो बडे पुराने अजगर की तरह फूल उठे; एक जवान विषधर अपनी जवानी की तेजी और जहरीले दाँत के पैनेपन के घमण्ड में वार-पर-वार करता गया, बुढापे से उनके विष के दाँत टूट गये है, जडता से उनकी विराट् काया की गति मन्थर हो आई है, लिहाजा लाचार सब सहना पडा।

नारायण, नारायण! परमानन्द माधव!

जीवन महाशय ने स्पष्ट स्वर मे उच्चारण किया।

मरते समय गगा के तट पर जगत्बन्धु महाशय ने पूछा था—जीवन,

मुझसे कुछ पूछना हो तो कहो ?

जीवन महाशय अपने को और जब्त न रख सके, रुका हुआ आवेग आँसू की धारा मे राह बनाकर निकल आया था। वे कुछ कह नही सके।

जगत् महाशय ने कहा था—अरे, तुम रो रहे हो ? तुमने आयुर्वेद की दीक्षा ली है। जीवन और मौत का तथ्य तो तुम्हे मालूम है, फिर भी रो रहे हो ? छि ! मुझे दु ख मत दो, अगर तुम रोओगे तो मुझे यह समझकर जाना पडेगा कि मेरी शिक्षा सार्थक नही हुई। उसके सिवा इस मृत्यु से मुझे तो कोई दु ख नही है, कोई शिकायत नही, मैं परम शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ—फिर तुम्हारा रोना कैसा ?

जीवन महाशय की आँखो का पानी सूख गया था। जगत् महाशय ने कहा था—मैं जानता हूँ, तुम्हारे मन मे कहाँ गम्भीर अतृप्ति है। मगर यह रहना नही चाहिए। तुम्हारे जीवन की कोई भी दिशा अपूर्ण तो नही है !

जरा देर बाद फिर कहा था—फिर भी है। बेशक इस पर मनुष्य का कोई वश नही, यह मैं जानता हूँ। मगर बेटे, यह अतृप्ति रही, तो अमृत तो नही पाओगे। तुम परमानन्द माधव को अनुभव नही कर सकोगे। इतना जरूर है कि कामना की वस्तु मिले बिना अतृप्ति नही जाती। मगर यह कामना क्या है, इसीको क्या कोई जानता है ? मैं आशीर्वाद किये जाता हूँ, कामना की वस्तु पाकर तुम्हारी सारी अतृप्ति मिट जाय, तुम अमृत का स्वाद पा सको। दु ख मे थिर रह सको, दुनिया में मौत मे अमृत का अनुभव कर सको और आनन्द में, सुख मे रो सको। तृप्ति चाहे न पाओ, मगर बेटे, ज्ञानयोग में लीन रहना। आयुर्वेद मे डूब जाना। यह बडा ही कठिन और शुष्क पन्थ है। सो हो। ज्ञान दर-असल अगस्त्य मुनि है, चुल्लू मे समुद्र, दुःख का समुद्र पी जाता है। अपनी इच्छा से सृष्टि की भलाई के लिए वे दक्खिन चले गये।

इस ज्ञानयोग रूपी अगस्त्य के सोखे हुए समुद्र की तरह उनका जीवन केवल बालू से भरा रह गया है। लेकिन उसके एक-एक कण मे समुद्र के खारापन का स्वाद है। अतर बहू ने कभी उसे देखा भी नही, सिर्फ रेगिस्तान समझकर ही जलती उसाँसो से उन्हे और जलाती रही।

*　　　*　　　*

पिता के मरने के वाद ज्ञानयोग मे अपने को डुवा देने के लिए ही जीवनदत्त डाक्टरी पढने को उतावले हो उठे। उस समय अग्रेजी इलाज के जादू से देश चकित हो उठा था। डाक्टर रगलाल की पालकी ढोने वाले कहारो की हुकारियो से इलाके के रास्ते मुखरित थे, डाक्टर नवीन मुखर्जी के घोडे की टापो मे उडती हुई धूल से धूसर हो उठे थे रास्तो के दोनो किनारे। कविराजो के मन मे भी चेतना जगने लगी थी। जीवनदत्त को इस विज्ञान ने पहले से ही आकृष्ट किया था, वाप की मृत्यु के वाद उन्हे सुयोग मिला।

वूढे जीवन महाशय अँधेरे मे एक वार फिर हँसे। दाढी पर हाथ फेरा। हाय-हाय! ससार मे आदमी अपने आपको जितना छला करता है, ठगा करता है, उसके सौवे हिस्से का एक हिस्सा भी शायद दूसरे को नही ठग सकता।

वूढे ने वार-वार सिर हिलाया। नन्हे वच्चे की अपटु मिथ्या वोलने की चालाकी को पकड लेने पर कुछ निराशा, कुछ-कुछ स्नेह से और कुछ पकड लेने की खुशी मे जैसे पुरनिये सिर हिलाया करते है, ठीक उसी तरह जीवन महाशय ने सिर हिलाया। आज उन्होने अपनी उस दिन की आत्म-प्रतारण को पकड लिया था।

तो क्या उन्होने केवल ज्ञानलाभ के लिए, ज्ञानयोग मे अपने को डुवा देने के खयाल से डाक्टरी सीखनी चाही थी? यह वात क्या झूठ थी कि खुद घोडे पर सवार और अतर वहू को पालकी पर विठाकर भूपी वोस के यहाँ कादी जाने की कामना उकसा रही थी?

केवल इतना ही? जगत् महाशय के चल वसने से कुछ वँधे-वँधाये घर उनके हाथो से निकल नही गये थे क्या? क्या लोगो ने यह नही कहा कि महाशय परिवार की प्रतिष्ठा गई? क्या नवग्राम मे पहला ऐलोपैथिक डाक्टर आ नही चुका था? उसके कोई दो माह वाद किशोर के पिता कृष्ण-दास वावू के आश्रय मे डाक्टर हरीश नही पहुँचा? और इससे वे खुद क्या शकित नही हुए।

उनके गुरु डॉक्टर रगलाल ने इसका दूसरा अर्थ लगाया था। कहा करते थे—जीवन, जानते हो मै तुम्हे क्यो प्यार करता हूँ? मै तुम्हें इसीलिए

प्यार करता हूँ कि तुमने जिन्दगी मे हार नही मानी। इस देश के कविराज हार मान गये, वे घर बैठे ऐलोपैथी को गाली-श्राप देते रहे। वे न तो अपने शास्त्रो की उन्नति करके इससे होड ले सके और न यही चाहा कि डूबकर देखे कि आखिर इसमे कौन-सा तत्व है। तुम जीवंत आदमी हो, मैं तुम्हे इसीलिए प्यार करता हूँ। मैं हार मानने से बढकर दूसरा अपमान नही मानता। हार मान जाने के मानी है मर जाना। डेड्मैन—Dead man—समझ गये ?

एक लम्वा चुरट सुलगाये, नगे वदन, कम चौडी धोती पहने डाक्टर रगलाल मयूराक्षी नदी की ओर ताकते हुए वातें करते और पैर हिलाया करते थे।

रोगी आते। उस दिन की वात याद आ रही है, जिस दिन उन्होने यह वात कही थी। एक जवान मुसलमान को लोग खटोले पर लेकर आये थे। पेट के दर्द से वैसा जवान आदमी तडप रहा था। उसकी ओर ताककर रगलाल ने निर्विकार की नाई कहा—चित्त लेट जा, मेरे पैरो के पास लेट जा।

डॉक्टर रगलाल ने जीवन से कहा था—नव्ज देखोगे ? देखो। देखो कि तुम्हारा नाडी-ज्ञान क्या वताता है। अम्ल है, कि शूल है कि प्लीहा का दर्द है।

रोगी चीख उठा—डाक्टर वावू, देखिये, देखिये डाक्टर वावू ! मैं मर गया, मर गया मैं। न हो तो जहर दीजिये, मरकर जी जाऊँ। आ कोई नतीजा न निकला—कविराज, हकीम, पीर, देवी-देवता कुछ वाकी न रक्खा।

डाक्टर रगलाल ने टोका—अरे म्याँ, इसमे देवी-देवता क्या कर लेगे। खायगा वेहिसाव गोश्त तो देवी विचारी क्या करे ? एक वार मे कितना गोश्त खा लेता है—डेढ कि दो सेर ? तेरे पेट मे जोक हो गया है—तीन-तीन, चार-चार हाथ लम्वा जोक।

—दवा दीजिये डाक्टर वावू, दवा दीजिये। दर्द से जान जा रही है।

—दवा तो दूंगा, मगर रुपये ? दो रुपये फीस के, फिर दवा का दाम। पहले रुपये रख दो। इसके विना दवा नही मिलती।

—एक रुपया ले आया हूँ हुजूर'

जीवन ने कहा था—तो वाकी कल दे जाना।

इस पर रंगलाल ने कहा था—यू आर ए फूल। फीस लिये विना हर्गिज इलाज मत करो। दवा उधार मत दो वरना जाओगे जहन्नुम में। इससे ये लोग यह सोचेंगे कि इनकी चलती नहीं है। जीने के लिए मनुष्य को रुपये चाहिए। इसी जीने का मूल्य कमाने के लिए आदमी कमाता है, इस पर भी जो दानवीरता दिखाना चाहते हैं, वे न केवल fool हैं, वल्कि अपराधी हैं। जीवन के सग्राम में उसे जरूर हारना पडेगा—Just like the Hindoos; इतिहास में ऐसा मिलता है कि लडाई में हिन्दुओं की जीत हो चली है, मुसलमानों ने लडाई वन्द करने का अनुरोध किया—वस, हिन्दू मान गये। अच्छा, आज आराम कर लो, लडाई फिर कल होगी! मगर रात को मुसलमानों ने अचानक धावा वोल दिया, लापरवाह हिन्दू हार गये, खेत रहे, मगर स्वर्ग गये। मैं वैसे स्वर्ग का इच्छुक नहीं—समझा? और उन्होंने मरीज के साथ के लोगों से कहा था—जाओ, और एक रुपया ले आओ। रोगी को यहीं रहने दो। डरो मत। यह मरने का नहीं। जाओ।

जव वे चले गये, तो उन्होंने कहा था—जिन्दगी में रुपयों की जरूरत है जीवन। रुपया माँगना दोष नहीं है। किसी से भीख मत माँगो, किसी को ठगो मत, किसी की चोरी मत करो, किसी को तवाह करके हासिल मत करो—मगर जिस काम के लिए तुम मिहनत करते हो, उसकी मजूरी, उसकी फीस लेने में सकोच मत करो। वैसा करोगे तो मरोगे—स्वर्ग जाओगे या नहीं, नहीं जानता।

तेरह

डाक्टर रंगलाल भी अजीव आदमी थे।

साधारण लोग उन्हें घमण्डी, अर्थपिशाच और हृदय हीन कहते थे। ठीक उनके पिता के उलटे।

भाषा थी बडी रूखी। असामाजिक आदमी थे।

जीवन डाक्टर से जब पहला परिचय हुआ था, तब उन्होंने ऐसी ही भाषा का प्रयोग किया था।

जगत् महाशय स्वर्गवासी हुए। उस समय उनके मन में बडी अशान्ति थी। जगत् महाशय के स्नेह से वचित होकर सोई हुई अतृप्ति मानो प्रचण्ड प्यास लिये जाग पडी थी—उनके गम्भीर अस्तित्व के अभाव से मुक्त होकर। उनका स्नेह जैसा ही प्रसन्न और गहरा था, वैसा ही गुरु गम्भीर और अनुल्लघनीय था उनका निदेश और शासन। जीवन का जो असन्तोष दबा हुआ था, वह उस पहाड की छाती की आग के समान निकल आया, जिसकी चोटी टूट गिरी हो।

पहले दिन जो आग उबली, उसकी याद आ रही है—ओ। उसी दिन अतर बहू ने पहली बार अपना सिर पीटा था। वह भी सदा से असतोष की आग कलेजे मे दबाये चल रही है। सुहागरात से ही जीवन डाक्टर उसकी आँच को सहते आ रहे हैं।

छुटपन मे ही माँ-बाप चल बसे। मामा के घर पली। सदा से जबान-दराज। सदा की—। क्या कहे ? प्रचण्डा के सिवाय दूसरा विशेषण नही—सदा की प्रचण्डा। गजब की जीवनी शक्ति ! छुटपन से ही सिर पीटकर बगावत करती थी। कडाई जितनी की गई, उतना ही सिर पीटा। उतना ही रोई। उसके बाद किशोरावस्था मे सुबह से साँझ तक समान खटती रही मामा के यहाँ। एक दिन भी विश्राम नही। मगर उसकी जबानदराजी की हद नही थी। फिर ऊपर से उपवास। महीने में सात-आठ दिन वह उपवास करती थी, जब लोग शासन के नाम पर उसे सताकर हार मान लेते थे, तब वह दाना-पानी कबूल करती।

सुहागरात ही मे अगर ऐसी लड़की के कलेजे से आग की लपटें या आँच निकले तो ताज्जुब की कौन-सी बात है ? लेकिन नई बहू के नाते उसने गिरस्ती मे नाम कमाया था। जिस दिन मे दूर से जीवन महाशय देखा करते—अतर बहू प्रसन्न है, प्रशान्त है, हास्यमयी है। सास का आदर बेशक इसका एक बहुत बडा कारण था। माँ उसका बडा आदर करती। माँ का खयाल था, अतर बहू जैसी सगुनिया स्त्री नही मिलने की। व्याह के बाद

जीवन को आयुर्वेद की पढाई मे डूब जाते देख ही ऐसी धारणा हुई थी उनकी। कहा करती थी, वहू के शुभलच्छन से ही ऐसा हुआ। नही तो उस जीवन की भला ऐसी मति-गति हो सकती है, जो कि माथा झुकाकर सिर के धक्के से बडे-बडे जवानो को घायल करता रहा है, वैशाख के दिनो सुबह जो घर से निकला सो दोपहर विताकर ताड खाकर घर लौटा है, मालकिनी तालाब को बीस बार पार करके पानी को कदोट बनाकर तब कही निकला है ! स्कूल मे मार-पीट करता रहा। किताब छूता नही था। यह तो मानो वह जीवन ही नही है। इसे वहू का श्रेय न तो और क्या कहूँ ? इस घर मे वहू के कदम पडे और ऐसा हुआ।

उन दिनो यह सब सुनकर अतर वहू का चेहरा हलकी हँसी से भर उठता।

जगत् महाशय का उस समय प्रवीणतम काल था। उनकी विचक्षणता और वहुदर्शिता की ख्याति चारो ओर फैल गई थी। उस समय वे खुद साधारण रोगियो को देखने नही जाते थे—जीवन महाशय जाया करते थे। अगर बीमारी कठिन होती तो अपने जाते। यो कहते, इसमे मेरे जाने की जरूरत नही, जीवन जा रहा है। उसका जाना मेरा ही जाना समझो। और वे हलका हँसने लगते।

जो वात का मर्म नही समझते, उन्हे वे समझाने की कोशिश नही करते, जो मजाक नही समझते, उनसे वे मजाक नही करते। सादे ढग से कहा करते—जीवन देखकर मुझे बता देगा, उसीसे काम चल जायगा। जो करना चाहिए, मै जीवन को ही वता दूँगा, दवा वता दूँगा, तुम फिक्र न करो।

जाते भी थे, जब जीवन उन्हे जाने को कहते। और जब किसी दूसरे डाक्टर के रोगी को देखने की बुलाहट आती, तो जाते। जहाँ निदान-घोषणा की नौवत आती, वहाँ जाते।

एक घटना याद आती है। इस घटना से जगत महाशय की प्रसिद्धि पूर्ण हो उठी थी। नवग्राम के वाबू वरदाप्रसाद जोरो से बीमार पडे। यही लोग यहाँ के सबसे पुराने जमीदारो में से थे। एक पुश्त पहले इन्ही के यहाँ जगत महाशय के पिता दीनवन्धु महाशय मुनीमी करते थे और

बच्चो को पढाते थे। यही एक लडके की बीमारी मे तीमारदारी करके दीनबन्धु महाशय को आयुर्वेद-विद्या की ओर झुकाव हुआ था और जब वह लडका चगा हो गया तो कविराज कृष्णदास ने स्वय उन्हे आयुर्वेद की दीक्षा दी थी। इसी एहसान के चलते अपनी उम्र के चालीस-पैतालीस वर्ष तक जगत् महाशय बिना कुछ लिये उनके यहाँ चिकित्सा करते रहे। मगर ये लोग उसे निभा न सके। यहाँ तक कि दवा तक का दाम न देते, कहते कि मालगुजारी मे मिनहा कर देंगे। उसी असभ्रम से बचने के लिए जगत् महाशय ने गाँव की जमीदारी का कै पैसा हिस्सा खरीद लिया था। और अपनी पत उन्होने इस तरह बचाई भी थी। तब से नवग्राम के रायचौधुरी परिवार के लोग इलाज के लिए उन्हे नही बुलाया करते थे। कोई सख्त बीमारी होती, तो राघवपुर के गुप्त कविराज को बुलाया करते थे। वरदा बाबू की बीमारी मे लाचार होकर उनके लडके ने जगत् महाशय को बुलाया था। वरदा बाबू के लडके कलकत्ते मे कारोबार करते थे। बाप की बीमारी की खबर पाकर गाँव आये और राघवपुर के गुप्त को बुलवाया। गुप्त ने आकर कह दिया कि या तो तीन दिन या एक हफ्ते में या नवे दिन इनका मरना अनिवार्य है।

लडके ने कहा—मै इन्हे कलकत्ते ले जाऊँगा।

गुप्त ने बताया—ऐसे में ये राह में ही चल बसेगे। जो तीन दिन जी सकते हैं, वह भी न जियेंगे।

लडके ने डाक्टर रगलाल को बुलाया। कहा—नब्ज देखकर कविराज ने बताया है कि—। रूढ बोलने वाले डाक्टर रगलाल ने बाधा देकर कहा—मै उस विद्या को नही समझता, न ही उस पर यकीन करता हूँ।

लडके ने कहा—कविराज ने कहा है, या तो तीन दिन या एक हफ्ते में या नवे दिन इनका मरना जरूरी है।

रगलाल बोले—मै आपको यह भी न बता सकूँगा। हाँ, उनसे यह लिखा ले सकते हैं आप। अगर देहात न हो तो उनपर नालिश कर सकते है। अगर यह लिखकर मुझे दे, तो मै नालिश करूँ।

लडके ने कहा—मै इन्हे इलाज के लिए कलकत्ते ले जाना चाहता हूँ।

—फिर मुझे बुलाने की क्या जरूरत थी ? ले ही जाइये।

—कविराज कह रहे थे, रास्ते ही मे मौत हो जायगी—जो तीन दिन ये जी सकते है, वह भी न जियेगे।

—हो सकता है। नही भी हो सकता है। मै दवा दिये जाता हूँ। बीमारी सख्त है। जियेगे या मरेंगे, मै यह नही बता सकता।

जब रगलाल डाक्टर चल दिये तो लाचार उन्हे जगत् महाशय को बुलाना पडा।

जगत् महाशय ने नाडी देखी। बोले, अच्छे इलाज के लिए कलकत्ते ले जाना चाहते है, ले जाइये। मै बाधा नही दूंगा। कोई डर नही—इसका जिम्मेदार मै रहा।

लडके ने कहा—देखिये, सोच-विचारकर कहिये

—बिना समझे-बूझे क्या इतनी बडी जिम्मेदारी ले सकता हूँ चौधरी जी ? ले जाइये आप। मै इतने लोगो के सामने यह वचन देता हूँ कि मै जो कह रहा हूँ, उसके खिलाफ होगा तो मै इलाज करना छोड दूंगा। और

उन्होने हँसकर कहा था,

—और बरदा बाबू को रोग तो भोगना है, इसमे इनकी मौत नही होगी। यो चिकित्सा न हो या अच्छी चिकित्सा न हो तो और बात है। इलाज होगा तो ये ठीक हो जायँगे। आप कलकत्ते ले जाइये इन्हे।

उनकी बात ही सही निकली। बरदा बाबू के कलकत्ता पहुँचने मे कोई बाधा न पहुँची और वे अच्छे हो गये। कुछ दिनो तक देवघर रहकर स्वास्थ्य सुधारकर वे घर लौटे।

जगत् महाशय ने बरदा बाबू के यहाँ से फीस नही ली। लौटने पर बरदा बाबू ने उन्हे भेंट भेजी थी—देवघर के पेडे, गडगडा और सटक, थोडा-सा अच्छा तम्बाकू और एक बालापोश।

इस घटना के बाद जीवन ने उनसे कहा था—अब आपको अपनी फीस बढानी चाहिए। चार रुपये कर दीजिये।

लेकिन जगत् महाशय इस पर राजी नही थे। जीवन भी नाछोड़ बन्दा। बोले, जो गरीब है, उन्हे आप बिना फीस लिये देखा करें जाकर। परन्तु, जो जैसा चाहे दे दे, इससे आपकी मर्यादा को बट्टा लगेगा।

दत्त परिवार का यह समय सब दृष्टियो से सर्वोत्तम था। जीवन की माँ कहा करती थी—यह सब बहू के सुलच्छन का फल है।

अतर बहू खुद भी यही सोचती थी।

उन दिनो जीवन डाक्टर जब रोगी देखने के लिए जाने लगते, तो नियमित रूप से अतर बहू उनके सामने आकर खडी होती। उनका मुँह देखकर यात्रा की सफलता अनिवार्य थी।

*　　　　　*　　　　　*

जगत् महाशय की मृत्यु से महाशयो की प्रसिद्धि मे स्वाभाविक तौर पर भाटा पड गया।

कई बँधे-बँधाये घर हाथ से निकल गये। चार-पाँच गाँव के लोग उनके पास जाने की बजाय हरिहरपुर के पाठक वैद और कामदेवपुर के मुखर्जी कविराज के यहाँ जाने लगे। उधर नवग्राम के बाबू लोगो ने अपने यहाँ एक डाक्टर को लाकर बिठाया—दुर्गादास कुडु। उस समय जीवन महाशय महज जीवनदत्त थे। महाशय तो लोग सहज ही नही कहा करते। डाक्टरो को एक सहूलियत है। उमर चाहे जो हो, तजुर्बा रहे चाहे न रहे, डिग्री रहती है। डिग्री के जोर से ही वे डाक्टर रहते हैं।

जीवनदत्त की सोई हुई कामना, दुर्दिन की आँधी से—राख उडे अंगारे के समान लहक उठी। उन्होने डाक्टर बनने की ठानी। सामने था डाक्टर रगलाल का उदाहरण। उधर नवग्राम में और एक नये डाक्टर आये। उन्ही के दोस्त कृष्णदास बाबू—किशोर के पिता—ने एक नये डाक्टर को आश्रय दिया। यह भी सुनने मे आया कि वहाँ के नये धनी ब्रजलाल बाबू एक खैराती अग्रेजी अस्पताल खोलने जा रहे है। सो जीवन महाशय ने चुपके-चुपके डाक्टरी पढना शुरू कर दिया। बडी छान-बीन के बाद उन्होने दो किताबें मँगवाई—डाक्टरी शिक्षा और मेटेरिया मेडिका। इच्छा तो उनकी थी, मगर फिर भी रूखे रगलाल डाक्टर के पास जाने की हिम्मत न पडी।

कोई तीन महीने बाद, अचानक डाक्टर रगलाल से भेंट हो गई। उनसे जीवन का योग-सूत्र जुडने की यह पहली गाँठ पडी।

किशोर को वे इसीलिए इतना ज्यादा चाहते थे। सूत्र जुडने का श्रेय उसीका था।

एक दिन उन्हे अचानक ही यह खबर मिली कि कृष्णदास बाबू का लडका किशोर सख्त बीमार है। दस रोज से बुखार है—एक ज्वरी। नया डाक्टर हरीश उसका इलाज कर रहा था। महीना भर हुआ था उसे यहाँ आये। कृष्णदास बाबू ने ही उसे आश्रय दिया था। पटने से पास करके आया था। जब तक उसकी डाक्टरी चल न निकले, तब तक का सारा भार कृष्णदास बाबू ने अपने ही ऊपर लिया था। किशोर को वही देख रहा था—आज रगलाल डाक्टर आने वाले थे।

जीवनदत्त विस्मित हुए—शकित भी। अपने को उन्होंने धिक्कारा। इस बात की खबर रखना उचित था। उमर मे बडे होने पर भी कृष्णदास बाबू उनके मित्र थे। और उनके दिली दोस्त नेपाल के सगे थे। फिर किशोर को वे चाहते बहुत थे। इस नये डाक्टर के आने से पहले यानी चार ही मास पहले तक उनके यहाँ यही लोग इलाज करते आ रहे थे। कम-से-कम एक बार उनका वहाँ जाना उचित था। चिकित्सक के रूप मे विना बुलाये जाने मे मर्यादा को ठेस लगती है, मगर उनसे अन्तरगता भी तो रही है। कृष्णदास बाबू से भी है, किशोर से भी। जब भी उस टोले मे जाते, बुलाकर किशोर से दो-चार बाते कर आते। छै-सात साल का यह साँवला-सा लडका गजब की दीप्ति वाला है। तेज और सरस बुद्धि।

यही, उस रोज की बात है।

नेपाल के साथ ही वे उसके घर से आ रहे थे। किशोर रास्ते से जा रहा था। दोपहर को अपने साढू के लडके को अकेला जाते देख पगले नेपाल का कर्त्तव्य-बोध जागा। किशोर का जाना देखकर कोई भी यह समझ सकता था कि वह अपने घर ही की तरफ जा रहा है,—लेकिन पगले नेपाल ने बेवजह उससे सवाल किया—कहाँ जायगा ? मेरे यहाँ ?

—नही।

—फिर ? इस दोपहर को कहाँ जायगा ?

किशोर ने कहा—तुम्हारी ससुराल जाऊँगा।

नेपाल उस मजाक को समझ नही सका। जीवन खिलखिलाकर हँस

पडे थे ।

खुद भी उसके सामने अप्रतिभ हो चुके थे जीवन डाक्टर। कै महीने पहले। तब उसके यहाँ वही इलाज करते थे। किशोर ही को बुखार लगा था। उन्होने नाडी देखी—अम्लदोष था। कृष्णदास बाबू की बहन ने कहा—हो नही तो क्या हो आखिर। कल बुखार मे ही इसने चुराकर मलाई खा ली थी।

जीवन ने पूछा था—ऍं, तुमने चुराकर खाया है ?

किशोर बेखटके बोला—हाँ।

—जानते हो, चुराकर खाने से पाप होता है।

गर्दन हिलाकर उसने कहा था—होता है, लेकिन मलाई खाने से नही।

जीवन अवाक् रह गये थे। पूछा था—यह किसने कहा तुमसे ?

किशोर बोला—मैने भागवत की कहानी मे सुना है। खुद कृष्णजी मलाई-मक्खन चुराकर खाया करते थे। फिर मुझे क्यो पाप लगेगा ?

जीवन को हार मान लेनी पडी थी। बाद में उन्हे सेहत के बारे मे उसे समझाना पडा था। वह सुनता रहा था ध्यान से और अन्त में यह कहा था—अच्छा, अब ज्यादा नही खाऊँगा—कम खाऊँगा।

इसके बाद किशोर को देखते ही वे पुराणो के प्रश्न पूछा करते। किशोर प्राय: उत्तर दिया करता और एक अजीब ढग मे। उन्होने पूछा, रावण के कै सर थे ? किशोर ने कहा था, उसके दस सिर और बीस हाथ थे। पता है आपको, रावण कभी सोता नही था ?

—क्यो ?

—इसलिए कि करवट कैसे लेता ?

इसी तरह उस लडके से उनकी एक गाढी अन्तरगता जम उठी थी। और उसीकी तबीयत खराब है, ज्यादा खराब है, डाक्टर रगलाल देखने जा रहे हैं जीवन से रहा नही गया। वे अपनी इच्छा से कृष्णदास बाबू के यहाँ पहुँचे। कृष्णदास बाबू अप्रस्तुत-से हुए। जीवन ने कहा—कोई बात नही भैया, आप गरचे कि ब्राह्मण हैं और मै कायस्थ हूँ, फिर भी तो आप मेरे भाई हैं। चचा होने के नाते मै किशोर को देखने आया हूँ। चलिये, जरा देखूँ उसे।

किशोर प्रायः बेहोश पड़ा था। साँसों में कफ की घर्राहट उठ रही थी धीमी-धीमी। जब-तब बडबड़ा उठता था। भादों का महीना, इसमें भी तमाम दिन उसे गरम कपडों मे लपेटकर रक्खा गया था। नये डाक्टर ने कहा, फेफडे में सर्दी लग गई है। एक सौ तीन बुखार है। अब तक न्यूमोनिया अपने चरम में होता, लेकिन मैंने शुरू से बाँध रक्खा है। पता नही, फिर भी बुखार उतर क्यों नही रहा है।

जीवन डाक्टर ने बडी देर तक दोनो हाथो की नाडी देखी। जीभ देखी, आँखें देखी, पेट की जाँच की। उसके बाद उठकर उन्होने हाथ धोया और कृष्णदास बाबू के पास बैठे। बोले, भैया, इक्कीस या चौबीस दिन के बाद यह बुखार जायगा। डरने की कोई बात नही, लेकिन बुखार जरा टेढा है। आगन्तुक ज्वर सान्निपातिक है, मगर प्रबल नही है, जानलेवा भी नही। कफ का प्रकोप—डाक्टर बाबू ने जो कहा है ··

उन्होने हरीश डाक्टर की ओर देखकर कहा—वह आनुषंगिक है, मूल व्याधि वह नही है।

डाक्टर हरीश लगभग एक ही उमर का था। जीवनदत्त से होगा चार-पाँच साल छोटा। कर्म-जीवन मे उमर का इतना फर्क कोई बड़ा फर्क नही। उसने कहा था—न, मैंने स्टैथिस्कोप लगाकर देखा है, सर्दी ही मूल दोष है। मेरा खयाल है, आप जो सन्निपातिक यानी टाइफायेड की बात कह रहे हैं, वह ठीक नही।

जीवनदत्त ने ध्यानमग्न होकर नाडी की जाँच की थी। उन्होने जो कुछ समझा, वह गलत नही हो सकता। हलका हँसकर उन्होने गर्दन हिलाई थी। इतने में बाहर पालकी के कहारो की हुकारी सुनाई पडी।

हरीश बाहर की ओर लपका।—आगये वे।

जीवन डाक्टर जाने को तैयार हुए कि उनकी निगाह घूंघट काढ़े किशोर के सिरहाने बैठी उसकी माँ पर पडी। उन्होनें विश्वास के साथ भरोसा देते हुए फिर कहा था—डरने की कोई बात नही। कोई चाहे कुछ भी कहे, इक्कीस या चौबीस दिन में बुखार उतर जायगा। किशोर चगा हो उठेगा।

इस इक्कीस और चौबीस दिन की बात पर डाक्टर रंगलाल से भी

सघर्ष हो गया।

रगलाल ने रोगी को देखा।

पहले ही यह कहा—कमरे मे फिजूल के लोग भीड लगाये रहे, यह मै पसन्द नही करता। जो डाक्टर देख रहे हैं, वे और एकाध तीमारदार

जीवनदत्त भी बाहर चले जा रहे थे। लेकिन कृष्णदास बाबू ने कहा—तुम ठहरो जीवन।

उन्होने उनका हाथ पकडा। जीवन महाशय को याद है कि डरे हुए कृष्णदास बाबू का हाथ पसीज रहा था। जीवन ने उन्हे मीठे स्वर मे साहस देते हुए कहा था—डरने की क्या बात है ?

मरीज को देखकर डाक्टर रगलाल ने कुछ नही कहा। उन्होने नुस्खा देखना चाहा। नुस्खो को पढा। वे नुस्खे लौटा दिये और नया नुस्खा लिखकर डाक्टर हरीश को देते हुए कहा—मैंने नई दवा लिख दी है। पथ्य मे बार्ली, छेना का पानी और बेदाने का रस दिया जा सकता है। भारी पथ्य नही पडना चाहिए। बच्चे को टाइफायेड हुआ है।

डाक्टर हरीश का चेहरा फख पड गया था। साथ ही सबकी निगाहे जीवन डाक्टर की ओर खिंच गई थी—यह जीवन महाशय को याद है। लेकिन जीवन डाक्टर ने हरीश की ओर नही देखा था। छि. बेचारे को कैसा तो लगेगा।

कमरे से बाहर निकलकर डाक्टर रगलाल ने हरीश को भली तरह से सब समझा दिया।

जो कुछ बताया, उसमे से कुछ जीवनदत्त की कविराजी के नियम से ठीक नही बैठ रहा था। मगर वे चुप रहे। उनका अधिकार भी क्या था ? उसके बाद डाक्टर रगलाल दवा तैयार करने लगे। यह उनकी खास बात थी। खुद ही बैग से दवा बनाकर दिया करते थे। किसी दूसरे डाक्टर के यहाँ की या किसी दवाखाने की दवा वे रोगी को नही देते थे। यहाँ तक कि अगर अचानक रोग मे कुछ परिवर्त्तन की उन्हे आशका होती, तो उसकी भी दवा बनाकर पहले ही दे देते। कहते, अगर ऐसा हो, तो यह दवा देना। ऐसा हो तो यह। एक-एक दिन के बाद मुझे हाल भेजते रहना। हाँ, जो डाक्टर पहले से देखते होते, उनसे वे कुछ छिपाते नही थे।

अगर वे उनके विश्वासपात्र होते तो उन्हीं को नुस्खा देकर दवा बनवा लेते। कहते, मै जानता हूँ कि जहर मिलाकर रोगी का नुकसान नही करोगे- जहर की कीमत है। मेरे हाथ का नुस्खा है—तुम मुझे जिम्मेदार नहीं बनाओगे। लेकिन पानी जहाँ इफरात है, पानी का दाम नहीं लगता। कोई दवा के बदले पानी मिला दे, तो क्या कर सकता हूँ। छै दवाओं में से तीन ही दे तो क्या किया जाय? या पुरानी रखी-रखाई दवा दे दे तो क्या करूँगा मै ? मेरी बदनामी होगी।

उन्होने दवा की दो शीशियों को झकझोरा और अच्छी तरह से उसका रग, उसकी शकल देखकर डाक्टर हरीश को दिया। बोले—दो तरह की दवा है। यही चलेगी अभी। अगर बुखार तेज हो जाय और मरीज भूल बकना शुरू करे;—बुखार तेज होने से ही भूल बकना शुरू करेगा और भूल बकने लगे तो समझो कि बुखार बढ गया है—वैसी हालत में यह दवा देना—समझ गये ? और ये जो गरम कपड़े लपेट रक्खे हैं, इन्हें उतार फेंको। दबकर ही जान चली जायगी बेचारे बच्चे की। धूप-हवा आने दो। समझ गये।

कृष्णदास बाबू ने पास आकर पूछा—टाइफायेड है ?

—हाँ, बीमारी कडी है।

—जी, वही पूछ रहा हूँ कि···

—जीना-मरना ईश्वर के हाथ है, यह मैं नही बता सकता।

कृष्णदास भी साहसी आदमी थे। जवाब देने में कुशल थे वे। कहा था—यह आप ही क्यों, हम भी कह सकते थे। देखकर आपको लगा कैसा ? सान्निपातिक होने ही से तो टाइफायेड असाध्य नही होता। उसके भी प्रकार हैं—हलका, मध्यम, कठिन।

तीखी निगाह से उन्हे देखकर डाक्टर रंगलाल ने पूछा था—आप ही तो कृष्णदास बाबू है ? लड़के के पिता ?

—जी हाँ।

—रोग मध्यम है। है लेकिन जोरदार। इसे कठिन होते कितनी देर लगती है ? जैसी चाहिए, वैसी सेवा और नियम से दवा न मिले तो यह बीमारी बढ सकती है। इसमें सेवा ही सबसे बड़ी चीज है।

—उसके जिम्मेदार हम हैं। अच्छा होने मे कितने दिन लगेंगे ?

—यह मैं कैसे बताऊँ ? यह नही जानता।

जीवन कविराज को इतना असह्य लगा था। उन्होने कहा था—कृष्ण-दास भैया, आप घबराएँ नही, बाईस से चौबीस दिन के अन्दर लडके का बुखार उतर जायगा।

डाक्टर रगलाल झुककर अपने बैग मे दवायें सहेज रहे थे चोट खाये गेहुअन की तरह तनककर पीछे मुडे।

—आप कौन हैं ? ज्योतिपी ?

—नही। ये हमारे यहाँ के वैद हैं। जगबन्धु महाशय का नाम शायद जानते हो।

—बेशक जानता हूँ। बड़े विलक्षण कविराज थे वे। रोग-निर्णय की गजब की क्षमता थी। यहाँ के बरदा बाबू की बात मुझे याद है।

—ये उन्ही के लडके हैं—जीवनदत्त।

रगलाल ने फिर जीवनदत्त की ओर ताका। बोले—बाईस से चौबीस दिन कैसे समझ गये ? नाडी मे ?

—जी। नाडी से मुझे ऐसा ही लगता है। चौबीस दिन मे बुखार को उतर जाना चाहिए। तीन अठवारा। लेकिन हमारे मुल्क में शुरु के जो दो-एक दिन बुखार का आभास देते हैं, वे इसमे शामिल नही होते। इसी से मैंने बाईस मे चौबीस बताया।

तुम्हे साहस है। कम उम्र है, ताजा लहू। —डाक्टर रगलाल हँसे—तुम्हारे परिवार के नाडी-ज्ञान की प्रशसा मैंने सुनी है—बरदा बाबू की बीमारी मे देखा भी है। लेकिन यह हमारे शास्त्र से बाहर की बात है।

ठीक चौबीस दिन में किशोर का बुखार उतर गया था। जीवनदत्त को बुलाकर कृष्णदास बाबू उनसे लिपट गये थे।

डाक्टर रगलाल के पास आदमी के मार्फत चिट्ठी भेजी थी। लिखा था—आज चौबीसवें दिन किशोर का बुखार उतर गया है। आगे के लिए दवाई और निर्देश भेजने की कृपा करे। अगर आने की जरूरत समझे तो यह सूचित करें कि कब आ रहे हैं।

डाक्टर रगलाल फिर नही आये। केवल निर्देश और दवा भेज दी

थी उन्होने। लिख भेजा था कि जगत्बन्धु महाशय के लड़के को मेरा आशीर्वाद कहेगे।

उत्साहित होकर जीवनदत्त चार मील चलकर उन्हें प्रणाम करने गये थे।

आग भरे दो सेमल के पेड एक-दूसरे के सामने आते ही दोनों के भीतर की आग उत्सुक हो उठी।

*   *   *

जीवनदत्त की पीठ पर हाथ फेरते हुए उस दिन डाक्टर रंगलाल ने उन्हे आशीर्वाद दिया था। उस स्पर्श में जीवनदत्त ने स्नेह का अनुभव किया था। एक आश्चर्य कहिये। डाक्टर रगलाल ठहरे तांत्रिक, शव-साधक-से आदमी। वामाचारी-जैसे किसी आचार-नियम के पावन्द नही, तीखा-रूखा स्वभाव, जुवान के कडे—मयूराक्षी से तिरती हुई लाशो को उठा लाकर चीर-फाड करके देखते हैं, माँ की गोद में वच्चे को मरते हुए देखकर भी वे विचलित नही होते—ससार में किसी के भी आगे सिर नही झुकाते। तंत्र-प्रधान इस इलाके के लोग कहा करते थे—डाक्टर रगलाल एक छिपे हुए तान्त्रिक हैं। वामाचारी हैं।

कोई-कोई उन्हें नास्तिक भी कहते।

पहली ही वात डाक्टर रगलाल ने उनसे यह कही कि तुमने अगर डाक्टरी पढी होती, तो वडा अच्छा होता। तुम्हारे अदर एक प्रकृत चिकित्सक है। मै यह नही कहता कि कविराजी शास्त्र में कुछ है ही नही। लेकिन वह हमारी जाति के समान समय के साथ आगे नही वढ सका। जिन दिनों इस शास्त्र की सृष्टि हुई थी, इसकी चरम उन्नति हुई थी, उन दिनो रसायन की इतनी तरक्की नही हो सकी थी। इसके सिवा और भी वहुत-सी चीजों का आविष्कार नही हुआ था। यह समझो कि उसके वाद जाने कितने देशो से कितने लोग हमारे यहाँ आये। उनके साथ-साथ आये उनके यहाँ के रोग—हवा, पानी और मिट्टी के भेद से अजीब शकल हो गई उनकी। इसके सिवा भी बात है कि आगन्तुक व्याधि कहकर आयुर्वेद जहाँ थम गया है, वहाँ यूरोप की चिकित्सा अणुवीक्षण से कीटाणुओं की जानकारी प्राप्त करके काफी दूर तक वढ चुकी है।

ग्रौर उन्होंने नये रोग ग्रौर चिकित्सा के वारे मे वहुत-सी वातें कही थी। जीवन तल्लीन होकर सुनते रहे थे। उन्हे अपने पिता ग्रौर गुरु जगत् महाशय की वार-वार याद हो ग्राती थी। दोनों की वातो मे फर्क इतना ही था कि शिक्षा के सिलसिले में जगत् महाशय ईश्वर, भाग्य, नियति का वार-वार जिक्र करते, ग्रौर उनकी वात रोगविज्ञान की व्याख्या के ग्रलावे भी एक भाव-व्याख्या-सी लगती, उनमे वातो के ग्रर्थ के ग्रतिरिक्त भाव भी होता, डाक्टर रगलाल के कथन मे ईश्वर नही था, भाग्य नही था—सारा वक्तव्य नीरस ग्रौर बुद्धिग्राह्य था, ग्रर्थ को छोडकर उसमे भाव की वू भी नही थी। रगलाल कहा करते थे, ग्रादमी के मर जाने पर हम ग्रौर किसी भी तरफ नही देखते। समझ गये, इस देह के पिंजडे को तोडकर प्राणो का पछी कैसे फुर्र से उड भागा, हम यह देखने की कोशिश नही करते। वीच-वीच मे हँसकर यो कहते—ग्ररे भई, प्राण ग्रगर पछी है, तो वन्दूक वाले शिकारी भी हैं ग्रौर वे वेशक चिडिये का मांस खाते है, फिर क्या, पुनर्जन्म खत्म।

उसी दिन जीवन ने कहा था, मेरी एक प्रार्थना हे। मुझे कृपा करके ग्राप डाक्टरी सिखाये।

तुम डाक्टरी सीखोगे? —डाक्टर रगलाल ने तीखी निगाह से उनकी ग्रोर ताका। ग्रन्तरभेदी थी वह दृष्टि—कपाल पर पड गई एक-पर-एक कई रेखाएँ। उसमे ग्रचरज, सवाल वहुत कुछ थे। उसके वाद पूछा था—कविराजी ग्रच्छी नही चलती है?

हँसकर जीवन ने जवाव दिया था—पढे-लिखे लोगो मे उसका चलन जरूर कम हो गया है, मगर ग्राम लोगो मे ग्रच्छी ही चल जाती हैं।

—फिर?

—छुटपन से ही डाक्टरी पढने की मेरी इच्छा थी लेकिन—जीवनदत्त ने एक लम्वी उसाँस छोडी।

—फिर पढी क्यो नही? तुम्हारे पिता जी की माली हालत तो ग्रच्छी थी।

फीका हँसकर जीवन ने कहा था—हम तो भाग्य को मानते हैं—इसलिए यही कहूँगा कि ग्रपना भाग्य। ग्रौर कहूँ भी क्या? यो मेरी इच्छा

शुरू से थी। किन्तु—

—तुम्हारे पिता ने नही पढने दी ?

—जी नही। दोष मेरा है।

उन्होंने मजरी की बात को बचाकर भूपी बोस से मार-पीट वाला किस्सा सुनाया। कहा—मै घर लौट आया। पिता जी ने कहा, बस। तुम्हे परदेश भेजकर अब मै निश्चित नही रह सकता। तुम मौरूसी विद्या की दीक्षा लो।

उनकी बात सुनकर उजाड पहाड जैसे डाक्टर रगलाल हा-हा करके अट्टहास कर उठे, मानो पेड-पौधो से रहित काले पत्थरो का वह काला पहाड कौतुक से फट पडा और भीतर से झर-झर करके निकल पडी झरने की फुहारे। डाक्टर रगलाल को ऐसा हँसते शायद ही किसी ने देखा हो।

कुछ देर हँसते रहे। फिर बोले—भूपी बोस की सुडौल नाक तुम्ही ने तोड दी थी ? अरे, मैने उसे देखा है। उसका इलाज किया है। बेहद शराब पीने से लीवर की बीमारी हो गई थी। उसके श्वसुर उसे अपने यहाँ ले गये थे इलाज कराने के लिए। मुझे बुलाया था। उसकी नाक मे दाग हो गया था, मानो किसी खूबसूरत लाल फल मे कीडा लगने का निशान हो।

रगलाल बाबू अचानक गम्भीर हो गये। बोले—मुझे यह शक हुआ कि यह गरमी से हुआ है। बडे आदमी का बेटा, घनघोर शराबी। शुबहा होना स्वाभाविक ही था। मैने पूछा। कबूल ही नही करता था। आखिर कबूल किया। जैसा कि इधर के लोगो का स्वभाव होता है।—डाक्टर रग-लाल उत्तेजित हो उठे, मुँह से चुरट को हटाते हुए कहा—गजब है यह देश, गजब ! शर्म से बीमारी छिपा लेता है—पीढियो को रोग की विरासत दे जाता है ! खुद भी भोगता है। यह हर्गिज नही समझने का कि आखिर हम भी मनुष्य हैं, रक्त-मास के पुतले, कोई देवता नही। भूख, लोभ, काम के गुलाम।

डाक्टर रगलाल उठ खडे हुए। बोले, उस सूअर ने बताया क्या था, जानते हो ? बताया था कि यह कैसे हुआ, मै नही जानता। अपनी स्त्री को छोड और किसी के ससर्ग मे तो मै गया नही। मुझसे और न रहा गया। थप्पड़ उठाकर कहा—एक जड़ दूंगा। कसकर, उल्लू कही का !

जरा देर के वाद वे शान्त होकर अपने आसन पर आ वैठे थे। चुरट सुलगा कर दो कश लगाकर धीमे हँसकर कहा—तो वह तुम्हारे मुदगर के समान घूँसे की चोट का निशाना है? वडे खूँखार हो तुम? मगर तुमने भूपी वोस के मित्र का ही काम किया है। उस निशान से तुमने उसके उस पाप रोग को पकडने का सुयोग वना दिया है।

वाद मे रगलाल डाक्टर ने कहा था—मैं तुम्हे सिखाऊँगा। जितना वन सके, मेरे पास से ले जाओ। क्यो? सोच क्या रहे हो?

उस दिन जीवन उस समय भूपी वोस और मजरी की वात सोचने लग गये थे। जव तक रगलाल भूपी बोस के वारे मे कहते रहे, जीवन उनके मुँह की तरफ इस तरह से ताकते रहे, गोया उनमे चिन्ता-शक्ति है ही नही। डाक्टरी सिखाने का आश्वासन देकर रंगलाल वावू ने अपनी वात समाप्त की। उसका जवाव देने के बदले जीवनदत्त ने प्रश्न किया था—भूपी को लीवर की बीमारी हो गई। ठीक हुई कि नही?

उसकी ओर ताककर डाक्टर रगलाल ने कहा—लगता है भूपी के लिए तुम्हे ममता है जीवन?

जीवन अव सचेत हो गया। शर्मिन्दा हुआ।

रगलाल वोले—तुम लोग तो वैष्णव हो?

—जी।

इसीलिए—फिर कहा—फिलहाल उसकी वीमारी अच्छी हो गई है। फिर हो जायगी। वह ज्यादा दिन जिन्दा न रह सकेगा। उसी से उसकी मौत होगी। उसकी वीवी,—एक तरह की माँ होती है, जो वीमार वच्चे को छिपाकर खिलाती है, ठीक उसी तरह की है। डाक्टर ने सख्त मुमानियत कर रक्खी है, भूपी शराव के लिए तडप रहा है, उसकी वीवी किसी को इनाम देकर छिपाकर शराव मँगाकर देती है उसे। कहती है—जरा-सी पीना, ज्यादा नही। ताज्जुब है, वह अपने जेवर वेचकर उसे पिलाती है। गजव है। पुराण मे किस्सा आता है कि सती स्त्री मौत से लडकर अपने पति को वचाती है। मगर यह औरत, प्रेम में तो उनसे छोटी नही है, लेकिन मौत को बुलाकर अपने पति को उसके हाथो सौप रही है। विचित्र है।

जीवन डाक्टर सन्न-से हो रहे। स्थान, काल, पात्र, सव कुछ को भूल

बैठे वे, सब कुछ आँखो से मिट गया—अर्थहीन एकाकार हो गया। डाक्टर रंगलाल ने उन्हे आपे में लाया। बोले—इस धनी के गये-बीते लड़के की बात जाने दो। यह मनुष्य के अपने पाप से सृष्टि का अपव्यय है। अभी काम की बात सुनो। सीखना चाहते हो डाक्टरी तुम? वह तुम्हारे लिए मेरी तरह कठिन नही है। तुम इलाज करना जानते हो, रोगो की पहचान तुम्हें है। तुम्हारे लिए यह बडा सहज है। मैंने अंग्रेजी चिकित्सा-शास्त्र का यहाँ के लोगों के लिए अनुवाद किया है। मैं तुम्हे मदद करूँगा। सिखाऊँगा। पढाऊँगा।

अब की जीवनदत्त ने यह सुना। पल में उसकी सारी उदास अवसन्नता दूर हो गई। जीवन में आग जल उठी।

मजरी और भूपी बोस ने मेघ और हवा होकर उसके जीवन की प्रज्व-लित हुई ज्वाला पर दुर्दिन की बरसात बरसाकर उसे बुझा दियाथा। लेकिन पेड़ की जड से चोटी तक जो ज्वाला प्रवाहित थी, वह एक बारगी ठंडो नही पड गई थी। फिर लहक उठी वह! वे मजरी को भूल गये, भूपी को भूल गये। उस घडी अतर बहू की याद न रही। बस, डाक्टर रंगलाल ही उस रोज सामने रहे। उनके हाथों जिल्द वाली एक मोटी बही थी और आँखो के सामने था भविष्य—उज्ज्वल, प्रदीप्त!

चौदह

इसके बाद चार साल—जीवनदत्त के जीवन का उदय लग्न। नया जन्म। या नये जन्म की तपस्या।

बीच-बीच में डाक्टर रंगलाल मजाक करते। एक बार कहा था—सच ही तो जीवन, बडा अफसोस होता है। लगता है, मैंने शादी क्यो नही की?

इस तरह की बातें अक्सर रात में होती। बरामदे में बैठकर वे निय-मित मात्रा में ब्राण्डी पीते और चुरट के कश खीचते रहते; अगर जीवन-

दत्त वहाँ होते, तो उनसे वाते करते या किताव पढते रहते। कभी-कभी मन्ना को वुलाकर उसीसे वाते करते रहते। खुद कुछ नही कहते, मन्ना किस्सा सुनाया करता। भूत का किस्सा, सुनते और रह-रहकर हँस पडते ठठाकर।

जीवनदत्त को उन्होने सारी पाण्डुलिपियाँ दे दी थी। जीवन घर मे उन्हे पढते और अपनी वैदई करते। दो-चार दिन वीच करके सुवह के कामो से फारिग हो डाक्टर रगलाल के यहाँ जाया करते। जो वात समझ मे नही आती, समझ लिया करते उनसे। जितना पढ चुके होते, डाक्टर को सुनाते। वे सुनते। ऐसे मे किसी-किसी दिन आसन्न मृत्यु वाले रोगी के यहाँ से वुलाहट आती। वे व्योरा पूछते। किसी के यहाँ जाते, किसी के यहाँ नही। जिसके यहाँ जाते उनके साथ जीवन भी जाते। गुरु पालकी से जाते, जीवन पैदल। स्वस्थ और वलशाली शरीर, अडतीस इञ्च चौडी छाती, दो मन से ऊपर वजन, मुद्गर भाँजा हुआ मजवूत शरीर—जवान हाथी की तरह वजनी कदम वढाते हुए जीवनदत्त कहारो के साथ-साथ चले जाते।

किन्तु कुछ ही दिनो मे जीवन को लगा, डाक्टरी सीखना उनके वश के वाहर की वात है। वे ढीले पड गये। गुरु के मन मे आजिजी भर आई। कई दिनो से वे जीवन को उस काँच वाले कमरे मे लाश की चीर-फाड करने को कह रहे थे, एक दिन जीवन ने लाश की चीर-फाड की थी। नतीजा यह हुआ कि रात जव भोजन किया तो उलटी हो गई। उसके वाद कोई चार-पाँच दिनो तक तो उन्होने गुरु के घर की ओर कदम ही नही वढाया। छठे दिन उन्होने सोचा, उस सडी हुई लाश को अव तो गुरुजी ने जरूर फेक दिया होगा। उस दिन गुरु ने उन्हे वडा फटकारा था और मन्ना को दूसरी लाश लाने का हुक्म दिया था।

कुछ ही घण्टो मे मन्ना पाँच साल की एक लडकी की लाश उठा लाया। इधर के हिन्दू भी पाँच साल की उम्र वालो की लाश को जलाते नही, गाड दिया करते। जीवनदत्त ने दोनो हाथ वाँधकर गिडगिडाकर गुरु से कहा—मुझसे यह न होगा। इस वच्ची के शरीर पर—। वे रो पड़े थे। कहा था—आप यकीन मानिये, मेरी वच्ची देखने में ठीक ऐसी ही—हूवहू ऐसी ही थी, ऐसे ही वाल—ऐसी ही वनावट—!

डाक्टर रंगलाल ने जिन आँखो उन्हे ताका—वे आँखें उग्रता से विस्फारित थी। लेकिन देखते-देखते कोमल हो आईं। कहा था—अच्छा, रहने दो। तुम जाकर बगले पर बैठो—मैं इसे B. सेक्शन करके आता हूँ। लग रहा है, ऐसा लग रहा है कि अचानक ही मौत हो गई है। रोग की कोई निशानी नही है।

वास्तव मे वह बच्ची देखने में बहुत कुछ जीवनदत्त की पहली लडकी सुषमा जैसी थी। अतर वहू के उस समय तक दो सन्तानें हुई थी। बडी थी लडकी—सुषमा, उसके बाद लडका—वनविहारी।

उस काँच वाले कमरे से निकलकर जीवनदत्त ने फिर इन्तजार नही किया, सीधे घर चल दिये। इसीसे गुरु आजिज आ गये थे।

कई दिनो के बाद जब जीवनदत्त वहाँ गये, तो गुरु ने कहा—बैठो। तुमसे कुछ कहना है। शंकित होकर जीवन बैठ गये। डाक्टर चुरुट का कश-पर-कश खींचते जा रहे थे। जरा देर बाद उसे छोड़कर कहा—जीवन, तुम्हे जैसा बनाने की मैंने सोची थी, वह न हो सका। तुममे वह क्षमता नही है। इसके सिवा अंग्रेजी अच्छी तरह जाने बिना इस शास्त्र में योग्यता हासिल करना असम्भव है। मैंने सोच रखा था, तुम्हारी इस कमी की पूर्ति मैं कर दूँगा। अब देखता हूँ, वह भी आसान नही है। मुझे आजिजी होती है और, तुम्हारे लिए भी इस पद्धति का कुछ अश बडा अरुचिकर है। तुम उस अरुचि को दूर नही कर सकोगे—असम्भव है।

डाक्टर चुप हो गये।

फिर कहा था—तुम्हारे पिता जी तुम्हारे धातु को तपा-तपा कर पीट-पीट कर बना गये हैं—उसे नये सिरे से गलाये बिना उससे नया कुछ नही बनाया जा सकता। तलवार और खड्ग हथियार दोनो हैं, पर दोनो मे फर्क है। तलवार से भैंसे की बलि मुमकिन नही और खड्ग से आज के युग की लडाई नही लडी जा सकती।

ठीक ऐसे ही समय कही से बुलाहट आई। इलाके के एक नामी परिवार से बुलाहट आई थी। डाक्टर रगलाल ने जब से प्रैक्टिस शुरू की, तभी से उनका इस परिवार से सरोकार है। बल्कि इससे भी ज्यादा कहिये। शायद स्नेह का भी सम्बन्ध है, इधर के आम लोगो के लिए डाक्टर रगलाल

के मन मे अवज्ञा का भाव रहता है किन्तु इस परिवार के लिए ठीक वह भाव नही है। घर की मालकिन वीमार है। अजीव वीमारी। महज दो घण्टे में वीमारी भयकर हो उठी। अपच की रोगिणी वह पहले से ही रही है। आज कोई दो घण्टे पहले वे ठोकर खाकर आँगन मे गिर पडी थी। इतनी ही देर में हालत इतनी विगड गई। धनुप की तरह टेढी होती जा रही हैं। वेहद तकलीफ। वोल भी नही पा रही है। जवडे वैठ गये हैं।

डाक्टर रगलाल ताज्जुव मे आ गये—कव गिरी ?

—कोई दो घण्टे हुए।

—वस, दो घण्टे हुए ?

—जी हाँ।

—अच्छा। इतनी जल्दी ? मन्ना, कहारो को वुला।

जीवन भी चुपचाप गुरु के साथ हो लिये थे।

रगलाल वावू को पता नही था, आधे रास्ते मे उन्होंने उनको देखा। पूछा—तुम भी चल रहे हो ? शायद उनकी इच्छा नही थी। उन्होने नाता तोडने के लिए ही वाते शुरू की थी और वीच ही में यह वुलाहट आ गई।

वह तस्वीर जीवन को आज भी साफ याद आ रही है। उन्नतिशील परिवार, राढ इलाके का कोठा घर, माटी का दुमजिला। साफ-सुथरा, फर्श पक्के का, दीवारें चूने से पुती हुई। तेज रोशनी जल रही थी—उस जमाने का खूबसूरत शेडवाला चौवीस वत्ती का टेवुल लैंप।

वहुत सारे लोग—अपने सगे—कुछ हटकर वैठे थे।

एक ओर विस्तर पर डोरी तने धनुष जैसी झुकी वह स्त्री पडी थी। उस पर भी ऊपर से जैसे कोई खीच रहा हो, कोई अदृश्य व्यक्ति मानो रीढ पर ठेहुना रोपकर वलवान हाथो से उसे और खीचकर टकार रहा हो, दोनो होठ उसके जकडे हुए। जवडे वैठ गये थे, यह ठीक है, फिर भी जीवन-दत्त समझ गये। वडे साहस से वह औरत विचारी यह असीम यन्त्रणा सहती चली जा रही थी। लम्वी उसाँसो में वह तीखी यन्त्रणा अपना परिचय दे रही थी। उसके साथ एक तरह की आवाज हो रही थी। उस आवाज को वह विचारी दवा नही पा रही थी।

डाक्टर रगलाल भी एकटक वीमार को देख रहे थे। शायद पाँच मिनट

के बाद पूछा—आज ही चोट लगी और दो ही घण्टे मे ऐसी हालत हो गई ?

—जी। दो घण्टा भी पूरा नही हुआ होगा।

डाक्टर रगलाल की भँवे सिकुड गईं—कहाँ ठोकर लगी है ? खून निकला है ?

—दाहने पाँव के अँगूठे में। लहू नही निकला है।

—डाक्टर रगलाल ने अँगूठे को टटोलकर देखा। हाथ लगाना था कि सारा घर मानो सिहर उठा। कठिन पीडा से रोगिणी एक रुँधा हुआ, भाषा-हीन आर्त्तनाद कर उठी। जीवन उस समय तक अचरज से बीमार को देख रहे थे—कैसा असीम धीरज ! नजरो मे उस पीडा का परिचय फूट उठा था। जबडे बैठ गये थे, कण्ठ से चीख निकलना चाह रही थी और उसे वे जी-जान से जब्त करने की कोशिश कर रही थी। इतनी पीडा के बावजूद होश था।

कही घाव नही, लहू का दाग नही···असह्य पीडा से टेढी होती जा रही थी। इतना ही नही, शरीर मे कही चिडिये का पखना छुला दीजिये, तो थरथर काँपने लगती। कण्ठ से आर्तस्वर निकल रहा था।

डाक्टर रगलाल ने नाडी देखी। रोगिणी पीडा से कातर शब्द कर उठी। शिराएँ इस कदर तन गई थी कि छूते ही उनके टूट जाने-जैसी पीडा उन्हे अधीर किये देती।

रगलाल ने भँवें सिकोड़ी। गम्भीर होकर कहा—तुम देखो तो जीवन नाडी-ज्ञान से तुम क्या समझते हो ?

डाक्टर रगलाल वहाँ से हटकर खडे हुए।

जीवनदत्त सम्हल कर बैठे। आशका से उनकी छाती एक बार धडक उठी। रगलाल शुक्राचार्य जैसे डाक्टर और उनके आगे परीक्षा की नौबत। नाडी के अनुभव का उन्हे मौका ही नही मिला, जो मिला, उससे यह भी नही समझ सके कि उसमें स्पंदन भी है या नही। डाक्टर रगलाल ने मणि-बन्ध को मोटी अँगुली से दबाकर नब्ज देखी—स्पंदन की संख्या गिनी, यह देखा कि रह-रह कर गतिभग होता है कि नही, बस। इससे ज्यादा कुछ देखने की कोशिश भी नही करते थे वे।

रोगिणी का हाथ बिछावन पर जैसे था, वैसे ही रहा, जीवन ने मणि-वन्ध पर अँगुली रक्खी। आँखे बन्द करके आस-पास की चीजो पर यवनिका डाल दी। लगभग नंगे पीपल के पेड़ की एक पतली-सी टहनी पर मात्र एक पत्ता काँप रहा है—धीमी हवा के झोके-से दृष्टि से अगोचर। उसी कम्पन को अनुभव करना है, मगर जरा-सी लापरवाही हुई कि वह पत्ता भी टूटकर गिर जायगा। वे अत्यन्त सूक्ष्म स्पर्शानुभूति को जगाकर बैठे, जैसे ध्यान-मग्न हो।

उनके पिताजी कहा करते थे—शक्ति का धर्म ही है कि व्यवहार में वह सूक्ष्म और तीक्ष्ण होती है। अनुभूति वडी सूक्ष्म शक्ति है। उसीको स्थूल कर दो तो गदा हो जाय।

क्षीण, वडे ही क्षीण स्पदन का उन्होने अनुभव किया। मानो कभी-कभी खो जाता हो।

इतने मे डाक्टर रंगलाल की आवाज कानो मे पहुँची—मिल रही है?

वडी सावधानी से गर्दन हिलाकर जीवनदत्त ने बताया—'मिल रही है।' इस तरह कहा कि गर्दन हिलाने के साथ हाथ न हिल जाय। शरीर के हिलने-डुलने से मन की किसी सूक्ष्म कम्पन-तरग को चोट न पहुँचे।

—समझ रहे हो कुछ? देखो, ठीक से देखो।

जीवन ने अब की कोई इशारा न किया। अपने मनोयोग को उन्होने और भी गम्भीर कर लेने की चेष्टा की। ज्ञान और वुद्धि की दीप-शिखा को और भी चमकाकर रोग की अन्तरात्मा को प्रत्यक्ष करना था।

उन्हे खुद भी पता न रहा कि उन्होने कब तक नाडी को देखा। मगर उन्हे ऐसा लगा, यह नाड़ी क्षीण चाहे जितनी भी हो, असाध्य नही है। ऊँची जगह से गिर पडने पर, या टूटी हड्डी जोडते वक्त अतिसार, अजीर्ण और वात में ऐसी होती है। किन्तु वह असाध्य नही होती। यहाँ एक साथ दो कारण आ जुटे है। नदी की वाढ में अचानक दूसरी नदी की धार आ मिली है और उसने शरीर रूपी खेत को तवाह कर दिया है। अजीर्ण रोग से शरीर जीर्ण था, उसी दशा में गिर पड़ने की वजह से ऐसा हुआ है। चोट सिर्फ हेतु है। इस समय जरूरत इस बात की है कि कुपित वायु के कारण स्नायु-शिरायें जो सिकुडने लगी हैं, उसे रोकना।

क्या देखा ? —डाक्टर रंगलाल ने पूछा और व्यग्रता से पूछा।

जी ?—जीवन ने विनयपूर्वक ही कहा था—नाड़ी से तो मुझे यह नहीं लगा कि यह बिल्कुल असाध्य है। —उन्होने अपना अनुमान बताया और कहा, यह धनुष्टंकार नही है।

गर्दन हिलाकर डाक्टर रंगलाल ने सम्मति जाहिर की। बोले—टिटैनस तो हर्गिज नही है, और बहुत संभव है, तुम जो कह रहे हो, वही ठीक है। तुम कह रहे हो असाध्य नही है, लेकिन साध्य कैसे हो ? जबड़े बैठ गये है—दवा अन्दर नही जा सकती। शरीर पर कही भी हाथ रखने की गुंजाइश नही। मालिश करना गैरमुमकिन है। ऐसे मे साध्य कैसे हो ?

डाक्टर रगलाल गर्दन हिलाते हुए बाहर निकल आये। बाहर एकांत में जीवन ने उनसे कहा—आप दवा दीजिये। चम्मच या सितुहे से बूंद-बूंद करके पिलाई जायगी। और अगर आप इजाजत दें तो मैं एक मुष्टियोग आजमाऊँ। उससे वायु के प्रकोप का यह प्रभाव धीरे-धीरे जाता रहेगा। स्नायुओ का यह तनाव भी दूर हो जायगा और जबड़े भी खुल जा सकते है।

—मुष्टियोग ?

—यह मुष्टियोग मेरे पितामह को एक संन्यासी से मिला था। ताड़ के निकलने वाले उन पत्तो को, जिन्हे अभी हवा और धूप के दर्शन नहीं मिले है, गरम पानी में सिझाना होगा और उसी पानी की सेंक देनी होगी।

—आजमा सकते हो तुम। मेरे लिए तो यह मरे हुए के बराबर है।

रोगी के अपनो से उन्होने कहा था—दवा दिये जाता हूँ। जीवन यहाँ रहा। मुझे कोई उम्मीद नजर नही आती। जीवन ना-उम्मीद नही है; वह कोशिश कर देखे। अगर हालत में सुधार हो और जबड़े खुल जायँ तो मुझे खबर दीजिये। जीवन एक मुष्टियोग का प्रयोग करेगा। उसे ठीक से करें। समझ गये ?

डाक्टर जीवन तमाम रात पास खड़े ही रहे।

गरम पानी की भाफ देने का इन्तजाम किया। रात बारह बजे के बाद वह असह्य पीड़ा कम हो आई। जीवन ने नब्ज टटोली। चेहरा खिल उठा। पूछा—जरा देखें तो, सेंक ले सकती है या नही ?

पानी निचोडकर गरम पानी के टुकड़े को खुद उन्होंने जतन से रोगिणी के हाथ पर रक्खा। देखते रहे कि शरीर काँपता है कि नही। नही काँपा। पूछा—सह सकेगी? तकलीफ़ तो होगी, मगर वर्दास्त करनी पडेगी।

असाधारण मरीज। मूर्त्तिमती धरती के समान सहने की शक्ति। उन्होने सहमति मे गर्दन हिलाई। जीवन को उत्साह मिला। खुद सेकने के लिए बैठ गये। बूंद-बूंद करके दवा दी जा रही थी। घटे भर बाद मरीज की हालत तजवीज करके उन्होने कहा—अब दवा जरा ज्यादा-ज्यादा देकर देखे तो! एक महिला उनके मुँह मे दवा दे रही थी। चुपचाप जीवन-मृत्यु की लडाई चल रही थी।

रात का तीसरा पहर गुजरा। जीवन डाक्टर ने गौर किया—जो शरीर प्रचड शक्ति से प्रत्यचा-खीचे हुए धनुष की तरह झुक गया था, वह धीरे-धीरे सीधा हो रहा है। सावधानी से डरती-डरती मरीज सीधी होने की कोशिश कर रही है और कोई गोया डोरी को ढीली करता जा रहा है।

जीवन ने मीठे गले से कहा—जरा कोशिश तो कर देखें, 'हाँ' कर सकती हैं या नही?

मुँह खोल सकी वह। बहुत थोडा खोल सकी, फिर भी जीभ को घुमाने फिराने की जगह मिल गई। दवे स्वर में वोली—कर सकती हूँ।

जीवन ने उन्हे दवा की एक पूरी खुराक पिला दी। सेंक का भार उनके लडको को सौपकर बोले—वाहर के वरामदे पर मेरे आराम करने का इन्तजाम कर दे। मै थोडा आराम करूँगा। मेरा खयाल है, सूर्योदय होते ही ये भली-चगी हो जायेंगी। कोई खतरा अब नही रहा।

जीवनदत्त ने भरोसे के साथ ऐसा कहा। वायु का समय वीत गया, अब अनुकूल समय आया है। आँधी थम गई है, अनुकूल हवा मे जैसे नाव आती है, जीवन की नाव अब किनारे लगेगी।

हुआ भी वही! उस दिन का आनन्द उनके जीवन का श्रेष्ठ आनन्द था! अपने गुरु रंगलाल को वे चकित कर सके थे।

आठ वज रहे होगे। रगलाल मरीजो को देख रहे थे। इस समय वे रोगियो से फीस नही लिया करते थे। मरीजों को देखते-देखते ही उन्होने

उत्सुक आँखों जीवन की ओर देखा।

कान से स्टैथिस्कोप उतारकर पूछा—बचा पाये उसे ?

—जी हाँ। खतरा टल गया।

—वाह। आज यही रहो। आराम करो।

दोपहर को खुद रोगिणी को देख आये। खुश होकर कहा—इसका बारह आना श्रेय तुम्हारा है जीवन। मेरी दवा खास कुछ नही थी। जो थी, उसका पावना चार आने से ज्यादा नही। अब उसके कॉलिक का इलाज करना है। मैंने कविराजी इलाज की राय दी है। तुम इसका प्रवन्ध करो।

उसी दिन रात को ब्राडी के रंगीन नशे में हलका हँसकर डाक्टर रंगलाल ने कहा था—कहा था, अफसोस हो रहा है जीवन, व्याह मैंने क्यों नही किया। फिर खिलखिला कर हँस पडे।

हँसना वन्द करके कहा—ऐसा क्यों कहा, जानते हो ?

जीवन स्नेह से अभिभूत हो पड़े थे। अभिभूत दशा में ही पूछा था—

—जी ?

तुम मेरी तुलना दैत्यगुरु शुक्राचार्य से करते हो, यह मैंने सुना है। मुझे इसमे गुस्सा नही आता। शुक्राचार्य विराट् पुरुष है—काने हुए तो क्या हुआ!—फिर हँसने लगे। बोले—आज मेरी इच्छा तुम्हारी तुलना कच से करने की हो रही है। ठठाकर हँस पड़े।—व्याह करता तो एक देवयानी मिलती !

पंद्रह

एक साल बाद डाक्टर रंगलाल ने उन्हें विदाई दी। अचानक प्रैक्टिस छोड़ दी। बोले—अब नहीं। अब सिर्फ पढ़ूँगा और सोचूँगा। जीवन और मृत्यु। लाइफ एन्ड डेथ, उनके पीछे जो प्रचंड शक्ति है, उसे समझने की कोशिश करूँगा। और देशी जड़ी-बूटी पर एक किताव लिखूँगा।

जीवन से उन्होंने कहा—तुम्हारा डाक्टरी सीखना शायद ठीक नही हुआ जीवन। ऐसे अनोखे मुष्टियोगों की गवेषणा करते ? मगर तुमसे वह

भी नहीं बनता। वैसा वैज्ञानिक मन नही है तुम्हारा। काम होने में ही तुम्हारी खुशी है। आखिर वह जिज्ञासा तुममें क्यो नही है ? जाने भी दो। तुम बल्कि डाक्टरी, कविराजी और मुष्टियोग—इन तीनो से अपनी ट्राइ-साइकिल तैयार करो। उसी पर सवार होकर शुरू करो अपना सफर। उन्होंने खुद एक स्टैथिस्कोप दिया उन्हे। थर्मामीटर नही दिया। और खरीदने की भी मनाही की। कहा—उसकी तुम्हे जरूरत नही।

इसके बाद भी जीवनदत्त कभी-कभी उनके पास जाते। डाक्टर रग-लाल उनसे मिला करते, लेकिन इलाज के बारे मे कोई चर्चा नही करते। पूछने पर कहते—वह भूल गया हूँ। अब मैने बाग लगाया है। पेड-पौधो के बारे में कुछ पूछना हो, तो पूछो।

उद्देश्य दरअसल बगीचे का नही था, डाक्टर अपनी समाधि की जगह तैयार कर रहे थे। मरने के बाद उन्हे वही गाडा गया था। उनकी यही इच्छा थी। वे वसीयत कर गये थे और उसमे यह लिखा था कि उन्हे बगीचे मे ही दफनाया जाय।

कमरे मे मरते समय एक बारगी अकेले थे। कोई नही था। यह भी उन्ही का निर्देश था। मन्ना दरवाजे पर पहरेदार था। जार-बेजार रोता रहा, मगर किसी को अदर नही जाने दिया। बोला—मुझसे यह नही होने का। बाबूजी का हुक्म नही है।

* * *

डाक्टर रगलाल के दिये हुए स्टैथिस्कोप से ही जीवन ने अग्रेजी इलाज शुरू किया। कविराजी को बिल्कुल छोड नही दिया। मुष्टियोग भी रहा। उसी साल चिकित्सालय का नाम रक्खा गया—आरोग्य-निकेतन।

नवग्राम मे उस समय हरीश डाक्टर ने फार्मेसी खोली। ब्रजलाल बाबू ने एक खैराती अस्पताल खोला—। नाम उसका रक्खा—पियर्सन चैरिटे-बुल डिसपेन्सरी।

एक होम्योपैथ भी आया था। पगला-सा था। अपना नाम बताया करता था—के. एम आरोरी यानी क्षेत्र मोहन बाड ुरी।

उसके दवाखाने का नाथ था—आरोरी होम्यो हॉल।

जीवन डाक्टर दवा के लिए जब कलकत्ते गये तो वहाँ से अपना साइन

वोर्ड लिखा लाये—आरोग्य-निकेतन।

मगर जो बिगडी अतर बहू कि कुछ न पूछिये !

जीवन डाक्टर ने अग्रेजी दवा, आलमारी, और-और चीजें खरीदने के लिए पाँच सौ रुपये मे पाँच बीघा जमीन बेची थी। गुस्सा इसी का था, यों वह रुपया जमा ही तो था एक प्रकार से।

गुस्से की वजह भी थी। जगत् महाशय के समय से अब तक लोगो के जिम्मे दवा की कीमत के तीन-चार हजार से भी ज्यादा रुपये बाकी पडे थे। उधार उन्ही के जिम्मे ज्यादा पडा था जिनकी हालत अच्छी थी। मगर इस जरूरत के समय उसमे के सौ रुपये से ज्यादा वसूल न हो सके।

खुद जीवन डाक्टर को भी इसका क्षोभ हुआ था। मगर अतर बहू के क्षोभ की और बात थी। उनका क्षोभ था डाक्टर पर और उस क्षोभ मे क्षमा नही थी। उनके बाहरी क्षोभ का आधार बहरहाल जो भी हो, क्षोभ के जाहिर होते ही उसका मूल कारण तुरत प्रकट हो गया और वह था, कभी न बुझने वाली चिता की तरह डाक्टर पर उनके असन्तोष की आग !

फिलहाल जमीन बिक्री की बात पर मन की वह आग लहक उठी थी। जहाँ तक याद आता है, बाकी रुपयो की अदायगी मे जो निकले, तो रुपया मिलना तो दूर रहा, कटु वाक्य सुनकर उनके मन में भी क्षोभ पैदा हुआ था। बाकी वाले बोले थे—पचास रुपये ? दवा की कीमत ? ऐसी कौन-सी दवा दी थी ? सोना भस्म कि मुक्ता भस्म कि माणिक भस्म—क्या दिया था ? पचास रुपये ? जड़ी-बूटी, यह-वह, और 'रससिन्दूर'—इसीके पचास रुपये ? जो जी में आया, वही लिख लिया ? राम-राम !

जीवन डाक्टर ने इसके बाद कोई प्रतिवाद नही किया। क्षुब्ध होकर लौट आये थे। लौटते हुए शिब्बन साह को बुलाकर घर ले आये थे। दवा-खाना उन्हे खोलना ही था। बड़ी-बडी उम्मीदें थी। बहुतेरी आकाक्षाएँ ! वे डाक्टर रगलाल की जगह लेंगे। रोगी के घर पहुँचते ही आशा की प्रसन्नता खिल पडेगी। नब्ज पकड़ेंगे कि मरीज का रोग सचेत हो उठेगा। नवग्राम के घमण्डी जमीदार आदर से झुकेंगे और केवल नवग्राम ही क्यो ? इलाके भर के जमीदार, धनी लोग विनत होगे। बडा घोडा खरीदेंगे। सफेद। एक पालकी भी रक्खेंगे। दूर की बुलाहट पर पालकी से जायेंगे।

इलाके की चौहद्दी कुछ मामूली नही—पूरब मे गगा के किनारे तक—कादी, पाँचथोपी। इधर अजय का किनारा। अगर कही कादी गये, तो भूपी से मिल लेगे। अपने इलाज से उसे चगा करने की आकाक्षा हो गई। जीवन मे अनेक आशाये। उनका बच्चा वनविहारी महज तीन साल का था तब। उसे वे डाक्टरी पढायेंगे—बहुत बडा डाक्टर बनायेगे। वह मेडिकल कॉलेज से एल एम एस पास करेगा।

आज जिन लोगो ने बाकी रुपये नही दिये, बल्कि ऊपर से झूठ का आरोप लगाया, वही लोग मुसीबत मे पडकर कभी उनके पास आयेंगे। और तब वे उन्हे—! न, लौटायेंगे नही, खोटी बात नही कहेंगे। जायेंगे उनके यहाँ। महाशय वश की मर्यादा को आँच न आने देगे।

रास्ते मे दाम-दर तै करके ही वे घर पहुँचे। बोले—शिब्बन, तुम जरा बैठो। मै कुछ खा लूँ। फिर निकलूँगा। कागज खरीदकर लिखना-पढना खत्म करके ही घर लौटूँगा। रजिस्ट्री के तो तीन महीने का समय है—

शिब्बन बोला—इस लिखा-पढी की ही ऐसी क्या जल्दी पडी है? आप ठहरे महाशय वश के, आज तो आप ही महाशय हैं। मै रुपये दे जाता हूँ—लिखा-पढी और रजिस्ट्री होती रहेगी।

उस दिन शाम को शिब्बन पाँच सौ रुपये पहुँचा गया था। और उधर घर में अतर बहू अगारे बिखेरने लगी थी। नसीब! नसीब! सब नसीब का खेल। माँ को खाया, बाप को खाया, छुटपन मे मामा-मामी की नौकरानी रही बे-पैसे की। यहाँ आई तो श्वसुर को खाया, सास को खा गई। अब अगर घर से लक्ष्मी कूच कर रही है तो क्या ताज्जुब है? मै दिव्य आँखो से सब देख रही हूँ—लडका है, लडकी है, सबका हाथ पकडकर राह-राह भीख माँगनी पडेगी मुझे। दर-दर भटकना पडेगा।

जीवनदत्त के भी दिमाग मे आग लहक उठी थी। बडी मुश्किल से अपने को जब्त करके उन्होने कहा था—छि अतर बहू, छि:!

—क्यो? इसमे छि की कौन-सी बात हुई? यही तो है, अपना नसीब। इसमें कहाँ पर झूठ है, बताओ! ससुर जिस समय गुजरे, उसके एक महीने पहले भी नई जमीन आई। और उनके मरे महज चार साल हुए—इसी बीच जमीन जाती रही।

—साल गुजरते-न-गुजरते मैं पाँच की जगह दस बीघे खरीदूँगा।

भला तुम नही खरीदोगे ! डाक्टर हुए तो इतने वडे, एकवारगी विला-यती पास साहव डाक्टर !—जीवन से और सहते न वना। डपटकर बोले—अतर वहू !

उस कण्ठस्वर से वह चमक उठी थी। कुछ क्षण सन्नाटे मे रही फिर रोना शुरू कर दिया। जीवन ने उस रोने की परवाह न की। रोने के लिए ही उसका जन्म हुआ है। रोये। मैं क्या करूँ ?

उसी रात वे कलकत्ते चल दिये थे।

कलकत्ते से दवा ले आये, आलमारी लाये और लाकर साइनवोर्ड लटका दिया—आरोग्य-निकेतन।

सिताब मुखर्जी ने गणेश की एक मूर्त्ति लाकर दी थी। मूर्त्ति के नीचे सुरेन्द्र ने सिन्दूर से लिख दिया था—श्री-श्री गणेशाय नमः।

पगला नेपाल ने उन्हे एक जिल्ददार नोटवुक लाकर दिया था—उस जमाने का नोटवुक। वह उस समय नवग्राम के धनी व्रजलाल वावू के यहाँ काम करता था। व्रजलाल वावू के दामाद इंजीनियर थे। नेपाल की उनसे मिताई थी। उन्ही से वह नोटवुक ले आया था। जीवन को देते हुए कहा था—ले, डाक्टर रगलाल की तरह सव नोट करके रखना। उस रोज वहाँ के सव डाक्टर भी आये थे। कृष्णलाल वावू के यहाँ का हरीश डाक्टर आया था। स्थानीय स्कूल का हेडमास्टर आया था। थाने का दरोगा आया था।

और शशि को साथ लेकर उसकी फूफी आई थी।

—वेटे !

अरे आप ! क्या वात है ?—जीवनदत्त को शका हुई, शशि को कुछ हुआ है।

—इलाज सीखने की वडी इच्छा है शशि की। पढना-लिखना तो हुआ नही। थोडा-वहुत सिखा दो तो किसी तरह रोटी कमायेगा।

निहायत कच्ची उमर का था शशि। उमर भी क्या होगी ? सत्रह-अठारह साल ! पगला-सा था। नेपाल जैसा। फिस्-फिस् हँसता रहता।

ओ, वह भी एक मनहर रात थी। खान-पान, क्रीडा-कौतुक, गाना-बजाना। इसी में पगला नेपाल एक अकल का काम कर बैठा। दवाओ

के साथ गुलाव जल की कई वोतले थी। चुराकर वह गुलाव जल लगाने जा रहा था। धोखे मे उसने फ्रेंच वार्निश लगा लिया। जीवनदत्त असवावो के लिए वार्निश ले आये थे। फिर पूछिये मत! वालो पर वार्निश की पुताई से जो दुर्गति हुई वेचारे की! लोगो की हँसी का ठिकाना न रहा। शशि सवसे ज्यादा हँसा। एक तो उमर ही कम थी, फिर उस दिन वह जीवन महाशय को रिझाने पर तुला था।

वह शशि आज उनके निदान की घोषणा पर आजिजी दिखा गया, खरा-खोटा कह गया! उन्होने लम्वी साँस छोडी।

—महाशय! किसी ने आवाज दी जैसे।

वूढे जीवनदत्त ने चौककर ताका। अँधेरे मे ही वैठे थे। अचानक रोशनी की हलकी छटा आई। कौन पुकार रहा है। ओ, अतीत की स्मृतियो मे वे एक वारगी डूव गये थे। अव लौटे वर्त्तमान मे। हाँ, कोई आया है। पुकार रहा है। उसके हाथ की लालटेन से नीचे की तरफ रोशनी पड़ रही है। ऊपर लालटेन के ऊपरी ढक्कन की छाया।

रतन वावू के यहाँ का आदमी तो नही? लेकिन उसके शरीर से जो वू निकल रही है, उससे लगता है, साधु-सन्यासी कोटि का कोई है। गाँजा, भसम, धूल-धुएँ से रुखे चमडे और वालो की गध सव मिलाकर एक खास तरह की गध आती है ऐसो के शरीर से। यह वू वैसी ही है। कदाचित चंडीथान के महथ का आदमी आया हो। वह वूढा सन्यासी कुछ दिनो से वीमार रह रहा है।

उनका अनुमान गलत नही निकला। महथ का चेला ही था वह। वोला—जरा साधु वावा को देखने के लिए चलना है।

—रात में?

—जी हाँ। शाम से लहू के दस्त लग रहे हैं। वडी तकलीफ है। काफी कमजोर हो गये हैं। वोले—एक वार जीवन को वुला दो! कम-से-कम पता तो चल जाय कि आज ही रात छुटकारा मिल जायगा। वह एक वार देख ले।

वूढे की जान वडी कठोर थी लेकिन। जाने कितनी वार ऐसी हालत हो चुकी। कम-से-कम वीस-पच्चीस वार। लहू के दस्त, हिचकी, नाडी का छूटना, सव दशा हो चुकी, फिर भी जिन्दा है।

सबकी जड है गाँजा। मगर गाँजा पीना वह हर्गिज नही छोड सकता। शराब पीता ही नही, ऐसी बात नही। पीता है, लेकिन कभी-कभी खास मौको पर। तन्त्र के नियमो की रक्षा करता है। शराब पीने को कहता है—'ढुकु-ढुकु'। जीवन ही उसे सदा से चगा करते रहे हैं। बुड्ढा अंग्रेजी दवा नही पीता। सुई से बेहद डरता है। महाशयों के टोटको पर ही उसे असीम आस्था है। मगर जब हालत बहुत बिगडती है, तभी जीवन को बुलवाता है। बुलवाकर कहता है—जरा देख तो भैया, बुलाहट पहुँची है क्या ? बुड्ढा फिर बीमार पडा है। आजकल बडी जल्दी-जल्दी बीमार पडने लगा है।

जीवन उठ खडे हुए।

बुढापा, पहर भर रात बीत चुकी साढे दस बज रहे होगे। सावन का महीना। दिन बडा होता है, रात छोटी। साढे दस क्यो न बज गये होंगे। मगर जाना ही पडेगा। कोई उपाय नही। चलो।

घर की ओर मुडकर पुकारा—अतर बहू !

—क्या है ? अन्दर से रूखे ही स्वर में जवाब दिया।

—जरा बाहर जाना पड रहा है। हो आऊँ।

—इतनी रात को कहाँ जाना है ? किसके यहाँ ? न', नही जा सकते। बहुतेरे डाक्टर पडे हैं। नई उम्र के हैं, पंडित हैं, डिग्री है। वे जाये। इस उम्र में तुम्हे—तुम्हे तो सिर्फ इसलिए बुलाने आये है कि फीस नही देनी पडेगी। मत जाओ।

उन्होने कोमल कठ से कहा—चडीथान के साधु बाबा बीमार हैं अतर बहू।

सक्षेप में ही बहुत बात हो गई। अतर बहू पल भर मे नर्म पड गई। और नर्म क्या, बिल्कुल दूसरी औरत ही हो गई जैसे। पूछा—साधु बाबा बीमार हैं ? क्या हुआ है उन्हे ?

—और क्या होगा, जो होता है। लहू के दस्त, पेट में दर्द।

—लगता है, इस बार बाबा शरीर त्यागेगे। उम्र भी तो कम नही हुई।

—देखो, क्या होता है। उन्होने तो यही कहला भेजा है कि जरा जीवन को बुलाओ। देखकर बतायें कि बुलावा आ गया कि नही।

स्तब्ध ग्राम-पथ के दोनो ओर के मकानो की दीवारो मे भारी जूते की

आवाज की प्रतिध्वनि उठाते हुए बूढे हाथी के समान जीवन डाक्टर चल पडे, टोले को पारकर, एक छोटे-से बैहार को पारकर नवग्राम के पूर्वी छोर पर जगलो से घिरे मठिया की तरफ चले। बरसात की रात, मगर अनावृष्टि की बरसात—फिर भी रास्ते मे फिसलन थी, सम्हलकर चलना पडता था। साधु बाबा का नौजवान चेला लालटेन लेकर तेज चल रहा था—डाक्टर लगभग अँधेरे में ही चल रहे थे। उन्हे कोई असुविधा नही हो रही थी। अधकार मे राह टटोलकर चलने की आदत थी उन्हे। मगर उन्हे अडचन यह पड रही थी कि उस नौजवान साधु के हाथ की लालटेन हिल रही थी। जब-तब आँखो मे चौध लग जाती। डाक्टर ने कहा—भई भोलानाथ, लालटेन को इस तरह से हिलाओ मत। चलो, चलो, रुको मत। लालटेन मत हिलाओ।

—कौन, महाशय जी ?

मठिया के प्रवेश-पथ के पास से ही आवाज आई। पूछने वाला घने जगल के अँधेरे मे खडा था। आवाज पहचानी-पहचानी-सी, फिर भी वे समझ न सके। वे अनमने-से साधु बाबा की ही बात सोचते जा रहे थे। बहुत दिनो से साधु बाबा यहाँ हैं। बहुतेरी स्मृतियाँ हैं उनकी।

—मै रोगी को सुला आया हूँ।—हँसने लगा वह।

शशि !—डाक्टर चौक उठे—कौन-सी दवा देकर सुलाया ?

पगला शशि हँसने लगा—असुर का इलाज आसुरिक ही होता है।

—मगर तुझे बुलाया किसने ?

—अचानक आ निकला था। रामहरि को देखने के लिए गलाइ चडी गया था। बेतरह बीमार है। दोपहर को आपको बुलाने के लिए गया था। लेकिन मोती की माँ के निदान की बात में उलझकर भूल गया। वहू ने बताया नही आपको ? कल एक बार वही चलना पड़ेगा आपको।

—कल की कल देखी जायगी। अभी यहाँ की बताओ। तुमने महथ का कौन-सा इलाज किया ? उन्हे उत्कठा हो रही थी, क्योकि शशि को वे पहचानते थे।

शशि ने कहा—यहाँ की क्या बताऊँ, लौटते हुए मै मठिया में गया। भीगकर सर्वांग सर्द पड गया था और जाने कैसा तो लग रहा था। सोचा

चलो, देवी को प्रणाम कर लूँ और महंथ से पास दम लगा लूँ गाँजे का।

—अच्छा, फिर ?

—मैने देखा, वुड्ढा हाँफ रहा है। लहू के दस्त आये। नाड़ी गायब है, दर्द से तडप रहा है। सुना तीन दिनो से गाँजा नही पिया। मैंने कहा, जाना तो है ही बाबा, फिर बगैर गाँजा के क्यो, लगा लो एक दम।—बोला, नही-नही, तू शैतान है। इस गाँजे ने ही तो मेरी मौत के लिए राह बनाई है—बस, दो कदम बाकी रहा है। मौत आये, उतना भी पूरा हो जायगा। अब गाँजा क्यों!—मैंने एक डोज कैनविसिण्डिका दिया। साथ ही था। मैं लेता हूँ। लेते ही दो-तीन मिनट मे सो गया वुड्ढा। देखिये, नब्ज भी चलने लगी होगी। गाँजे का आदी ठहरा!—वह ही-ही हँसने लगा।

सोलह

पगले ने गलत नहीं बताया। कैनविसिण्डिका के एक डोज से बूढे साधु को नीद आ गई और चूँकि नीद आ गई, इसलिए दर्द भी कम हो गया, नाड़ी भी धडकने लगी। लेकिन नाडी से कुछ समझ नही सके डाक्टर।

साधु-सन्यासी की धातु-प्रकृति भी जुदा होती है, आम लोगो से अलग। आचार और नियमित जीवन का प्रभाव शरीर पर स्पष्ट झलकता है। सहने की शक्ति वेहद वढ जाती है और दवा भी अनोखे ढग से काम करती है। बिना जोती हुई जमीन में बीयो की तरह। लिहाजा कुछ कहा तो नही जा सकता। मौत पास आकर भी इनकी प्राण-शक्ति से पराजित होकर लौट जाती है। जीवन डाक्टर ने ऐसा बहुत बार देखा है। उनके पिता भी उन्हे यह बता गये हैं। कहा था—इन साधु-सन्यासियो की नाडी देखकर आसानी से कुछ राय मत दे बैठना। पहले यह समझ लेना कि वे खुद शरीर त्यागना चाहते हैं या नही। मनुष्य की अपनी इच्छा जबर्दस्त काम करती है। जो रोगी हताश हो पडते हैं, उन्हे बचाना मुश्किल हो जाता है। साधुओ को हताशा नही होती, उनका मन मजबूत होता है, इच्छा-शक्ति

प्रवल होती है। और मृत्यु को अपनाने की इच्छा वही कर सकते हैं।

साधु गहरी नीद सो रहे थे। डाक्टर ने कहा—भोलानाथ, रात जरा चौकन्ना रहना। अगर नीद टूट जाय तो पीने के लिए पानी देना। पानी के सिवा और कुछ भी नही। मै सुबह आऊँगा।

शशि खूब हँसने लगा। गर्व का अन्त न रहा। डाक्टर ने उसे अपने साथ लिया—चल, साथ ही चले।

शशि साथ हो लिया—चलिये। आपको रामहरि का हाल कह रक्खूँ। कल आपको चलना ही पडेगा।

डाक्टर वोले—देख शशि, आज तूने जो किया, फिर कभी ऐसा मत करना।

—क्या ? यह वूढे को जो कैनेविसिन्डिका दिया ?

—हाँ, तूने वडी भारी गलती की है।

—अगर गलती ही की है तो फिर वुड्ढा अच्छा कैसे हो गया ?

—कैसे हुआ, यह वताना कठिन है। उन्हे गाँजे की लत थी, गाँजा न मिलने से भी एक तरह की पीडा रोग की पीडा से मिली हुई थी—वह पीड़ा जाती रही और नशे का प्रभाव तो है ही। नीद टूटने पर हो सकता है कि हालत नाजुक हो उठे।

—उहूँ। मै कहे देता हूँ, वुड्ढा भला-चगा हो जायगा। मैने कड़े वाउडी की वेटी को न्यूमोनिया मे किरासन तेल की मालिश कराई थी, आप सव लोग मुझे गालियाँ दे रहे थे, मगर वह अच्छी तो हो गई थी।

डाक्टर ने डाँट वताई—शशि, यह सव पागलपन छोड। कभी आफत मे पड जायगा।

—मै पागल हूँ ?

—वेशक तू पागल है। अव मुझे इसमे कोई शुवहा नही।

जरा देर चुप रहकर शशि ने कहा— खैर। पागल ही सही। खैर। फिर जरा देर चुप रहा। फिर वोला—कल मगर रामहरि को देखने के लिए जाना पडेगा। आज ही कह रखता हूँ।

—रामहरि के क्या हुआ है ?

—वह सात दूने चौदह मामला है। जायगा अव की।

—जायगा तो मेरी खीचा-तानी क्यो ? जाय। इस उमर मे तो चल ही देने मे कल्याण है। या उस लुहार वुढिया की तरह जाने की इच्छा नही है ? वेचारे के लिए स्वाभाविक ही है यह इच्छा। इस उमर मे उसने अभी-अभी माला-चन्दन[1] किया है।

—हाँ। लडकी कोई पच्चीस साल की है। लेकिन जीने की उम्मीद पर वह आपको नही वुला रहा है। निदान के लिए वुलाया है। आप यह वता दें कि वह ज्ञान-गगा जाये या नही। ज्ञान-गगा की वडी इच्छा है उसे—इच्छा है उद्धारणपुर या कटवा जाने की। लेकिन वहाँ ज्यादा दिन जी जाना पड़े तो आफत। कट्रोल का जमाना। इस जिले का चावल उस जिले नही जा सकता। और खरीदकर खाना पडे तो वहुत खर्च पडेगा।

शशि वड़वडाता रहा।

—चोर का राज्य है, सव चोर हैं। एडी से चोटी तक चोर। राजा चोर, रानी चोर, दीवान चोर, सव चोर। हम चोर तुम चोर—सव चोर। चावल की कीमत है सोलह रुपये ? फिर इस जिले मे सोलह है तो उस जिले मे छव्वीस—दो कदम और वढ जाइये कि छत्तीस, और एक कदम आगे चालीस।

महाशय सारी वातें ठीक से सुन नही रहे थे। वे सोच रहे थे। सोच रहे थे रामहरि की वात। शशि आप अपने वकता जा रहा था। अचानक जरा रुका और फिर शुरू कर दिया, अवकी दूसरा सुर पकड़ा। देश की आलोचना छोडकर वह सरस रसिकता से रसिक हो उठा। वोला रामहरि को ज्ञानगगा जाना है, लेकिन वे-हिसावी का काम करके वह नही जाना चाहता। आपको वताना पडेगा कि वह कै दिनो तक जिन्दा रहेगा। उसी हिसाव से वह चावल-दाल अपने साथ ले जायगा। कहता है, आपका क्या ? अगर दस दिन ज्यादा जी जाना पडा, तो चावल कम पड जायगा। वैसे में वहाँ नकद दाम पर खरीदने की नौवत आ जायगी। और कही पाँच दिन कम ही जी सका, तो चावल वच जायगा। वह चावल लौटाकर घर नही लाया जा सकता। वेचना पडेगा। यह सव कुछ दूसरो के हाथो होगा। पाँच

---

१. बंगाल के वैष्णवो की शादी की परिपाटी।

भूत मिलकर सब तहस-नहस कर देंगे। जरा सोच देखे आप, उसे हिसाब समझने का मौका न मिलेगा। कम्बख्त कहता क्या है कि फिर मुझे स्वर्ग जाकर भी चैन नही मिलने का। मैने कहा, तेरा स्वर्ग ही जाना नही होगा, रथ पर सवार हुआ नही कि चिल्ला उठेगा—रोको, रोको। मै उतरूँगा।—रथ को लौटाकर टुकुर-टुकुर ताकता रहेगा तू। मुसीबत है। गंगा के तटपर मरने से भूत हो सकने की भी गुजाइश नही। भूत होता तो उसे भरोसा रहता। लोगो की गर्दन उमेठ सकता। पीछे-पीछे जाता और नकिया कर कहता—दे, मेरे रुपये लौटा दे।

शशि हे-हें करके हँसने लगा।

सावन की अँधेरी रात मे दोनो चले जा रहे थे।

बूढे जीवन महाशय मन मे रामहरि की बात सोच रहे थे। ऐसा कैसे हुआ? ऐसा होता कैसे है? रामहरि ज्ञान-गगा जाना चाहता है? बिना विचारे, बिना इच्छा किये वैराग्य योग, मुक्ति-पिपासा जग सकती है? मै मरूँगा, यह सोचकर खुशी मन से सब कुछ को छोडकर अभिसार मे जाने के समान जाया जा सकता है? दिनो तक इन्तजार के बाद जवान वधू के स्वामी के यहाँ जाने के समय बाप के घर के घरौदे को छोडकर जाने के समान जाया जा सकता है?

रामहरि शुरू में टपका चोर था, बाद मे पक्का धान का चोर बना; दो बार जेल हो आया। अचानक उसमें घनघोर परिवर्त्तन आ गया। माथे मे तिलक लगाकर, गले मे कण्ठी माला पहनकर वह धार्मिक बन गया। जीविका कमाने के लिए उसने व्यवसाय शुरू किया। सब्जी का व्यवसाय। खेतो से सब्जी खरीदकर हाटो के चक्कर काटने लगा। यानी फेरी वाला हो गया। यो बात वह सदा ज्यादा किया करता था, व्यवसाय मे भी वही बना। क्रिया-कर्म के मौको पर लोगो के यहाँ तरकारी पहुँचाता। लेकिन उसका असली व्यापार इसकी आड में चलता था। वह नदी के किनारे जगल मे वैदो के मृत सजीवनी चुलाने की तरह शराब चुलाया करता था। बोतलो और टिनो मे शराब भरकर जगल मे गाड रखता। इतना ही नही, नदी के चौर पर गाँजा भी उपजाया करता था और उसकी काफी खपत थी। तान्त्रिको का देश ठहरा, मन्त्र हो चाहे न हो, जाने या न जाने, लोग

कारण करते थे। कपाल पर सेन्दूर का टीका, मुँह में काली की रट और कारणाकरण में सैंकडे निन्यानवे आदमी सिद्ध पुरुष । लिहाजा हजार निमित्त से सिद्ध पुरुष के प्रसाद के चलते रामहरि के लक्ष्मी-लाभ के लिए सिंहद्वार चाहे न हो, एक प्रशस्त फाटक जरूर खुल गया था। उद्योगी रामहरि को हिम्मत खूब थी। नवग्राम थाने के सामने से सब्जी की टोकरी में कम-से-कम चार-पाँच बोतल लेकर तो वह हँसते हुए निकल जाता था। हाट में उसे बेचा करता। कोंहडे का मुँह काटकर अन्दर का बीया और गूदा निकाल देता और उसी में भरकर गाँजा ले जाता। अपने घर मे उसने देवता की प्रतिष्ठा की थी। नीम की लकडी की गौरहरि मूर्ति। लेकिन देवता का पँजरा फूला हुआ था। बडा दिमाग लगाकर, छाती और पीठ की तरफ दो अलग लकडियाँ जोडकर अन्दर काफी पोली जगह छोड दी थी और यह दैवीगुदाम उसने पक्के मिस्त्री से बनवाई थी। पीठ की तरफ जो लकडी थी, उसके ऊपर-नीचे ढक्कन वाला मुँह बना रक्खा था। ऊपर से उसमें गाँजा भर दिया करता और जब जैसी जरूरत होती, निकाला करता। इससे भी एक कदम आगे बढाकर रामहरिदास जी बन बैठा था। तरकारी का रोजगार बन्द करके उसने मोदी की दूकान खोली, धान खरीदने का कारोबार शुरू किया। भेख लिया, दास की उपाधि ली और कई गाँवों में वह एक गण्यमान्य व्यक्ति गिना जाने लगा। केवल भेख ही नही धारण किया उसने, अपनी स्वजाती या स्त्री और पुत्र को निकाल बाहर कर एक ऊँचे वर्ण की विधवा को लाकर उसने वैष्णवी बनाया। इसके बाद शायद और दो-तीन स्त्रियों को लाया। उनमें से दो तो उपले बीनती हुई मर गईं और उन्हें शान्ति मिली। एक भाग गई। अन्तिम स्त्री जवान है और वही अभी रामहरि की प्रिय है।

वही रामहरि स्वेच्छा से मृत्यु के लिए गगा तट पर जाना चाहता है? मुक्ति चाहता है? अचरज की बात है! शशि ने तम्बाकू पीकर हुक्के को हाथ में थामकर कहा—कल हो लीजिये एक बार। मैंने कह रक्खा है, पाँच रुपये देने पड़ेंगे। डाक्टर बाबू अब रोगी देखने नही जाते। कह-सुनकर किसी तरह उन्हें राजी करूँगा। तैयार हो गया वह।

ये बातें डाक्टर साहब के कानो नही पहुँची। उनका मनोरथ दौड़ रहा

था। पलक मारते युगान्तर पार कर पीछे की परिक्रमा खत्म करके अव शायद वर्तमान मे आकर रुका। वे हँसे।

शशि ने पूछा—हँस रहे है आप ?

जीवन वोले—नवग्राम के वावू साहव का इलाज के लिए कलकत्ता जाना तुझे याद है ?

—क्यो नही। पालकी पर निकले, सभी ठाकुर वाडियो मे प्रणाम किया—

—वह तो ज्ञान-गगा की यात्रा थी। उनमे तो जो भी गये, सवने वही किया। वह नही—

—फिर ?

—वावू साहव काशी नही गये, उद्धारणपुर के गगातट पर नही गये, गये कहाँ कि कलकत्ता। गंगा कलकत्ते मे भी है। लेकिन वे मरने को गगा-तट नही गये, गये इलाज कराने।

—क्यो न जाये भला ? विशाल सम्पत्ति, अगाध धन, इतना यश—इन्हे छोड़कर कोई मरना भी चाहता है कही ?

—वही तो कह रहा हूँ मै। उन्हे मरने की वासना नही हुई—रामहरि के हुई है। रामहरि ने जितना कुछ किया है, उसके लिहाज से वह वहुत है। वहुत। फिर जवान वीवी।

शशि हा वाये डाक्टर की ओर ताकता रहा।

जीवन महाशय ने हँसकर कहा—हा किये ताक मत। जा, अपने घर जा। रात वहुत वीत चुकी है। कल जाऊँगा। कह देना, दोपहर के वाद गाडी भेज दे।

शशि ने कहा—हम दोरास्ते पर आ पहुँचे क्या ?

—हाँ।

यहाँ से कच्चे रास्ते से जीवन डाक्टर अपने गाँव जायेंगे और पक्की सडक से शशि जायगा नवग्राम।

जीवन महाशय वोले—गाँजा-भाँग कम पिया कर शशि। शशि ने सिर खुजलाया। लज्जित होकर कहा—वरावर यही सोचता हूँ, परन्तु वनता नही।—फिर व्यस्त होकर वोला—चलिए, आपको पहुँचा दूं। वडा

अँधेरा है। रात भी वहुत हो चुकी है।

—अभागा कही का! मुझे नही पहुँचाना पडेगा। घर जा। मुझे घर पहुँचायगा? तुझे कौन पहुँचायगा फिर? तुरत उन्हे कोई वात याद आई और चौककर बोले—अच्छा चल, मै ही तुझे तेरे घर पहुँचा दूं।

याद आया, कई महीने पहले शशि की माँ गुजर गई है। शायद अकेले जाते हुए उसे डर लगता है। अभी-अभी उसने कहा था कि गलाई चडी से लौटते हुए वदन छमछम कर रहा था यानी उसे डर लगा था। ओ, इसी-लिए वह मठिया मे जा घुसा था।

जीवन महाशय बोले—सच-सच वता, वात क्या है। डर लगा है?

शशि सिर खुजाने लगा—यानी, यानी कि मेरी माँ

—तेरी माँ?

—लगता है, वह आस-पास घूमती रहती है। लगता नही, सच ही घूमती-फिरती रहती है।

जीवन महाशय वोले—रहने भी दे। चल।

शशि ने कहा—माँ मुझे डराती नही, राह छेंक लेती है। तमाम राह शशि वकता गया। रामहरि की वात ही ज्यादा वोला। निदान वता कर एक वार छोकरे डाक्टर को दिखा दें आप!

सत्रह

डाक्टर प्रद्योत वरामदे में बैठा था। सावन की वदली घिरी रात। ऊमस में अन्दर सो सकना असम्भव था, तिसपर ऊपर से मच्छडदानी। लोग कहते, मच्छडदानी न रहे तो मच्छड उठा ले भागें। इन दिनो मच्छड कम होगये हैं। पिछले साल से डी डी टी. कैंपेन (अभियान) शुरू हो गया है। फिर भी प्रद्योत मच्छडदानी के विना नही सोता। एक भी मच्छड काट सकता है आखिर, और वह मच्छड एनाफिलिस हो सकता है और उसीमे मैलिग-नेंट मलेरिया के वीजाणु हो सकते हैं। मच्छडदानी डालकर बाहर सोया

जा सकता है, लेकिन मजु यानी डाक्टर की स्त्री को डर लगता है, एक तो शहर की लडकी, तिस पर छुटपन मे इधर के चोर-डकैत, भूत-प्रेत साँप-विच्छू की बहुतेरी कहानियाँ सुनी है उसने। मजु की माँ का ननिहाल इधर ही था। माँ के नाना जिन्दा नही है और उन्हे कोई मामा भी नही था कभी। मजु की माँ अपने माँ-बाप की इकलौती लडकी थी। मजु की पर-नानी जरूर जीवित है। कान की बहरी। आँख से भी बहुत कम देख पाती है। वही कहानी कहा करती। भूत-प्रेत पर मजु को विश्वास नही, तर्क भी करती, मगर अँधेरे मे कुछ खटका होने से ही चौक उठती। इसलिए बन्द कमरे मे सोना पडता। अन्दर दाखिल होने के पहले जितनी देर बनता, प्रद्योत बाहर बैठा रहता। बीच-बीच मे फ्लीट छिडक देता। चारो तरफ बरामदे के नीचे सीढी पर कार्बोलिक एसिड से भिगोये पुआल पडे होते। डी डी टी और ब्लीचिंग पावडर छिडका रहता। जिसमे साँप, विच्छू, कीड़े न आ सकें।

आज सुबह से ही उसका दिमाग खराब है। रतन बाबू के लडके विपिन बाबू के केस मे हरेन डाक्टर ने उसे बुलवाया था। अचानक हिचकी का उपसर्ग जुट गया है। कल सवेरे बुलवाया था। बडी पीड़ादायक दशा। लग रहा था, किसी भी घडी बुरी-से-बुरी स्थिति आ सकती है। हरेन से राय करके जो करना था, किया जा चुका है, मगर कोई नतीजा नही निकला। आज सुबह किशोर ने प्रस्ताव रखा—जीवन महाशय को बुलवाये। यह प्रस्ताव शायद रतन बाबू का था, पर किशोर के द्वारा कराया गया था। प्रद्योत क्या कहे ? आप-ही-आप मनमें उत्तर मिल गया था—अच्छा तो है, उन्ही को दिखाये। मै लेकिन अब नही आऊँगा। लेकिन उस बात के कहने के पहले ही किशोर ने कहा था—आप लेकिन यह नही कह सकते कि मै नही आऊँगा। यह मेरा अनुरोध है। मैंने सुना है कि आप उनसे असन्तुष्ट हैं। मगर वे ऐसे आदमी नही है।

डाक्टर प्रद्योत ने कहा था—इसमे सन्तोष-असन्तोष का क्या है ? रोगी आपका है, जी चाहे ओझा को भी बुलवा सकते हैं।

—आप कुछ ज्यादा कह रहे हैं प्रद्योत बाबू। नही क्या ? अपनी मर्यादा को बडी न लगाये। सत्य को बडा मानें और फिर बतायें। —किशोर बाबू

आदमी जरा विचित्र है। उनमे कही कुछ ऐसा है, जिसका लघन नही किया जा सकता। इलाके भर के लोग उन्हे मानते हैं। आजीवन देश की सेवा ही ही करते आ रहे हैं। जब से प्रद्योत डाक्टर यहाँ आये हैं, तब से उनका छोटा-बडा कितना जो एहसान ले चुके है, पता नही। इधर के लोग आसान नही हैं। मजु आधुनिका है, साइकिल पर घूमती है। लोग इसकी निन्दा करके ही चुप नही बैठे रहे, ऊपर शिकायत तक लिख भेजी। प्रद्योत का मित्र सदर मे लेबोरेटरी चलाता है, बीच-बीच मे आता है। उसके बारे मे अफवाह उडाई और दरखास्त मे यह भी लिखा। दवा चोरी करने का इल-जाम। कई मरीजों का उसने वहाँ खून जाँच के लिए भेजा था दरखास्त में इस पर भी बहुत-बहुत बाते थी। और जवानी जो कहते थे, उसका तो अन्त ही न था। अजीब-अजीब सवाल।—दोनो दोस्तो ने मिलकर खूब जाल फैलाया है। लहू की जाँच, थूक की जाँच, पेशाब की जाँच—बस, लाखो रुपये। आधा-आधा। चोर-चोर मौसेरे भाई। अब तक इतनी जाँच नही होती थी तो क्या बीमारी अच्छी नही होती थी ?

इन अपवादो से किशोर ने ही उसे उबारा था। वे अपने मन से ही इसमे जुट पडे थे।

जब यहाँ रहते हैं, किशोर बाबू दोनो बेला उन लोगो की खोज-खबर लेते हैं। इसीलिए उनके अनुरोध पर डाक्टर को सोचना पडा। उन्होंने कहा था—आप भली तरह सोच देखे। यहाँ एक कीमती जिन्दगी का सवाल है। फिर महाशय को हम आप लोगो से ऊपर रखने के लिए तो बुला नही रहे हैं। बुला रहे हैं आप लोगो की मदद के लिए। वे जरा नाडी देखेंगे और इस हिचकी को रोकने की चेष्टा करेंगे। इसमे आप लोगों की कोई शर्त हो तो उनसे कह दे। हरेन, चारुबाबू—ये लोग तो इस पर एतराज नही कर रहे हैं।

हरेन और चारुबाबू सम्मति दे गये हैं। चारु बाबू कह गये हैं—बडी अच्छी बात है। उनके पास बहुत-से मुष्टियोग हैं। अव्यर्थ। हाँ, अफीम से बनी कोई दवा न दे।

सो लाचार प्रद्योत को अपनी राय देनी पडी है। वह यह न कह सका कि उनकी वे जानें, मेरी अपनी राय है। मैं अब नही आऊँगा। लेकिन इससे

उसके मन मे कैसी तो एक बेचैनी सुवह से ही घुमड रही है। वह जीवन महाशय के भेपज के नतीजे के लिए उत्कठित है। एक वात की उसे खुशी है कि यहाँ महाशय ने निदान नही सुनाया। उन लोगो की गलती नही वताई। शायद वूढ़े ने वह आलोचना सुनी है, जो चारु वावू से हुई थी। फिर भी उसे वेचैनी थी। उनकी दवा के फल के लिए वेचैनी। इसीके साथ मानो कुछ और भी है। आज उसके हाथ से एक रोगी भी मारा गया है।

जाने क्या हो गया ?

सवसे ज्यादा तकलीफ दे रही है उसे अपनी भ्रान्ति। सुवह रोगी को देखकर वह कह आया था—वहुत अच्छा है। वुखार उतर गया है। कल पथ्य दूंगा। कुछ ड्राउजी-सा था, रोगी आच्छन्न की नाई पडा था। डाक्टर ने उसे कमजोरी समझा था। वच्चा था। रोगी की वुढिया दादी ने कहा था—आप अच्छा कैसे कह रहे हैं डाक्टर साहव ? वच्चा रोगी—अगर वुखार नही है, ठीक है तो फिर सिर क्यो नही उठाता ? खाना कहाँ चाहता है ?

डाक्टर कह आया था—सिर उठायेगा। कमजोर है। कमजोरी दूर हो जाने से ठीक हो जायगा। और, हमारी वातो पर यकीन करना चाहिए। न करेगी तो इलाज कैसे करूँगा।

तीसरे पहर उसकी हालत वदतर हो गई। डाक्टर वहाँ दौडा गया। दो-तीन सुइयाँ दी। मगर—। साँझ को लडका चल वसा।

डाक्टर सोच रहा था। गलती कहाँ हुई ? शुरू से आखिर तक ? डायगनोसिस ?

हाँ। मलेरिया समझा था। था मैलिगनेट मलेरिया। वही गलती हो गई। कुनैन की सुई भी दी थी उसने।

उससे लाभ तो हुआ, पर टिका नही। इंटरवेनस देना चाहिए था। अचानक चौककर डाक्टर कुर्सी पर सीधे तनकर वैठ गये। कुनैन का ऐंपुल·· ? उसमे कुनैन ही तो था ? विनय की दुकान से लिया था। आज के दवा वेचनेवालो का एतवार नही। नही। ये सव कुछ कर सकते हैं। कलकत्ते मे नकली दवा वनाने के एक गुप्त और वडे कारखाने की वात जाहिर हो चुकी थी। उससे दवा वेचने वालो की साँठ-गाँठ का भी पता चला था। विनय

एक ही काइयाँ है। उसकी मीठी जवान की मिसाल नही। सच्चाई और साधुता के ऐसे कौशल दिखा सकता है कि उसके लिए मनमे आदर आता है। मगर प्रद्योत खुद डाक्टर ठहरा। विनय की मुनाफाखोरी उसकी अजानी नही। दवा की जिस खुराक का खर्च चार पैसे पडता हो, उसका दाम वह चार आने रखा करता है। इस विषय मे उसके साथ बाते भी हो चुकी हैं। लेकिन विनय ने सदा सविनय उसे यही समझाने की कोशिश की है कि इतने से कम पर वेचने मे तो घाटा अवश्यभावी है! विनय साल-माल जमीन मोल लेता रहा है। उसका धन-संचय लगातार वढता ही जा रहा है। अब सुनते हैं कि कोई नया मकान वनाने जा रहा है। विनय के लिए तो सव-कुछ सम्भव है! प्रद्योत के दोनो कान उत्तप्त हो उठे। मन मे एक असहाय क्षोभ जग पडा। आराम-कुरसी से उठकर उसने दवाओ की अपनी पेटी निकाली। उसमे से एक ऐंपुल निकालकर तोड डाली। जीभ पर जरा-सा चखकर उसका स्वाद देखा। सारा मुँह कडवा-कडवा हो गया।

डाक्टर ने दीर्घ निश्वास लिया और फिर वाहर आ बैठा। पुकारा—मजु, मजु! —मजु अर्थात् मजुला, डाक्टर की स्त्री हैं।

मजु रसोई घर मे थी। रसोइया कुछ भी नही जानता। पक्का गँवार-है-गँवार। जिसे निरा गँवई देहाती कहते हैं ना, वही। साग सुखा के चर्चरी, केले के तने के गूदे मे वडियाँ और सहिजन या सहिजन और वडियो मे केले के तने का गूदा,—ले-देके यही तीन तरकारियाँ ही वह वनाना जानता है। चौथी कोई नही। इनके अलावा कुछ वनाता है तो वस 'खेंडो' नाम की एक चीज। यह असल मे कच्चे तरबूजे की तरकारी होती है। कढाई की दाल और चटनी भी वह वना लेता है। खटाई को खटाई नही कहता, 'टॅक' कहता है। कच्ची मछली मे खटाई डालकर पकाता है। वडी मछलियो की मूँडी खटाई के साथ खाता है। अच्छी रसोई का अर्थ तो उसके लिए वस एक ही है, तेल-मसालो का श्राद्ध। डिस्पेप्सिया के रोग को उपजाने के लिए उत्तम खाद डालकर जमीन तैयार करना इसी को कहते हैं! डाक्टर की रुचि आधुनिक है—स्टू, सूप, उवला, सलाद, वस! इनके तो नाम भी यह गँवई-गँवार आज तक याद नही कर पाया। लाचार मजु खुद ही खडी होकर वतला दिया करती है। इतना ही नही, एकाध 'कोर्स' तो वह खुद

अपने हाथो से पका लिया करती है, यह तो मजु का अपना शौक है।

मजु!—डाक्टर ने फिर पुकारा।

आई!—इस बार मजु ने जवाब दिया।

इस दीर्घांगी तरुणी की रूपश्री बडी ही मधुर और कोमल है। तिसपर उसकी वर्ण-छटा मे एक ऐसी दीप्ति भी है, जो यो सामान्यत नही मिला करती, जो साधारण नही है। मजु को देखकर आँखें जुडी जाती है, प्राणो मे एक मोह-सा जग पडता है। मजु प्राणचचला आधुनिका है। गाने गा सकती है, इण्टर तक पढी है, डाक्टर ने साइकिल की सवारी करना सिखला दिया, बन्दूक चलाना सिखला दिया है।

क्या कहते हो? हमारी रसोई चली जायगी!

—क्या पका रही हो?

टॅक!—मजु हँसने लगी। कच्ची मछली की टॅक! मुझे तो बहुत ही पसन्द है! पहले बूढी दादी इसका जिक्र किया करती थीं तो हम खूब हँसा करती थी। मगर होता है यह टॅक भी अलबत्ता! सरसों की छौंक देकर और कच्चा तेल डालकर वह मजेदार बनता है कि मत पूछिये!

—यही बैठो तुम। अकेले अच्छा नही लगता। कोई गाना-वाना सुनाओ। तबियत बडी कैसी-कैसी तो हो रही है। उनका बच्चा कैसे एक दम अचानक मर गया!

रसोइया कह रहा था—

क्या कह रहा था?—डाक्टर फिर जरा तेज पडे।

—कह रहा था, जितने मुँह उतनी बाते हो रही है।

फिर भी ठीक ही है। जितने मुँह, उससे दसगुनी बाते तो नही की जा रही ना?—प्रद्योत हँसा।

—सुबह तुम यह तो नही कह आये थे कि कल पथ्य दूँगा?

—हाँ, क्यो?

लोग अधिकतर यही बात कर रहे हैं। सुना चारु बाबू कह रहे थे, अरे बाबा, मृत्यु की बात कभी कोई कह भी सका है? उसके ऊपर डाक्टर का कोई बस नही चलता।

मेघ घिरे अपार आसमान मे अचानक बिजली कौंध गई। दूर पर गम्भीर गर्जन हुआ मेघों का। बहुत दूर पर। मीठे स्वर से डाक्टर बोला—सावन की रात का गीत गाओ कोई।

—अभी आई। उसे कह आऊँ, मछली उतार लेगा।

—जल जाने दो। अगर वह न उतारे तो कल उसे निकाल देना।

गुनगुन स्वर में मंजु ने शुरू किया—

आओ हे घनश्याम।…
अपनी तापहर, तृषाहर सुधा बरसाओ
आकाश की ओर ताक रही है वियोगिन।

डाक्टर ने आँखें बन्द कर ली। बारिश हो तो सच ही देश जुडा जाये। जान बचे। मजु ने गीत समाप्त करके कहा—आई मैं। रेडियो लगा देती हूँ। गीत आ रहे हैं। उसका जी रसोई घर की तरफ लगा था। छौंकना उसे बहुत अच्छा लगता है। डाक्टर आँखें बन्द किये पडा रहा—तो चारु-बाबू ने उसके खिलाफ नही कहा। मोटा-मोटी आदमी अच्छा है बुड्ढा।

रेडियो पर यन्त्र सगीत चल रहा था। गिटार। सुर काँप रहा था, रो रहा था।

चारु बाबू लेकिन डिफिटेड सोलजर हैं। भलेमानस ने हार मान ली। साधु भाषा में जिसे कहते हैं आत्मसमर्पण करना। सरेंडर कर दिया। —मौत की बात कोई नही बता सकता। उस पर डाक्टर का एक नही चल सकता।

चल क्यो नही सकता, चल सकता है, अगर यहाँ कोई क्लिनिक रहता! शुरू में ही अगर ब्लड को कलचर कर लिया जा सकता और असली दवा यदि मिलती! फिर कौन कह सकता है कि वह लड़का नही जी सकता?

रेडियो पर गीत गूँज उठा—मरण रे, तुहूँ मम श्याम समान!—डाक्टर ने भँवे सिकोडी। रेडियो को बन्द कर दिया।

अहाते के फाटक पर भोपू बजा। साइकिल रिक्शा का भोपू। कौन आया? क्यों आया? बुलाहट है कोई? डाक्टर खड़ा हो गया। अन्दर से स्टोव-लैंप उठा लाया। दो रिक्शे थे। एक में थी एक युवती। बेहोश-सी

लगी। धाई उसे पकड़े थी। सारा बदन कपडे से ढँका। धाई के कन्धे पर सर लुढका-सा पडा। अव्यक्त यन्त्रणा से रह-रहकर नीली पडती जा रही थी, चेहरा वदरग हुआ जा रहा था। कपडे के नीचे लहू के निशान। प्रसव का केस। शायद पहली सतान। हाथ मे रोशनी लिये डाक्टर नीचे उतर पडा। आवाज दी—हरिहर वावू ! मिस दास !

कपाउण्डर और मिड्वाइफ। लेकिन वह कौन ? पिछले रिक्शे पर ? स्थूलकाय ? जीवन महाशय ?

जीवन महाशय शशि को उसके घर छोडने गये थे। शशि के पडोसी गणेश भट्टाचार्य की आसन्न-प्रसवा वेटी सौर घर मे वेहोश हो गई थी। जीवन महाशय को देखते ही लोगो ने शरण ली। मगर ऐसी दशा मे वे क्या करे। लेकिन उन लोगो ने एक न सुनी। कहा—जरा नब्ज देखे।

—नब्ज देखकर क्या करूँगा मै ? पहले तो प्रसव कराना जरूरी है। ऐसे को वुलाओ, जो प्रसव कराते हों, या अस्पताल ले जाओ। लोग उसे अस्पताल ले आये। लेकिन जीवन महाशय को नही छोडा।

—आप साथ रहिये ! उफ्, लडकी के वाप की वह विनती !

महाशय उसे टाल न सके।

*　　　*　　　*

कमीज का अस्तीन समेट कर, नियम से हाथ धोकर, बीजाणुशोधक लोशन लगाये कमरे मे जाते हुए डाक्टर ठिठक गया।

—आपने प्रसव के लिये कोई दवा दी है ?

—नही।

—गुड। आप इन्तजार करेगे ?

—हाँ। रहूँगा। महाशय हँसे।

—अच्छा, इस कुर्सी पर वैठिये। नब्ज देखकर कुछ कहा है ?

—नाडी देखी है मैंने। लेकिन—

कमरे में से घुटी हुई चीख उठी।

डाक्टर वावू ! —आवाज मिस दास की थी।

प्रद्योत कमरे मे चला गया। जीवन महाशय सावन के मेघ घिरे आकाश की ओर ताकते हुए खडे ही रहे। उन्हे कैसा तो लगने लगा। क्यो आये आखिर ? घर वालो की खाहिश थी कि प्रसव के वाद वे एकवार नाडी देखे। लेकिन प्रसव होने ही मे अगर—।

बैठिये महाशय जी। —हरिहर कपाउडर ने कहा। वह रुई, गरम पानी, वैडेज वगैरह लेकर जा रहा था।

मजे मे हूँ। —महाशय हँसे। प्रसविनी की उमर तीस होगी। फिक्र हो रही थी उन्हे।

महाशय चौक उठे। मारे दर्द के वह फिर कराह उठी। उसके साथ कुछ और। हाँ, ठीक। वच्चे की आवाज। जय परमा प्रकृति ! जय गोविन्द !

हरिहर वावू गरम पानी। रुई। —डाक्टर प्रद्योत की गम्भीर आवाज सुनाई पडी। बडा धीर, बडा शान्त-गम्भीर।

*   *   *

तौलिये से हाथ पोछते हुए डाक्टर वाहर निकल आया। लडकी के पिता ने कहा—डाक्टर वावू !

—सेफ डेलिवरी हुई। लडका है।

—नीहार होश मे आ गई ?

—नही।

—होश नही आया ?

—नही। आप घर जाइये। जो करना होगा, मै करूँगा। यहाँ रहकर शोर मचाने से कोई लाभ न होगा। घर जाइये। और आप भी वैठे ही हैं ? क्षमा करेंगे, अभी मै नाडी नही देखने दूंगा। आप अन्यथा न सोचें। जहाँ तक मेरी जानकारी है, नाडी ठीक ही है—इतना ही कह सकता हूँ।

डाक्टर अपने क्वार्टर मे चले गये।

—मजु !

—चाय छान रही हूँ।

—Many thanks, many many thanks · जल्दी ले आओ।

चाय पीकर फिर देखूंगा। जरूरत होगी, तो सुई दूंगा।

—क्या मरीज का'

—Not good, लेकिन बुरा भी नही। But she must live जरूर ।

चाय की चुसकी लेकर कहा—पहले तो मुझे बडा गुस्सा आया। That old man, famous महाशय of this place—वह भी साथ आया था।

—कोई बुरी बात तो नही कही ?

—नही। घर वाले चाह रहे थे कि महाशय एक बार उसकी नाडी देखे। मैंने कहा—न, नाडी मैं नही देखने दूंगा।

—उन्हे चाय पीने के लिए क्यो नही बुलाया ?

—बुलाना उचित था, क्यो ?

—बेशक उचित था।

चाय की प्याली रखकर प्रद्योत ने सिगरेट सुलगाई और अस्पताल की ओर चला। एक और सुई देनी थी। महाशय जा चुके थे। बेजा हुआ। टन्-टन् घडी बोल उठी। रात के ग्यारह बजे। रोगी के कमरे से यन्त्रणा की धीमी-धीमी आवाज आ रही थी। दर्द कम होता आ रहा था। She must live वह जरूर बचेगी। हरिहर बाहर निकला।

—कैसी है ?

—अच्छी ही लग रही है।

—अच्छी ही रहेगी। सुई निकालिये।

डाक्टर ने सिरिज को उठाकर रोशनी के सामने रखा। लगा, फाटक खुला। फिर कौन आया ?···

हरिहर आगे बढा। रतन बाबू के यहाँ का आदमी।

—हिचकी ज्यादा बढ गई क्या ?

—जी नही। शहर से वह रपट आई है। बाबू ने कहा, जा, अगर डाक्टर साहब जगे हुए हो, तो दे देना।

विपिन बाबू की युरिन-रिपोर्ट थी।

—हिचकी कैसी है ?

—वैसी ही है। कुछ कम लगती है।

कोई क्लिनिक अगर यहाँ होता ! एक्सरे तो विजली के विना नही हो सकता। मयूराक्षी योजना को तो अभी कई साल लगेंगे। उसके पहले लक्षण नही दीखता। मगर एक क्लिनिक हो जाय। वहुतो की जान वचे ! यह लड़की भला वच सकती थी ? अस्पताल, ये औजार नही होते तो यह भी मर जाती।

नब्ज देखकर गर्दन हिलाते हुए जीवन महाशय कहते, कर क्या सकते हो ? इस पर किसका वश है, तुम्हारा कि मेरा ?

अठारह

जीवनदत्त जव वुलाहट पर वाहर गये होते और अतर वहू को नीद आती तो नीद से वे कहती—पलको में इन्तजार करो, आँखो में मत आओ। उन्हें आ लेने दो, फिर आना। लेटी-लेटी भी जवर्दस्ती जगी रहती। पलकें झिपने लगती, वे वार-वार आँखें फैलाती। करवट वदलती, राधागोविन्द का नाम लेती; ज्यादा नीद लगने लगती, तो उठकर पान-तम्वाकू खाती; वीच-वीच में नन्दू को झिडकती, नन्दू को नही तो उसके नाक वजने को। कहती—नाक लोगो की वजती है, मगर ऐसी वजती है कही ? सिंगा भी मात है। और सिर्फ सिंगा ? लगता है, आरे से कोई दरवाजा चीर रहा है। नंदू-अरे-नंदू। सुनते हो, जरा नाक कम वजाओ वावा। करवट वदल ले।

जव जीवन महाशय आ जाते तो इन मसलों का हल हो जाता। कभी पूछतीं—कैसा देखा ? कभी कुछ पूछती ही नही, सो रहती और जरा ही देर में उनकी नाक वजने लगती।

नंदू उठ वैठता। हाथ-मुँह धोने को पानी देता। हाथ-मुँह धोकर वे जप करने वैठते। फिर खुद ढके भोजन को निकालकर खाने वैठ जाते। नन्दू चिलम भर लाता। उन्हें हुक्का देकर आप जाकर सो जाता। खा-पीकर महाशय तम्वाकू पीते और सोचते रहते। रोग की वात। कभी-कभी मौत की वात।

किसी दिन कोई रोगी मर जाता तो लौटकर इलाज की बात सोचने लगते। अगर कोई खामी झलकती, तो लम्बी सांस लेते या मौत की ही बात सोचते। फिर गोविन्द का नाम लेकर सो जाते। जिस दिन कही से बुलाहट नही आती, सिताब के साथ शतरज खेला करते और चाल की सोचा करते। एक से पहले कभी सोना नही होता। आज कोई दो-ढाई बज रहे थे।

*   ˈ   *

सवेरे जगने मे देर हुई।

सबसे पहले गणेश भट्टाचार्य की लडकी की याद आई। कैसी है वह ? वे नदू को बुलाने गये। उससे पूछ देखेंगे, उनके यहाँ से कोई आया था कि नही। लेकिन दूसरे ही दम आम-आकार से ज्यादा बडा उनका माथा हिल उठा—नही-नही। और वे गम्भीर स्वर से बोल पडे—जय गोविन्द ! परमानन्द !

हाथ जोडकर खिडकी मे बाहर की ओर देखते हुए कहा—नमः विवस्वते ब्रह्मण भास्वते विष्णुतेजसे जगत सवित्रे-सवित्रे कर्मदायिने—नम !

मौत निश्चित है। दुनिया मे इतना चचल होने से कैसे चलेगा ? मुंह-हाथ धोया। चाय पीने बैठे। नन्दू तम्बाकू भरकर हुक्का देने लगा। बोला—आज आठ-दस मरीज आये हैं।

कश खीचकर महाशय ने पूछा—नवग्राम के कोई आये है ? गणेश भट्टाचार्य ?

—जी, नही तो।

—हूँ। कुछ क्षुण्ण-से हुए। कल रात बारह बजे तक गणेश के लिए बैठा रहा। डाक्टर प्रद्योत के व्यग सुने और आज उसने खबर तक नही भेजी ? समझ गये, लडकी स्वस्थ है। उत्कठा जाती रही, सो भूल गया। उन्होने लम्बी उसाँस छोडी।

नन्दू ने कहा—वह दाँतू बाबाजी हल्ला मचा रहा है।

—क्यो, कल ही तो उसे हफ्ते भर की दवा दी है ?

—आज भी आया है। बगैर गाँजे के नीद नही आती। कह रहा है, या तो गाँजा पीने को कह दें या नीद की दवा दे। जब से आया है, सिर पर आसमान उठाये है।

—उठाने दो आसमान सिर पर। परानी मियाँ आया है ?

—नही। अभी तक तो नही आया। आयेगा अब।

लगातार कई दम लगाकर उन्होने हुक्का नन्दू को दिया। उठ खड़े हुए। कहा—रोगियो को बैठने के लिए कहना। मैं जरा मह्थ को देखने मठिया जा रहा हूँ।

सिर खुजाकर नन्दू बोला—इन्हे देखकर नुस्खा दे जाते।

परानी मियाँ गाडी लेकर आयगा, रास्ते में मह्थ को देख लेते। महाशय ने कोई उत्तर न दिया। उन्होने सफेद फतुआ पहना, जेब में स्टैथिस्कोप को डाला और पुराना जूता पहनने लगे। नन्दू बुदबुदाता हुआ निकल आया—सब बैरागी ' ' अहले सुबह मुफत में रोगी देखना। ऐसे में रोगी क्यो आये ? हूँ। इसी से तो यह हाल हुआ। मित्तिर बाबू ने तो कही दिया था—वैसे आदमी का कहना झूठ हो सकता है ?

महाशय हँसे। याद आ गया। नदू जमीदार गौरहरि मित्तिर की बात कह रहा है। नन्दू उस समय वही पर था। सुना था उसने।

उस समय आरोग्य-निकेतन में भीड होती थी ! उफ। चालीस, पचास, साठ रोगी।

जगत् महाशय के मरने के बाद आरोग्य-निकेतन की हालत पतली हो गई थी। जीवन महाशय उसे फिर समृद्धि पर ले आये थे। रंगलाल डाक्टर से सीखकर उन्होंने ऐलोपैथी, कविराजी, मुष्टियोग—तीनो शुरू कर दिया था। गुरु रगलाल ने मजाक से कहा था—ट्राइसाइकिल पर सवार हो तुम। किस्मत से वह ट्राइसाइकिल मोटर वाला वैन बन गई थी।

दवाखाने का नाम आरोग्य-निकेतन पड चुका था। तीन-तीन आदमी काम करते थे। ऐलोपैथी का कम्पाउडर था शशि। शशि कहा करताथा—गम्-गम् प्रैक्टिस !

और जब जरा पी लेता, तो कहता—महाशय की प्रैक्टिस'' हप्—डोगी-कहो-डोगी, चल रही है। सन्-सन्-सन् 'शराब वह कम्बख्त छुटपन से ही पीता है। नवग्राम के ब्राह्मण परिवार का लड़का। उसकी शरारत के कारण वाइनम गैलेसिया और मृत सजीवनी सुरा को छिपाकर रखना

पडता था। नजर पडी नही कि लगाया बोतल मे मुँह। थोडी पी लेता, कहता—रगलाल दि सेकण्ड हूँ।

जीवन महाशय की अभिलाषा जाने बिना ही बोलता।

बढाकर कहता। वह अभिलाषा पूरी नही हुई। रगलाल की जगह भरने की साध्य या भाग्य उन्हे नही, रगलाल का स्थान पूर्ण नही हो सकता। फिर भी कीर्णाहर के नवीन डाक्टर ने किसी हद तक कमी पूरी की थी। हाँ, सदर मे एक अच्छे खासे डाक्टर आये है। स्वर्णपदक प्राप्त। मेडिकल कालेज के छात्र। मगर किस्मत की भी विचित्र करतूत, ऐसे डाक्टर की भी बदनामी फैली थी। लोग कहते थे, जिस रोगी को गोकुल डाक्टर छू देगें, वह नही बच सकता। डाक्टर गोकुल भी जीवन महाशय का आदर करते थे। पूछते थे—नाडी मे आपने क्या पाया ? और उनकी बात ध्यान से सुनते।

नवग्राम मे उस समय उनका सानी नही था।

जगत् महाशय की मृत्यु के बाद वहाँ तीन डाक्टर आये। पहला पास डाक्टर था दुर्गादास कुडु। कुडु उनका मजाक बनाया करते थे—घास-पात, जडी-बूटी वाला डाक्टर।

उसके बाद डाक्टर हरीश। हरीश उन्हे मानता था। किशोर की बीमारी में डायगनोसिस मे उनसे मात खाकर सबक सीख गया था।

और एक पगला आया था। खेतू बाडुरी। वह अपने आप को के एम ब्रारोरी होम्योपैथ कहता था। आदमी भला था, सीधा, लेकिन पागल था। चुरट पीता था। चीनी कोट पहनता था। कहा करता—एक ओर है डाक्टर हरीश और दूसरी ओर मै। बीच मे बेचारा दत्त दबकर मर गया ! उसे अब कोई बुलायेगा भला ? केवल नाड़ी देखने के लिए कौन बुलायेगा उसे। हुँ।

सबसे पहले आया था दुर्गादास कुडु। चला भी गया था वही सबसे पहले। कहता गया था—यह नही जानता था कि यह बैल-भेड का इलाका है। इन लोगो की बीमारी घास-पात और जडी-बूटी से अच्छी होती है। अग्रेजी दवा इन्हे नही लगती।

उसके बाद बाडुरी भी भागा। रहा केवल हरीश। ब्रजलाल बाबू ने

चूँकि नवग्राम में खैराती अस्पताल खोला, इसीलिए वह टिक सका। वहीं नौकरी कर ली। तनखा थी तीस रुपये।

उसी समय जीवनदत्त महाशय हुए। आमदनी कितनी थी, याद नही। हिसाब नही था। रात-दिन में कभी विश्राम नहीं। रोगी देखते-देखते दिन के तीन बज जाते।

हिन्दू, ब्राह्मण, कायस्थ, शूद्र, मुसलमान, पुराने महू गाँव के खाँ, पच्छिम टोले के शेख, व्यापारी टोले के व्यापारी, मीर टोले के मियाँ भी बैलगाडी पर आये। डोली, गाडी, पालकी। उस दिन पाँच कोस दूर से गौरहरि मित्र भी आये थे। पालकी में ही खुले दरवाजे से आसमान की ओर ताकते हुए पड़े रहे।

आरोग्य-निकेतन में उस दिन सबसे पहले वही पहुँचे थे। रात जब कुछ रह गई थी, तो जीवन महाशय बुलाहट पर नवग्राम गये हुए थे। पस्त हुए जमीदार राय-चौधुरी के एक शरीक के यहाँ। बूढे गौराग राय चौधुरी अचानक बेहोश हो गये थे। संन्यास रोग। उन्हे देखने के बाद ही फुर्सत नहीं मिली, उनकी गगा-यात्रा के प्रबन्ध में भी रहना पडा। उन्हें गगातट के लिए पालकी से रवाना करके तब लौटे थे। आकर उन्होंने पहले ही मित्र महाशय को देखा था। उनसे क्षमा भी माँगी थी।

—आपको बडी देर तक इन्तजार करना पडा। लेकिन क्या करूँ? यहाँ के पुराने जमीदार 'पुराना वश'''

थोडे मे उन्हे ब्योरा भी बताना पडा था।

मित्तिर ने हँसकर कहा था—दत्त बाबू, नही-नही, दत्त नही, आप अपने पैतृक महाशय-उपाधि के अधिकारी हुए हैं। यह आपके योग्य है। मगर जरा इधर भी ध्यान रक्खा करें। दूर-दूर से मरीज आते हैं। ये मरीज ही आपकी लक्ष्मी के दूत हैं। अगर इन्हे कष्ट होगा, इनकी उपेक्षा होगी तो ये तभी तक आपके पास आयेंगे जबतक कि कोई दूसरा मिल नही जाता।

जीवन महाशय को बात लग गई थी। लगने-जैसी बात भी थी। उन्होने कहा था—उपेक्षा मै नही करता हूँ। उपेक्षा करूँ तो मुझे पाप होगा। उनकी तकलीफ दूर करने की भी अपनी साध्य-भर कोशिश मै करता हूँ।

करते भी थे। देर हो जाती तो रोगियो को शरबत, साबूदाना, बार्ली दिया करते थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मदद से आरोग्य-निकेतन के पास कुआँ

खुदवाया था।

उस समय वहाँ चूडा, गुड, वताशे की एक दूकान भी लगती थी। महाशय ने यह भी कहा था—रही यश की वात। वह भगवान की दया है। गुरु की शिक्षा और अपनी निष्ठा। सवसे वडी वात है भाग्य। जव तक रहना है, रहेगा। खैर। वतायें कि आपको क्या तकलीफ है? अव तक जो इलाज करते रहे हैं, उन्होने कोई व्याधि वताई थी?

मित्तिर ने कहा—जरा एकान्त मिलता तो अच्छा था।

नन्दू ही वहाँ था। महाशय ने उसे वाहर चले जाने को कहा। अकेले में मित्तिर ने कहा—वेटी के यहाँ जा रहा हूँ। आखिरी दिनो मे उसी के कन्धे का वोझा वनना पडा। मुकदमे मे जमीन-जायदाद स्वाहा हो गई। स्त्री गुजर गई। किसी कदर गुजारा चला रहा था। पीता वहुत हूँ। डर से खुदकुशी नही कर सकता। लडकी अपने घर लिवा ले जा रही है जाने के सिवा मेरे लिए भी दूसरा चारा नही। रास्ते में सोचा, जरा आप से नाडी दिखाता चलूं। वडी तारीफ सुन रक्खी है आपकी। कव तक जीना है, वता देंगे? देखिये तो नाडी।

डाक्टर सिटपिटा गये थे। वोले—मुझमें वह सामर्थ्य नही। शायद ही कही किसी मे यह सामर्थ्य होती है। रोग कोई नही—

—रोग है। लीवर का दर्द। दिमाग खराव हो जाता है।

वह तो पीने का नतीजा है। पीने से वढेगा। छोड देने से कम हो जायगा।

चुपचाप दो रुपये रखकर गौरहरि उठ खडे हुए। जीवन ने कहा—क्षमा करे, फीस मै नही लूंगा। यहाँ रोगियो से फीस लेने की पुश्तैनी मुमानियत है।

किसी गरीव मरीज को मदद के रूप मे ये रुपये दे दीजियेगा। मैं तो फीस दिये विना किसी को दिखाया नही करता। —गोरे, लम्वे, कुछ झुके-झुके-से वे वूढे भलेमानस धीरे-धीरे चले गये थे। उनकी तसवीर साफ याद आ रही है। उन्ही के वाद अभिजात वश के दूसरे रोगी आये थे, ठाकुर टोले के मियाँ।

—आदाव अर्ज डाक्टर साहव।

—आदाव, आदाव। आइये। क्या हाल है?

कभी ये मियाँ इस इलाके के मालिक थे—नवाव। ठाकुर का खिताव

था। कहते हैं, ये योगी वंश के थे। मुसलमान समाज के गुरु। लेकिन बाद मे दौलत और ऐश-मौज के चलते भ्रष्ट हो गये। गये-गुजरे हो गये। यही नही, वंश-धारा तक रोगग्रस्त हो गई।

जरा देर चुप रहकर मियाँ ने कहा—बदन पर चकत्ते-जैसे धब्बे पड रहे हैं डाक्टर साहब। पीठ मे, जाँघ मे—यह देखिये, घुटने के पास।—मियाँ ने पाजामा उठाकर दिखाया।

डाक्टर ने तीखी निगाहो उनकी तरफ देखा। देखा, कान के किनारे, नाक की नोक लाल हो आई है। खानदानी रोग। वही बीमारी। कई लोग इससे मर चुके। दो अभी भी शिकार है।

—डाक्टर साहब!

—कहिये ठाकुर साहब।

—बताइये।

—क्या बताऊँ? रोग खानदानी ही लगता है। आप अभी से इलाज शुरू कर दें। मेरे पास इसकी दवा नही है। बनाने में बडा खर्च पडता है। कलकत्ते से मँगवा लें।

—लिख दीजिये आप।

मियाँ साहब चल दिये।

नारायणपुर के भट्टाचार्य बाबू डोली पर आये थे।

बहुमूत्र की बीमारी।

बहुमूत्र, नया बुखार, पुराना बुखार, संग्रहणी, अतिसार।

प्रह्लाद बागदी आया था। खूँखार लठैत। डकैत। जेल गया हुआ मुजरिम।

—क्यो प्रह्लाद! तुझे फिर क्या हो गया?

—और क्या होगा। वही—

—फिर?

उपदंश हुआ था। यह शायद पाँचवी बार।

सिर खुजाते हुए प्रह्लाद ने कहा—जो बैल कुखाद्य खाता है, वह भी उसे भूल सकता है महाशय!

नवग्राम के बडे बाबू के यहाँ जाना था। बुलाहट आई थी। उनके छोटे

लड़के को प्रमेह हुआ है। यह चौथी बार है।

उन्हे अपने पिता की बात याद आई। वे कहा करते थे, बेटे, आयु और परमायु दो बाते है, केवल बात की बात नही। इसका गहरा अर्थ है। दीर्घ आयु होने से परमायु नही होती और छोटी आयु हो तो वह परमायु नही होती, ऐसी बात नही है। परमायु उसीकी है, जिसका जीवन आनन्दमय है। नही तो, शक्ति की चर्चा करके भी आदमी दीर्घायु होता है। रोग को झेल सकता है, जीत सकता है।

यह बात उन्होने इसी प्रह्लाद के बारे में कही थी। पहली बार जो उसे उपदश हुआ, उसने इलाज ही नही कराया। यह-वह मलहम लगाकर रह गया। दुबारे हुआ, तो जगत् महाशय के पास पहुँचा। उसी समय उन्होने कहा था। प्रह्लाद ने जवाब दिया था—लोगो ने दिखलाने के लिए कहा, इसलिए आ गया। नही तो यह आप ही ठीक हो जाता है।

प्रह्लाद आज भी जिन्दा है। आज भी लाठी भाँजता फिरता है। आज भी बाहे ठोककर जमीन पर पछाड खाता है।

प्रह्लाद कहता—इलाज से जरा जल्दी छूटता है। दीजिये दवा।

उस समय सुई नही चली थी। वह दवा लेता, डाक्टर को प्रणाम करता और चला जाता। एक रुपया फीस भी देता।

डाक्टर कहते—यह क्या प्रह्लाद। फीस कैसी ? घर पर मै फीस लेता कब हूँ ?

—जी, डाक्टर को दक्षिणा दिये बिना बीमारी नही जाती। इसके बाद थोडे ही देना है !

जमाने का हिसाब है। मगर बही मे प्रह्लाद के नाम कुछ भी बाकी नही है।

एक-एक कर रोगी आते-जाते। आमाशय, बुखार, मलेरिया, रेमिटेंट, टाइफायेड, सग्रहणी—और भी जाने क्या-क्या रोग। किसी-किसी के एक ही साथ कई बीमारियाँ—अजीब खिचडी। उनके पिता कहा करते थे—शास्त्र मे ऐसा लिखा है कि सभी रोगो का आज तक ईजाद नही हुआ है। अगर कोई बीमारी नई लगे तो इसलिए शर्म या संकोच मत मानो कि उसका नाम नही जानते। लक्षण देखकर इलाज करना। पच्छिमी चिकित्सा-

विज्ञान की कृपा से अब लेबोरेटरी हो गई है। पिछले दिनों हमें यह सहूलियत नहीं थी।

उसके बाद पैकारी जाँच शुरू हो जाती। पैकारी नाम शशि का रक्खा हुआ है।

रोगियो के आने पर कम्पाउडर उन्हे दो हिस्सो मे बाँट देते थे। आसान बीमारी वालो को एक तरफ बैठाते। हाँ, अगर धनी-मानी होते, तो रोग आसान होने पर भी डाक्टर पहले उन्ही को देखते।

पैकारी जाँच के समय डाक्टर बाहर बरामदे मे आ बैठते। पास में गोपाल कम्पाउडर खड़ा रहता। जाँच के बाद डाक्टर नुस्खा बताते। कम्पा-उंडर लिखा करता। शशि पर उन्हे भरोसा नही था। खामखयाली आदमी ठहरा, क्या लिखते जाने क्या लिख दे? फिर यह मुसीबत थी कि लिखने के बाद शशि खुद उसे नहीं पढ सकता था। डाक्टर से ही आकर पूछा करता कि आपने क्या बताया है, बता दीजिये। पढ नही पा रहा हूँ।

उस समय आरोग्य-निकेतन में तीन कम्पाउडर थे। शशि, गोपाल और कविराजी विभाग मे पिता जी के समय का बूढा चरणदाससिंह। वह कमरे में बैठा-बैठा सोंठ, आँवला चूरता रहता, मोदक बनाता, पुड़िया बाँधता।

डाक्टर कहते जाते—कुइनाइन सलफेट १० ग्रेन, ऐसिड साइट्रिक २० ग्रेन, मैगसल्फ १० ग्रेन, स्पिरिट एनेसी ५ बूँद, पानी—।

पहले एक डोज कैस्टर आयल पिला दो।

एक रोगी जाता। दूसरा आता। आमाशय। बहुत दिनो से है। डाक्टर बुलाते—चरणसिंह।—चरणसिंह आकर खड़ा होता। इसे 'रेसा खाद्मे' दे दीजिये। यह उनका मुष्टियोग था।

—तुम्हे क्या हुआ है?

—सूरज फोड। सूर्योदय के साथ सिर दुखना शुरू होता है, सूरज डूबने पर छूटता है। तमाम दिन बेहद दर्द।

जीवन महाशय फिर पुकारते—सिंह जी! —उन्हे 'सूरजफोड' का मुष्टि-योग बताकर फिर दूसरे को देखने लगते। चौक उठते।

तीन दिन से धीमा ज्वर। एक ज्वरी। सिर मे दर्द। देखूँ, जीभ दिखाओ। जीभ देखकर वे सतर्क-से हो जाते। जरा नाडी दिखाओ। नाडी

को दबाकर देखने लगते। —दूसरा हाथ देना।

—हुँ। जरा इस मेज पर लेट जाओ। पेट देख लूँ। हूँ।

—तुम जरा सावधानी से रहो। लगता है, दो दिन दौडना पडेगा। समझा?

—नाडी मे रोग के कठिन होने का आभास मिल रहा है। अभी साफ नही हुआ। लेकिन लग रहा है। जीभ और पेट मे भी यही लगता है। टाइफयेड।

—गोपाल! लाना कागज।

नुस्खा लिखाते-लिखाते डाक्टर ने बताया—गौर करना कि बुखार दो बार चढता-उतरता है या नही।

—जी नही। बुखार ज्यादा नही रहता। बस ऐसा ही, एकसाँ—

—नही-नही, खूब अच्छी तरह से गौर करो। चावल, मुरमुरा मत खाना। साबूदाना। दूध। उहूँ, दूध भी नही। और इस तरह अपने मत आओ। समझा? समय लगेगा।

बस। गाँव के दो-चार रोगियो के यहाँ जाना रह गया। उसके बाद नवग्राम। साहा के यहाँ न्युमोनिया का एक रोगी, सुवर्ण बाबू के लडके को रेमिटेंट, रमेन्द्र बाबू के छोटे लडके को प्रमेह, बन्धु नेपाल की बीवी को प्रसूतिका। फीस कोई देगा, कोई नही। जो देनेवाले भी हैं, उनमे से भी दो-एक के यहाँ बाकी रहेगी।

रास्ते में कितने ही लोग अपने यहाँ बुला लेते।—महाशय जी, कृपाकर मेरे लडके को जरा देख ले। बच्चे को गोदी में लिए रास्ते पर ही कितने लोग खडे रहते। किसी-किसी के घर जाना पडता। जो बूढे है, शय्याशायी हैं, वे बाहर कैसे आ सकते?

—महाशय जी, मेरी माँ को अगर देख लेते!

याद है, उस रोज सिताब ने उन्हे योगी बनर्जी को देखने के लिए बुलाया था।—जीवन, जरा योगी बनर्जी को देखते जाना भैया। कोई है नही, मुझी से कह रक्खा है कि अगर जीवन महाशय से भेंट हो जाय, तो कहना, मुझे देख लें। खैराती दवाखाने की दवा से तो कोई नतीजा नही निकला।'

सिताब और नेपाल, दोनों ही ऐसे रोगियों के हिमायती थे। वे डाक्टर का इन्तजार करते।

जीवनदत्त हँसते हुए जाते। उनसे कहते—हाल लेकर बताना, मैं जाऊँगा।

नेपाल जाकर कहता—हरिहर डोम काफी बीमार है। उसे एकबार देख लो। गोपाल बाउरी की माँ बीमार है। उसे भी देख लेना।

हरिहर चंगा हो जाय तो नेपाल उससे एक खस्सी वसूल करेगा। जीवनदत्त को यह मालूम था। उससे खस्सी लेकर नेपाल खुद अपनी तरफ से दाल-चावल-घी देकर दावत देगा। जीवन के हिस्से रहेगी मिठाई और मछली।

घर लौटते-लौटते दोपहर बीत जाती। पाकेट में रुपया-अठन्नी—सब मिलाकर होते दस-बारह रुपये। उस समय फीस थी एक रुपया। एक ही बार फीस मिलती। दुबारे उसी दिन देखने की नौबत आती तो फीस नही मिलती। आते ही कुरता उतारकर अतर बहू को देते। बनबिहारी, सुषमा पास आ जाते।

—बाबू जी, पैसा।

लौटते समय जीवन अधेली तुडाकर लाते। रेजगारी में कुछ पैसे जरूर होते। चार पैसे बनबिहारी के, दो सुषमा के। बन्नू डबल पैसा लेता। कहता—मै तो बड़ा पैसा लूँगा। सुषमा को छोटे-बडे का खयाल नही था। दो मिल जाय, बस। लड़का और लडकी। नोट बही में लिख रखते, रमेन्द्र बाबू के यहाँ फीस के रुपये बाकी रहे।

इतने में आरोग्य-निकेतन के बाहर बमनी गाँव के शेख के यहाँ की गाड़ी आ लगी। कृष्णपुर से आदमी पहुँचा। कायस्थो का गाँव है कृष्णपुर। मित्तिर बाबू की चिट्ठी आई है—"दत्त महाशय, दया करके एकबार पधारें। मेरे बड़े लडके को एकज्वरी है। राघवपुर के कविराज देखते थे। कोई लाभ न हुआ। इति। सुरेशचन्द्र मित्र।"

नन्दू ने गौरहरि बाबू की उस बात को याद रक्खा है। जब-तब कह देता है। जीवन महाशय इस पर हँसे। उन दिनो के आरोग्य-निकेतन के गौरव के ये भी हिस्सेदार थे। आमदनी भी हो जाती थी। उन दिनो लकड़ी के

बक्स में दवा जाती थी। जहाँ जीवन महाशय पाव-पयादे जाते थे, वहाँ नन्दू या इंदिर को बक्सा माथे पर ढोकर ले जाना पड़ता था। किसी से दो आने मिल जाते, किसी से एक आना। और आज तो यह हाल है कि समय पर तनखा भी नही मिल पाती।

जो दिन चले जाते है, लौटते नही। दिन के साथ काल जाता है। काल के साथ-साथ बीते कल की उम्र बढती है, पुराना होता है, जीर्ण हो जाता है। जो जीर्ण हो जाता है, वह जाता है। उनकी वह ख्याति जाती रही, इस पर क्षोभ नही, लेकिन दु ख तो होता है! उपेक्षा नही सही जाती। और उपेक्षा अगर उनकी होती, तो सह लेते। यह तो विद्या की उपेक्षा है!

—आइये! महथ के शिष्य भोलानाथ ने स्वागत किया। रास्ते पर ही खडा था। मठिया के आस-पास एक अजीब-सी गध मिलती है। जाने कितने प्रकार के फल और लतायें है यहाँ! अनन्तमूल का तो राज्य ही कहिये।

भोलानाथ ने कहा—सुबह से ही महथ जी आपके नाम की रट लगा रहे है। महाशय को बुलाओ—आकर जरा मेरी नाडी तो देख लें।

उन्नीस

साधु बाबा सबेरे स्वस्थ्य-से लेटे थे। यन्त्रणा नही थी। बाहर आसमान की ओर ताक रहे थे। जीवन महाशय को देखकर बोले—आओ भैया, आओ। कल तुम आये थे, मै मगर सो गया था। कमबख्त शशि ने जाने कौन-सी दवा दे दी, पाँच मिनट के अन्दर मै सो गया।

आज तो आप अच्छे है। दवा ने काम तो किया। —डाक्टर हँसे।

क्या पता भैया! —उन्होने गर्दन हिलाई।

—क्यो? दर्द है? फिर क्या चिन्ता!

—ठीक-ठीक समझ नही पाता। तुम नाडी देखो। देखो कि मुझे छुट्टी मिलेगी कि नही?

—लेने की इच्छा हो तो छुट्टी मिल जायगी। अगर न चाहें तो आप लोगों को छुट्टी कहाँ ?

—पुण्य की वह शक्ति अपनी नही है भैया।

जीवनदत्त समझ चुके हैं कि संन्यासी में वह पुण्य नही है। अगर रहता तो जीवन महाशय को पता चल जाता। कल जो उन्हें असह्य पीड़ा थी, उसमें से रुपये में वारह आना तो गाँजा नही पी सकने की थी। उनमें वह सूक्ष्म अनुभूति अव नही रही, मन जीर्ण हो गया है। जिनमें योग की साधना होती है, उनका मन वडा ही शक्तिशाली होता है। देह की जीर्णता उन्हे छू नही सकती। उस समय वे पुराना चोला त्याग कर नया शरीर ग्रहण करने की इच्छा करते हैं। यह इस देश की वडी पुरानी वात है। इसे उन्होने अपने पिता से सुना है, दूसरे वूढे-पुरनियो से भी सुना है। डाक्टर प्रद्योत जैसे लोग इस पर यकीन नही कर सकते, सुनकर हँस पड़ेंगे, लेकिन जीवन महाशय इस पर विश्वास करते हैं। उन्होने साधु वावा की कलाई पकडी।

साधु वावा ने धीमे से कहा—ऐसा लग रहा है भैया कि छुट्टी मिल जायगी। कल रात लगा, उधर से दस-बारह खड़ाऊँ की आवाज आ रही है। ऐसा भी हुआ मन मे कि रघुवीर जी का शब्द पा रहा हूँ। जंगल में पंचतप का जो आसन है, जैसे वही से पुकार रहे हो मुझे—आओ, इधर आओ।

जीवन महाशय को इन वातों का अर्थ समझते देर न लगी। जगल में, उस तरफ, यहाँ के पिछले महथो की समाधियाँ है। साधु बाबा को खडाऊँ की आवाज उधर से ही आती हुई सुनाई पड़ी। मतलब यह कि वे लोग इन्हे वुलावा देने आये थे। रघुवीर जी इनके गुरु के समान थे और इनके पहले इस गद्दी के वही महथ थे। वे वास्तव में योगी थे। उन्होने योग-साधन से अपने आन्तरिक यन्त्रो को जैसा शक्तिशाली बनाया था, वैसी ही शक्ति उन्होने सँजोई थी प्रकृति के प्रभाव को सहने के लिये व्रतों के पालन द्वारा। वैशाख में पंचाग्नि तापते। सूर्योदय होते ही पाँच कुडो में आग जला लेते। उन्ही के बीच मे वैठते। एक के वाद दूसरे कुड में, इस तरह सारा दिन आहुतियाँ देकर शाम को उस दिन का होम समाप्त किया करते। सर्दियों में खुले वदन पेड़ के नीचे वैठकर रात-भर तप करते—सूरज के उगने

से पहले पोखरे के हिम-शीतल जल मे गले तक डूबकर तब तक बैठे रहते, जब तक कि सूरज न उग आये।—साधु बाबा कह रहे हैं कि उन रघुवीर जी ने भी उन्हे बुलाया है।

आम लोग मरने से पहले स्वर्ग गये हुए अपने-सगो को देखा करते हैं। शायद वे लिवाने आया करते हैं। साधु बाबा के अपने लोग विस्मृति की गहराई मे लुप्त हो गये हैं। मठिया के महंथ ही उनके अपने हैं, पुरखे हैं—साधु बाबा ने उन्ही लोगो को देखा है।

नब्ज देखकर उनकी कलाई बिस्तर पर रखते हुए जीवनदत्त ने कहा-आपकी छुट्टी पहुँच रही है बाबा। आज साँझ हो जाने के बाद यानी उसी समय, जिस समय कि कल आपकी पीडा बहुत बढ गई थी। ऐसा ही लग रहा है।

साधु बाबा के बुढापे से सूखे होठो पर हलकी-सी हँसी खेल गई। उन्होने एक लम्बी साँस भी छोडी।

चालीस वर्षो से साधु बाबा यहाँ हैं। तीस वर्षो से ज्यादा तो यहाँ के महथ रहे। कोई चालीस-पैंतालीस की उम्र मे वे यहाँ आये थे। देखने मे लगता था, तीस साल के जवान हैं। लम्बा-चौडा कसरती शरीर। शास्त्र-वास्त्र से वास्ता नही, गहरी निष्ठा और कुछेक नीतिबोध से वे सन्यासी हुए थे। सन्त चाहे न हो, साधु प्रकृति के थे।

उनसे पहला परिचय अजीब ढग से हुआ था।

उस समय हलके की सूरत बडी डरावनी थी। तमाम महामारी, हैजा फैल गया था। एक से दूसरे गाँव मे, यहाँ से वहाँ। गर्मी के दिनो फूस की आग जैसे दौडती है, उसी तरह अपनी लपलपाती जीभ फैलाये महामारी फैल गई। उन दिनो हैजे का कोई इलाज न था। एक ही सहारा था—क्लोरोडाइन। कविराजी मे काम करने लायक खास कोई दवा नही थी। और क्लोरोडाइन का इस्तमाल करे, ऐसे चिकित्सक नही थे। जो थे, खुद डर से उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड रही थीं। हरीश हैजा के रोगी को देखने नही जाता था। होम्योपैथ डाक्टर अघोरी उस समय वहाँ से जा चुका था। होता भी तो नही जाता। नवग्राम मे एक नया डाक्टर आया था। हैजे के रोगी को देखने के डर से एक रात वह भी रफूचक्कर हो गया।

चारो तरफ अजीब अफवाह है। तब जैसा विश्वास लोगो मे था, वैसी ही खौफनाक अफवाहे। लोग हैजे की महामारी को देखने लगे—वह इस गाँव से उस गाँव का चक्कर काटती फिरती है। साँझ के झुटपुटे में दिखाई पडती है। उभरी हुई हड्डियाँ, कंकालसार शरीर, आँखो मे लहकती ज्वाला, भूरे-रूखे केश, दाँत वाली औरत—पहनावे मे एक फटा-चिथडा। वह उसी राह से लाश ढोने वाली चटाई बगल में दबाये गाँवो मे घुसा करती है, जिधर से लाश लेकर लोग मसान की ओर जाते हैं। शाम को ही वह गाँव मे बैठती है। जाते वक्त जो सामने पड जाता है, रात वही बदनसीब हैजे का शिकार हो जाता है। वह मर जाता है और फिर गाँव मे घर-घर हैजा फैल जाता है।

गाँव छोडकर लोग भागने लगे।

जो सपन्न थे, वे सबमे पहले भाग खडे हुए। भागने वालो मे सर्वप्रथम थे नवग्राम के बाबू लोग। उनके बाद ग्रामलोग।

रहने को रह गये बेचारे गरीब और कुछ दुस्साहसी लोग। उनमे गँजेडियो की तादाद ही ज्यादा थी। शराब पीकर, गाँजे मे दम लगाकर नशे मे धुत्त रहते। काली-काली की टर लगाते। भगवान का नाम वे भी लिया करते।

महाशय सकीर्त्तन दल के सदा से मूल गायक रहे। वैसी आवाज नही है, सुरीला कठ नही है, किन्तु गीत वे समझते हैं और गा भी सकते हैं। बेशक गा सकते हैं। दस कोसी सकीर्त्तन मे आज भी वे गा लेते हैं। इसमे उनसे टक्कर लेने वाला आदमी इलाके मे नही है। रहे भी कैसे? ऊँचे मान के गीतो की चर्चा ही उठ गई। कितना कुछ देखा! हारमोनियम, ग्रामोफोन और अब रेडियो। नवग्राम के कई घर मे रेडियो आ चुका है। उन्होने सुना है। कहाँ वह गीत और कहाँ यह गीत! वह—"श्याम, तुम्हारा व्रज-धाम देख आया, बस नाम-भर है! हाय-हाय! नाम ही भर है, और कुछ नही रहा। राधा स्वर्णलता तमाल को श्याम समझकर क्षत-विक्षत हो धरती पर हतचेतन हो लोट पडी है!"

सकीर्त्तन दल लेकर हर रोज साँझ को वे रास्तों पर घूमा करते। उनका विश्वास था, हरिनाम से आपदाये दूर होगी। प्रत्येक गाँव मे शराबी लोग

रक्षा-काली की पूजा करते। उन्हें भी यही गहरा विश्वास था।

गहरी रात में रास्तो पर सदा कुत्ते भौंकते हैं। आजकल वह भौंकना मानो बढ गया था। और गोया उस चीख मे कोई गूढ अर्थ हो। चीख मे क्रोध नही, भय होता। कुत्ते रात मे उस भूरे बाल वाली को रास्तों मे घूमते हुए देखा करते। डर से चिल्ला पडते। घर-घर के निंदाये लोग चौंक-चौंक पडते।

जीवन डाक्टर को मौत की परवाह न थी। वे घूमा करते थे। मगर घूम कर करें क्या ?

अन्त मे वे दौड़े-दौडे डाक्टर रगलाल के पास गये थे। —बताइये, इसकी दवा बताइये।

बडी देर के बाद बूढे रगलाल उनकी ओर ताककर उठ खडे हुए। मेडिकल जर्नल के पन्ने पलटे। नुस्खा लिखा—वन सिक्स्थ ग्रेन कैलोमेल और सोडा बाइ कार्ब। घन्टे-घन्टे। ऐसी दशा मे इसके सिवा और कुछ नही किया जा सकता।

इस दवा से बहुतेरी जाने बची थी। क्या दिन क्या रात, जीवन महा-शय घूमते रहते। पितृवश की मर्यादा, गुरु रगलाल का आदेश और अपने प्राणो की वेदना !

नुस्खा लिखकर रगलाल ने पूछा था—खैर। सुना कि तुम जोरो से हरिनाम-सकीर्त्तन गाते हुए हैजा भगा रहे हो ?

ठठाकर हँसे थे।

जीवन शर्मिदा हुए ही नहीं, ऐसी बात नही। मगर अप्रतिभ नही हुए। बोले—उपाय क्या है ? इससे लोगो को भरोसा होता है।

—और तुम्हे ?

जीवन ने जरा तिरछे ढग से कहा था—विनय के साथ—आप तो जानते ही हैं, मै कभी नास्तिक नही रहा।

—इससे मै असन्तुष्ट नही हूँ, एतराज भी नही करता। नाम-सकीर्त्तन पर भी मुझे आपत्ति नही। लेकिन मुझे यह दो, मेरी रक्षा करो, दुश्मनो का नाश करो, ऐसी कामना से सकीर्त्तन करना मुझे पसन्द नही। कीर्त्तन कीर्त्तन के लिए ही हो, प्रेम से। नही तो उसका फल नही होता।

जीवन महाशय ने कहा था—जंगल में आग लगने पर जैसे पशु भागते हैं, वैसे ही मनुष्य भागते फिर रहे हैं। जानते हैं, मैं जैसे साफ देख पा रहा हूँ—। उत्तेजना और आवेग से उस दिन जीवन डाक्टर रंगलाल के सामने दार्शनिकता कर बैठे। बोले—मौत जिन्दगी को खेदे चल रही है। बाल बिखराये, भयंकर मूर्त्ति, हाथ बढ़ाये दौड रही है, सब ग्रास करेगी—ऐसी भयानक भूख! और धरती के जीव भय से पागल की तरह दौड रहे हैं। दौड़ते-दौडते लुढक पड़ते हैं, मौत उन्हें लील जाती है। हरदम मौत इसी तरह खेदे चल रही है! ऐसी हालत में भगवान का नाम लेकर भरोसा बँधाने के सिवाय आदमी और क्या करे?

इसके जवाब में डाक्टर रंगलाल ने उस दिन व्यग नही किया। हँसकर बोले—हकीकत यही है जीवन। हार-जीत की एक लडाई ही है। किन्तु जैसे यह तुम्हें दीख रहा है, वैसे ही अगर नजर और पैनी होती, तो तुम देखते कि कोई-कोई किस कदर पलटकर डट जाता है। कहता है—आओ। तुम जो ऐसे भयकर बाने में आ रही हो, मैं तुम्हारा असली रूप देखूं। या कहो तो मैं तुम्हारी पकड़ में आ जाऊँ, किन्तु जो लोग भाग रहें हैं, उन्हें जीने दो। फिर तो मौत का नकाब उघर जाता है। वह विश्वमोहिनी दीख पड़ती है। फिर तुम यह नही जानते कि मौत जितनी जिन्दगी का हरण करती है, उससे दूने जीवन जन्म लेकर किलकारियाँ भरते फिरते हैं, कहते हैं—पकड़ो तो देखूं! वे हार नही मानते। एक बात और बताऊँ। मनुष्य हारा नही है। महामारी ने जाने कितने जनपदो को उजाडा है। जनपद फिर से गढ़ उठे हैं। केवल जनपद ही नही बने, उसका प्रतिषेधक भी तैयार किया। यही मनुष्य को पराजित नही किया जा सका। वह नही हारा। वह मरेगा, लेकिन इस तरह से नही। वह मरेगा महागज के समान। जिस दिन वह बूढ़ा होगा, जीवन से मौत का स्वाद अच्छा लगने लगेगा, उसी दिन वह मरेगा, जैसे महागज घने जंगल के अन्दर सैकड़ों वर्ष के किसी खन्दक में आकाश हिलाते हुए 'मैं चला' की ध्वनि करते हुए मरता है। जानते हो, क्यो? इसलिए कि उसकी लाश की सड़ाँद से कोई रोग पैदा होकर दूसरे हाथियों को अपनी चपेट में न ले सके।

महामारी के थम जाने के बाद साधु बाबा से परिचय हुआ। जीवन

महाशय समाज के प्रधान बने। नवग्राम के बाबुओ की उपेक्षा करके सर-कार ने उन्हे पचायत का प्रधान बनाया। उसी प्रधान के नाते एक झगडे के निबटारे के लिए वे मठिया में गये थे।

साधु बाबा उनके आगे आये और बोले—अरे भाई, तुम्हारा नाम जीवन महाशय है ? सुना है, तुम बडे बहादुर हो। आओ, एक हाथ पजा लड़ा लो।

पजे की लडाई मे जीवन महाशय हार गये थे, पर साधु बावा को हराने मे दिक्कत पडी थी।

फिर तो कितनी बार जाने कितनी बाते हुईं। एक दिन की घटना याद आ रही है। चण्डी-मण्डप के मेले में जूए में आखिरी पाई तक हार गये। साधु बाबा के पास जाकर उन्होने कहा—गुसाईंजी, मुझे तो सौ रुपये देने पडेगे। कल भिजवा दूँगा मै।

उनकी ओर जरा ताककर—हँसते हुए—गुसाईंजी ने मठ के तहवील से सौ रुपये उन्हे दे दिये थे। डाक्टर फिर जुए पर जा बैठे थे। घण्टे भर बाद गुसाई जी आये। हाथ पकडकर उन्हे उठाते हुए कहा—बस, बहुत हो गया। उठ पडो अब।

जुआडी से उन्होने कहा—पहचानते हो, ये कौन है ? ये यहाँ के सबसे बड़े डाक्टर है और पचायत के प्रधान हैं। इनके जो रुपये लिए है, लौटा दो।

डाक्टर ने कहा—रहने दे, सिर्फ बीस रुपये हारे हैं। इतना उसका पावना है। चलिये।

रास्ते मे साधु बाबा ने जो कहा, वह उनके अन्तर में आज भी अकित है। कहा था—क्यो भई महाशय, तुम महाशय-वश की सन्तान हो, जूआ क्या खेलते हो ? रात-रात भर शतरज ? भगवान ने तुम्हे क्या नही दिया ? तुम्हारे घर की बराबरी कौन कर सकता है ?

ओ, वह भी एक समय था। शरीर मे असीम शक्ति, मन मे अदम्य साहस, बडा नाम-गाम, मान-सम्मान, घर-गृहस्थी की बात ही याद नही रहती। लेकिन कोई अन्याय नही करते थे। जूआ खेलने का शौक था। यह उस समय का तरीका था एक। लेकिन घर मे अगर अचानक उनकी चिन्ता का सूत्र बिखर गया।

मन में एक सवाल जग पड़ा। विपिन—रतन बाबू के लड़के विपिन के जीवन में क्या—? उसे कोई दवा हुआ दुःख था ? अशान्ति थी ? बाहर-ही-बाहर दौड़-धूप, यश-प्रतिष्ठा बटोरता फिरता, फिर भी प्यास नही मिटती, भूख नही मिटती ! केवल दौड-और-दौड़ ! या रिपु ? मनुष्य की साधना के पथ पर आती है सिद्धि। उसके पहले आती है प्रतिष्ठा। वह लालसा को जगाती है। और चाहिए, और। यही तो है रिपु। उसीकी ताडना से दौड़ते हुए मनुष्य मुँह के बल गिरता है। सामने वही भूरे बाल वाली आकर खडी हो जाती है।

*　　　*　　　*

रतन बाबू के लडके की हिचकी वन्द नही हुई, कुछ कम हो आई है। लहू का दबाव भी थोडा उतर गया है। रतन बाबू ने खुशी की हँसी हँसकर कहा—तुम्हारी दवा से लाभ हुआ है जीवन। जरा नाडी देख लो। यों मुझे तो अच्छा ही लग रहा है।

जीवन महाशय भी जरा हँसे। हँसने की वजह हुई, कुछ तो बातो का अच्छा लगना; लेकिन कुछ का हेतु बिल्कुल उलटा था। हाय, ससार मे रोगो से छुटकारा अगर सहज मिलता होता! इतनी आसानी से अगर चंगे हो जाया करते लोग!

हँसी का कुछ और भी कारण है। रतन बाबू जैसे जीव। पडित हैं, ज्ञानी हैं, इकलौते बेटे को यह बीमारी हो जाने के बाद उन्होंने डाक्टरी की किताबें मँगवाई। पढकर उसके बारे में जानने की कोशिश की—कुछ-कुछ जाना भी : और इस दुनिया मे मनुष्य की क्षणभगुरता के मार्मिक तत्व को भी वे जानते हैं—सब कुछ के बावजूद इस छोटी-सी बात पर उन्हें आशान्वित होते देख वे हँसे।

रतन बाबू ने फिर कहा—बहुत दिनो से मेरी इच्छा कविराजी इलाज कराने की ही थी। विलायती चिकित्सा की उन्नति आश्चर्यजनक हुई है, इसमें कोई शक नही, लेकिन हमारे यहाँ के लोगों की धातु के लिए वह कडी पडती है। उससे क्रिया के बजाय प्रतिक्रिया ज्यादा होती है।

इस निराशा की आँधी के बीच तिनके जैसी एक क्षीण आशा का सहारा पाकर बूढे उल्लसित हो उठे हैं। उन्हे बातें करने में अच्छा लग रहा है।

—लेकिन मै अपने मन की किसी से कहता नही। समझा भैया। वह मेरा स्वभाव ही नही। अपने तई विपिन को विश्वास नही है। बहू को भी नही। विपिन का बडा लडका एम ए मे पढ रहा है, वह तो और भी आधुनिक पन्थी है। उसे भी यकीन नही। मै जानता हूँ, मै कहूँ तो कोई एतराज नही करेगे मुँह खोलकर कोई कुछ कहेगे नही, लेकिन उनका अन्तर साथ नही देगा, मन मे धोखा लगा रहेगा। ऐसे मे मै कहता नही हूँ, नही कहूँगा। कल जब डाक्टरो ने यह कह दिया कि हिचकी रोकने की उनके पास कोई दवा नही है, तो मैने तुम्हारी चर्चा चलाई। आज सवेरे मैने सभी डाक्टरो को बुलाया है। सब आयेगे। अस्पताल के डाक्टर प्रद्योत, हरेन्द्र, सभी आयेगे। सब मिलकर आपस मे सलाह करके कोई राह निकालो भाई।

गम्भीर हो उठे जीवन महाशय। बोले—देखो भाई रतन, तुम लोगो ने मुझे सिर्फ हिचकी बन्द करने के लिए बुलाया है। मैने उसीका इन्तजाम किया है। कम हो गई है, शाम तक रही-सही भी बन्द हो जाय शायद। उसके बाद कोई एक रास्ता पकडना पडेगा। मै कविराजी भी जानता हूँ, ऐलोपैथी भी। लेकिन दो नाव पर पॉव रखकर तो नही चला जा सकता। या तो कविराजी करो या अग्रेजी—दो मे से एक ही करना पडेगा। वे लोग भी यही राय देगे।

जरा देर चुप रहकर बोले—आज तो मै ज्यादा इन्तजार नही कर सकूँगा। घर पर बहुतेरे रोगी बैठे हैं। सुबह चण्डीथान के महन्थ को देखने गया था। लौटते हुए इसे देखने आ गया था। हिचकी कम हो गई है। मै जाता हूँ। वे लोग आकर देखेगे। सबकी राय से जो तै पायगा, शाम को मालूम करूँगा।

बूढे रतन बाबू जरा उदास हो गये। फिर भी प्रसन्नचित्त से ही बोले—वही सही। तुम देख लो। जैसा तुम कह जाओगे, मै उन्हे बता दूँगा।

सचमुच ही विपिन कुछ अच्छा है।—जीवनदत्त को नाडी मे अच्छा रहने का आभास मिला।

लेकिन इस अच्छा रहने के ऊपर निर्भर करके उम्मीद बाँधने वाली उम्र उनकी बीत चुकी है। बोले—अच्छा तो लग रहा है। किन्तु यह अच्छा

रहना स्थायी होना चाहिए भाई।

—नाडी कैसी रही, वताओ।

—जो मैने देखा, वहा वता रहा हूँ। तुम्हारे जैसे आदमी से छिपा-वचाकर कहने की जरूरत नही। मै वैसा करने का भी नही। मै तुम्हे खूव जानता हूँ।

रतन वावू ने लम्वी उसाँस फेकी।

जीवन ने हँसकर कहा—मैने निराश होने की कोई वात नही कही। यही स्थति अगर स्थायी रहे तो विपिन धीरे-धीरे चगा हो उठेगा। हिचकी आज ही वन्द हो जायगी। उसके वाद अगर दूसरा कोई उपसर्ग न पैदा हो तो दस-वारह दिन के अन्दर अच्छा हो जायगा। अच्छा रहने को स्थायी भाव कहूँगा—समझ गये ? तव कहूँगा, हाँ अव कोई डर नही है। सावधानी से चलना है। अव यहाँ-वहाँ करते फिरने से काम नही चलेगा। घर पर ही जो वन सके, वह भी ज्यादा मेहनत का काम नही।

—वस, रोग की वजह तो यही है। मैने वारहाँ मना किया है। वारहाँ। मगर कौन सुनता है। क्या कहूँ और क्या करूँ ? लायक लडका है। जाना-माना आदमी। जीवन मे कही कोई दोप नही, अमिताचार नही, अन्याय नही, खाने का लोभ नही, गलत उपाय से पैसा पैदा करने की रुझान नही। नशे का आदत नही, सिगरेट-पान भी नही। क्रोध नहा है, विलासी नही है, वस प्रैक्टिस के पीछे पडा है। प्रैक्टिस और प्रैक्टिस। यह भी तुम्हे वता दूँ, प्रैक्टिस, भी कुछ पैसो के लोभ से नही। मुकदमा जीतने का एक नशा समझो। यह जिला, वह जिला, यह कोर्ट, वह कोर्ट। महीने मे दो-तीन वार हाईकोर्ट का चक्कर। मुकदमा जीतने का नशा—नशा। जिसमें यहाँ हार हो गई, उस मुकदमे को हाईकोर्ट से निकालना चाहिए। और हाईकोर्ट से जीत लाया। उसका यह नशा किसी भी तरह नही उतरा। घर नही देखा, गिरस्ती नही देखी, स्त्री-पुत्र को लेकर सुख नही किया, सवको मेरे मत्थे पटककर आप मुकदमो में लगा है। मैने जाने कितनी वार कहा—विपिन, यह भी तुम्हारी रिपु है। रिपु को सर न चढाओ। मौका पाकर वही व्याधि वनकर देह-मन पर हमला कर वैठेगा और वना तो—। वाप होकर उस शव्द का उच्चारण तो नही कर सकता था।

जीवनदत्त बोले—खैर, इस बार ठीक हो जाय। आप ही सम्हल जायगा।

एक किशोर सामने आकर खडा हो गया। फीस के रुपये। यही विपिन का बड़ा लडका है। खासा लडका।

—अरे, चार रुपये क्यो ? मेरी फीस दो रुपये है।

दो रुपये उठाकर अपनी जेब मे रखते हुए जीवन महाशय निकल पडे। वह लडका भी साथ-साथ बाहर निकला। बोला—जब और डाक्टर लोग आयेंगे, तब क्या आप नही रहेंगे ?

—मैं ? मै रहकर क्या करूँगा ?

—अपनी राय दीजियेगा।

—मैंने तो सिर्फ हिचकी की दवा दी है। हिचकी रोग का एक उपसर्ग भर है। मूल व्याधि की चिकित्सा तो वही लोग कर रहे हैं। वे हँसे।

वह लडका चुप खडा रहा। अचानक बोल उठा—तीसरे पहर की तरफ एक बार नही आ सकेंगे आप ?

—आना है ? अच्छा आऊँगा।

डाक्टर चले गये।

विपिन, लगता है, बच नही सकेगा। देखने मे कुछ अच्छा जरूर लगा, लेकिन आज नाडी से उन्हे पता चला कि मौत उसकी आ रही है। आ क्या रही है, आकर खडी हो गई है। छाया पड रही है उसकी। उन्हे रतन बाबू का खयाल आया। बेचारे को बडी ठेस लगेगी। अपनी भी बात याद आई। उनका लडका बनविहारी चल बसा। विपिन का ही हम उम्र था। भरी जवानी में मर गया वह। अपने अनाचार और शराब की लत से उसने अपने को खोखला बना रक्खा था। ऊपर से मलेरिया। घिस गया था। और विपिन ने जरूरत से भी ज्यादा काम करके अपना क्षय किया है।

रतन बाबू की बाते याद आने लगी—"घर नही देखा, गिरस्ती नही देखी, बाल-बच्चो के साथ आनन्द नही उठाया। बस, काम और काम, मुकदमा कि मुकदमा। कितनी ही बार उन्होने समझाया—विपिन, यह भी तुम्हारा रिपु है।"

रिपु ही है। भयकर रिपु। बडा ही भयकर। खुद भोग चुके है वे ! जीते जी ही मौत हो गई, इसीलिए छुटकारा मिल गया। बनविहारी के

मरने के बाद इलाज की तरफ उनका ध्यान नही रहा और अब काल ने उन्हे पुराना, जर्जर घोषित कर दिया है। उनकी हालत आज हाथी के खाये कैथे की तरह है। सच कहिये तो यह उनकी मृत्यु है।

—रतन के लडके को कैसा पाया ?

—सिताब ?

वे सिताब के घर के पास आ पहुँचे थे, खयाल ही न था

—क्या देखा ?

—देखूँ क्या ? देख तो मै नही रहा हूँ। डाक्टर लोग देख रहे है। मुझे उन्होने हिचकी बन्द करने के लिए बुलाया था। सो हिचकी कम गई है। शाम तक बन्द हो जायगी।

—नाडी तो देखा तुमने ?

—देखी।

—क्या पाया, यही तो पूछ रहा हूँ मै।

—जब डाक्टर प्रद्योत तक उसे देख रहा है, तब मेरा यह कहना ठीक शायद न हो कि मैने क्या देखा। अब जो दवाये निकली है, उनकी पूरी-पूरी जानकारी मुझे नही है। क्या बताऊँ ?

—हुँ। ठीक ही कहा है। बात इतनी ही है कि रतन बाबू हमारे गाँव के आदमा हैं—इसीलिए। अवस्था सम्पन्न हैं, इलाज करा सकते हैं। कलकत्ते ले जा सकते है।

—कलकत्ते से आना ही चूक हो गई है। वही रहते तो अच्छा था। आराम मिलेगा, यह सोचकर लौट आये। लेकिन यह नही सोचा कि अचानक बीमारी बढ जाय, तो क्या करूँगा। यही हुआ करता है। जमाने तक इलाज करके मैने यही देखा कि भ्रम हो जाता है, सेवा की खामी हो जाती है। यह-वह, कुछ हा ही जाता है। अब कलकत्ता ले जाते नही बनेगा। यानी—

फिर ?—बीच ही मे सिताब बोल उठा। लेकिन आप भी बात पूरी न कर सका, बीच ही मे रुक गया।

—अरे नही-नही, यह नही कहा मैने, कहने लायक कुछ मिला नही। लेकिन समझ तो रहे हो—। भरोसा नही हो रहा है।

डाक्टर ने दीर्घनिश्वास छोड़ा।

इसके बाद दोनों चुप हो रहे।

एकाएक डाक्टर उठ खड़े हुए। बोले—चलूं। रोगी इन्तजार में बैठे हैं। चडीथान होकर जाऊँगा। जानते हो, गुसाईं जी अब-तब में हैं ?

—कल मालूम हुआ था। आज शायद कुछ अच्छे हैं। निशि ठकुराइन जल चढ़ाने गई थी। वही बता रही थी। शायद एक खुराक दवा से शशि ने उन्हें अच्छा किया है। कह रही थी, मेरी भतीजी को जीवन महाशय ने पानी की मुमानियत कर दी है। मैं न होगा, शशि से ही दिखाऊँगी।

चौंक उठे जीवनदत्त। शशि को दिखायेगी ? उन्हें उस अभागिन लड़की का मुखड़ा याद हो आया। कच्ची उमर। मन में जाने कितने अर-मान, कितनी हविस। उसकी हत्या कर देगा वह। शशि एक पाप बन बैठा ! साथ ही उन्हें और एक युवती का चेहरा याद आया।

सिताब ने कहा—तू ने कल निशि की भतीजी को देखा था ? पानी की मुमानियत की कही थी ?

—कही थी। जहाँ तक मेरी विद्या है, उसके हिसाब से उसकी अब एकमात्र दवा यही है। खैर। रहने दो इन्हें। हाँ, गणेश भट्टाचार्य की लड़की का कोई समाचार मिला ? कल रात—

—बहुत बीमार है। अब-तब है सुन रहा हूँ। मैंने तो सुना कि कल नाड़ी देखकर तुमने बता दिया था।

नहीं तो ?---जीवन महाशय चौंक उठे—प्रसव के बाद मैंने तो नाड़ी नहीं देखी थी। अस्पताल के डाक्टर—

उसकी बात पर ही सिताब बोल उठा—अस्पताल का डाक्टर सुनते हैं, जी-जान से लगा हुआ है। सुना, सुई-पर-सुई दिये जा रहा है। आक्सी-जन दिया है। गणेश से और एक आक्सीजन लाने के लिए कहा है।

—मैं जा रहा हूँ। अचानक उन्होंने चलना शुरू कर दिया। यह नौ-जवान बेशक बहादुर है, वीर है। सामर्थ्य भी है और अपने ऊपर विश्वास भी है। यों कहिये कि युद्ध कर रहा है। एक बार देखता चलूँ।

दफ्तर में प्रद्योत गम्भीर होकर बैठा है। गणेश नहीं है, गणेश की

स्त्री आधा घूघट काढे बरामदे पर बैठी हे। महाशय को देखते ही वह रो पडी—महाशय जी, मेरी अर्चना का क्या होगा ! एक बार—

रो नही !—गम्भीर स्वर से प्रद्योत ने कहा।

महाशय ने कहा—मत रोओ माँ। देखो कि भगवान क्या करते हैं। यह तो उनके हाथ की बात है।

भँवे सिकोडकर प्रद्योत ने कहा—आप क्या नाडी देखना चाहते हैं ?

महाशय बोले—नही-नही। यही से होकर जा रहा था। सोचा, जरा खबर पूछ लूँ।—और वे लौट चले।

—जरा बैठेगे नही ?

—नही। अभी भी दो-चार रोगी आ जाते हैं। इन्तजार कर रहे हैं सब।

प्रद्योत बोला—मोती की माँ की एक्स रे रिपोर्ट आई है। देखेगे ? खास कुछ नही हुआ है। अब प्रद्योत जरा हँसा।

अच्छा तो है। आपकी ही कृपा से बच गई बुढिया। —चाल तेज कर दी उन्होने। एक बार जी मे आया कि कह दे—विपिन की हिचकी बद हो आई है। मगर नही कह सके।

बीस

दाँतू घोपाल चीख रहा था।

वही सवेरे आया है—आठ भी नही बजे थे। साढे दस हो गये। साढे दस वाली गाडी स्टेशन से चली गई। और अभी भी बैठा हूँ। आखिर क्यो ? जीवन महाशय को किस बात का गुमान है ? सोचते क्या हैं ? क्या और दूसरा डाक्टर नही है ? या दाँतू घोषाल इतना गया-बीता है ?

नवग्राम मे चार-चार डाक्टर बैठे फे-फे कर रहे हैं। चैरिटेबुल डिस-पेसरी थी—चार बिछावन थे। उसके बाद लडाई का मन्वतर आया तो दस बिछावन का अस्पताल हो गया—अब पचास बिछावन का प्रबन्ध

हो रहा है। एक छोटा डाक्टर रहता था, अब दो हो गये, नर्स आ गई। वहाँ जाकर बिछावन पर पड़ देने भर की देर है। समय पर खाना, समय पर दवाई, जितनी बार बुलाओ, डाक्टर हाजिर। केवल जात-मान नहीं बचेगा, इसीलिए नहीं जाता। फिर दो-दो कविराज पड़े हैं, उनमें से भूदेव तो बदस्तूर पास हैं। दो होम्योपैथ हैं—एक महम्मद अली, दूसरा बागाल डाक्टर। दवाखाने में पैसा नहीं लेते। जीवन महाशय का दिमाग फिर गया है, नहीं तो रोगियों की ऐसी नाकदरी क्यों करते ? पुराने आदमी ठहरे, हाथ में यश है, महाशय-वंश के हैं—इसीलिए आता हूँ। अब मैं नहीं आऊँगा। या तो भूदेव कविराज के पास या हरेन्द्र डाक्टर के पास जाऊँगा। जहाँ कोई पेड़ नहीं होता वहाँ रेंडी के पेड़ ही 'वृक्ष' कहलाते हैं। उन दिनों डाक्टरों की कमी थी, इसलिए महाशय धन्वन्तरि बने बैठे थे—निदान बताते फिरते थे। जिसमें ठीक निकलता था, उसका ढिंढोरा पीटने चलते थे और जो ठीक नहीं निकलता, उसमें चुप्पी मार लेते। मरने के बजाय कोई जी जाय, तो उसके लिये झगड़ा कौन करता है ? अब प्रद्योत जैसे शेर के पाले पड़ा है, मजा मालूम होगा। मोती लुहार ने तो बुढ़िया को बर्दवान के अस्पताल में दाखिल कर दिया है—उसके पाँव का फोटू लिया गया है, अन्दर हड्डी का चूरा रह गया है, नश्तर लगाकर उसे निकाल देगा—बस भली-चंगी। प्रद्योत डाक्टर कह रहा है, जरा मोती की माँ अस्पताल से आ तो जाए लौटकर, फिर नाड़ी देखकर निदान बताने के फूले बेलून को फोड़ देता हूँ।

घर में उधर चूहा ठप पड़ा है और इधर रोगियों की ऐसी नाकदरी।—दाँतू कहता ही चला जा रहा था।

नदू ने कई मरतबा कहा—देखिये, अच्छा न होगा। जो-सो गलत बकिये आप। मगर दाँतू ने परवाह न की। कहा—तू कम्बख्त बाँस से करची ही तीखा ! पीर से जिंदा खादिम ! सुबह से पाँच बार कहा, जरा तवाकू दे जा। मगर कौन सुनता है ! तेरा क्या, महीना लगा और तनखा ले लो। जो कुछ भी बचा-खुचा था महाशय के यहाँ चुराकर साफ कर दिया। अब रोगियों को भगाकर लक्ष्मी की विदाई कराके तब तू जायगा।

परानी मियाँ ने भी एतराज किया था—देखो दाँतू, वेजा कर रहे हो। महशय गये हैं कोई भारी बीमारी देखने। इसमे अगर देरी ही हो गई, तो क्या! एसी बाते क्यों कह रहे हो। छि: और कह किसे रहे हो?

—कहने दीजिये खाँ साहव—कहने दीजिये। अभी इनके सिवा दूसरी वात उसकी जवान पर नही आने की। उसकी बुद्धि ही पलट गई है। सर्वनाश के समय मनुष्य की बुद्धि ऐसी ही उलटी हो जाती है। मौत से बढकर आदमी का दूसरा सर्वनाश भी क्या हो सकता है? घोपाल अब जायगा। जाने का दिन जितना ही नजदीक आ रहा है, यह सब उतना ही बढ रहा है।

जीवन महाशय ने ये बाते हँसकर ही कही थी। वे आरोग्य-निकेतन के अन्दर से निकल आये। चडीथान से वस्ती मे आने का रास्ता सदर रास्ते से दूसरी तरफ है। उसी राह से वे दवाखाने के पीछे से अन्दर गये और सामने निकल पडे।

एक मुहूर्त मे दाँतू घोपाल जैसे जमकर पत्थर हो गया। भय-भग्ने विस्मय-विस्फारित नेत्रो जीवन महाशय की ओर देखता रह गया। बोलती वद। शिथिल होकर दोनो हाथ झूल गये।

कुर्सी खीचकर जीवन महाशय वैठ गये। बोले, आज जरा देर हो गई। चडीथान के गुसाई जी बीमार है। शायद चलने की तैयारी है। तडके ही वहाँ जाना पडा। नवग्राम के रतनवावू के लडके विपिन वावू बीमार है। वहाँ भी जाना पडा। जो इतनी दूर चलकर दिखाने आये है, वेशक उनकी हालत वैसी नाजुक नही है।

जीवन महाशय दाढी पर हाथ फेरने लगे। रोगियो मे से फिर भी कोई कुछ न बोला। सबके सब दाँतू घोपाल को ही देख रहे थे। दाँतू फाँसी की सजा पाये हुए मुजरिम के समान खड़ा था।

अचानक वह टूटे स्वर से बोल उठा—क्या कहा महाशय? मै नही बचूँगा? मरूँगा मै?

जीवन महाशय निस्पृह निरासक्त की नाई बोले—तुम्हारी यह बीमारी अच्छी नही होगी घोपाल। यह बीमारी अच्छी होने की नही, इसमे तुम्हे जाना ही पड़ेगा। तब दो कि चार महीने या दो वरस, चार वरस—सो

मैं नही कहता ।

अबकी दाँतू चिल्ला उठा—तू खाक वैद्य है, खाक !—जीवन महाशय कहते चले गये—अगर यह अच्छी होनेवाली होती, तो दो दिन बीतते न बीतते तुम क्या खाऊँ-क्या खाऊँ करके दौड़े नही आते, गाँजा-तबाकू पीने के लिए पागल नही हो जाते, मृत्यु-रोग का यह एक खास लक्षण है । रोगी से रिपु कहीं मिल गया तो कोई उपाय नही । तुम्हारे साथ यही हुआ है ।

दाँतू ने तड से अपना जनेऊ तोड फेका और चिल्लाकर बोला—अगर मैं ब्राह्मण हूँ तो छः महीने गुजरते न गुजरते तेरा सर्वनाश हो जायगा । ब्राह्मण की स्त्री के अभिशाप से तेरा बेटा गया, अब ब्राह्मण के शाप से तेरा सर्वनाश होगा !

और वह हनहनाता हुआ आरोग्य-निकेतन के बरामदे से नीचे उतर गया । जरा दूर जाकर वह रुका । मुडकर बोला—मैं अस्पताल के बडे डाक्टर के पास जा रहा हूँ । आज ही वहाँ भर्त्ती हो जाऊँगा । बचता हूँ या नही, देखना ।

महाशय हँसे । उसके बाद बोले—हाँ, किसे क्या कहना है ?

सामने एक आदमी आकर खडा हुआ । पीलिया का मरीज । लगा जैसे सारे बदन मे हल्दी मलकर आया है । उपाय बहुतेरे किये । कामला की माला पहनी । घुटने तक लम्बी हो गई माला मगर बीमारी नही गई । अस्पताल भी गया, कोई लाभ नही । हार-पारकर यहाँ आया है ।

जीवन दत्त ने कहा—जब अस्पताल से भी कोई लाभ नही हो सका, तो कुछ समय लगेगा । और अगर कविराजी दवा का सेवन करना है, करना ही है, नही तो यहाँ क्यों आते, तो मुसीबत यह है कि मैं दवायें तो अब रखता नही । दीर्घ निश्वास छोडकर बोले—एक प्रकार से इलाज ही करना छोड दिया है मैंने । नया समय आया, चिकित्सा नई, रुचि नई, यह सब तो मेरे पास नही । और अब यह सब खुद भी अच्छा नही लगता है मुझे । फिर भी चूँकि चिकित्सा कभी करता था, दो-चार पुराने लोग आज भी नही छोडते हैं, इसलिए उन्हे देख लिया करता हूँ ! समझ गये ?

जरा हँसे । शायद दाँतू घोषाल वाला प्रसग अब भी उनके मन मे

चक्कर काट रहा था।

—अच्छा हो कि तुम भूदेव कविराज के पास जाओ। वह दवा-दारू रखता है। नये जो कविराजी के कालेज खुले है, वही से पास करके भी आया है। समझ गये? कविराजी मे अपनी दवा दिये विना इलाज से कोई लाभ नही होता।

—जी नही सरकार, आप मुझे देखे। नही तो मै शायद न बचूं। मेरे पिता, मेरे दादा, सब इसी उमर मे गुजर गये है। पैंतीस से चालीस साल के अन्दर। मुझे बचा लीजिये डाक्टर बाबू!

—नही-नही। ऐसा कुछ नही हुआ है कि न बचो। और, जीने-मरने का सवाल एक आश्चर्य है। उस पर मनुष्य का कुछ हाथ होता—!

डाक्टर हँसे! सुना नही, दाँतू मेरे लडके की बात कह गया अभी! वह भी डाक्टर था।—अरे रे, तुम रो क्यो रहे हो? अच्छा-अच्छा, मैं ही देखूंगा। बैठो, बैठ जाओ। मै दवा लिखे देता हूँ, भूदेव के यहाँ से खरीद लेना। बाद मे मै अपने यहाँ तैयार कर दूंगा। समझ गये? डरने की बात नही। अच्छे हो जाओगे। इतना डर क्यो गये हो?

डाक्टर अपनी दाढी पर हाथ फेरने लगे। यह बेचारा बुरी तरह डर गया है। बीमारी से नही, बल्कि इसलिए कि इसी उम्र मे उसके बाप-दादा मर गये है। उसका डरना अकारण नही है। ऐसा होता है। अजीब ढग से होता है।

परानी मियाँ हँसकर बोला—अब तुम कतई न डरो भैया। महाशय ने कह दिया कि डरने की बात नही। इसे वेदवाक्य समझो।

परानी मियाँ उनका मन जुगा रहा है, यह जीवन महाशय जान रहे थे—लेकिन यह मन जुगाना उन्हें अच्छा लगता है। परानी आदमी भला है। एहसान है। बहुत दिन हुए, जीवन महाशय ने उसे टाइफायेड से बचाया था। तब उसकी हालत ऐसी अच्छी नही थी, मजूरी करता था। उन्ही के यहाँ मजूरी की थी। जीवन ने मुफ्त मे उसका इलाज किया था, यह बात वह भूला नही है। आज वह बडे डाक्टर को बुला सकता है, चार रुपया फीस देना उसे खलेगा नही, फिर भी वह जीवनदत्त को छोडकर किसी से नही दिखाता। केवल एहसान की बात नही, रोग

जीवन-मरण का सवाल लेकर आता है, ऐसे मे एहसान की वात ही वडी नही होती, वडी होती है विश्वास की वात। परानी मियाँ को यह विश्वास है। जो उन पर इतना वडा विश्वास रखता है, उसे स्नेह किये विना वे कैसे रह सकते है? हाँ, उसकी वीवी के मामले मे वे थोडा कौतुक माने विना नही रह सकते। एक वार उन्होने स्वय कहा था—परानी न हो तो वीवी को एक वार कलकत्ते लिवा जाओ। आजकल तरह-तरह की जाँच निकली है, करा लाओ। डाक्टर ने यह वात महत्व देते हुए कही थी, मजाक नही किया था।

उन्होने कहा था—एक काम करो। अस्पताल के वडे डाक्टर को एक दिन वुला लो। उन्हे दिखा दो। वे तुम्हे वता देगे, चिट्ठी दे देगे कि कहाँ किनसे दिखाना है।

डाक्टर प्रद्योत रोगिणी को देखकर हँसे थे। कहा था—वीमारी मन की है, शरीर की नही। और—। जरा देर रुककर वोले थे—किसी मनोवैज्ञानिक डाक्टर को दिखाने से लाभ हो सकता है।

महाशय ने वात का मर्म समझा था, परानी नही समझ सका था, फिर भी वह नये डाक्टर मे खीझ उठा था। उसकी वीवी उसकी नजरो के सामने वीमार है, वह उसकी सेवा कर रहा है, आँखो से, स्पर्श से वह वीमारी का अनुभव कर रहा है और यह डाक्टर कह रहा है, वीमारी नही है।

सो उसने डाक्टर प्रद्योत को ही नही छोडा, कलकत्ता जाना भी मुलतवी कर दिया। उसने केवल यह पूछा था कि आप क्या समझ रहे है, सो वताये। अगर जान का खतरा समझते है, समझते है कि मौत हो सकती है—तव न हो तो—।

—नही, वह खतरा नही है। तव दिन लग सकता है। नही समझा?

—सो लगे कुछ दिन। भोगेगी। मै आपकी छोडकर दूसरे की दवा नही खिलाऊँगा।

तव से यही चल रहा है। तीन-तीन दिन पर डाक्टर आया करते हैं। किन्तु परानी की इच्छा रहती है कि वे रोज आया करे। डाक्टर वैसा नही करते। परानी रोज आता है। हाल कह जाता है। पूछ लेता है—कुछ वदलेगे दवा?

—नही-नही, जो चलता है, वही चलने दो।

—कुछ तन्दुरुस्ती की दवा, सोने की दवा। रात को जरा भी आँख नही मोडती, छटपटाती रहती है। करवटें बदलती रहती है और ढकाढक पानी पीती रहती है।

कुछ दे दें कि वह खुश हो जाता है। आज भी उसे कोई दवा चाहिए। वह इसीलिए उस डरे हुए जवान को डाक्टर के इलाज की कुशलता समझाने बैठा है।

डाक्टर एक के बाद दूसरे रोगी को देखते चले जाते हैं। इतने मे एक छै फुट लबा आदमी आकर खडा हो गया—जरा देख लीजिये।—गभीर आवाज।

—क्या है? तुम्हे क्या हुआ? पहलवान को?

—क्या हुआ है कुछ समझ नही पाता। खाँसी, जुकाम, बीच-बीच में बुखार। छूटता ही नही।

उसने कलाई आगे बढा दी। छै फुट लम्बा, वैसा ही ढाँचा, खासा जवान। घाट महेशपुर का राणा पाठक। इलाके मे राणा पाठक बडा बलवान है, लाठी चलाना, कुश्ती खेलना, नाव खेना, देवस्थानो मे बलिदान करना—यही सब उसका काम है। कुछ ही साल पहले तक हर साल अबुवाची की कुश्ती-प्रतियोगिता में राणा पाठक का नाम कई दिनो तक लोगो की जबान पर थिरका करता था। फिर उसका नाम सुना जाता था काली-पूजा के समय। भैसा-बलि देने में उसकी कुशलता लोगो के मुँह मे कहानी हो गई थी। घर में कुछ जमीन-जायदाद थी, उसकी फसल और घाट के खेवा से उसका गुजारा मजे मे चल जाता था। महेशपुर घाट की डाक सदा उसी की थी। दूसरा कोई बोली बोलकर बन्दोबस्त ले तो नाव नही चला पाता था। राणा पाठक का बीमार होना महाशय ने कभी नही सुना। आज उसे देखकर वे चकित रह गये। यह क्या शकल हो गई राणा की? आँखो के नीचे स्याही-सी पड गई है। मजबूत बाँस की जड की तरह मोटे कब्जे की हड्डी उभर आई है। कुरते की ओट से कंठा दिखाई दे रहा है!

—राणा, तुम जरा अच्छी तरह जाँच कराओ इसकी। बल्कि बर्दवान जाकर दिखा आओ। या नही तो यही जो नये-नये डाक्टर है, उनसे

दिखाओ। टोटका और मुष्टियोग से यह नही ठीक होगा।

राणा ने गर्दन हिलाकर कहा—उँहूँ। उनके पास गये नही कि व यक्ष्मा बतायेगे। उनकी यही बीमारी है। फिर इतनी लबी एक फिहरिश्त हाथ मे थमा देंगे। छाती का फोटू लिवाओ, थूक जाँच करा लो, यह करो, वह करो। इलाज इन सबके बाद। यक्ष्मा शायद हुआ है मुझे। एक औरत से छूत लगी है। फिर इतनी परीक्षा क्या? और इतनी जाँच ही करनी पडी तो डाक्टरी किस बात की? आप नाडी देखें और बता दें कि क्या करूँ। दवा दीजिये। मै नियम मे सब करूँगा। उसके बाद मेरी परमायु और आपका यश! सुई-वुई का झमेला मुझसे नही झेला जायगा। तपेदिक की दवा तो आपलोगो के भी पास है।

—है। लेकिन आजकल जो दवाये निकली है, वे बहुत ही अच्छी है, बहुत ही अच्छी।

—आप कह रहे है?

—मै कह रहा हूँ। इसमें कुछ शर्म नही। तुम बल्कि डाक्टर हरेन्द्र के पास जाओ। छाती के फोटू के बारे में जो कहा तुमने, वह करा लेना चाहिए। एक्स-रे से पता चल जायगा कि रोग किस हालत में है। अच्छे हो जाने पर फिर एक्स-रे लेना, उससे यह मालूम हो जायगा कि बिल्कुल छूट गया कि नही। मान लो, कही कसर रह गया, जाना न जा सका। तो वही कुछ दिनो मे फिर बढ जायगा।

राणा ने गरदन हिलाई।

कई बार सिर हिलाकर बोला—उँहूँ, तो मैं भूदेव कविराज के पास जाऊँ। वह कडी अग्रेजी दवा मुझसे बर्दाश्त न होगी। इन डाक्टरो की बोली बडी वैसी है। हमें तो वे मानो आदमी ही नही समझते। उन दिनो आप देखते थे, आपका वह जमाना भी तो मै देख चुका हूँ। ये रुपये बहुत कमाते है, बहुत फीस लेते है,। फूटी पाई नही छोड़ सकते। लेकिन वह इज्जत नही है। आपलोग रोगियो से घर के लोगो की तरह बाते करते थे। मेरा मिजाज कड़ा ठहरा। जाने कब झडप हो जाय। उससे कविराजी ही बेहतर है। दुनिया मे कोई लोहे से सिर मढाकर तो आया नही। मरना पडेगा ही। आज या कल! फिर कडी-रूखी बातें सुनकर क्यो मरूँ?

राणा उठकर चला गया।

—राणा! ओ राणा!

—जी।

—तुम्हें अगर कविराजी ही पसन्द है, तो पकुड़िया जाओ। सेन महाशय के यहाँ। बडा खानदान, बडी इज्जत। अच्छी दवा रखते हैं—विचक्षण वैद्य हैं। वही जाओ। समझ गये? यह बीमारी लापरवाही करने की नही।

—पकुडिया जाने को कह रहे है?

—हाँ। जाओ। भूदेव अभी नया है। समझ गये? चाहो तो भूदेव को साथ ले जाओ।

देखूं। रुपया भी तो होना चाहिए।—राणा हँसा।—आपके पास आने का वह भी तो कारण है! कम रुपयो मे इलाज और कहाँ होगा?

चला गया राणा। पाठक! बलवान, विशाल शरीर, निडर, बाढ से, आँधी से लडता रहा है, आज बेबस हो पडा है। मौत के आगे आदमी बडा असहाय होता है।

जीवन महाशय ने दीर्घ निश्वास त्यागा। राणा की ही बात सोच रहे थे। राणा ने झूठ नही कहा। गरीब देश, गरीब यहाँ के लोग। रुपया कहाँ से लाये? और डाक्टर भी क्या करे? उन्ही की रोजी कैसे चले? अपनी अवस्था सोचकर ही कह रहे थे जीवन महाशय! आज सुबह से फीस के चार रुपये मिले है। उनके पिता, पितामह और खुद उन्होने जो जायदाद बनाई थी, इन पन्द्रह-बीस साल के अरसे मे उसका अधिकाश निकल गया। आज वे नि:स्व-से हो गये है। लोग भाग्य की कहते है। अतर वह अपना कपाल पीटतो है। मगर जीवन महाशय जानते है कि इसके जिम्मेदार वे खुद है—दूसरा कौन होगा?

एक बैलगाड़ी आकर लगी।

—कहाँ है, गुरुदेव कहाँ है?

गाडी में से शशि उतरा। लाल-लाल आँखें। अभी ही पी ली है। रामहरि के यहाँ ले जाने के लिए आया है। रामहरि ज्ञान-गगा जाना चाहता है। कल रात की सारी बाते याद आ गई। रामहरि जायगा,

मौत को अपनाने ?

शशि ने चार रुपये रख दिये।

—मैंने कह रक्खा है, इन चार रुपयों से काम नहीं चलने का रामहरि। जीवन महाशय को जिन्दगी में अंतिम बार दिखाओगे और देना पड़ेगा। हमलोगों को तो तुमने पहले चुलाई हुई शराब पिलाई है, बकरे का मांस खिलाया है, महाशय को तो तुमने कुछ भी नहीं खिलाया। खिलाया भी होगा तो लौकी, कोंहड़ा। लड़का वसीयत करा रहा है। कहा है, महाशय को गवाह बनायेंगे। दक्षिणा देंगे।

शशि हँसने लगा।

एकाएक हँसना बंद करके बोला, यह कमबख्त दाँतू घोषाल, मरता, जहन्नुम में जाता, आपने निदान क्यों बताया ? रो रहा है—प्रद्योत और तड़पा रहा है।

महाशय ने परवाह न की। दाँतू मरेगा, इसी रोग में मरेगा, प्रवृत्ति को ऐसा प्रबल रिपु बनते शायद ही देखा जाता है। प्रद्योत उसे किसी उपाय से नहीं बचा सकता। अन्दर की ओर बढ़े। बोले—ठहर जा, देख लूँ, देवी जी क्या बकझक कर रही हैं। अतर बहू की झिड़कियाँ उनके कानों आ रही थीं।

अतर बहू उसी को झिड़क रही थीं, जिसे वे सदा से झिड़कती आई हैं, अपने नसीब को।—हाय रे नसीब, हाय री मेरी जली तकदीर !

नंदू उस तरफ को बैठा माटी कुरेद रहा है। उन्हें शुबहा नहीं रहा कि इसमें नंदू भी है।

दोनों की तरफ देखकर महाशय ने पूछा—क्या हुआ ?

—कुछ नहीं।

नंदू ने कहा—दाँतू को यह सब कहने की आपको क्या जरूरत पड़ी थी ? अस्पताल का डाक्टर जो जी में आता है, वही कह रहा है। मैं सुनकर आया हूँ—अपने कानों।

—अगर मौत ही बतानी है, तो मेरी बताओ। देखो हाथ।

—तुम्हारी मौत तो मैं बिना हाथ देखे ही बता सकता हूँ।

—कहो, वही कहो। मैं मरूँगी। यह जलन मुझसे और नहीं सही

जाती। नही, और नही। यही सुनना है। खुद 'नही' के अवतार बने बैठे हो। रतन बाबू के यहाँ फीस मे चार रुपये दे रहे थे, तुमने दो लौटा दिये, दो लेकर घर आये। जिसे भी तुम देखते हो, उसी को यह कह जाते हो कि तुम मर जाओगे।

अबकी जीवन महाशय हा-हा करके हँस पडे। उस हँसी से अतर बहू सन्नाटे में आ गईं। जीवन महाशय बोले--मरने ही के लिए जन्म होता है अतर बहू। सभी मरेंगे सभी। अमर कोई नही है।

घूंघट हटाकर अतर बहू सहसा चीत्कार कर उठी--सारी दुनिया को मै नही जानती। मै कब मरूंगी, सो बताओ।

--मेरे मरने के बाद!

वज्र-जैसी पैनी बात। अतर बहू विमूढ हो गईं।

--मेरी मौत कब होगी, मै यही नही समझ पाता। नही तो दिन-तारीख सब बता देता। बनविहारी की मौत मै जान गया था। तुमसे कहा था, पर तुम्हे यकीन नही हुआ था। इस पर यकीन करो।

जीवन महाशय वहाँ से चले आये। शशि लाल-लाल आँखो उनकी ओर ताक रहा था।

--चल। शशि!

शशि को मानो अब होश आया। बोला--चलिये।--अचानक हँस उठा। कहा--आपने बिल्कुल ठीक कहा है। कौन नही मरेगा? सभी मरेंगे। अस्पताल का वह डाक्टर, वही कबख्त क्या अमर है।

डाक्टर बोले--चुप रह। रहने दे ये बाते।

हाय रे मनुष्य! न' हाय कैसी। यह रामहरि तो मनुष्य ही है। हँसते-हँसते मरने के लिए जा रहा है।

प्रद्योत सचमुच ही बेतरह बिगड उठा है। गणेश भट्टाचार्य की बेटी को कुछ अच्छी देखकर अभी-अभी दफ्तर मे आकर बैठा ही था कि उधर से दाँतू आकर जोरो से रो पडा।

उनके पाँव ही पकड लिये--डाक्टर बाबू, मुझे बचा लीजिये।

--हुआ क्या है? उठिये। साफ-साफ बताइये।

--मुझे बचा लीजिये। मै मर जाऊँगा।

—आपको हुआ क्या है कि मर जायेंगे ?

—महाशय ने कहा है। जीवन महाशय ने।

—किसने ? जीवनदत्त ने ?

—जी हाँ। कहा, यह तेरा मृत्यु-रोग है। शिव के बाप भी आवें तो तुम्हे नही बचा सकते।

—यानी जीवनदत्त से शिव के बाप की जान-पहचान है ? न, दिमाग खराब हो गया है इस आदमी का।

जी !—दाँतू टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

—उठिये। मै देखूं कि आपको क्या हुआ है। चलिये, कमरे की उस मेज, पर सो जाइये। कहिये, शिकायत क्या है ?

शुरू से आखीर तक सब सुनकर डाक्टर ने भँवें सिकोड़ी। कहा—यह सब कुछ आप मुझे लिखकर दे सकते हैं ?

—क्यो नही। हजार बार दे सकता हूँ। अभी लिखकर दे सकता हूँ—अभी। बेटा कायथ—

डाक्टर ने डाँट बताई, यह क्या कहने लगे आप ? कायथ क्या ? जानते हैं, मैं भी कायस्थ हूँ ?

दाँतू ने जीभ काटी।—भला आपको कह सकता हूँ मै ! जीवन को कह रहा हूँ। उस कबख्त को। लेकिन मै बच तो जाऊँगा ?—दाँतू रो पडा।

—हुआ क्या है कि आप नही बचेगे। दवा खाये, नियम से रहें—

हरिहर कपाउडर बगल के कमरे मे दवा बना रहा था। वह बोल उठा—दाँतू से यह न होगा। बीमारी तो उसके बुलाये आई है। खा-खाकर बीमार बना है। दो दिन ठीक रहा नही कि किसी के घर जा धमका—आज यही दो मुटठी खाऊँगा।

हरिहर हँसने लगा।

डाक्टर ने कहा—आपको अस्पताल मे रहना पडेगा। रहेगे ?

—रहूँगा।

दाँतू जीना चाहता है। मरते नही बनेगा उससे।

उसे दाखिल कर लीजिये।—और डाक्टर ने एक कागज लिया—

मजिस्ट्रेट को सारा कुछ लिखेंगे। इस तरह लोगों की मौत का ऐलान करते फिरना आज के जमाने में असह्य है। इसका प्रतिकार होना चाहिए।

जरा देर मे आधी लिखी दरखास्त को फाडकर उन्होंने फेंक दिया। रहने भी दो!

इस आदमी को सनक-सी सवार हो गई है। मौत की घोषणा करके खुशी होती है। मौत दुनिया में निश्चित है। कौन नही जानता? उसे जीतने के लिए आदमी की कोशिशो का अंत नही। यह साधना निरंतर चल ही रही है। ईजाद पर ईजाद होते चले जा रहे है। मगर आज भी उसे रोका नही जा सका। आज भी वह ध्रुव है—लेकिन तो भी है यह दर्दनाक, वियोगात व्यापार! उसमें आध्यात्मिक जैसा कुछ मिलाकर मृत्यु की घोषणा, चौका देने वाली है, रोमांटिक भी है, लेकिन है बडा निर्मम। ठीक पशु को बलि देने के समान। पूजार्चन के आडबर से आध्यात्मिकता के कुहरे में एक कल्पलोक की सृष्टि करके मौत को मुक्ति के नाम से घोषित करना खड्गाघात जैसी ही एक कठोर प्रथा है। जीवनदत्त उसीका पुरोहित बना बैठा है।

He must stop रुकना पडेगा उसे। उसे रोकना पड़ेगा—
He must be stopped

अगर इस अर्चना बेचारी की नाडी देखी होती तो इसकी भी मौत की घोषणा कर जाता। वह उसे नाडी न देखने दी सो अच्छा ही किया। इस भाग्यवादी देश मे मौत की घोषणा करने वाले चिकित्सक ही योग्य चिकित्सक थे। कवच, जतर, जडी, बूटी, चरणामृत—कुछ भी देने में इन्हे सकोच नही।

इस आदमी ने अपने लडके तक की मृत्यु-घोषणा की थी। और वह भी की थी माँ यानी अपनी स्त्री के सामने। उफ! कैसा निर्मम! कल्पना भी नही की जाती।

प्रद्योत ने दीर्घनिश्वास छोडा। सिगरेट सुलगाई और कमरे से निकलकर नर्सों के दफ्तर की तरफ गये। नर्स को बुलाया, कहा—नये मरीज, उस बूढे ब्राह्मण को दाखिल किया गया है। उस पर ध्यान देना। उसके पाखाने की जाँच करनी होगी। आज ही।

उसके बाद सारे वार्ड को घूम गये और मैदान में, नई इमारत के सामने आकर खडे हुए। अच्छी इमारत बन रही है। डिसेन्ट बिल्डिंग। चारो तरफ विंग होते तो और भी अच्छा होता। विंग बनने की भी स्कीम है। बाद मे बनेगा।

नया जमाना है। विज्ञान का जमाना। नसीब और किस्मत के निर्वासन का जमाना! मनुष्य बीमारी पर विजय करेगा। मौत के साथ लडाई करेगा। उसने बेबस होकर मौत मे अमृत की खोज की है। आज बहुतेरे आयोजन चाहिएँ—बहुत तरह के आयोजन और आज यह भी जरूरत है कि ऐसे लोगो को निकाल बाहर किया जाय। जीवन महाशय-जैसे लोगो को। निदान! निदान! मृत्यु से मानो यह देश प्रेम कर बैठा है। गगा के किनारे जाकर देह को पानी मे डालकर मरना ही यहाँ काम्य है। मोती की माँ की एक्स रे-रिपोर्ट पा जाने से प्रद्योत को एक प्रेरणा मिली है। मोती रिपोर्ट लेकर आज सवेरे बर्दवान से आया है। बर्दवान के अस्पताल के डाक्टर गरचे प्रद्योत से सीनियर है, फिर भी उनसे प्रद्योत का खासा प्रेम-भाव है। उसने लिखा था—कृपया मुझे सारी बातें लिख भेजेंगे, क्योकि इस केस से मै बहुत Interested हूँ। मरना निश्चित बताकर इस बुढिया को सकीर्त्तन करते हुए ज्ञान-गगा भेजने का इतजाम हो रहा था। यहाँ के एक पुराने वैद महाराज ने निदान बताया था—कई महीने, कै दिन, कै पल मे इस बुढिया के प्राण-पखेरू उड जायेंगे, पाँव के दर्द से ही इसकी मौत होगी। उसी केस को मैंने जबर्दस्ती अस्पताल भेजा है। यहाँ के लोग मेरी इस करतूत पर हँस रहे है, कि जब जीवन-दत्त ने नब्ज देखकर बता दिया है, तो कौन इसे बचा सकता है?

बर्दवान के डाक्टर ने इसीलिए मोती के मार्फत सारी रिपोर्ट भेजी है। उसे पढकर प्रद्योत का चेहरा व्यग की हँसी से खिल पडा था, खीज भी हुई थी। गिरकर बुढिया के पाँव की एक गाँठ मे चोट आई, हड्डी का कुछ चूरा वहाँ रह गया है। वहाँ नश्तर लगाकर चूरे को निकाल देना पडेगा और हड्डी के किसी हिस्से को अगर बाद देना पडे तो, वैसा करने से सब ठीक हो जायगा! आशका की कोई वजह नही।

निदान! निदान! निदान!

कल शाम को भी निदान का किस्सा सुन आये है। बी. के. मेडिकल स्टोर्स के मालिक विनय के यहाँ। वह भी एक लहू पीनेवाला आदमी है। रोग का मौका पाकर लोगों का दिवाला निकाल देता है। जाली दवा बेचता है। लंबी बातें बनाता है। प्रद्योत को लाचारी वहाँ जाना पड़ता है, नही तो वह उससे घृणा करता है।

एक जरूरी सुई मँगाने के लिए कहने को वहाँ गया था प्रद्योत। कल साँझ तक सुई मिलनी ही चाहिए। और भी दो-चार दवाये। विनय के यहाँ ऐसी व्यवस्था है कि रोज रात को साढे दस बजे की गाड़ी से उसका आदमी कलकत्ता जाता है। सुबह जरूरी चीजें खरीदकर दोपहर की ही गाडी से चलकर शाम को नवग्राम लौट आता है। पूरे चौबीस घटे भी नही लगते। माहवारी टिकट ले रक्खा है हवडे का।

उसके यहाँ बैठक में चर्चा छिडी थी। मोती की माँ की चर्चा। प्रद्योत के हाथो का वह मरीज लडका जो कल मर गया, उसकी चर्चा, विपिन बाबू की हिचकी की बात। विनय अग्रेजी दवायें बेचता जरूर है, उससे मुनाफा भी खूब कमाता है, मगर अग्रेजी दवा पर उसे विश्वास नही है। उसकी आस्था है कविराजी दवा पर। बीच-बीच में डाक्टरो से कहा भी करता है—आपलोगो वाली चिकित्सा तो काने लोग भी कर सकते है। लहू, थूक, मल-मूत्र, एक्स रे, इतनी-इतनी जाँच कर लेने के बाद तब आप चिकित्सा करेगे। पिछले दिनों नाड़ी देखकर ही लोग बता देते थे—फलाँ बीमारी है। अठारह महीने या छै महीने या सात दिन की मियाद है। हमारे जीवन महाशय को ही देखिये—

उसने उनके निदान की चर्चा की और कहा—जब उन्होंने मोती की माँ के बारे में कह दिया है डाक्टर बाबू, तब—

एक्स रे की रिपोर्ट और डाक्टर की चिट्ठी से प्रद्योत को बल मिला है। प्रेरणा मिली है। यहाँ के लोग कुछ इस तरह की बातें कहा करते है कि कभी-कभी खुद को कमजोर लगने लगता है। यहाँ तक कि चारु बाबू भी उन्ही की हाँ में हाँ मिलाते है। हरेन्द्र डाक्टर जवान है। लेकिन यही का है। विश्वास तो वह शायद नही करता, लेकिन अविश्वास की दृढता भी उसमें नही। बचपन की स्मृतियाँ उसे झकझोर कर कमजोर

कर देती है। शायद महाशय ने उसे मौत के मुँह से बचाया था। उसकी कहानी कितनी आश्चर्यजनक है! छुटपन की और भी आश्चर्य-जनक स्मृतियाँ हैं उसकी—बहुतेरी।

लेकिन अबकी प्रद्योत साबित कर देगा।

मोती की माँ बच जायगी। दाँतू बच जायगा।

डाक्टर डेरे की तरफ चल पडा।

कानों में पहुँची गीत की स्वर-लहरी। मजु गीत गा रही है। एक बज रहा है। रसोई हो चुकी है। कोई काम बाकी नहीं। गीत गा रही है मजु। अजीब जीवनमयी औरत है यह मजु। मूर्तिमंत जीवन। जीवन का झरना! उच्छ्वासभरे आवेग में आगे बढ़ती जा रही है। बडी-बडी लडाइयों के बाद डाक्टर उसे जीत पाया है। घर में इसीलिए लोग मजु को पसद नही करते—इतना भी दुलरुआ होना क्या अच्छा है!

डाक्टर को अच्छा लगता है। उसे उन्होंने साइकिल चलाना सिखाया है, बदूक छोडना सिखाया है। मोटर चलाना भी सिखायेंगे। बाधा नहीं देंगे।

यही, यही तो जिदगी है! गतिमान, उल्लासमयी। नवल जीवन का आनन्द यही तो है: This is life

सीढियों पर ब्लीचिंग पावडर छिडका है। इसलिए जूते का तलवा साफ करके वे ऊपर गये। उधर साबुन, पानी, लोशन, तौलिया तैयार।

धीरे-धीरे चूं-चरमर की आवाज करती हुई एक बैलगाडी आ रही थी। अस्पताल के पास ही से रास्ता है। सावन के आसमान में बादल मँडरा रहे हैं, छाया से ढँकी म्लान दोपहरी—जब-तब बूँदा-बादी। गाड़ी के टप्पर के अन्दर वह कौन? सफेद दाढी, सफेद बाल—स्थूल-स्थविर। मेघ-घिरे आकाश की ओर निगाहें। गाडी के पहिये गढे में गिरते हैं, ईंट से लडते है—गाडी हिल उठती है, लेकिन कोई परवाह नही।

जीवन महाशय है। कही रोगी देखने जा रहे हैं।

इक्कीस

हाँ, वही है। जीवन महाशय। गलाइ चंडी जा रहे है। शशि के मरीज रामहरि को देखने। आसमान ही की तरफ देख रहे है। गाडी झकझोर रही है—कुछ खयाल नही। उनका सब दिन यही हाल रहा है, बैलगाडी पर सवार होते ही गहरी चिंता में डूब जाते है या आसमान की ओर खोये-खोये-से देखते रहते है।

पीछे बैठा है शशि। बकता चला जा रहा है। कह रहा था—औरतों की जात ही ऐसी होती है। रुपयो का नुकसान नही सह सकती।

जीवन महाशय हत-से बैठे। आते-आते उन्होने अतर बहू से जो कुछ कहा शशि ने सब सुन लिया था। उसी का छोर पकडकर उसने अपना चरखा चालू कर दिया। शुरू किया यह कहकर कि—प्रद्योत डाक्टर भी एक दिन मरेगा। महाशय ने डॉट बता दी इसलिए अब फीस की बात पर उतर आया।

जरा देर शशि चुप रहा। फिर बोला—जब वे खुद ही चार रुपये दे रहे थे तो आपने लिये क्यो नही ? कसूर क्या था इसमें ?

जीवन महाशय फिर भी चुप रहे।

शशि ने फिर कहा—एक बार बिगड उठी तो बहूजी की जबान पर लगाम नही रह सकती। उनकी यह आदत नही जा सकी !

जीवन महाशय आकाश की ओर देख रहे है। अतर बहू की बाते मन मे घुमड़ रही हैं। बातें नही बल्कि बाण। उस बाण से बिंधकर भी जीवन महाशय घायल नही होते। हाथी की तरह चलते है, सारे तीर चुभे रहते है, उनके स्पर्श की अनुभूति नही होती। फिर जाने कब सब गिर पडते हैं। सारा शरीर उनके दागो से भरा है।

मगर शशि को खीझ होती है—इस बुढे की जिन्दगी सदा एक-सी रही। सौ कहो तो एक का जवाब ! यह समझना मुश्किल है कि किस बात से इनका मन डोलेगा—बोलेगा। बहूजी मुखरा जरूर है लेकिन इन्ही के चलते। झगड़ा-झंझट जो भी है इन्ही से। दूसरे लोगो से व्यवहार में वह और ही दीखती है। शशि के जीवन के आरंभिक दिन इसी घर मे

गुजरे, वह तो जानता है ! पूरे तीन साल रहा यहाँ । उस समय बहूजी ने जैसा जतन किया, जो अपनापा दिखाया वह तो उसे याद है । बुलाकर जलपान कराती रही है न खाओ तो झिडका किया है, बडी अच्छी बातें कहती थी—ओझा के कधे भी भूत का बोझा पडता है शशि, डाक्टर-वैद्य को भी बीमारी होती है । समय पर खाया कर । पित्त मत बिगाड ।

यही नही, घर मे जब भी कुछ नया बना है बुलाकर खिलाती रही हैं । कहती—जरा खाकर देख तो कैसी बनी है भैया ।

शशि की शादी हुई । बहूजी ने नई बहू को देखा । एक अँगूठी दी ।

बहू जी को तो इस बूढे ने कडवा बना दिया है, इस मस्त हाथी ने । मस्त हाथी ही हैं । किसी बात का ख्याल नही । बैठे हैं जरा देखिये । पत्थर की चट्टान हो जैसे ।

शशि कहे भी क्या ! आज अपनी गरज है ! सर खुजाते-खुजाते उसने शुरू किया—गलती बहूजी की नही है महाशय जी ! वह जमाना याद आता है, तो दुःख होता है, अफसोस होता है । बात भी है अफसोस की । उफ, क्या इज्जत थी, कितनी बुलाहट आती थी ! क्या दिन, क्या रात कभी सोने-खाने की फुर्सत नही । वह सफेद घोडा, उतना बडा घोडा, दो ही साल मे कमर के वात से बेकार और क्या बुखार फैला था इलाके मे ! हू-हू, कँपकँपी और को-को बुखार ! फिर पचायत का प्रधान । बाप रे बाप ! एक समय था वह ! गगा में नाव चलना कहिये । डाक्टर हरीश के लडके का मरना याद है आपको ? इधर लडके की अब-तब हालत और उधर भूल से मालिश की शीशी मे हरीश ने खाने की दवा का नाम लिख दिया । उसे पीकर लोटन गराई की पतोहू की अब गई, तब गई दशा, रात के बारह बजे खोका चटर्जी दौडा-दौडा आया—उसकी बहन गले मे रस्सी लगाकर झूल गई । घूस के लिए दरोगा-पुलिस ऐठे चल रहे है—आप मेले मे उस समय पजाबी के जुए के अड्डे पर बैठे—धोती की गाँठ मे रुपये बाप रे बाप ! वह भी क्या रात थी ! याद है ।

जीवन डाक्टर ने लबी उसाँस छोडी । जरा हिल बैठे जगह पर । न । उस दिन की बात याद नही है साफ-साफ याद नही आती । याद दिलाने से याद आती है और याद आने से एक बेचैनी-सी होती है । आप

अपने को पूछते है। ऐसा क्यो हुआ था? क्यों?

अस्थिर हो उठे वे। अपने गोपन संकल्प की बात याद आ गई। घोडा खरीदकर उस पर सवार हो अतर बहू को पालकी पर विठाकर एक दिन कांदी जाऊँगा। घोड़ा उन्होंने खरीदा था। बड़ा-सा घोड़ा—सफेद। अतर वहू को वहुत-से जेवर दिये थे। लेकिन कांदी जाना न हो सका। क्यो नही हो सका जाना इसे वे आज भी नही समझ सके। संकोच या भय से कौन जाने? शायद हो कि दोनो ही हो। खैर। जिस कारण से भी हो चाहे, जा नही सके। प्रतिष्ठा और दौलत की मादकता से प्रमत्त की नाई केवल इसी इलाके मे घूमते रहे। प्रतिष्ठा का वही शायद सर्वोत्तम समय था! उनके इलाज के यश ने उन्हें सर्वजनमान्य वना दिया था। आदर से सरकार तक ने उन्हें यहाँ की पचायत का प्रधान वनाया था। लेकिन जी न भरा। किसी चीज से नही। जो भी पाया, दोनों हाथों लुटाया। मन ही को तृप्ति न मिली तो सचय किस आनन्द से करते? अगर कहो कि प्रतिष्ठिा के आनन्द से, कह सकते हो, लेकिन वह भी धोखे में वदल गई। यही तो होता है! उनके पिता कहा करते थे, डाक्टर रंगलाल भी कहा करते थे, प्रतिष्ठा यदि सचमुच मे आनन्द नही वनती, मन को यदि वह भरपूर नही कर सकती तो समझो कि वह झूठ है—उसकी आयु निहायत कम है, महज कुछ दिनो की। उन कई दिनो के गुजरते ही वह प्रतिष्ठा मिथ्या हो जाती है। डाक्टर रगलाल हँसकर ब्राडी का ग्लास हाथ में लेकर कहते—बस, इस नशे की तरह!—एक दिन कहा था—नवदम्पत्ति के आकर्षण के समान। वह यदि रूप-यौवन के उपभोग जैसा आनन्द हो—तो रूप और जवानी के जाते ही कडवा हो उठता है, झूठा हो जाता है। लेकिन अगर वह प्रेम हो तो कभी नही जाता जीवन! गोकि म इन दोनो का स्वाद नही जानता।—और वे जोरो से हँस पडे थे।

पिताजी परमानन्द माघव की बात कहा करते थे। उन्हें न पाया तो कुछ नही पाया। उन्हें पाया भी जा सकता है या नही, जीवन महाशय नही जानते। हाँ उन्होंने नही पाया। जायदाद में नही पाया; इज्जत में नहीं पाया, अतर वहू, उनके बच्चे सुषमा, सुरमा, निरुपमा, वनविहारी-किसी में नही।

नशे की लत ही नही थी। एक ही नशा था, मर्ज अच्छा करने का, मरीज को बचाने का। और नशा था शतरज का, मेले में जूआ खेलने का। याद है, हाथ का मरीज जियेगा या मरेगा, मन-ही-मन इस पर बाजी रखकर जुए मे दाँव लगाते थे। अगर जीत गये तो जियेगा, हारे तो मरेगा। नही मिलता। फिर भी दाँव लगाते।

उस जमाने में जूआ खेलना गुनाह न था, कम-से-कम बडे लोगो के लडको के लिए। छुटपन से ही थोडी-बहुत आदत थी। ज्यो-ज्यो इज्जत बढी, वह आदत भी बढ गई। फिर अतर बहू ने उसे और बढा दिया।

शशि एक रात की बात कर रहा है। बेशक याद आ रही है। सब कुछ। केवल रात ही नही—रात-दिन, वह समय, उस समय के लोग-जन, सबकी याद आ रही है। उस युग के पानी-भरे टलमल पोखरे, धान से भरे खेत-खलिहान, शात छाया-सघन साफ-सुथरे गाँव, लबे-तगडे लोग, मुँह मे मीठी-मीठी बात, गुहालो मे गाये, तालाब मे मछलियाँ, आँगन में धान की मोरियाँ, भडार मे चावलो से भरी कोठियाँ, उडद, मूँग, मसूर, चना, मनो गुड—वह समय, वह देश, देखते-ही-देखते मानो बदल गया।

मलेरिया नही था, ऐसी बात नही। था। पुराना ज्वर दो-चार लोगो को होता था। अपने सुभाव के मुताबिक ठीक ही कहा है शशि ने। उन स्मृतियो को याद आते ही जीवन डाक्टर का हृदय कातर आर्त्तनाद कर उठता है। उस बार कितने बच्चो की जो मृत्यु हुई, गिनती नही। शिशु-महामारी कहिये। माताओ के क्रन्दन मे आकाश भर उठा था।

इलाके मे उस समय उनका बडा नाम-गाम था। उनके सिवा डाक्टर हरीश थे। जिन्हे किशोर के पिता कृष्णादास बाबू ने पहले-पहल अपने यहा रक्खा था। ब्रजलाल बाबू के खैराती अस्पताल में वे डाक्टर हुए। शशि भी इनके यहा से छोडकर वही कपाउन्डरी करने लगा। देखते-ही-देखते और दो डाक्टर आ बैठे। डाक्टरी पास नही की थी, वे कम्पाउन्डर थे, रोग के मौसम मे डाक्टर बनकर आ गये। इसी नवग्राम का नरपति चौधरी एक होम्योपैथी किताब और कुछ दवाये खरीदकर देहात में डाक्टरी करने चला गया। बरदा राय चौधरी का लडका स्कूल की पढाई छोडकर कलकत्ता चला गया—आर जी कर मेडिकल स्कूल मे

पढने के लिए। पगले नेपाल का छोटा भाई सीताराम, वह भी कुछ-कुछ पगला ही था; सीताराम दवा की दूकान करने लगा—नवग्राम मेडिकल हॉल। खुदरा और थोक दवा की दूकान।

इस हैजे-महामारी मे लोगो ने चिकित्सा-व्यवसाय मे धनोपार्जन का सहज उपाय देखा।

घर-घर मे लोगो ने खाट पकडी। सुवह से शाम तक उन्हें घूमना पडता, वावू टोला, वनिया टोला, शेख टोला, मियाँ टोला, मछुआ टोली, डोम टोली, कहार टोली, वाउरी टोली। हरीश डाक्टर की दो जेवें रुपयो से भरी होती। जीवन महाशय की तीन जेवे भरी रहती, चार भी हो सकती थी। लेकिन उन्होने वैसा नही किया। अपने वश की परम्परा को उन्होने क्षुण्ण नही किया। यह नही कि अर्थ की कामना नही थी, वल्कि यह कि उसके साथ परमार्थ भी काम्य था। उसी पर तो महाशयत्व था उनका। हाय री अतर वहू, उसी महाशय को रतन वावू के यहाँ यदि लोग चार रुपये देने आये तो चार ही ले सकते थे भला? छि.-छि.।

कही वुलाहट मे निकले, तो जिसने जहाँ वुला लिया, वही चले गये राह मे, जिसने जो दिया, विना देखे ही रख लिया, कही जरूरत पडी तो उल्टे मदद दी। हरीश वाहर से यहाँ आया था और रुपया कमाने के ही लिये आया। जीवनदत्त यहाँ के तीन पुश्त के वाशिंदे है, महाशय-वश के है, यही क्यो, अपने गाँव की जमीदारी के हिस्सेदार है। उनके लिए केवल रुपया कमाना वडी वात हो सकती है? कभी जी मे ऐसा आया भी नही। कभी जेव से नकली और खोटे सिक्के निकाल कर अतर वहू उनकी लिहाडी लेती तो उन्हे तमाशा-सा लगता। हँसा करते।

अतर वहू कहती—तुम हँसो मत। मेरे वदन मे आग लग जाती है।

जीवन महाशय इस पर भी हँसते। क्योकि उनकी यह जलन स्थायी है। वह चिता की आग के साथ जलकर ही ठढी होगी।

उस समय जीवन महाशय ने लगातार दो घोडे खरीदे थे। एक वडा और एक मँझोला। तीन ही साल के अन्दर दोनो घोडे निकम्मे हो गये।—उन्हे कमर के वात का रोग हो गया। महाशय का वोझा ढोते-

ढोते दो जीवन वेकार-से हो गये। दोनो जीवो के जीवन के वाकी दिन तवाकू-व्यापारियो का तवाकू ढोते बीते। उन्होने घोड़ा फिर नही खरीदा। उनमे कूवत की कमी नही थी, समयाभाव था। लेकिन क्या किया जाय, चार-पाँच वजे भोजन नसीव होता। वही सही। वैहार की पगडडी पकडकर चलते। लोग कहा करते—हाथी जा रहा है। हाथी ही कहिये। एक दिन इदिर उनके जूते का कीचड जो धोने गया, उछल पडा—वाप रे वाप! साँप! एक मँझोले गेहुअन साँप का सिर चिपटा होकर उनके जूते मे लगा था। मानो किसी ने कुशल हाथो से जूते के तलवे मे साँप का सिर आँक दिया हो। वह तो कहिये भाग्य था कि जूता साँप के ठीक माथे पर वैठा। इदिर ने उन्हे जूता लाकर दिखाया तो वे हँसे। अतर वहू सिहर उठी थी। उन्होने साँपो की देवी की मन्नत मानी—उन्हे फटकारा भी। भला ऐसा भी कही पैसा कमाने का नशा होता है। रुपये के लिए वेहोश हो दौड पडे। इस पर भी वे हँसे थे। यही महज कै दिन पहले अतर वहू ने उनकी इस हरकत पर कहा था कि जो जो दे देता है, वही ले लेते है—दाता कर्णो को अपने वच्चो के गले छुरी चलानी पडती है। तुम वही करोगे, मै जानती हूँ।

वधु-वाधव मजाक मे कहते थे—इधर इलाके के लोगों का सर्वनाश हो रहा है और डाक्टरो की पाँचो घी मे।

डाक्टर हँसते थे। समझते थे कि वधुओ को दावत खाने की नीयत हुई है। कहते—फिर तो तुमलोगो का मुँह मीठा होना चाहिए। कुछ दावत-वावत कर लो।

—दे, रुपये निकाल।

मिताव, सुरेंद्र, नेपाल दावत के इन्तजाम मे लग पडते। वू पाकर शशि भी जुट जाता। हरीश को भी न्योता जाता। यह सब कुछ रात मे होता। दिन को मरने की भी फुर्सत कहाँ? सुवह जगते, आरोग्य-निकेतन के मरीजो को देखने, फिर रोगियो के घर से देखकर लौटने मे तीसरा पहर हो जाता—चार वज जाते। चार के वाद खाना-पीना। और तव दूर के रोगियो के यहाँ जाना। लौटते-लौटते नौ दस, वारह वज जाते। तीन भी वजते। वारह वजे तक मिताव और सुरेन्द्र उनकी वाट जोहा

करते। लालटेन जलाकर आरोग्य-निकेतन के बरामदे पर वे सब बैठकर शतरज खेलते—इदिर उनके लिए चाय और तवाकू जुटाता रहता। चौकीदार लोग बैठे रहते। उस समय जीवन महाशय पचायत के प्रवान थे। लौटकर कम-से-कम एक दांव शतरज खेलकर चौकीदारों की हाजिरी बनाकर तब जीवन महाशय आराम करते। कभी-कभी रात सुवह हो जाती। खान-पान के दिन इदिर और शशि नवग्राम जाता। डाक्टर पुर्जा लिख देते। नमक, तेल, घी मसाले, यहाँ तक कि साहा की दूकान से शराव भी आती। सुरेद्र, नेपाल, हरीश, शशि इनलोगो को शराव हुए विना मजा ही नही आता। नेपाल और सुरेन्द्र वकरी की तलाश मे निकलते। चौकीदार जाकर मछुए को वुला लाते, वह तालाव से मछली पकड देता। डाक्टर अपने आपको भूले पडे थे। नशा हो जैसे।

उस रात की वात याद आ रही है। जीवन के लिए वह एक स्मरणीय रात है। शाम को वे घर से बाहर चलने की तैयारी में थे। पहले हरीश डाक्टर के यहाँ जाना था। उसके लडके के बीमार होने की खबर मिली थी। उसके वाद मेला। मेला चल रहा था उन दिनो। भादो का महीना —नागपचमी का मेला। मेले के व्यवस्थापक लोग आकर न्योता दे गये थे। तै था कि पुलिस वालो से कह-सुनकर जीवन महाशय जूआ खेलने का प्रवन्ध करा देगें। खुद लेकर दस-बीस रुपये जुआडी को भी दे जायेगे। कुरता पहनने के लिए वे कमरे में दाखिल हुए कि नजर पडी, अतर वहू जेब से रुपये निकाल रही हैं। उनसे आँख मिलते ही अतर वहू का चेहरा सूर्ख हो उठा। उनके कुछ कहने से पहले ही अतर बहू बोल पडी—जूए मे रुपये हार आओगे, यह न होने दूँगी मैं। जूआ खेलने मे तुम्हे शर्म नही आती?—जीवन महाशय ने कहा था—रुपये मत निकालो, मैं जूआ नही खेलूँगा। वच्चो को, नौकरो को दूँगा। सब मेला देखने जायेंगे। मेले में भी दो-चार जने हाथ फैला देते है। देना पड जाता है! रहने दो रुपये।

—पाँच रुपये है उसमे।

—पाँच से क्या होगा?

—ज्यादा नही दूँगी, नही।

—खैर।

उन्होंने कुरता लिया। बाकी पाँच रुपयो को भी निकालकर फेंक दिया। कुरता पहनकर बारह निकल पडे। उनका लडका वनविहारी बाहर खडा था। साइकिल थामे पिता का इन्तजार कर रहा था। मेला देखने जायगा। रुपया चाहिए। डवल ब्रेस्ट कोट पहने, पाँवो मे पप शू। बाबुओ के लडको जैसा विलासी। इंदिर खडा था, नदू उस समय लडका-सा था, वह भी खडा था। सबको पता था कि मेले के लिए महाशय इनाम देगे। सबको देखकर महाशय मानो जल उठे। अतर बहू ने पाँच रुपये का नोट बेटे को दिया। जीवन महाशय बोले—इंदिर, मेरे साथ चल।

वे हरीश के बेटे की बीमारी की बात भूल गये। सुना था, उसकी तबीयत खराब है। पिछली रात उन्होंने हरीश को खाने के लिए बुलाया था। वे आ नही सके। लिख भेजा था—"अचानक जाडा लगकर लडके को बुखार आ गया है। औरते इससे डर गई है। मै नही पहुँच सकूँगा।" जीवन महाशय ने खोज-पूछ की सोची थी। उद्भ्रात-से होकर वे भूल गये। नवग्राम में साहा की शराब की दूकान मे पहुँचे। बुलाकर उससे कहा—मुझे पचास रुपयो की जरूरत है।

साहा सिर्फ शराब ही नही बेचता था, रुपये भी कर्ज देता था। आम लोगों से बधक लिया करता, जाने-माने लोगो को हैडनोट पर रुपये देता।

साहा अवाक् रह गया।—आपको रुपयो की जरूरत है!

—हाँ। कल-परसो मँगवा लेना। ले आ रुपये।

बिना एक शब्द कहे साहा ने रुपये लाकर उन्हे दे दिये। याद के लिए कही नोट करने की भी जरूरत न समझी।

उन्होंने दो रुपये इंदिर को दिये और बाकी रुपये लेकर मेला चले गये। इधर-उधर घूमकर जूए के अड्डे पर बैठ गये। रात के आठ बज रहे थे। बैठ गये। पता नही उस दिन उन्होने मन मे कौन-सी बाजी रक्खी थी। शायद यह लगाई थी कि यदि साल भर के अन्दर मुझे मरना है, तो मैं जीतूँगा।

रात के दस बजे दौडा-दौडा आया शशि। यह शशि उस समय हरीश के खैराती अस्पताल मे कपाउडर था। यो वह भी मेले में ही रहा होता,

लेकिन डाक्टर के लडके के बीमार पड जाने से नही आ सका। लडके की हालत चिंताजनक थी। उधर हरीश की रोगिणी लोटन गराई की पतोहू मालिश वाली दवा पी गई थी। गलती हरीश की ही थी। लडका बीमार था, दिमाग ठिकाने न था, सो मालिश की दवावाली शीशी देकर वह कह दिया—इसे पीना।

—तुरत चलिये डाक्टर बाबू।

उन्हे उठना पड़ा। बीसेक रुपये उनके पास धोती के छोर मे बच रहे थे। रुपयो को सहेजकर उन्होने एक साथ जहाज वाले खाने मे रख दिया—सब रहा। अगर जहाज डूबा तो डूबा। अगर निकल आया तो रुपये रख देना। कल ले लूँगा।

जहाज डूबेगा, यानी वे हार जायेंगे, यह उन्हे मालूम था। मतलब यह कि साल भर के अन्दर उन्हें मरना नही है। अभी बहुत कुछ देखना है। खैर। अभी हरीश के बच्चे को देख ले चलकर।

उनके पहुँचते-पहुँचते हरीश का लडका गुजर चुका था। महाशय को देखकर हरीश छाती पीटकर रो पडे थे।—जीवन! यह क्या गत हुई मेरी! काश! तुम सवेरे आये होते। तब शायद लडका बच जाता।

जीवन महाशय ने हरीश को धिक्कारा था—छि, तुम डाक्टर हो हरीश! इस तरह धीरज छोड बैठना तो तुम्हे नही सोहता। 'अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममदिर', इस बात को जानते है नियता और तत्वज्ञानी और इतना कुछ न जानते हुए भी यह डाक्टरो के लिए अज्ञात नही है। रोओ मत। औरतो को दिलासा दो। मै जरा लोटन गराई के यहाँ जाता हूँ।

पल मे हरीश के शोक का उबाल शात हो गया था।

गराई के यहाँ उस समय तरह-तरह की छान-बीन चल रही थी। हरीश की किस्मत अच्छी थी कि उस रोज मेला था। लोग-बाग मेला गये थे। नही तो अब तक उसके खिलाफ थाने मे शिकायत पहुँच गई होती। जीवन महाशय बैठ गये। सबसे पहले उन्होने उस शीशी को हथियाया और उसे जेब के हवाले किया। उसके बाद नाडी देखी। विष

की क्रिया के लक्षण थे फिर भी सवाल किया—सारी दवा पी गई है ? सब अन्दर पेट में चली गई ? नही। बडी तीखी थी दवा। रोगी ने कै कर दी। खतरा नही है।—उन्होंने शशि से कहा—डिसपेसरी मे स्टोमक पंप है ले आओ।

उसी रात बारह बजे के करीब खोका चटर्जी आकर रोने लगा—महाशय जी मुझे बचाइये मेरी बहन ने फाँसी लगा ली।

खोका ने उन्हे इलाज के लिए नही और ही कारण से बुलाया था।

जीवन महाशय पचायत के प्रधान थे। पुलिस के झमेलो से वही छुटकारा दिला सकते थे। और छुटकारा उन्होने दिलाया भी था। उन्होने गराई की पतोहू के कै कराई, मालिश की दवा पेट से निकालकर उसे मौत के पजे से छुडा नई दवा देकर रात के ढाई बजे महाशय खोका चटर्जी के घर जाकर बरामदे पर बैठे। रिपोर्ट लिखी। बोले—सस्कार का इन्तजाम करो। मै मौजूद हूँ।

सिताब से बोले—लाओ, शतरज ले आओ। यो ही बैठकर कैसे समय काटा जाय। रहे एक-आध दाँव।

सब कुछ याद आ रहा है। सब कुछ याद है, याद दिलाने से ही याद आती है। उस दिन सुबह के चार बजे तक शतरज खेलते रहे थे। लगातार बाजी पर बाजी जीतते रहे। सिताब ने कहा था—तेरा समय इस समय बहुत ही अच्छा जा रहा है जीवन! सूखे मे नाव चल रही है।

जीवन को भी ऐसा ही लगा था। लेकिन—

लेकिन अचानक रुक गई नाव।

मेले के बाद बनविहारी प्रमेह का शिकार हो गया। जीवन महाशय को यह भी पता चला कि उसने शराब भी पी थी।

उनकी जो नाव सूखे मे चल रही थी वह रुक ही नही गई बल्कि सूखे मे ही डूब गई।

उन्होने बेटे को बुलाकर दुतकारा—छि-छि-छि।—बनविहारी सिर झुकाये खडा था। उसके झुके हुए चेहरे पर कठिन क्रोध फूट पडा था। जीवन महाशय ने कहा—जो वश की कीर्ति को कलकित करता है वह कुलागार है। बाप लज्जित होता है, माँ लज्जित होती है, पूर्वज सिहर

उठते हैं---परलोक के समाज मे उनका सिर नीचा होता है।---उनको यह पता नही चल सका कि दरवाजे की ओट मे कान लगाये कब से आकर अतर बहू खडी है। वह उसी दम अन्दर आकर बोली---एक मामूली गलती के लिए तुमने उसे इतनी बडी बात कह दी? मेरे गर्भ को लानत दी! यह कहा कि पूर्वजो का सिर नीचा कर दिया! यह कहा कि तुम शर्मिदे हुए हो। तुमने यह सब कुछ अपने को देखते हुए कहा है? तुमने नही किया है? सगति से किसी बदचलन के पाले पडकर एक मामूली भूल कर बैठा है वह! लेकिन तुम? तुमने मजरी के लिए कौन-सी करतूत की थी याद नही आती?

जीवन महाशय सन्नाटे मे आ गये थे।

लडके के सामने मजरी का किस्सा सुनाकर अतर बहू बेटे का हाथ पकडकर बाहर चली गई---चल बेटे।

जीवन महाशय अपराधी की नाईं बैठे रहे। और जिस मजरी को दोषी के समान उन्होने अपने जीवन से निकाल बाहर किया था उसी मजरी को अतर बहू उनके सामने सिर ऊँचा किये खडी कर गई---महाजन की तरह।

इज्जत के उन उत्सव-मुखर दिनो मे बहुत दिनो तक मजरी उन्हें एक बार के लिए भी याद नही आई। उस दिन अतर बहू ने उसकी याद दिला दी। शराबखोरी के फलस्वरूप व्यभिचार के पाप से भूपी बोस के जो रोग हुआ उससे मजरी का भाग्य मद पड गया---जीवन महाशय को क्या इससे खुशी हुई थी? यह ठेस क्या उन्हे इसी दोष से लगी? उसी दिन उन्होने यह समझ लिया कि वनबिहारी के जीवन में मौत का बीज बोया जा चुका। मनुष्य का मरना ध्रुव है, जन्म के क्षण से ही मनुष्य मौत की तरफ धीरे-धीरे बढता जाता है। मौत थिर रहती है, एकाएक एक दिन रिपु के हाथो लोग उसे न्योता भेज देते हैं, मौत पास आने लगती है। कोई-कोई मौत को पल-पल बुलाता है जैसे दाँतू। दाँतू मरेगा। वनबिहारी की ही तरह मरेगा। प्रद्योत उसे बचा नही सकता।

सहसा वे सजग हो उठे। इधर-उधर देखा।

पीछे बैठा शशि अब तक आप-ही-आप उस बूढे हाथी को गाली-

गलौज कर रहा था। बीच मे कैनर्विसिडिका मिले पेय की शीशी को जेब से निकालकर एक घूंट पी चुका था वह। तम्बाकू भरकर पीने की गाडी मे गुन्जाइश नही। खतरा है। पुआल की गद्दी मे आग लग जा सकती है। सो अपने लोभ को जब्त करके उसने दो बीडी और चार पैसे की दम-वाली गोल्डफ्लेक सिगरेट की एक पी ली। बीच-बीच मे दॉत पीसकर वह यह सोचता रहा कि बूढे की पीठ पर दो-एक धौल जमा दूं तो क्या हो ? नही तो जलती सिगरेट की नोक पीठ मे चिपका दूं तो कैसा रहे ? तब वह चुपचाप आकाश को ताकता रह सकेगा ?

महाशय को हिल-डुलकर बैठने और टप्पर से बाहर मुँह निकालकर आसमान को झॉकते देख शशि ने कहा—उतर कर देखूं क्या ?

—क्या देखोगे ?

—यही कि कम्बख्त दॉतू सचमुच ही अस्पताल मे भर्ती हुआ कि नही ?

गाडी ठीक अस्पताल के पास पहुँच गई थी।

—रहने दो। अच्छा कौन है भला ? बडी मीठी आवाज। गा भी रही है अच्छा और गीत भी बडा सुन्दर ! बरामदे पर जो खडा है छोकरा, डाक्टर है न ?

उत्साहित होकर शशि टप्पर के पीछे से टप् से नीचे कूद पडा। बोला—जी हाँ, डाक्टर ही है। उनकी स्त्री गा रही है। जैसा पति वैसी ही पत्नी। बिल्कुल मेम साहिबा। साइकिल चलाती है डाक्टर बाबू ! और नाचती हुई चलती है मानो। गीत की तो पूछिये मत ! जब-तब। वह रही—वह। देखिये न।

सामने के बरामदे पर बच्चो की तरह मियाँ-बीवी खेल मे मत्त हो उठे है। तरुणी पत्नी ने कसकर डाक्टर का हाथ पकड लिया है, हाथ से पानी के मग को छीनना चाह रही है। खुद पानी देना चाहती है। डाक्टर शायद हाथ-मुँह धो रहा था।

मगर डाक्टर मग देने को तैयार नही। उसे बाज गाने को मजबूर करने के लिए वह डोल से पानी ले-लेकर उसके चेहरे पर छिडक रहा है। वह दौडकर अन्दर चली गई। फिर बाहर निकली और मानो कुछ फेंककर डाक्टर के चेहरे पर मारा। डाक्टर का चेहरा सफेद हो गया।

पावडर है। पावडर फेंककर मारा।

शशि फिक-फिक् हँसने लगा।

डाक्टर के होंठो पर भी हँसी की हलकी रेखा खेल गई। गाड़ी धीमे-धीमे चलने लगी। लगता है, गणेश भट्टाचार्य की बेटी अच्छी है। उम्मीद हो गई है। परमानन्द माधव। वरना डाक्टर इस तरह खुशी के खेल में बदहवास न होता। छोकरे के साहस है, धीरज है। जिद है। बडा बनने के बहुत-से लक्षण हैं। केवल एक चीज इसमें नही है, दूसरे मत को नही मान सकता। अगर अविश्वास करना है तो विश्वास करके न ठगाने की बजाय अविश्वास करके ठगाना सबसे बडा ठगाना है। उसी में आदमी अपने आपको ठगता है। और यह बडा कडवा बोलने वाला है। महाशय ने दीर्घनिश्वास छोडा। थोडा सरक कर बैठे। लेकिन दाँतू नही बच सकता है। वह खुद अपनी हत्या कर रहा है, उसे कौन डाक्टर बचा सकता है? अवश्य मनुष्य मे परिवर्त्तन होता है।

नवग्राम के कन्हाई बाबू। अब वे रहे नही। बहुत पहले गुजर चुके। महाशय ने उनको देखा है,—शराबी, बदचलन, गुस्सैल, कटुभाषी। पहली बीबी के मर जाने के बाद नई शादी की। दूसरी स्त्री के स्पर्श से लोहे की तरह सख्त एक और ही आदमी बन गये। शराब छोड दी, व्यभिचार छोड दिया, बात-चीत का सलीका बदल गया, गुस्सा मानो पानी हो गया। वे न केवल सदाचार में शुद्ध हुए बल्कि पढ-लिखकर शास्त्रो की चर्चा करके जीवन मे निर्मल हो उठे। ऐसा भी होता है। लेकिन बनविहारी ऐसा न बन सका। दाँतू नही बन सकेगा। फिर रामहरि की बात याद पडी। मन में बार-बार यही सवाल जागने लगा। कैसे सभव हुआ यह? क्या उसकी नई स्त्री ने उसके जीवन मे ऐसा मधुर स्वाद दिया है, जिससे उसे माधव के माधुर्य का आभास मिला है?

अचानक उन्हें एक बात याद आई। उन्होंने गर्दन ऊँची करके शशि को पुकारा—लिउकिस्।

इस बीच शशि रास्ते पर उतर गया था। जी में जो आया जैसे। चिलम भरकर हुक्का पी रहा था। उसने हुक्के को उतारा और चकित होकर महाशय की ओर ताका। एकाएक बुड्ढे को हो क्या गया? लिउकिस्

कहकर पुकार रहा है !

शशि का यह नाम उस समय का है—जब मलेरिया फैला था और पगले नेपाल के भाई सीताराम ने 'नवग्राम मेडिकल हॉल' खोला था—यह नाम उसी सीताराम ने रक्खा था। वह भी अधपगला था। सत्तर साल के बूढे से लेकर सोलह साल के नौजवान तक उसके यार थे। वह सबके साथ तबाकू पिया करता था। लेकिन उसके चरित्र में कहाँ तो एक माधुर्य था कि कोई उससे नही ऊबता था।

उसने कलकत्ते के बडे-बडे अग्रेज डाक्टरो के नामो पर यहाँ के डाक्टरो का नाम रख छोडा था।

जीवनदत्त का नाम रक्खा था—डाक्टर बर्ड !

डाक्टर हरीश को कहता था—डाक्टर मैनार्ड।

शशि को—लिउकिस्।

अस्पताल मे नया डाक्टर आया था—कलकत्ते के मित्र-परिवार का था। उसे वह कहता था—डा० ब्राऊन।

उस समय सीताराम की यह रसिकता लोगो को पसन्द आई थी। खुद डाक्टर लोग भी हँसते थे और जब मिजाज मौज मे रहता तो आपस मे एक दूसरे को इसी नाम से पुकारा करते थे।

इतने दिनो के बाद वह नाम ? शशि को ताज्जुब हुआ। किन्तु उन दिनो इस नाम से पुकारने पर वह जो जवाब दिया करता था वह जवाब देने में उससे भूल न हुई। गर्दन को जरा झुकाकर साहबी ढग से कहा—येस् सर !

जीवन महाशय ने कहा—वह समय बडे सुख से ही गुजरा, क्यो शशि ?

—क्या कहना है ! सत्ययुग था वह।

डाक्टर हँस पडे। शशि का हर कुछ चरम ही होता है। अच्छा कहो तो उससे अच्छा कुछ होता ही नही और बुरा कहो तो सबसे बुरा। या तो वैकुठ या फिर नरक।

शशि ने कहा—सीताराम एक अभिशप्त देवता था, समझा ? मगर अचानक सीताराम की याद आ गई डाक्टर बाबू ?

--न'। तेरा नाम याद आ गया। मै रामहरि की बात पूछ रहा था।

--बता तो दिया उसकी हालत आज नाजुक है। कोई बदपरहेजी की होगी। पूछना भी तो गुनाह है। बिगड खडा होगा। कहेगा मरने से बुरा क्या होगा और मै मरने चला हूँ। फिर बिना खाये क्यो, खाकर ही मरूँ।

--अरे वह तो मै चलकर ही देखूँगा। मै पूछ रहा हूँ आखिर मामला क्या है यानी नई शादी करके--

उनकी बातो के बीच मे हिकारत से शशि बोल उठा--किसी तरह से कमबख्त का दिमाग फिर गया है और क्या।

--हुँ। रामहरि की स्त्री कदाचित धार्मिक सुभाव की है, देखने मे भी शायद खूब खूबसूरत है?

कुछ सोचकर शशि बोला--होगी शायद।

--हूँ। डाक्टर हलकी हँसी हँसे फिर खिले मुखडे से आसमान की ओर देखने लगे।

नवग्राम का बाजार आ गया।

डाक्टर बोले--बाहर-बाहर चल भैया बेहार होकर। भीड अच्छी नही लगती।

बाईस

गाडी खेतो की राह मुड गई।

जीवन महाशय हाथ-पैर फैलाकर लेट गये। शशि ने कहा-- हाँ जरा लेट ही लीजिये। मै पैदल चल रहा हूँ। आ! इस समय जरा विश्राम किये बिना नही चलेगा। अपने जीवन मे ऐसे समय मे शायद ही कभी बाहर निकले हो। कोई डाक्टर नही जाता। आखिर डाक्टर भी तो आदमी है।

अनावृष्टि के आखिरी सावन की दोपहर, बदली है, बारिश नही। खेत चाहे सूखे न पड़े हो मगर आबाद नही है। फसल नही लगी है लेकिन घास-पात उग आये है। खेतो मे जिधर देखिये बाँस गड़े है। मेहनती खेतिहर पानी उलीचकर पटा रहे है पोखरे से। नीची सतह के खेतो में बोआई चल रही है। वहाँ मानव-बैलो का मेला लगा है। गाड़ी ऊँची वैहार से जा रही है---यहाँ भी दो-चार किसान जान पर खेलकर काम मे भिड़े है, इलाके मे फसल नही, आसमान मे बादल का नामोनिशान नही और मेघ कही आ भी गये तो पानी दुर्लभ। बारिश होती है तो बीमारी कम होती है। उन्होने गौर करके यह देखा है कि जिस बार वर्षा अच्छी होती है उस बार कम-से-कम मलेरिया तो कम ही होता है। कितने ईजाद जाने हो चुके, मच्छड़ मलेरिया के बीज फैलाते है हैजे के कीटाणु पानी मे बढते है, भोजन से लोगो पर हमला करते है, मक्खियाँ उसे और फैलाती है, हैजे का टीका निकला, कालाजार की शकल पहचानी गई---कितने रोगो का आविष्कार हुआ! सब कुछ देखा। ख्वाहिश जरूर पूरी नही हुई, बड़ा डाक्टर बनकर उनके तत्व-तथ्य को देखने-समझने का अवसर न मिला, देखा-सुना विश्वास करते गये कार्य-कारण के रहस्य को देखने की दिव्य दृष्टि इस जन्म मे न मिल सकी फिर भी देखा बहुत। बीच-बीच मे साध होती है---अणुवीक्षण यत्र मे जीवाणु आँखो देखे जाते हैं। उनकी शकल, उनके ढग---देखने की साध होती है। और जब एक्स रे लिया जाता है, तब क्या होता है, यह देखने की इच्छा होती है। मनुष्य का यह रूपमय शरीर गायब हो जाता है---उसका ककाल, उसकी अँतड़ियाँ, जख्म---यह सब देखे जा सकते है। मोती की माँ के पाँव की एक्स रे-प्लेट देखने का जी चाहता है।

सहसा उनकी चिता का सूत्र बिखर गया। हाथ हिलाकर शशि वह कर क्या रहा है?

लगता है किसी को इशारा कर रहा है! कौन है? किसको?

---कौन है रे शशि?

---जी?

---हाथ डुलाकर किसे क्या कह रहा है तू?

—लुत्ती और मच्छड़ों के बच्चे हैं। मुँह के पास झुंड के झुड उड़ रहे हैं। बरसात के दिन, बादल-पानी का नाम नही, इनकी बाढ बरकरार है। टिड्डियो-से बढ गये हैं। बढ गये हैं इस साल। शशि शून्य में बार-बार हाथ मारने लगा।

—गाडी पर आ जा।

—बस आ तो पहुँचा। वह रहा टेकरा। वहाँ यह बला नही है। सामने ही एक ऊँचा टीला। टीले के उस पार गलाइचडी के प्रवेश-पथ पर रामहरि का घर। यह अखाडा है। लाल सडक सीधी चलकर मुड गई है। एक साइकिल वाला जा रहा है। गाँव-घर में भी साइकिलें पहुँच चुकी हैं। दो-चार जरूर हैं। महाशय के जीवन में कभी दो घोडे जुटे थे—बाद में बैलगाडी से ही सफर का अन्त।

प्रद्योत से उनका क्या मुकाबला! डाक्टर हँसे। प्रद्योत शायद मोटर खरीदेगा। मोटर नही तो मोटर-साइकिल। चार घटे में बीस मील दूर शहर जाकर वापस भी आ लेगा। कोई दौडा आ रहा है।

गाडी को देखकर वह रुक गया—जल्दी चलिये।

*　　　*　　　*

रामहरि के दरवाजे पर कई आदमी उदास खडे थे। यह देख-सुनकर जीवन महाशय चकित नही हुए। हर्टफेल से मौत हो गई होगी। इसमें अचरज की कौन-सी बात है? गाडी मे उनके पीछे शशि बैठा था। उसने चकित होकर पूछा—क्या हुआ? क्यो भई, बात क्या है?

—आपके जाने के बाद दो-चार दस्त लगे—कैसा तो कर रहा है।

महाशय उठ बैठे। अपने बैग पर हाथ रखकर उन्होने सोच लिया। ऐसी दशा में दो-एक सुइयाँ पडती तो अच्छा होता। मकरध्वज मृगनाभि तो उनके पास है पर सुई का असर ज्यादा अच्छा होता। शशि तो इन मामलो में ढपोरशख है। सुई देता जरूर है एक सिरिंज है लेकिन उसकी सुइयाँ उसी के पहनावे और बदन जैसी गंदी। उसकी जिस जेब में तबाकू-टिकिया रहती है उस जेब मे भी उसे रख लेने में कोई हिचक नही होती। और उसके पास दवाई भी नही रहती। दवा न रहने पर वह ऐकोवा की सुई निःसंकोच दे देता है।

सुई रहने भी दो । होना होगा सो मकरध्वज से ही होगा । रामहरि जब इतना तैयार ही हो चुका है तो सुई से मौत को विलबित करने का क्या लाभ ? ज्ञान-गगा ? न हुई ज्ञान-गगा तो क्या हुआ !

मौत को ध्रुव जानकर उसे अपनाने को तैयार रहनेवाला मन ही सबसे बडा है । निहायत ही जरूरी हो जाय तो मधु के अभाव मे गुड से ही काम चलेगा । तीरथ और नाम के पुण्य का विश्वासी रामहरि की आँखो के सामने देवता की मूर्त्ति और सकीर्त्तन तीरथ की कमी को किसी हद तक पूरा करेगे । ज्ञान-गगा मे अगर मुक्ति की बात सोची जाय तो भाग्य की भी तो सोचनी-माननी पडेगी ? वह भाग्य रामहरि को ही कहाँ से ?

क्या करना है, यह तै करके ही जीवन महाशय अन्दर दाखिल हुए । मन-ही-मन उन्होने यह भी तै कर लिया कि रामहरि को क्या कहेगे । लेकिन रोगी को देखते ही उन्होने भँवे सिकोड ली । यह क्या ? निस्पद की नाई रामहरि एक तखत पर पडा है । शरीर का रग पीला हो गया है । पलको में आकाश भर का मोह । पाडुर दृष्टि मे कमजोरी । रह-रहकर पलके मुँदती जाती है । बार-बार वह पलके फैलाता है । पलके खोलने पर भी निगाह मे उत्सुकता नही है, कोई सवाल नही है, कोई चाहना नही है । यह कैसी दशा ? कुल मिलाकर यह हालत सिर्फ कुछ दस्त लगने से तो नही हो सकती । अपनी इतने दिनो की अभिज्ञता के बल पर एक ही नजर मे वे समझ गये कि रोगी तिल-तिल करके इस हालत पर पहुँचा है । घर से आनेवाली बू, रोगी की शकल और लक्षण से उन्हे कोई शुबहा ही नही रहा कि यह रोग पुराना अजीर्ण और अतिसार है । आज के ऐलोपैथ इसे इटे-स्टाइनल ट्युबरक्युलोसिस कहेगे । अणुवीक्षण यन्त्र की जाँच से इसमे तपेदिक के बीजाणु भी मिलेगे । तपेदिक आदमी को धीरे-धीरे गलाता है । यह दशा आकस्मिक नही है । रोगी कम-से-कम दो-तीन दिन से इस अवस्था मे चल रहा है थोडा-थोडा बढकर आज ऐसी नाजुक स्थिति हो गई है ।

शशि खुद एक मोढा उठा लाया । बिछावन के पास रखकर रामहरि के कान के पास जोर से पुकार कर बोला—राम—राम ! डाक्टर बाबू आये है ।

--रहन दे। बोलने में इसे तकलीफ होगी। खिसक आ, मैं देखूँ।

शशि उठ गया। फिर झुककर बोला--ऐसे में यह दस्तावेज क्या ? बिछावन पर से उसने एक दस्तावेज उठाया। वही पडा था।

अब रामहरि की जवान बीवी का भाई सामने आया। वह ऊँचे वर्ण की विधवा थी। अपनो से सारा नाता ही उसने रामहरि से व्याह करके तोड लिया था। लेकिन उसके बीमार हो जाने से बहन के विपद-काल मे लाचार भाई को आना पडा। पन्द्रह-बीस दिनो से यहाँ है। उसने कहा--वह वसीयत है।--उसकी ख्वाहिश थी कि डाक्टर बाबू के आने के बाद अँगूठे का निशान बनाये, डाक्टर बाबू को गवाह रक्खे। लेकिन चूँकि यह हालत हो गई इसलिए बोला--पता नही डाक्टर बाबू के आने के पहले ही कुछ हो जाय। कुछ कहा तो नही जा सकता! सो उसने अपने अगूठे का निशान बनाया, गवाहो की सही कराई--उसके बाद देखते-देखते यह दशा!

सिरहाने के पास एक जवान औरत खासा घूँघट काढे बैठी थी। वह रो उठी। डाक्टर ने एकबार उसकी तरफ देखा। उसके बाद नब्ज पकडकर अपनी आँखे बन्द कर ली। बडी ही क्षीण नाडी, रोगी जैसी ही कमजोर, धीमे-धीमे चल रही है। जब तक है चलना ही है उसे। थमने का समय नही, अधिकार नही, उपाय नही। बीच-बीच मे काँप रही है, चाँद मे ग्रहण लगने से जैसे चाँद काँपता है--उसी तरह की धडकन। बडी ही सूक्ष्म अनुभूति से जानी जा सकती है। इसमे सदेह नही कि अब अँतडियो को कीटाणु उसी तरह खाये जा रहे है जैसे रेशम के कीडे शहतूत के पत्ते को खाते है। जो भी हो, तुरत मरने का कोई लक्षण उन्हे नही दिखाई पडा।

स्टैथिस्कोप से उन्होने छाती की धडकन सुनी। जो दशा है, उसमे किसी भी हालत मे आकस्मिक परिणति नही हो सकती। नाडी की गति से छाती की धडकन की वैसी ही सगति जैसी साजिदे और गायक की! कमजोर होने के बावजूद सगति नही रुकती।

और उधर शशि बकबक करता जा रहा था--यह सब है खल व्याधि। अचानक टट्टी हुई कि नाडी गई! रोगी की आँखे मुँद गई। आज सात दिनो से मैं कहता आ रहा हूँ--भैया जो भी करना है कर डालो। गगा

किनारे जाना है तो चल दो। डाक्टर वाबू को दिखाना चाहते हो तो वुला दूँ उन्हें। मगर रोज एक ही जवाब—कल। नित्य कल की मौत नही होती—वह कभी नही आती। भले आदमी की एक वात—कल। अब सम्हालो। हो गया न?

वह औरत फिर रोने लगी।

शशि फिर कहने लगा—हो कैसे? भाग्य मे वदा हो, तब तो हो? यह भी तो देखना पडेगा कि कर्मफल कैसा है? गगा-तट पर होश रहते मृत्यु हो, इसके लिए कर्म भी तो वैसा ही होना चाहिए। हमारे शास्त्र मे आता है कि चिकित्सक क्या कर सकते है, धन्वतरि ही क्यो न हो, क्यो न हो नीलरतन वाबू या डाक्टर राय? और दवा भी क्या करे, वह चाहे सुधा ही क्यो न हो, चाहे दस-बीस रुपये का टोटका। आयु न हो तो किसी से कुछ नही हो सकता। यह भी ठीक वैसा ही है, भाग्य—कर्म। सुमति भी हो तो क्या, समय पर दिमाग वदल जाता है और सारा किया-कराया चौपट कर देता है।

महाशय उठ बैठे। देख चुके वे।

अब वह औरत उनके पैरो पर पछाड खा गिरी—डाक्टर वावू, मेरी क्या दशा होगी!

महाशय ने एक वार सवकी तरफ देखा। वोले—डरने की वात नहीं। उ -उठो।

शशि ने जल्दी-जल्दी कहा—उठो-उठो। जब डाक्टर वावू ने कह दिया कि डरने की कोई वात नही, तो रोती क्यो हो? डाक्टर वावू दो वात नही कहते, सब कुछ ठीक हो जायगा। हट जाओ। उठो।

महाशय बाहर निकले। सबसे पहले उनकी नजर पडी—साइकिल पर। उन्होने पुकारा—शशि।

शशि कह रहा था—अरे हाँ-हाँ। वही होगा। उनके-जैसा आदमी भला वे यह देख सकते है कभी कि एक वेचारी अवला वर्वाद हो जाय? अच्छे घर की लडकी, ऊँची जात की कन्या—मुनिनाच मतिभ्रम—मति-भ्रम के चलते जो किया है उसकी सजा, उसका फल भगवान देगे। हम आदमी है, हम उसे वर्वाद न होने देगे। वस।

पुकारने के पहले ही उसकी आवाज धीमी हो आई थी—अब स्तब्ध हो गई।

—इसे मार ही डाला तूने ? जानकर ? या जानता नही हैं समझ नही सका ?

—जी ?

—यह दशा तो आज तीन दिन मे है। अगर तेरी समझ मे नही आया तो बुला क्यो नही लिया ?

—जी नही, काली मैया की कसम !

शशि !—डाक्टर ने डॉट बताई।

—अपनी कसम, भगवान किरिया, गुरु की कसम—

महाशय ने धीमे से कहा—तुम कई लोगो को पुलिस के हवाले कर देना चाहिए। चिल्ला मत। जो कहता हूँ सुन। जो नौजवान साइकिल से हमे देखने गया था वह कहाँ है ? अच्छा यह रहा ! अय छोकरे ! सुनो। जरा दवात-कलम ले आओ। मै दवा लिख देता हूँ। विनय की दूकान से ले आओ। और बाजार मे जो डाक्टर हरेद्र बाबू हैं न, यह चिट्ठी उनको देना। समझ गये ? जल्दी जाओ।

मगर शशि को दवा रखना मुमकिन नही। इसी जीवट पर वह जिंदा है। उसने छोकरे के हाथ से नुस्खा और पत्र दोनो को लेकर देखा। बोला—ग्लूकोज की सुई देंगे ? इटरवेनस ?

—हाँ। यह अवशता उसी से जायगी। उसके पहले मकरध्वज दूंगा।

—अवशता जायगी ?

—जायगी। इसे मृत्यु-रोग ही हुआ है। लेकिन मौत का लक्षण अभी प्रकट नही हुआ।

—नही हुआ है ? सुई आप देंगे तो ?

—मैंने डाक्टर हरेन्द्र को बुलाया है। वही देगा। अगर नही आ सका तो मै दूंगा।

—और अगर मर जाय ?

—वह मैं समझ लूंगा। मेरा ख्याल है, रामहरि अभी बचेगा कम-से-

कम कुछेक महीने। फिर वसीयत-अमीयत जो कुछ करना है करेगा अपना। न होगा गवाह मैं बनूँगा। इस वसीयत के लिए ही उसका उठ बैठना जरूरी है।

शशि चुप हो गया।

महाशय ने कहा—वसीयत में क्या है मैं नहीं जानता! शायद अन्तिम पत्नी के नाम ही सारी जायदाद लिखी होगी?

जरा देर चुप रहकर गर्दन हिलाते हुए बोले—लेकिन ऐसा तो नहीं होना चाहिए। मुझे रामहरि की नीयत समझनी होगी। उसका पहले घर का बेटा मर चुका है, लेकिन उसका बेटा, रामहरि का पोता मौजूद है। पतोहू है। ऐसा कैसे हो सकता है? लगता है यह जी जायगा। इलाज की बेशक जरूरत है। कोशिश करनी पड़ेगी और कोशिश मैं करूँगा। यही ज्ञान-गंगा यात्रा है रामहरि की?—रामहरि के छहों रिपु एक स्वर से आजीवन मौत को पुकारते रहे हैं। निश्चित मृत्यु की ओर सहज छंद में बढ़ जाने में जीवन नहीं डरता। जीवन डरता तब है जब मौत ही आगे बढ़ आती है। तब जिन्दगी चीख उठती है। ऐसे में ज्ञान-गंगा संभव हो सकती है? बनविहारी से नहीं बन सका। दाँतू से नहीं बन पड़ेगा। रामहरि भी नहीं जा सकता। उसकी थकी-थकी-सी जीर्ण देह, क्षीण स्वर, रह-रहकर आँखों में जड़ता उतरती आ रही है, दो-एक बार वह पलकें फैलाता है—उस दृष्टि में कैसा आतंक है, उफ! कैसी आकुलता!

डाक्टर हरेन्द्र के आने तक बैठे रहे डाक्टर। बीच में फिर एकबार नाड़ी देखी। गति कुछ सबल हो आई है, छंद आया है। मुखड़ा खिल उठा। हरेन्द्र के आते ही उसे सारा कुछ समझा कर कहा—ग्लूकोज की सुई दो। मैं कह रहा हूँ तुम दो। जिम्मेदार मैं रहा। डरो मत।

उन्होंने फिर एक बार नाड़ी देखी। मकरध्वज की गरमी और शक्ति नाड़ी और शरीर में साफ आ चुकी थी। कलाई छोड़कर बोले—सुई लगाओ।

सुई लगाकर हाथ धोने के बाद रोगी की हालत देखकर हरेन्द्र ने कहा—गजब का तरीका है यह आपका! गजब!

जीवन महाशय हँसे। और करे भी क्या? इसका जवाब भी क्या देवे?

डाक्टर हरेन्द्र ने कहा—एक और शुभ समाचार दूँ आपको। विपिन की हिचकी बन्द हो गई है। अभी-अभी आने के पहले खबर मिली है। ओह, उनकी हिचकी देखकर मैंने तो उम्मीद ही छोड़ दी थी। पिछली चार रात वे कतई सो नही सके। पेट मे एक दाना नही रह सका। आने के पहले मैं देख आया, मजे मे सो रहे हैं। आपको भी उन्होंने बुलवा भेजा था—सबसे पहले। आदमी भेजा था, लेकिन आप घर से निकल चुके थे। बूढे रतनबाबू कितने कृतज्ञ हैं, क्या बताऊँ! डाक्टर प्रद्योत भी आया था। वह हैरत मे आ गया। गम्भीर होकर बोला—इस पर अभी कुछ कहा नही जा सकता। हिचकी फिर शुरू हो सकती है, दवाई की प्रतिक्रिया भी हो सकती है। हाँ, अभी जो नाजुक हालत थी, वह पार हो गई। उसे काफी अचरज हुआ है इसमे। लौटते समय रास्ते में मुझसे कहा—इस बुड्ढे का रहस्य मेरी समझ मे नही आता। मुझे इस मामले मे सन्देह क्यों हो रहा है, पता है आपको? आज फिर डेसपेपसिया का एक रोगी आया—अवश्य जरा सख्त किस्म की बीमारी है—बुड्ढे ने उसे भी कह दिया कि तू नही बचेगा। कितने दिनों की मियाद तो जाने बताई है।—हरेन्द्र ने महाशय की ओर निगाह रखकर उन्ही से पूछा—आपने ऐसा कहा है क्या?

जीवन महाशय हरेंद्र की ओर देखते हुए दृढ स्वर से बोले—मैंने गलत नही बताया है भैया। दाँतू इसी रोग से मरेगा। हाँ, मैंने कोई मियाद नही बताई है मरने की। यही बीमारी उसकी मौत का कारण बनेगी। इसमें राई-रत्ती शुबहा नही है मुझे।—गहरे स्वर मे गभीर होकर कहा—इस रोग से दाँतू का प्रधान रिपु जा मिला है। घर मे आग लगने से सारा घर जल ही जाता है ऐसी बात नही, पानी डालने से आग बुझ भी सकती है बुझती भी है। लेकिन आग की मदद मे अगर हवा आ जुटे तो घडो पानी डालो चाहे बुझने की नही। हवा के सहारे अपनी आँच से भीगे छप्पर को सुखाकर आग ले डूबती है। दाँतू का रोग है उदरामय और उससे आ मिला है उसका रिपु लोभ। आ क्या मिला है, वह अब उस रोग का एक अग, उपसर्ग हो गया है। मेरे पिताजी कहा करते थे—

जगत् महाशय कहा करते थे—ससार मे लोगो को सन्यासी-जैसी शक्ति चाहे न हो, सारे रिपुओ को वे चाहे न जीत सके पर कुछ रिपुओ

पर तो विजय पा ही सकते हैं । कोई दो रिपु को जीतता है तो कोई तीन, कोई-कोई पाँच रिपु तक को जीत लेता है । लेकिन एक—

फिर दीर्घनिश्वास फेंकते हुए कहा था—एक को नहीं जीत सकता । एक रही जाता है । यही बनता है प्रवेश-मार्ग । इसी होकर मृत्युवाहिनी मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है । तिसपर यदि इसका द्वारपाल ही दरवाजा खोलकर उसे पुकारे तो उसकी खैर हो सकती है भला ? रक्षक ही दुश्मन बन बैठता है । प्रवृत्ति तो भैया कोई बुरी चीज नहीं । दुनिया में प्रवृत्ति ही रुचि है । वह प्रवृत्ति जब तक सुरुचि बनी रहती है तब तक वह रक्षक है । भोजन की ही बात लो । जबतक प्रवृत्ति सुरुचि रहती है, कुखाद्य नहीं खाती । पेट भरते ही सुरुचि कहती है—बस और नहीं । लेकिन प्रवृत्ति जब कुरुचि बन बैठती है तो वही बन जाती है शत्रु—रिपु । तब उसे तृप्ति नहीं होती । निवृत्ति भाग खड़ी होती है । इसीलिए जिस रोग की रिपु से साँठ-गाँठ होती है वह बेशक मृत्युरोग होता है ।

ये बातें लौटते समय हो रही थीं । महाशय पैदल ही लौट रहे थे । शशि गायब था । गाड़ी भी नहीं मिली । लाचार हरेंद्र भी साइकिल थामे उनके साथ पैदल चल रहा था । हरेन्द्र चुपचाप सुन रहा था । नजर नीचे की ओर गड़ाये चल रहा था । बातें सुनने में अच्छी ही लग रही थीं । कुछ अस्पष्ट और भावुकता-भरी होते हुए भी असंगत नहीं प्रतीत हो रही थीं । लेकिन इतनी दूर तक विज्ञान को पढ़कर आने के बाद यह सब कुछ क्या माना जा सकता है ? फिर भी वह गाँव का ठहरा, बचपन के संस्कार से इसका एक दबा-दुबका स्रोत अन्दर में है—उसी सूखे स्रोत की दलदल में अजाने ये बातें सूखती जा रही थीं—खोती जा रही थीं । फिर जीवन महाशय-जैसे प्रौढ़ व्यक्ति से तर्क करने का भी उसका इरादा नहीं था ।

चूँकि हरेंद्र चुप था, इसलिए महाशय उससे उत्साहित ही हुए । कहते गये—जरा राणा पाठक की सोचो । अपार शक्ति ! दानव कह लो उसे । उसका रिपु हुआ काम । समझ गये, उसके प्रमेह का इलाज कर रहा हूँ, कई बार गरमी हो चुकी है, मैंने उसे कटवा भेजकर डाक्टर मणि बाबू के यहाँ इलाज का इन्तजाम करा दिया है । अब उसे तपेदिक हो गया । उसने बताया एक औरत से छूत लग गई है । इसका मतलब यह कि वह

जानता था कि उस औरत को तपेदिक है, फिर भी अपने को जब्त नहीं कर सका।

अबकी हरेन्द्र हलका हँसा।

जीवन महाशय कहते ही चले गये—तुमलोगों ने देखा नहीं है, नाम जरूर सुना होगा। बड़ा भारी कीर्त्तनिया। अरे, वह सुन्दरदास! सुन्दर नाम, काम भी सुन्दर, देखने में भी सुन्दर और गाने में भी। उन्हें देखकर आँखें जुड़ा जातीं, मन पवित्र हो उठता। लोग उन्हें साधक कहते थे। साधना भी थी उनमें। निर्लोभ, क्रोध-हीन, मिठबोली, विनयी, मोह, मात्सर्य भी नहीं, सिर्फ काम था। काम को नहीं जीत सके थे। जीवन के अंतिम दिनों वे उन्मादी हो गये, पंगु हो गये। लोगों ने कहा, कोई साधना करते हुए उनकी यह दशा हो गई। हमलोगों को भी ऐसा ही यकीन था। लेकिन जब गुरु रंगलाल के यहाँ मैं डाक्टरी पढ़ रहा था तो उन्होंने एक दिन वही कहा जो मैं अभी तुमसे कह रहा था। बोले—जीवन तुमने बिल्कुल सही कहा है। मैं सुन्दर दास को देखने गया था। यही तो उस दिन चल बसे। लेकिन उनकी बात बराबर याद आती है। उस वैष्णव कीर्त्तनिये पर कभी तो गुस्सा आता है, कभी कुछ। वे बड़ी बेबसी में रिपु के हाथों मारे गये। पागल हो गये थे, गरमी के जहर से, प्रमेह के जहर से।

जरा देर रुककर महाशय ने फिर कहा था—इस विपिन बाबू के ही केस को लो। यहाँ भी रिपु का वैसा ही हाथ है। मात्सर्य भी एक रिपु ही है। जिसे आत्मप्रतिष्ठा की प्रवृत्ति नहीं है, वह भी क्या आदमी है। लेकिन वही प्रवृत्ति जब रिपु हो जाती है तो क्या नतीजा निकलता है, देख लो।

चकित होकर हरेन्द्र ने पूछा था—यानी विपिन बाबू के बारे में आप?

प्रश्न को वह पूरा नहीं कर सके।

—नहीं। वैसा नहीं कहता मैं। लेकिन बड़ा कठिन है, बेहद कठिन।

—आज तो ठीक ही हैं वे। मुझे तो ठीक ही लगा। हिचकी बंद हो गई है। सो रहे हैं।

--ठीक हो रहे--ठीक हो जायँ लेकिन ठीक होने के वाद भी तो वे ठीक नहीं रह सकेंगे हरेंद्र। फिर खाट की शरण लेंगे। प्रवृत्ति जब दुश्मन बन जाती है, तो उसे रोकना कठिन हो जाता है।

—यानी आपकी राय में इस बार वे ठीक हो जायेंगे?

—यह भी नहीं बता सकता मैं। महज दो दिन तो देखा है मैंने। तिस पर मन चचल है। रतन को देखता हूँ--विपिन के लडके पर निगाह पडती है। समझ गये उस लडके को देखते हो, वनविहारी का लडका याद आ गया मुझे।

महाशय ने लंबी उसाँस भी ली और हँसे भी। उसके बाद अचानक बोल उठे--जरा चडोयान जाना है। चलोगे? महथ आज जा रहे हैं। देख लूँ चलकर। आज ही रात जायेंगे वे।

इस बीच महथ के दो-तीन बार और दस्त लगे। शिथिल हो पडे हैं। अँगुलियो की फुनगियाँ ठंडी पड गई हैं, पलके झुक आई हैं, एक गभीर आच्छन्न भाव के भार मे। बीच-बीच में मुँह बिदका रहे हैं, कोई पीडा है, कठोर पीडा।

हरेन्द्र ने कहा—आप कहे तो एक सुई लगा दूँ।

महाशय बोले--एक चिकित्सक के नाते मैं मना कैसे कर सकता हूँ। देना चाहते हो, दो सुई।

महथ जी के शिष्य ने बताया--सुई के लिए बाबा की मनाही है। उन्होंने बारबार मना किया है कि सुई या किसी तरह का इलाज न किया जाय—मुझे महाशय ने बताया है, आज छुटकारा मिल जायगा। मुझे छुटकारा चाहिए। शरीर कैदखाना बन गया है।

श्रद्धा की प्रसन्नता मे महाशय का चेहरा दमक उठा। उन्होंने हरेन्द्र के कधे पर हाथ धरकर कहा—ठहरो।

हरेन्द्र स्तब्ध होकर महथ के शिथिल-से पडे शरीर को देखता रहा। हरेंद्र यहीं का रहनेवाला है। डाक्टरी उसने पास की है, मगर ऐसे किस्से बहुतेरे सुने हैं। आज भी लोग हैं जो मरते समय दवा की शिशियाँ हटाकर मुँह में दूध और गंगाजल देते हैं। पहले की और भी बहुतेरे अजीबोगरीब कहानियाँ सुनी हैं। फिर भी मौत का यह जो नज्जारा वह आज देख रहा

है यह उसके लिए नया और आश्चर्यजनक है।

डीलडौल वाला, कंकालसार आदमी शिथिल हो पडा है। साँस चल रही है। बहुत धीमी। अचानक ऐसा लगा कि बहुत ही हलके तौर से दोनो होठ काँप रहे है।

उसने इशारे से महाशय को वह दिखाया।

महाशय ने कहा--ईश्वर का नाम ले रहे है। अन्दर से ज्ञान है। सग्रहणी के रोगियो को मरते दम तक ज्ञान रहता है।

हरेन्द्र ने वहस नही की। वहम की गुजाइश है।

महाशय ने कहा--हाथ की तरफ देखो।

महथ की अगुलियाँ जप की मुद्रा में थी।

शिष्य भोलानाथ ने आकर कहा--तो महाशयजी वाहर निकाले?

--हाँ-हाँ वाहर निकालो। देह-त्याग करेगे तो वधनो के नीचे क्यो? आकाश के नीचे, माता के आँगन मे रहे।

वाहर वहुत-से लोग आ जुटे थे। महाशय से निदान सुनकर सवेरे महथ जी ने अपने शिष्य भोलानाथ को बुलाकर कहा था--दो-तीन गाँव के कीर्त्तनियो को खबर कर दो। कह दो उनसे कि आज मुझे छुट्टी मिल जायगी। मै जाऊँगा। तुम सब लोग अपनी टोली लेकर पधारो। हरि-नाम गाओ। नाम-गान सुनते-सुनते मै जाऊँगा। वधन टूट जायगा। सहारा मिलेगा।

महाशय खुद वाहर निकलकर बोले--राम-राम। नाम-गान करो। जय गोविन्द।

मृदग-मजीरा वज उठे। महाशय खुद सवसे आगे खडे हो गये। नाम की नाव घाट पर लगी है। उसे हरिनाम के साथ मझधार मे छोड दो।

धीरे से लोग महथ को उठा लाये। आकाश के नीचे देवीथान के चौतरे पर उन्हे सुला दिया। साँस उनकी तेज हो आई।

हरेन्द्र हक्का-वक्का-सा खडा रहा। चिकित्सक के नाते उसे अव लौट जाना था। यह सुध उसे न रही। जी कैसा तो हो गया। अजीब है!

तेईस

कोई डेढ महीने बाद।

महाशय और सिताब शतरंज खेल रहे हैं। भादो का महीना—लेकिन इसी बीच में आसमान मेघहीन, साफ-सुथरा हो गया है। अनावृष्टि की वर्षा हफ्ताभर पहले ही खत्म हो चुकी है और इसी एक हफ्ते के अन्दर शरत की आब-हवा हो आई है। आज शतरज का दाँव भी खासा जमा है। बिछी हुई दरी के पास ही थाली पडी है। चाय के कटोरे पडे हैं। जन्माष्टमी बीत चुकी है। अतर बहू ने पके ताड के बडे बनाये हैं, थोडी-सी खीर भी पका ली है। जलपान करके लोग खेलने बैठे हैं। अवश्य महाशय ने कुछ नही खाया है। वे अबेर को चाय के सिवा कभी कुछ नही खाते। यह आदत उन्होंने डाक्टरी सीखते समय डाक्टर रगलाल के यहाँ डाली थी। लोगो को वे यह उपदेश जरूर देते कि कुछ खाकर तब चाय पिया करो लेकिन शाम की चाय वे खुद बिना कुछ खाये पिया करते। खाने मे वक्त लग जाता है—भूख नही रहती, एक कारण उसका यह भी है लेकिन असली कारण दूसरा ही है। साँझ के बाद यानी शतरज खेलने के बाद चाहे सात बजे, चाहे आठ, चाहे बारह, मुँह-हाथ धोकर कपडे-लत्ते बदलकर इष्ट को स्मरण करने के बाद ही खाते हैं। परमानन्द माधव!

अतर बहू का मिजाज आज ठीक है। कल जन्माष्टमी का उपवास किया था, आज न्योता करके उन्होंने सिताब को ब्राह्मण भोजन कराया है, शाम को जलपान भी कराया। खान-पान की शौकीन सिताब की स्त्री के लिए कुछ बडे और खीर की सौगात बाँधकर रख दिया। खुश है। केवल ब्राह्मण-भोजन क्या दम्पति-भोजन कराना हो गया। व्रत-उपवास करने से अतर बहू ठीक रहती है। शायद उनकी परलोक की कल्पना इससे निखर उठती है। इतजाम भी अच्छा हो गया। शिकायत की गुजाइश नही थी। महाशय ने परानी मियाँ को कुछ अच्छे पके ताड भेज देने को कह दिया था। मियाँ ने खासे बडे-बडे ताड एक टोकरी भरकर भेज दिये थे। रामहरि के यहाँ से अच्छे-अच्छे सामान आ गये थे—महीन चावल, आटा, थोडा-सा गाय का घी, दालदा, तेल, सब्जियाँ और एक मछली। रामहरि

उस मरणासन्न दशा से अब काफी ही सुधर गया है। उसकी पतोहू और पोता पहुँच गये हैं। वही लोग उसका सेवा-जतन कर रहे हैं। महाशय के लिए उन सबकी कृतज्ञता का अन्त नही। उसकी नई स्त्री अपने भाई के साथ भाग गई है। वह चिडचिडा अवश्य हो गया है। शशि पर शब्दभेदी बाण-जैसे कटु वाक्यो का प्रयोग करता है। पतोहू और पोते पर भी बरसता रहता है। लेकिन इस चिडचिडे स्वभाव के बावजूद महाशय को देखकर गीली आँखो कहता है—बाबूजी, उस जनम मे आप मेरे बाप रहे थे।—उस रोज से लगातार बीस दिनो तक हर रो जबे रामहरि को देखते आ रहे हे।

रामहरि ने शायद इसीलिए इतने सारे सामान भेज दिये थे। नही तो इन दिनो चिकित्सको को भेट-उपहार देने का रिवाज उठ गया है। अब नकद कारोबार का जमाना है। सो बूढे रामहरि ने अपने पूर्व जन्म के बाप की वन्दना की। एक दिन महाशय ने हँसकर उससे कहा—फिर तो शशि उस जन्म का चचा होगा—क्या खयाल है? तुम्हे बाट पर बिठा दिया था उसने। ऐ?

रामहरि भी हँसा था। महाशय ने कहा था—देखो, जब तुम्हारे उस जनम का बाप होकर तुम पर मेरी इतनी ममता है, तो तुम्हारा इस जन्म के अपने बेटे के बेटे से विरूप रहना क्या अच्छा है? एक बात और कह दूँ, तुम चगे जरूर हो गये हो अभी, लेकिन तुम्हारी यह बीमारी जड से नही जाने की। सम्हलकर चलना। समझ गये? अगर वसीयत करना है तो कर ही लो। हाँ, जिस बेचारी औरत से तुमने अत मे शादी की है उसे भी वचित मत करना।

रामहरि की उस जवान बीवी ने इस बीच में पीछे की राह से अन्दर जाकर अतर बहू के हाथ-पैर जोडे। महाशय को इसमें सदेह नही रहा कि यह सलाह उसे शशि ने दी है। हो सकता है, वह कुछ भेट भी दे गई हो। हो सकता है क्यो, जब अतर बहू ने उसकी इतनी वकालत की है तो उसकी फीस जरूर ही ली है। महाशय को इसका क्षोभ हुआ था, लेकिन उन्होने कुछ पूछा नही। उन्होने खुद रामहरि से यह बात कही थी। अतर बहू ने जो कुछ भी किया है उसकी जिम्मेदारी उसी की है। फिर भी

अगर पति को पत्नी के पाप का हिस्सा लेना पडे तो वे लेगे। यहाँ जब वे अतर बहू की जलन की आँच जिन्दगी भर सहते रहे तो क्या परलोक मे उसके पाप के हिस्से का भार नही ढो सकते ?

वेशक ढो लेगे।

डाक्टरो ने कहा है कि विपिन अब ठीक है। उसकी हिचकी बन्द है। वहाँ भी उनको रोज जाना पडता है। जब तक वे नाडी नही देख लेते रतन बाबू को तृप्ति नही होती। प्रद्योत भी वहाँ जाता है। वह जाता है, जब महाशय वहाँ से हो आते है। कभी-कभी भेट हो जाती है। दो-एक बात भी हो जाती है। वस, नमस्कार का आदान-प्रदान। वे हाथ देखकर ही लौट आते है। कह आते है कि विपिन अच्छा है। इससे फिजूल कुछ नही कहते। मन मे वे बाते चक्कर काटती रहती है, जो बाते कि उन्होने महथ के मरने के दिन डाक्टर हरेन्द्र से कही थी।

हुक्का हाथ मे लिये सिताव चाल सोच रहा था।

महाशय बोले—भैया न हरि ब्रह्मा न च शकर! उसका काम तमाम समझ लो बच्चू! तीन चाल। तीन ही चाल मे तुम्हारी फर्जी पील के आमने-सामने बेबस पड देगा। उन्होने सिताब के फर्जी को पील से दबा रक्खा है। इधर दी है किस्त। सिताव सोच रहा है।

महाशय ने उसके हुक्के से चिलम लेकर पीना शुरू किया—आखिर तम्बाकू मुफ्त मे क्यो जले! सिताव ने मुहरे उलटकर चिलम के लिए हाथ बढाते हुए कहा—ला! आज तेरा सितारा बुलद है।

सिताब ने झूठ नही कहा। महाशय ने लगातार दो बाजी जीती। सिताब मामूली खिलाडी नही। उससे जीतना मुश्किल है। प्राय. बाजियाँ खत्म हो जाती है। सौ मे से नब्बे खेल खत्म हो जाता है दस मे जीत-हार होती है, वह भी बराबर-बराबर।

हाथ मे कोई कठिन रोगी होता तो खेलते समय महाशय उन दिनों जैसा जूए में करते थे, बाजी लगाते—आज अगर सिताव हार गया तो बीमारी को हारना पडेगा। बीमार चगा होगा। नाडी देखने की अनुभूति याद आ जाती। झूठ नही हो सकता। झूठ होने का नही। रोग की बात ही दिमाग में चक्कर काटती रहती। यन्त्र-चालित के समान खेलते

चले जाते और एक वार सिताव कह उठता—मात हो गये।

कश खीचकर धुँआ उडाते हुए सिताव ने दुहराया—तेरा सितारा आज वुलंद है। सचमुच ही वुलंद है जीवन। रामहरि को जैसा वचाया है तूने! खूब वचा लिया!

जीवन महाशय वोले—परमायु परमौपधि है सिताव। रामहरि के आयु थी। तमाम जिन्दगी कुश्ती खेलता रहा, कसरत करता रहा—यह भी एक प्रकार का योग ही है। आम लोगो से उसका फर्क है। उसमे सहनशक्ति कितनी है! मैंने यही सोचा था। आयु की सवसे वडी वात है शक्ति। रोग से दवाई थोडे ही लडाई लडती है, लडाई लडती है जीवनी-शक्ति—आयु।

सिताव ने कहा—जो भी हो, हाथ का यश तो तुम्हारा ही है। यह यश तुम्हारा सदा से है।—सिताव नई वाजी रचने लगा। मुहरे विठाते हुए वोला—शशि की हरकत सुनी है?

सुन ली है, सुन ली है वह भी।

डाक्टर मुहरे सजाते-सजाते हँसे। और दूसरे ही क्षण उनके कपाल के दोनो तरफ की शिरायें फूल उठी। उनका स्थविर चेहरा क्षोभ से तमतमा उठा।

शशि वही पहले ही दिन रामहरि के यहाँ से भाग आया। शराव पी और नवग्राम के एक-एक डाक्टर के यहाँ चीखता फिरा—मैं तो फिर भी क पाउण्डर हूँ। वदस्तूर पास किया है वर्दवान से। वह तो लाहौल-विला कूवत। पूँजी जो है सो डाक्टर रगलाल के कुछ नुसखे और वाप-दादो के मुष्टियोग की वही! और नाडी टटोलकर, आँखें उलटकर कुछ देर अँगुली से दवाना—उसके वाद वायु, पित्त, कफ! लगता है दस दिन। नही तो गर्दन हिलाकर यह कहना, वही तो!—वच्चू वचा लेंगे रामहरि को। वचा ले तो देखूँ! वह भी तो ग्लूकोज की सुई देने के लिए डाक्टर हरेन्द्र को वुलाना पडा! दर असल वात यह है कि रामहरि के पैसा है, जायदाद है। अरे वावा, सव समझता हूँ। आखिर रामहरि तो विदा ही होगा अभी वचने का दिलासा देकर सुई, दवा, फीस, गाडी-किराया, यह-वह वताकर जो कुछ भी सौ-डेढ सौ झूँसा जा सके झूँस ले। यह भला

कौन नही समझता ? मेरे नाम तो जो जी मे आता है कहता फिरता है। लेकिन महथ को, चडीथान के महथ को किसने मारा ? क्या उन्होने नही ? पिछली रात एक ही डोज दवा देकर मै उन्हे सुला आया था। वे गये और फिर मतर पढ आये--शाम को आप जायेगे। अब दवा-दारू छोड दे। सारे दिन दवा नही पडी। तीसरे पहर फिर दस्त लगे। दस्त लगना ही था। बस उनका विदान फल गया।

डाक्टर प्रद्योत भी यही कहते है।

कहते है महथ मर गया। उसके लिए सिर मे दर्द किसे है ! मगर उसी की जिन्दगी की कीमत पर जीवन महाशय ने अपने को नाडी-ज्ञान मे पडित प्रमाणित कर लिया। मै मगर कहूँगा—महथ को उन्ही ने मारा है। Yes, in the true sense of the term--नियम से दवा देने पर और उस तरह से खीचकर घर से बाहर नही निकाल दिया जाता तो महथ और भी दो-एक दिन कम-से-कम दो-चार घटे बचता—इसमे कोई सदेह नही। यह तो अपने निदान को सच साबित करने के लिए उसे खीच-तानकर मृदग-मजीरा बजाकर चौंकाते हुए उत्तेजित करके मार डाला है।

याद आते ही महाशय की फूली हुई शिराये टनटना उठती।

इस चर्चा के उठते ही महाशय ऐसे मग्न हो गये कि वह बाजी ही हार गये। सिताब ने ठप् से उनके मुहरे को ही काट दिया। बोला--अब।

अब ! ठीक ही कहा। ढाई कदम वाले घोडे के जोड पर एक प्यादे के बढ सकने की उन्हें सूझी ही नही थी।

सिताब ने हँसकर कहा—देखना है ?

दाँव पर निगाह फेरकर महाशय ने कहा—नही। सब जाने कैसा तो हो गया। चर्चा छेडकर तूने मन को चचल कर दिया। अरे नन्दू जरा तबाकू दे जा बेटे। फिर से एकबार चाय बनाने को कह दे। पी लूँ फिर उठूँ। देर होगी तो देवीजी फिर पच-उपचार सजा बैठेंगी।

यानी रात के खाने का इतजाम शुरू करेगी। घरनी के खाने का आयोजन सिताब के लिए प्राय. विभीषिका-सा है। लौटते हुए उन्हें दूकान से दालदा ले जाना पडता है। खैर, रुचिकर कुछ बनाती है।

सिताब उपलक्ष्य होते हैं। वे खुद ही कभी-कभी कहते—समझा भाई जीवन, यह वही सोलह कवै वाला किस्सा! वही जो एक जुलाहे ने सोलह कवै मछलियाँ खरीदी और बीवी से कहा—जरा ढग से पका, प्याज और गरम मसाला देकर गाढा-गाढा शोरवा, लाल मिर्च—जीभ पर धरते ही जिसमें जी जुडा जाय। इधर बीवी मछली पकाने गई, उधर जुलाहा करघे पर बैठा। जैसे ही छन् की आवाज होती जुलाहा माटी पर निशान बनाता। जब छन् की आवाज बद हुई, वह उठकर खाने के लिए पहुँचा। बीवी ने रसोई परस दी मगर मछली एक ही।

—अरे, यह क्या, और मछलियाँ कहाँ गईं?

—एक को तो बिल्ली ले भागी।

—तो भी पन्द्रह रह जाती हैं।

—बिल में से चूहा निकला और एक वह ले भागा।

—खैर। दो गईं। बाकी रही चौदह।

—दो ले गया भूत। सिहोड के पेड पर के भूत ने खिडकी से हाथ बढाकर दो ली—

—वह भी सही। फिर भी बारह।

—भूत के डर के मारे चौक जो पडी सो हाथ से लगकर दो आग में गिर गईं!

सिताब हँसते गये, कहते गये, समझ गये इस तरह से जुलाहे की बीवी ने पन्द्रह कवै मछलियो का लेखा बताया। पकाते-पकाते देवीजी मछलियो को चट कर गई थी। पन्द्रह मछलियो का हिसाब बताकर कहा—

'मैं चूँकि भले बाप की बेटी हूँ।
इसी से इतना हिसाब देती हूँ।
अगर तुम भले बाप के बेटे हो
तो दुम और माथा खाकर बीच का हिस्सा रख दो।'

सिताब इतना कहकर हा-हा करके खूब हँसे।

* * *

बाहर से किसी ने पुकारा—महाशय जी! कहाँ है? किधर? महाशय ने कुछ चकित-से होकर गर्दन घुमाकर देखा; किशोर की आवाज!

वह कलकत्ते गया था। शायद लौट आया। कुछ ले आया है शायद। कलकत्ता जाने पर उनके लिए वह कुछ-न-कुछ जरूर लाता है। केवल उन्ही के लिए क्यो बहुतो के लिए। क्या बूढे, क्या बच्चे, क्या औरते, वह सब का प्रिय है। बच्चो के लिए पेसिल, किताब, लडकियो के लिए सिलाई की चीजे, गरीब-मध्यवित्तो के बच्चो के लिए कुरते, पैट। महाशय को उसने चार-पाँच बार नुसखा लिखने के लिए फाउन्टेनपेन लाकर दी। सब खो गई। कभी-कभी जूते ला देता है। जिस बार यह सब नही ला पाता तो कुछ फल ही ले आता है। किशोर चिर-नवीन ही रहा। उन्होने आवाज दी—किशोर!

—कहाँ हैं आप? आइये मेरे साथ बहुत-से आदमी हैं।

महाशय बाहर निकले—जाने कौन-सी मुसीबत ले आया किशोर। कही महामारी फैली, कही दगा हो गया—जो भी हो, सबमे कूद पडना उसका स्वभाव है।

बाहर निकलकर महाशय हैरत मे आ गये। कुछ समझ नही सके। सबके सब सभ्रात नागरिक। पहनावे में कोट, पैट, मार्जित काति, नजरो मे शिक्षा और बुद्धि की दीप्ति। सबके सब विशिष्ट लोग। साथ मे थाने के दारोगा, वहाँ के कई सरकारी कर्मचारी भी · डाक्टर प्रद्योत भी। वहाँ के धनी ब्रजलाल बाबू के उत्तराधिकारी, सब अब शहर मे रहा करते ह। इस जमात मे उनका पोता भी है। यूनियन बोर्ड के चेयरमैन ह। सबके सब यहाँ? उनके दरवाजे पर?

उनकी कनपटी की शिराये तन गईं। उनके कुछ कहने से पहले ही किशोर ने उन सज्जनो से कहा—यही है हमलोगो के महाशय। तीन पुश्त से यहाँ के पीडितो के बधु। आतुरस्य भिषड्मित्र। एक सौ वर्षो मे यही आरोग्य-निकेतन ही हमलोगो का हेल्थ-सेन्टर रहा है।

दल के विशिष्ट लोगो के चेहरे पर हलकी हँसी फूट पडी। उसमे कुछ तो कृत्रिम थी इसमे सदेह नही। उनलोगो ने महाशय को नमस्कार किया। महाशय ने भी प्रतिनमस्कार किया।

किशोर उनकी तरफ से वकालत कर रहा था!—कभी इन्होने यहाँ बडा काम किया है, इसीलिए आज की त्रुटि का खयाल नही करना चाहिए।

प्रद्योत गभीर होकर मिट्टी की ओर मुँह झुकाये खडा था। कोट-पैंट पहने दूसरा एक तरुण धीमे-धीमे जाने उससे क्या कह रहा था। एक ओर खडा था हरेन्द्र।

किशोर ने कहा—और ये सब हमारे नये प्रात के निर्माता लोग है—विश्वकर्माओ की जमात। कम्युनिटी प्रोजेक्ट का नाम तो सुना है ? एक सौ गाँव के दायरे मे एक नये ढग के इलाके की रचना करेगे ये। अपने यहाँ भी एक प्रोजेक्ट होगा। उसका सेंटर होगा नवग्राम मे। नई सडकें, स्कूल, अस्पताल, बिजली—बहुत-बहुत। इसी के लिए ये सब इलाके को देखने के लिए आये है। इधर मे गुजरते हुए आपके साइन-बोर्ड पर नजर जो पडी सो पूछा। मैंने बताया, आरोग्य-निकेतन आज टूट गया है लेकिन उसका प्राण अभी है—महाशय अभी है। उन्हें देखे बिना आपलोग यह नही समझ सकते कि यहाँ के प्राण को क्या कीमत है, क्या शक्ति है।

अचानक महाशय को ऐसा मालूम पडा कि सूखे समुद्र की बालुका-राशि के समान उनके अतर में जाने किस गहरे अन्तरतम के अन्दर से उच्छ्वसित लोना पानी उमडता आ रहा है। उनके दोनो होंठ थर-थर काँपने-से लगे। दोनो जबडो को बलपूर्वक दबाये वे मौन खडे रहे।

किशोर ने कहा—मैं आपके नाडी-ज्ञान की चर्चा कर रहा था। वही उस बार जो कलकत्ते के डा० सेनगुप्त आये थे—ब्रजलाल बाबू के पोते को देखने के लिए। पाँचवें दिन महाशय ने मरीज को देखा था। देखकर बाहर निकल आये। मैं भी निकला—मै वही था। उस समय मैं अपने सेवा-सघ का मत्री था। मैं ही तीमारदारी कर रहा था। महाशय के साथ निकलकर पूछा।

* * *

यह बहुत दिनो की बात है। बहुत दिनो की।

उस समय टाइफायेड के लिए फाज का इस्तेमाल शुरू ही हुआ था। कलकत्ते के मशहूर डाक्टर सेनगुप्त ने आकर फाज का व्यवहार किया था। ब्रजलाल बाबू के पोते की बीमारी मे ही महाशय ने पहले फाज का व्यवहार देखा था। डा० सेनगुप्त बडे ही महाशय, महाप्राण और धार्मिक व्यक्ति थे।

जीवन महाशय उस समय इस इलाके के धन्वतरि थे। ब्रजलाल बाबू थे लखपति, कीर्तिमान, महापुरुष, विलिमय चैरिटेबुल डिसपैन्सरी के सस्थापक। वे भी महाशय को स्नेह करते थे, सिर्फ स्नेह ही नही, आदर भी। उन्होने महाशय को आधुनिक पोशाक पहनाई थी। जब भी भेट होती, कहते—जीवन, तुम इतने बडे चिकित्सक हो, अच्छी पोशाक बनवाओ। जानते हो मैंने कलकत्ते मे एक नाटक देखा। उसमे नये युग की आब-हवा वाले घर मे एक बडे डाक्टर मरीज देखने आये। देखने आये तो मरीज ने कहा—इनके तो पाँवो मे मोजे नही है, ये कैसे डाक्टर हैं? इन्हे चार रुपये की फीस नही दी जा सकती। नाटक मजे का था। बात भी सही है भीख के लिए भेख जरूरी है।

जीवन महाशय कहा करते—जी, अगर इसी जन्म मे वह सब पहनकर शौक पूरा कर जाऊँगा तो अगले जन्म के लिए क्या बच रहेगा?

ब्रजलाल बाबू जोरो से हँस पडते—अरे महाशय कोट-पैंट पहनोगे, विलायत-फेरता डाक्टर बनोगे।

जीवन महाशय भी दबने वाले न थे। कहते—वह डबल प्रोमोशन हो जायगा, सम्हाल नही सकूँगा।—अन्त मे कहते—आपकी बात जुदा है। आपकी मुक्ति है कर्मयोग में। घर मे काशी बसाई है, वृन्दावन बसाया है, भगवान को बाँध रक्खा है, स्कूल खोला दिया है, अस्पताल खोल दिया है, मुक्ति तो आपकी मुट्ठी मे है। हमलोग ठहरे साधारण आदमी। भक्ति-वक्ति करके त्राण पाना है। उन पोशाको की गरमी से भक्ति ऊब जाती है, नही रहती। वह सब अपने लोगो के लिए नही है।

मगर ब्रजलाल बाबू ने इस पर भी नही माना। उस बार कलकत्ते का केकडा खाकर उन्हे आमाशय हुआ था। उनका वह आमाशय महाशय ने चगाँ किया था। जाडे के दिन थे। दर्जी भेजकर उन्होने महाशय की नाप लिवाई और कलकत्ते से दामी चायनाकोट बनवाकर महाशय को भिजवाया। उनके यहाँ बीमारी बढती तो महाशय की बुलाहट होती। यो उनके खैराती अस्पताल के डाक्टर ही घर मे देखा करते थे। उनके अस्पताल के डाक्टर, वही अपने यहाँ उन्हे न बुलाये तो लोग क्यो बुलाने लगे?

ब्रजलाल वावू का नाती बीमार पडा। एकज्वरी। कलकत्ते से ननिहाल आया और बुखार का शिकार हुआ। उस समय अस्पताल में एक नौजवान डाक्टर आया था। हरीश लगभग आठ साल पहले ही जा चुका था। उसके वाद दो जने आये, किसी की न चली, सो चले गये। उसके वाद आया यह नौजवान डाक्टर चक्रधारी। जो चक्रधारी अब डाक्टरी छोडकर लगभग सन्यासी हो गया है। वह महाशय के वेटे वन-विहारी का मित्र था। वही मरीज को देख रहा था। पाँच दिन मे भी जब ज्वर का उत्ताप कम नही हुआ तो ब्रजलाल वावू ने महाशय को बुल-वाया। अवश्य उस समय घबराने-जैसी कोई वात नही थी। लेकिन धनी आदमी ठहरे, कलकत्ते से नाती आया है, एक के वजाय दो आदमी देखे। जाडे के दिनो मे महाशय वही चायनाकोट पहनकर ही देखने गये थे। ब्रजलाल वावू ने मजाक किया था।

—कोट पहन लिया है जीवन ? भक्ति को भगा दिया है क्या ?—महाशय वोले—जी उसे इस जन्म के लिए छीके पर रख दिया है। अगले जनम में देखा जायगा। फिर जब भक्ति को ही छीके पर रख छोडा है तो कोट पहनने में कौन-सा गुनाह है ?

उस लडके की नाडी देखने के पहले ही उनके कानों मे वुदवुदाहट आई थी। वगल के कमरे मे कल कलकत्ते ही कोई कह रहा था—यह सब क्या कर रहे हैं ये लोग ? एक टोटका वाले वैद को वुलाकर दिखाना अच्छा नही।

उनके अँगूठे की नोक से लहू की धारा माथे की तरफ चढने लगी थी। मुश्किल से अपने को जब्त करके वे नब्ज देखने बैठे थे।

उनके पिता का कहना था—नाडी की जाँच ध्यानयोग से करनी चाहिए। उस दिन उनका वह योग मानो पल में सिद्धियोग मे वदल गया था। उन्होने उस ध्यानयोग मे यह अनुभव किया था कि नाडी सख्त सान्निपातिक दोष से भरी है।

वहाँ से उठकर हाथ धोकर उन्होने दृढ स्वर मे कहा था—वच्चे का ज्वर सान्निपातिक है। और—

—और क्या ?

—जरा सख्त किस्म का टाइफायेड है। अच्छा इलाज होना चाहिए। शहर से किसी को बुलाकर दिखाइये।

अगर बगल के कमरे की बात उनके कानो नही गई होती तो शायद वे इस तरह से नही कहते—घुमा-फिरा कर कहते।

शहर के डाक्टर ने आकर कहा था—जिन सज्जन ने ऐसा बताया है, उन्होंने कुछ बढाकर कहा है। टाइफायेड यह है—लेकिन वैसा कठिन नही है। ठीक हो जायगा।

जीवन महाशय ने उन्ही के सामने गर्दन हिलाकर कहा था—जी नही। मेरी समझ से रोग कठिन है। लेकिन यदि आप यह कहे कि मै टोटका वैद हूँ, तो और बात है।

किशोर उस समय नौजवान था। वह महाशय के साथ बाहर निकला, पूछा—कैसा लगा डाक्टर बाबू ? बीमारी सख्त है ?

महाशय ने कहा था—मामला टेढा है किशोर। शहर के डाक्टर को समझ मे नही आ रहा है। जीभ का दाग, पेट का फूलना, दो बार बुखार का चढना-उतरना, तापमान—यही देखकर वह विचार कर रहा है। मैने नाडी देखी है। त्रिदोष है। और—। तुम कहना मत किशोर, यह रोग अब ब्रह्मा-विष्णु के भी हाथ मे नही रहा। एक शिव जो कि मृत्यु के मालिक है वही अगर बचाये तो और बात है।

दस दिन के बाद मे बीमारी कठिन हो उठी। शहर के डाक्टर फिर आये। बताया—दूसरे हफ्ते मे यह बीमारी बढती है। इसीलिए बढी है। बढे। मै दवा दिये जाता हूँ। इसी से अच्छी हो जायगी।

तेरहवे दिन बीमारी और भी कठिन हो गई।

किशोर से महाशय ने कहा—किशोर, विकार आ गया। अठारहवे या इक्कीसवे दिन बेचारा लडका मर जायगा। मुझे ऐसा लग रहा है उसके पहले सान्निपातिक दोष से उसका कोई अग बेकार हो जायगा। मै यह स्पष्ट देख रहा हूँ किशोर। इस पूरी मात्रा मे मैने सान्निपातिक ज्वर और नही देखा।

चौदहवे दिन लडका बेहोश हो गया। मैनेनजाइटिस ने साथ दे दिया। कलकत्ता आदमी भेजा गया। जो भी खर्च हो, किसी बड़े डाक्टर

को लाओ।

जीवन महाशय बोले—फिर देर मत करें बाबू साहब। आज ही। नही तो अफसोस करना पडेगा। रोग बडा कठिन है।

उसी घडी कलकत्ते के उस रिश्तेदार पर उनकी नजर पड़ी थी। हलका हँसकर कहा था —बेशक, यह मुझे लग रहा है। लग रहा है कि बीमारी बडी सख्त है। कलकत्ते से बडे डाक्टर आये थे एम. डी.। उमर कम होने पर भी चिकित्सक विचक्षण थे। जात के वैद्य, नाडी देखने का अधिकार रखते थे। धीर, मिष्टभाषी। डाक्टर सेनगुप्त सच्चे चिकित्सक थे।

बीमारी का ब्योरा सुनकर वे अपने साथ फाज ले आये थे। फाज का इस इलाके में यही प्रथम व्यवहार हुआ।

उन्होने जीवन महाशय से सलाह-मशविरा किया था। नाडी देखकर उनका जो अन्दाज था उसपर उन्होने कहा था—आप ही का अनुमान शायद ठीक है। फिर भी मुझे तो कोशिश करनी पड़ेगी। आखिरी वक्त तक। फर्ज तो अदा करना ही पडेगा। क्या करूँ?

अठारवें दिन ही ब्रजलाल बाबू का नाती चल बसा। उस दिन सवेरे उसका बायाँ अग बेकार हो गया था बाईं आँख तक नष्ट हो गई थी।

इसके बाद चारो तरफ महाशय के नाडी-ज्ञान की ख्याति फैल गई थी।

किशोर उस युग के जीवन महाशय की चर्चा करता जा रहा था।

केवल ख्याति ही नही फैली, उसके बाद से उनमे एक दृष्टि आ गई। वे समझ सकते थे। नाडी से वे समझ जाते थे कि वह आ रही है या नहीं। और स्थान-विशेष में यानी रोगी अगर बूढा हुआ तो साफ-साफ कह देते थे। मणि चटर्जी की माँ को देखकर कहा था—बेटे, लगता है, अबकी सर घुटाना ही पडेगा।

मणि चटर्जी को बाल का बेहद शौक था।

राम मित्तिर के बाप की बीमारी में पहले ही दिन कह दिया था—राम, बाबूजी से कुछ पूछना-आछना हो तो पूछ लो। शायद अबकी ये उठने के नही।

अगर रोगी कम उम्र का होता, तो इशारे से कहते—वही तो, बीमारी टेढी दीखती है, अच्छा हो कि किसी अच्छे डाक्टर को बुलाकर दिखाओ।

किसी को और किसी तरह जताते।

इसी बीच एक दिन सुरेंद्र के लडके शशाक के बडे भाई ने आकर कहा—महाशय चाचा, जरा शशाक को देख लीजियेगा।

—उसे क्या हुआ है ?

—कोई चार दिन से बुखार है।

—अच्छा आऊँगा। कल सवेरे आऊँगा। आज बन्नू आया है कलकत्ते से। बाँसुरी, तबला लाया है। गाना-बजाना होगा। मामूली खाना-पीना भी। तुम आ जाना बेटे। मैं कल सवेरे ही आऊँगा।

बनविहारी का बन्धु है शशाक। साल-दो-साल का छोटा है, जमींदारी-सिरिश्ते के हिसाबनवीस उनके मित्र सुरेंद्र का लडका। छुटपन में ही माँ गुजर गई। जीते जी ही सुरेन्द्र उसका व्याह कराके गिरस्थ बना गया है उसे। अच्छा लडका है, मिठबोलिया। उसे क्या हो गया ?

* * *

दूसरे दिन सवेरे ही वे शशाक को देखने गये थे। सुरेन्द्र के स्त्री नहीं थी। बहुएँ अपने-अपने पति को लेकर स्वच्छंद थी। शशाक के सिरहाने तरुणी वधू ही बैठी थी। शायद उसके बुखार से तपते हुए कपाल पर अपना गाल रक्खे पडी थी। महाशय के जूते की आहट से उठ बैठी। शशाक के कपाल पर सिन्दूर का दाग लग गया था। डाक्टर हँसे। लडकी और लडका, दोनो ही स्नेहभाजन थे उनके। बहू भी जाने-सुने घर की लडकी। छुटपन से ही उसे देखते आये है। स्नेह से ही उन्होंने लडकी की तरफ देखा। आँखे जुडा गई। लाल कोर की धोती पहने गोरी बहू का नया रूप उनकी नजर में आया। मानो एक अपूर्व छवि देखी। उन्हे देखकर बहू का चेहरा लाल हो उठा। घूँघट काढकर वह हट गई। लगा, लडकी के वधू-रूप में ही उसके सभी रूपो का चरम प्रकाश है।

डाक्टर ने शशाक की कलाई पकडी। उनका हाथ काँप गया। चौंककर आँखें खुल गईं। उन्होने एकबार बहूजी की ओर ताका। फिर आँखे बन्द कर ली।

यह क्या ? आज महज तीसरा दिन है। इसी बीच में इतना साफ लक्षण ! फिर से देखा। नही, भूल नही है, भ्रम नही है ! इस वधू के ऐसे अपूर्व रूप को बेकार करके शशाक को जाना पडेगा ? दो सप्ताह ?

हाँ। भ्रम नही हुआ है, विमूढ नही है, अन्यमनस्क नही हुए। शशाक को जाना पडेगा। मृत्यु का ऐसा स्पष्ट लक्षण शायद ही और कही नाडी मे देखा हो। रात के अतिम प्रहर मे पाडुर आकाश के दक्खिन-पूरब कोने में शुक्राचार्य का प्रदीप्त उदय जैसे रात के अत होने की घोषणा करता है, यहाँ तक कि दड-पल मे उदयकाल की अवधि तक बता देता है, उसी तरह, ठीक उसी तरह नाडी बता रही है, दो हफ्ते ! चौदह दिन !

मन में अशाति की सीमा न रही, वेदना का अत न रहा। शशांक वनविहारी का हमउम्र है, कुछ छोटा होगा। मातृविहीन लडका उनके दवाखाने के सामने खेलता-फिरता था। उनकी आँखो के सामने बड़ा हुआ। और यह बहू ? लाल कोर की साडी में, चूडियो में, माँग के सिंदूर और भाल पर सिंदूर के टीके मे लक्ष्मी-सी लगने वाली यह लडकी ?

शोभा के ये सारे सरजाम धुल जायेंगे। मारकीन की साडी में भूषण-विहीन मूर्त्ति—महाशय कल्पना भी नही कर सके। उन्हे उसके बचपन की बात याद आई। बगल के गाँव की लडकी। इलाके में जो जाग्रत देवी है, उनके सेवायत की लडकी। बडी दुलारी लडकी। बचपन में माँ-बाप उसे कहते थे बिल्ली—पुस्सी।

इसीलिए कहते कि वह आदर की कगाल थी, आमिष की बडी रुचि थी। एक डोरिया कपडा पहने देवीथान के यात्रियो के पास सेंदूर का टीका लिये-लिये पैसे वसूला करती और पियाजू खाया करती। उनका मन पीडा से टलमल कर उठा।

दो दिन के बाद शशाक की नाडी देखकर वे कातर हो उठे। दृढ विश्वास हो गया—शशाक को जाना पडेगा। नाडी में वे मौत के पैरो की आहट सुन पा रहे है—आ रही है वह। दवा बेकार होती जा रही है।

उसी आर्त्त मनोदशा में एक कल्पना करके अतर बहू को बुलाकर उन्होंने कहा—देखो, रात मैंने एक सपना देखा है। मैं काली माता को भोग दे रहा हूँ और वह मानो हाथ बढाकर उसे स्वीकार कर रही है।

और अचरज की बात क्या है, जानती हो ? वह काली माता जैसे हमारे शशांक की बहू है।

अतर बहू ने कहा—तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है ? शशांक की बहू तो कालीमाता के सेवायत की लड़की है। शायद—

—एक काम करो अतर बहू, शशांक की बहू को कल न्योता करके अपने यहाँ खिलाओ।

—ठीक तो है।

तरह-तरह की आमिष चीजें बनाकर उन्होंने उसे खिलाना चाहा था। उसके पत्तल पर बड़ी मछली का माथा देने के लिए कहा था। शशांक के बुखार का छठा दिन था। बुखार केवल बढ गया था। दूसरा कोई उपसर्ग नहीं दिखाई पड़ा। वाकुल के काली मंदिर में उन्होंने प्रसादी मांस भी मँगवाया था। क्या जो भ्रम हो गया था उसे। मछली का सिर पत्तल पर डालते ही वह चौंक पड़ी थी।

थिर आँखों से कुछ देर तक उन सारी तैयारियों को देख हाथ समेट-कर वह उठ गई थी।

शाम को डाक्टर शशांक को देखकर कमरे से बाहर निकल आये। मौत के आसार धीरे-धीरे साफ नजर आने लगे हैं। तबले के बोल पर, ठीक बीच में। इसी गति में बज रही है। कल हफ्ता खत्म हो रहा है—एक हफ्ता और।

घर के सामने ही एक गली।

डाक्टर के भारी पैर और भी वजनी हो उठे। पीछे से पुकार हुई—ठहरिये। डाक्टर घूमकर खड़े हो गये। देखा, हाथ में एक ढिबरी लिये शशांक की बहू खड़ी है। ढिबरी की रोशनी उसके चेहरे पर पड़ रही है। गोरे चेहरे पर लाल रोशनी। माँग में सेंदूर दमक रहा है। आँखों में स्थिर दृष्टि। उस दृष्टि में भरा प्रश्न। महाशय को उसकी वह नजर असह्य लगी। उन्होंने अपनी आँखें झुका ली।

पूछा—कुछ कहना चाहती हो ?

वे नहीं बचेंगे ? हमसे छिपाइये मत।—उसकी आवाज में गजब की धीरता थी।

डाक्टर सवाल का जवाब नहीं दे सके।

वह लडकी बोली—अगर न बच सकें तो उपाय क्या है, आप भी क्या कर सकते है ? लेकिन अपने बेटे की मृत्यु जानकर इस तरह आप उसकी बहू को मछली का माथा खिला सकते है ?

वही बात महाशय को याद आ रही है।

उस रोज वे इस बात से विचलित नही हुए थे। तब जीवन महाशय आदमी ही दूसरे थे। विष-भूषण नीलकठ के समान अटल। लोग कहा करते थे—भला हो चाहे बुरा, महाशय सच बात जरूर कहेंगे। बहुतेरे यह कहते कि मौत देखते-देखते डाक्टर-वैद ऐसे ही हो जाते है। उनके मन में घट्टा पड जाता है। कुछ लोग यह भी कहते कि इज्जत बढ़ जाने से जीवन महाशय बदल गये है, घमडी हो गये है कुछ।

किसी का कहना गलत नही। सबका कहना सही है। लेकिन ये ऊपर के सत्य है—फूल की पखडियो के समान। बीच में जहाँ पर मर्म-कोष रहता है, वहाँ के सत्य को कोई नही जानता। वहाँ तो एक तरफ जहर था, दूसरी तरफ अमृत। जिन्दगी के झमेले, अतर वहू का उत्ताप, मजरी का अभिशाप—वह अभिशाप उनके लडके वनविहारी पर फलीभूत हुआ था। वे समझ गये थे कि इस वश का महाशयत्व वनविहारी से ही मिट्टी में मिलेगा और वनविहारी अल्पायु होगा, यह भी उन्हे मालूम था। दूसरी ओर उनमें नाडी-ज्ञान का अद्भुत विकास हुआ था। दोनो के मेल से एक अजीब-सी अवस्था हो गई थी उनकी। कभी आधुनिको के तीखे व्यंग से तो कभी करुणा से विमूढ होकर कठोर सत्य कह देते थे।

एक गहरा दीर्घ निश्वास छोडकर महाशय ने उस लडकी से कहा था—बेटी, अगर मै शशाक को बचा पाऊँ, तो तुम्हारे प्रश्न का सही जवाब हो सकता है। लेकिन—

और उन्होंने बात बदल दी थी—तुमने मेरे बेटे की बात कही बिटिया ! शशाक और वनविहारी साथ पढते रहे है, साथ खेला है, यह तो तुम्हे मालूम है। शशाक भी मेरे लड़के ही जैसा है। आज जब मै उसीकी बात इशारे से बता सका तो अगर वनविहारी को भी अकाल ही में मरना पडे—और अगर इसे मै जान सकूँ तो जैसे शशाक के बारे में मैने बताया है, वैसे

ही बताऊँगा। सिर्फ ढग जुदा होगा। तुम्हे तो मैंने इशारे से बताया है। बन्नू की बाबत अगर तुम्हारी ही बात फले तो मै अतर बहू से साफ कह दूँगा। बन्नू की स्त्री को भी खोलकर बता दूंगा कि बन्नू नही बचेगा। और यह भी कहूँगा कि तुम्हे कोई साध हो तो पूरी कर लो। तुम मुझ पर खा-म-खा नाराज हो गई बिटिया। मृत्यु के आगे हम निरे बेबस है।

और कोई यह वाकया सुनाता तो नये जमाने के पच्छिमी विज्ञान से प्रभावित लोग विश्वास तो हर्गिज ही नही करते उलटे खिल्लियाँ उडाते। लेकिन किशोर सारे प्रात में पडित और सेवक के नाते मशहूर है, सब उसकी श्रद्धा करते है। उसमे इसके सिवा एक बहुत बडा गुण भी है कि वह सत्यवादी है। ससार मे बडी-से-बडी जरूरत के लिए भी वह झूठ नही बोल सकता और किसी के भी मनोरजन के लिए सचाई को बढा-चढाकर नही कहता।

दोनो किस्से सुनकर लोगो के चेहरे पर प्रशसा-प्रसन्न विस्मय झलक पड़ा। एक ने कहा—सचमुच ही गजब है!

किशोर ने कहा—क्या कर रहे थे? शतरज खेल रहे थे शायद? इसी बीच कमरे के अन्दर से बाहर निकलकर सिताब महाशय के पीछे आ खडे हुए।—धुआँ देखकर आग का अन्दाज लगाने-जैसा किशोर ने ठीक ही अनुमान किया।

आज महाशय नन्हे बच्चे की तरह लजा गये। सिर झुकाकर हँसते हुए कहा—आखिर बुढापे मे कोई सहारा तो चाहिए! और करूँ भी क्या, कहो? सुना है तुम भी तो लडको के साथ फुटबॉल खेलने जाया करते हो। यह जरूर है कि तुम्हारा नाम भी किशोर है, काम से भी तुम चिर-किशोर हो। लोग कहते है, किशोर बाबू बालिग नही हो सके नाबालिग ही रह गये। वही रहो भैया तुम, आजीवन वही रह जाओ।

कहते-कहते उनकी आँखो से आँसू की दो धारा बह निकली। दिनो के बाद, बहुत-बहुत दिनो के बाद, जाने कितने दिन बाद, नही कहा जा सकता। नही कहा जा सकता।

महाशय की आँखो में आँसू देखकर किशोर जरा अभिभूत-सा होकर बोला—अच्छा तो इजाजत दे। जरा इन लोगो को सब कुछ दिखा लाऊँ।

वे सब चले गये। सबके सब कैसे तो हो उठे मानो—चुपचाप चल पडे। सबके मुँह से बात गोया खो गई। एक हरेन्द्र ही वहाँ खडा रहा। पास आकर बोला—एक सुसमाचार है। फिर आज विपिन बाबू के पेशाब की रिपोर्ट आई है। दोष बहुत ही कम हो गया है। उस वेला उन्हे जायेगे तो देखने ? आज जिस समय हम लोग जायेंगे आप भी उसी समय चले तो अच्छा रहे। सभी मिलकर आज एक बार अच्छी तरह उन्हे देखेगे।

अनमने-से महाशय बोले—सभी मिलकर देखेगे।

चौबीस

विपिन ठीक है। खुद ही कहा—अच्छा ही लग रहा है।—रतन बाबू ने कहा—आज पेशाब की रिपोर्ट आई है, जो खामियाँ थी बहुत कम हो आई है।

महाशय जब पहुँचे तब और डाक्टर लोग नही आये थे। विपिन की नाडी के लिए हाथ बढाते हुए महाशय ने कहा—जब अच्छा होने को होता है तो बीमारी इसी तरह घटती है। उस जमाने की एक बात थी कि रोग बढता है ताड की तरह और घटता है तिल-तिल।

—एक बार नाडी देखकर बताओ कैसा देख रहे हो ?

—मै तो रोज ही बता रहा हूँ भाई।

—न, आज कैसा देख रहे हो सो बताओ। कैसा है अभी, यह नही। पुराने जमाने वाला नाडी देखना देखो। यह बताओ कि कितने दिनो मे विपिन उठ बैठेगा।

विपिन ने कहा—लेटे-लेटे तो थक गया मै। पहले वाली इनवैलिड चेयर पर कुछ देर बरामदे मे बैठ सकूँ या जरा देर बाहर घूम पाऊँ तो यह परेशानी दूर हो। फिर मारे शरम के मै मरा जा रहा हूँ। सारे विश्व-ब्रह्माड की दया का पात्र बन गया हूँ। लोग अहा-उहू करते है। सारी

दुनिया के लोगो का बोझा बनकर गर्दन पर सवार हूँ—मेरे लिए यह बर्दाश्त के बाहर हो उठा है।

महाशय मन-ही-मन चौक उठे। प्रतिष्ठावान विपिन के मनोलोक की दशा मानो रजनरश्मि जैसी किसी एक किरण की आभा से उद्भासित हो जाहिर हो गई। महाशय के लिए यह भी एक उपसर्ग है।

उन्होने विपिन के चेहरे की तरफ देखा। उसकी कलाई अपने हाथ मे ले ली। नाडी में उत्तेजना साफ जाहिर हो रही थी।

हाथ के छोडते ही विपिन ने पूछा—कब तक इजाजत देगे उठने की? महाशय बोले—कल बताऊँगा। आज तुम खुद चचल हो रहे हो।

—चचल तो ये हर घडी हैं। आप इन्हे इसी की मनाही कर दे।—विपिन की खाट के उस ओर एक औरत खडी थी—उसकी स्त्री। रोज ही रहती है। बात नही करती थी। आज शायद उससे रहा नही गया, बोल पडी। प्राणस्पर्शी सेवा मे उसे यह उपसर्ग काँटे-सा गडा है सबसे ज्यादा गहराई से चुभा है। शायद इसी लिए वह रह नही सकी।

पैंतीस-छत्तीस की उम्र, शात, सुन्दर औरत, कपाल पर सेंदूर का टीका—माँग मे जगमग सिंदूर, लाल कोर की साडी पहने। आज प्राणो के आवेग से घूँघट हटाकर उनके सामने प्रकट हो गई।

महाशय के जवाब देने के पहले विपिन ही बोल उठा; कमजोर आवाज काँप रही है, आँखें जरा जलती-सी, वह बोल उठा—मनाही कर दे! मनाही कर दे! मना करने से ही मन मानता है? औरत की जात, तुम मेरी पीडा कैसे समझ सकती हो।

महाशय व्यस्त होकर बोले—विपिन बेटे! विपिन!—रतन बाबू ने आवाज दी—विपिन! विपिन!

विपिन की आँखो से आँसू बह चला। थकी और टूटी हुई आवाज मे वह बोला—मुझसे और नही सहा जाता! नही सहा जाता!

रतन बाबू उसके माथे पर हाथ रखकर खडे हुए। पखा लेकर विपिन की स्त्री आगे बढी, अभिमान से विपिन ने कहा—नही! श्रीमत! तुम पखा झलो।

श्रीमत विपिन का लड़का है। उसने माँ के हाथ से पखा ले लिया।

महाशय रोगी की तरफ़ गौर करते हुए स्तब्ध बैठे रहे । थोड़ी ही देर मे आलस के भार से विपिन की पलकें झुक गईं । महाशय ने उसके हाथ को छूकर देखा । विपिन ने एक बार आँखें फैलाकर देखा और फिर वन्द कर ली । महाशय को उसकी नाड़ी में वुझी हुई उत्तेजना महसूस हुई । बडी देर तक नाडी देखने के वाद वे बाहर निकल आये ।

जीवन !—पीछे से हौले-हौले रतनबाबू ने पुकारा ।

—फ़िक्र की कोई वात नही रतन । कोई ऐसी वात नही है । लेकिन होशियार रहना पडेगा । ऐसी उत्तेजना अच्छी नही, यह तो बताने की जरूरत नही ।

—विपिन ऐसा उत्तेजित हुआ नही करता । आज हो गया । लेकिन मैं जो जानना चाहता हूँ ? निदान-घोषणा तुम्हारे खानदान की परम्परा है । मै उसपर यकीन करता हूँ । मै वही जानना चाहता हूँ ।

हँसकर महाशय ने कहा—नाडी देखने के वे दिन लद गये रतन ! यह जमाना, यह समय और ही है ! आज जाने कितनी दवाओ, कैसे-कैसे इलाजो का आविष्कार हुआ है । अव क्या पुराने जमाने की अकल से काम चल सकता है ? मसलन मलेरिया वुखार । मेरे जानते यह वुखार नौ दिन में उतरेगा लेकिन आज इसकी सुई निकली है, पेलुड्रिन पहुँच गया है—तीन ही दिन में वुखार छूट जाता है । टाइफायेड में हमलोग बतायेंगे—अठारह दिन, इक्कीस दिन, अट्ठाइस दिन, बत्तीस दिन, अडतालीस दिन । लेकिन नई दवा से दस ही वारह दिन में वुखार साफ़ । आज नाडी देखकर मै क्या वताऊँ ? डाक्टर लोग आ रहे है उन्ही से पूछो ।

आप बताना नही चाहते है, छिपा रहे है आप । मगर अपने वेटे के बारे में तो आपने छिपाया नही था ।—नारी-कठ के इन शब्दो से महाशय चौक उठे । मुडकर पीछे देखा । पीछे विपिन की स्त्री खडी थी । कपाल पर सेंदूर का टीका, माँग मे सिंदूर की लबी लकीर । उत्कंठित हो स्थिर आँखो मे प्रश्न लिये खडी थी ।

स्मृति ने मानो चाबुक लेकर बेरहमी से मारा । जी-जान से अपने को जब्त करके उन्होने कहा—मै ठीक कह रहा हूँ बेटी, ठीक से समझ नही पा रहा हूँ मै । तुम्हारे यहाँ आते ही मुझे अपने बेटे की याद आ जाती

है। चचल हो उठता हूँ। ठीक समझ नही पाता। इसमें छिपाने की नीयत नही है। मुझे गलत मत समझो।

जीवन महाशय जल्दी से वाहर निकल गये।

—डाक्टर वावू, फीस आपकी—फीस

—कल देना—कल।

*   *   *

वडी मार्मिक स्मृति एक बारगी आमने-सामने खडी हो गई। लगता है, वही है, हू-ब-हू वही! फर्क है। वह नौजवान लडकी थी—सोलह-सत्रह साल की—गाँव-घर की लडकी। हू-ब-हू ऐसी ही निगाह से उसने महाशय को देखा था। शशाक की स्त्री।

उसने महाशय को एक प्रकार से शाप दिया था। वह शाप कारगर हुआ। वनविहारी मर गया। शशाक आगतुक रोग के आक्रमण से मरा था। उसका अपना कोई कसूर नही था। उसके अपने किसी रिपु ने मौत को मदद नही दी थी। आज जैसी व्यवस्था वीजाणु-जाँच की है, वीजाणु-नाश की जैसी दवाये आज हैं—ये होती तो शायद—। न! महाशय ने आप अपने मन से गर्दन हिलाई। नही बचता शशाक। आज भी पेनिसिलिन के सहारे सभी वीमारो को नही वचाया जा सकता है। रोग का कारण और वीजाणु के रूप का पता लगाकर भी कोई नतीजा नही निकलता। लेकिन तो भी शशाक का कोई कसूर नही था। उसकी मौत मनुष्य के चिकित्सा-विज्ञान की अपूर्णता, असपूर्णता है। मृत्यु निश्चित है—लेकिन वह मृत्यु आयु के पूर्ण होने पर—सूर्यास्त के समान, प्रसन्नता के समारोह मे होती है। इसी कारण से शशाक का कोई अपराध नही था और उसकी वहू के लिए वे ममता से अभिभूत हो पडे थे। खुलकर उनसे कहते नही बना था—उस बहू को न्योत कर जिन्दगी मे आखिरी मरतबा मास-मछली खिलाकर उन्होने मन की वेदना को प्रकट करना चाहा था। मगर अजीव थी वह लडकी! इस अजीव जगह की अजीब लडकी। जो औरतें जाने किस आदिकाल से वैधव्य का पालन करती आ रही हैं, देह के भोग को त्याग-कर प्रेम को वडा बनाना चाहती रही है, यह लडकी उसी जात की थी। असाधारण। महाशय उसे समझ नही सके थे।

उसने उन्हें शाप दिया था।

अनोखा सामजस्य, उस अभिशाप को सफल करने के लिए वनविहारी ने अपने जीवन में सारा ही आयोजन पहले से कर रक्खा था। मेले के बाद उसे जो प्रमेह हुआ था, वही आखिरी नही था। वनविहारी बाज नहीं आया। उसे फिर वही बीमारी हुई थी।

वह स्मृति उनके लिए बडी मार्मिक है।

शरीर जब तक जीर्ण नही हो जाता, तब तक मौत की कामना करना पाप है, वह आत्महत्या करने के समान है। उन्होंने वही किया था। आहार-विहार, सब में जीवन महाशय एक बारगी और ही आदमी बन गये थे। उन्होने कुल-धर्म का लघन नही किया था। लंघन किया था आयु की रक्षा, उसे लंबी बनाने के नियम का। उन्होने किसी व्यभिचार के पाप से अपने वश को कलंकित नही किया था, लेकिन अपने ऊपर अविचार की कोई हद नही रहने दी थी। उद्भ्रात हो गया था मन। दो हाथो कमाया, चार हाथो लटाया। भीतर की ज्वाला से जितना ही जलते रहे, बाहर उतना ही समारोह बढाया। केवल चिकित्सा-धर्म तक ही अपने को महदूद नही रक्खा, विभिन्न कर्मों में अपने को बिखेर दिया था। लोग शराब पीकर नशे में अपने को गम-गलत करना चाहते है। उन्होंने नाम और काम के नशे में अपने को डुबा दिया था।

आरोग्य-निकेतन के पास जो कुँआ है, उसी समय खुदवाया था उसे। पचायत के प्रधान थे--सरकार से तीन हिस्से रुपये वसूलकर एक हिस्से की रकम उन्होने खुद दी थी। अस्पताल के सामने से जो दुर्गम रास्ता गया था—चोर-पकड खदक, टाँग-तोड गड्ढा—सबको सुधार कर उन्हें सहज बनाया।

जीविका का ठिकाना न होने पर दो-तीन गाँव के मजूरे आरोग्य-निकेतन के सामने आकर जमा होते थे। उन सबको वे कोई-न-कोई काम दे देते थे।

महाशय-वश का महाशयत्व तो आखिर चला ही जायगा, लेकिन जाने के पहले रक्तसध्या का समारोह करके जाय!

अपने शरीर पर अत्याचार का अंत न था।

तमाम दिन बिना खाये-पिये घूमा किया है। कही की बुलाहट हो या न हो, घूमते रहे है। नेपाल के भाई सीताराम की दवा की दूकान पर बैठे-बैठे गप्प मारते हुए शाम गुजार दी है। जिसने भी बुलाया, उसी के यहाँ गये, इलाज किया। फीस दी दी, न दी। दूसरे दिन फिर गये। रात-रात भर शतरंज खेलने की शुरुआत तभी हुई। गाने-बजाने की बैठक बुलाई, जो भी उस्ताद आ पहुँचा, उसीका स्वागत किया। संगीत के जलसे के साथ खाना-पान का भी आयोजन करके बंधु-बांधवों के साथ मौज-मजे किये। जो भी हो चाहे, शाम को कालीथान मे दो-चार मित्रो के साथ कीर्त्तन करना कभी नही भूले। बुलाहट से लौटने मे कभी ज्यादा रात हुई तो अकेले ही मंदिर मे हाथ जोडकर गा लिया--

राधा गोविंद जय राधा गोविंद!

इतना भर कभी न भूले। महाशय-वंश के वैष्णव-मन्त्र की चेतना उन्हें नही हुई। परमानन्द माधव को पाना उनके भाग्य मे बदा नही, लेकिन नाम-कीर्त्तन को नही भूले। इस घोर उद्भ्रांत दशा मे भी यह स्थिति बनी रही।

अतर बहू बार-बार टोकती। कहती--आखीर मे पछताओगे, कहे देती हूँ।

महाशय हो-हो करके हँस पडते। कोई वहाँ पर नही होता तो कहते--अरे, उस जमाने में मंजरी के लिए बाजार से कर्ज लेकर खर्च करते हुए भी मैं नही पछताया। उसके बदले पाया है तुम्हें। आज मैं कमाकर उडा रहा हूँ--इसमे पछताऊँगा?

आखिर कमाते कितना हो, सुनूँ मैं?--अतर बहू का चेहरा सुर्ख हो उठता।

--जरूरत कितने की है, सो बताओ। कितना चाहिए? आज ही देता हूँ, अभी। कौन-सा गहना चाहिए! क्या चाहिए!

--कुछ नही चाहिए मुझे। मैं तुम्हारा कुछ भी नही चाहती। बच्चियो की शादी और बच्चो की शिक्षा, इतना ही हो तो बस। मैं बांदी-सी घर मे आई थी, वही होकर रहूँगी।

—झूठ कह रही हो। तुम आई थी हाथ मे शासन-दड लिये। सदा से वही शासन ही कर रही हो। समझ नही रही हो, तुम्हारे वेटे के लिए वडा दायरा, ऊँचा आसन तैयार किये दे रहा हूँ। तुम्हारा लडका मेरी तरह वैद तो होगा नही। वह होगा डिग्रीवाला डाक्टर। लेकिन वनग्राम के ब्राह्मणो के वुनियादी घर से अपना घर तो आज भी नीचा ही रह गया है। उसे ऊँचे उठाकर उनकी वरावरी का किये दे जा रहा हूँ।

यहाँ आकर अतर वहू चुप हो जाती। विश्वास और अविश्वास के झूले पर स्तब्ध हो थिर आँखो उनकी ओर ताका करती।

इसके सिवा चारा भीन ही था। वनविहारी उस रोग का शिकार होकर भी वाज नही आया, रोग से छुटकारा मिलते ही उसने अशोभन पोशाक की तरह लाज-शरम को उतार फेंका। साल भर के अन्दर-अन्दर माता-पिता के आपसी लडाई-झगडो में उसने अपने को आजाद करार दे दिया। एक दिन उसने आकर कहा—मुझसे स्कूल की पढाई नही चल सकेगी।

उसके मुँह की ओर ताकते हुए महाशय ने पूछा था—नही चल सकेगी ?

—नही। हिसाव, सस्कृत, यह सव मेरे दिमाग में नही घुमता।

तत. किम् ?—उन्होने हँसकर ही पूछा था।

माँ ओट में खडी थी। अन्दर आकर उन्होने कहा—कलकत्ते मे डाक्टरी का नया स्कूल खुला है, वही पढेगा। यहाँ साल-साल कितना फेल करता रहेगा ?

—और वहाँ भी फेल करे तो ?

—तो तुम्हारे जैसा डाक्टर वनेगा। तुम तो विना पढे, विना पास किये ही मुट्ठी भर-भर कर रुपये ला रहे हो। जव वाप हो, तो कुल की विद्या वेटे को सिखा ही दोगे।

—मगर, अपनी कुलविद्या में तो थोडी-वहुत सस्कृत की जानकारी जरूरी है भद्रे।

—क्या, क्या कहा मुझको ?

—भद्रे कहा है। भद्रे ! कोई वुरी वात नही।

—मगर कहा तो मजाक मे ? तुम्हारे जैसा अभद्र मैंने नही देखा।

बाप होकर बेटे पर ममता नही ?

वे चुप ही हो रहे। क्या कहते ? बेटे पर ममता ? वनविहारी को एम बी पढाने की इच्छा थी उनकी। उस इच्छा का मर्म अतर वह नही समझ सकती। इच्छा थी। इच्छा थी कि वनविहारी एम बी. —हाँ. उस समय एल एम एस उठ गया था, एम बी चल रहा था— जब पढना शुरू करेगा तो उनकी शादी का इनजाम करेगे। बातचीत चलायेगे। कादी से किसी जमींदार के घर की लडकी लायेगे। गाँव की जमीन्दारी का एक आना हिस्सा नवग्राम मे जमींदारी चाहे गिना जाता हो, कादी मे नही माना जाता, वनविहारी एम बी हो जायगा, तो लोग आदर के साथ इसे भी मान लेगे। कादी जाने की इच्छा मन मे रही है, उसे पूरी करेगे। भूपी के अपने-सगे के यहाँ की लडकी लायेंगे। खैर, रहे ये बाते।

एक दीर्घ निश्वास छोडते हुए महाशय बोले थे—खैर। वही होगा। लडके की ओर देखकर बोले—बेलगछिया के आर जी कर मेडिकल स्कूल की तो कह रहे हो ?

—हाँ, वहाँ पास-वास की जरूरत नही पडती।

—जानता हूँ मैं। मगर वहाँ भी फेल होते है। नवग्राम के राय वाबुओ के यहाँ का अतीन नही पास कर सका। स्कूल मे चाहे पास न करो, वहाँ तो पास करना है। यह याद रखना।

पास वह करेगा। तीन पुश्त इसी विद्या की चर्चा करता रहा है।—देखना बेटे, भली तरह पढना। जिससे लोग टोटका वैद कहकर नफरत न करे। महाशय-वश की इस बदनामी को तुम्हे दूर करना है।

डा. आर जी. कर महापुरुष थे। कम पढे-लिखे, थोडी पूँजी के गृहस्थ-घर के लडको का उन्होने बडा उपकार किया। देश मे उस समय मलेरिया मौत बरपा कर रहा था—अग्रेजी डाक्टरो के रौब-दाब, सरकारी कृपा से उनके प्रसार के कारण कविराजो के घर बद होने लगे थे। वैद्यो की कमी थी। ऐसे समय ये अधकचरे डाक्टर बहुत काम दे गये। शतमारी भवेद् वैद्य सहस्र मारी चिकित्सक। हो सकता है, इनकी भूल-चूक से हजारो-हजार आदमी भोगते रहे, मर गये, लेकिन उस जगह हजार के बाद बहुतेरे अच्छे भी हुए, बचे भी।

बूढे जीवन महाशय हँसे। वनविहारी आर. जी कर मेडिकल स्कूल मे पढने गया। उसके साथ मामूदपुर के गधवाणक का लडका रामसुन्दर गया—वनविहारी का अन्तरग मित्र। छै महीने के बाद वनविहारी छुट्टी मे घर आया। डबल ब्रेस्ट कोट, फ्रेंच कट दाढी—एक दूसरा ही वनविहारी। ओठ पर सिगरेट। बदन मे, कपडे, कुरते मे सिगरेट की बू। दाहने हाथ की तर्जनी और बिचली अगुली की नोक पर पीला दाग। सिद्ध ज्योतिषी जैसे मनुष्य के आचार-आचरण, वाक्य, रूप और कर्म मे अपनी गणना का रूपायन देख पाते है, अवश्यभावी के स्वरूप को भाँप सकते है और लीला-दर्शन के कौतुक से हँसते है—महाशय के होठो पर ठीक वैसी ही हँसी उस समय थिरक उठी थी। दूसरे ही क्षण उनकी वह हँसी अचरज मे बदल गई थी। इदिर ने उसकी गाडी से उतारा एक हार-मोनियम, बायाँ-तबला, पीतल की एक बाँसुरी, दो जोडा मजीरा और एक जोडा घुँघरू।

खैर। अच्छा ही है। नृत्य-गीत कला-विद्या है। चौसठ कलाओ में श्रेष्ठ। सीखना अच्छा ही है। नादब्रह्म। सगीत से ईश्वर की साधना होती है, प्रेम पैदा होता है। अच्छा है। दीनबन्धु महाशय नाम-कीर्त्तन किया करते थे, जगत् महाशय ने पद-गाना सीखा था, जीवन महाशय को सिखाया था—तीन पुश्त के तीन-तीन मृदग। आरोग्य-निकेतन की ही छत पर जतन से रक्खे हुए है। जो मृदग उन्होने अभी हाल मे खरीदा है, अभी वही काम मे आता है। अब नये जमाने मे—काल के स्वाभाविक परिवर्तन के कारण वश के कर्मफल से—यानी उनके कर्मफल से बाद की पीढी के लोगो ने उन तीन मृदगो के साथ हारमोनियम-तबला-मजीरा-घुँघरू जोड दिया। अच्छा ही है।

साँझ का समय था। माथे के ऊपर आसमान मे एकादशी-द्वादशी का चाँद। चाँदनी खिला ही चाह रही थी। जगह-जगह पेड-पौधो, घर-द्वार के पास, जहाँ भी अँधेरा गाढा हुआ था—उन जगहो की फाँको मे धुले कपडे-सी जहाँ-तहाँ साफ झलकने लगी थी। कही-कही ऐसा लग रहा था कि धुले कपडे पहने कोई रहस्यमयी आड मे छिपकर खडी इशारा कर रही है। अचानक उस छाया को देखकर चौंक उठे थे जीवन महाशय।

पूछा था—कौन ? कौन है वहाँ ?

एकाएक मजरी याद आ गई थी।

वनविहारी को घिनौनी बीमारी होने के वाद भी उन्हे उसकी याद हो आई थी। उन्हे ऐसा लगा कि चूँकि वे भूपी के कुत्सित रोग पर हँसे थे, इसीलिए उस रोग को अपनाकर वनविहारी ने उनकी हँसी उडाई।

दूसरे ही दम वे हँस पडे थे—न ! कोई नही है। दो घरो के बीचो-बीच चादनी उतरी है।

मजरी नही है, वह नही हँस रही है कौतुक से।

मजरी मरी नही है। छायामूर्त्ति धरकर वह कैसे आ सकती है ? लेकिन यह अभिशाप उसी का है ! उनके अभिशाप से मजरी की जिंदगी वेकार हो गई। भला उनका अभिशाप इनको नही लगेगा ? अथवा उन्ही का अभिशाप, जिससे मजरी जैसी एक मामूली लडकी का जीवन नही जल सका—पलटकर उन्ही को आ लगा है।

मजरी विधवा हो गई है। भूपी मर चुका है। उस दिन अतर वहू ने वेटे के सामने ही मजरी की चर्चा छेडकर नये सिरे से उन्हे उसकी याद दिला दी। उसके वाद उन्होने उसकी खोज ली थी। विधवा हो गई है वह। सतान कहने को एक लडकी है। वच्ची को वाप के पक्के सोने का रग मिला है, माँ की वनावट और सुन्दरता मिली है। भूपी तवाह होकर मरा है। लकिन उस रूप के चलते और वश-गौरव के कारण लडकी की शादी वडे घर मे हुई है। मजरी अव लडकी की कृपा पर पलती है। उसकी लडकी को खेलाती हुई सव भूल गई है। आनन्द से रहती है।

खडे-खडे सोच रहे थे जीवन महाशय।

अतर वहू ने उन्हे पुकारा था—अन्दर आओ। लडका आया है और तुम वाहर खडे हो ?

जीवन महाशय ने कहा—आज रात मित्रो को एक दावत देने की सोच रहा हूँ। वन्नू आया है।

—तो करो दावत।

जीवन महाशय ने इदिर को वुलाया। एक फिहरिस्त तैयार करके उसे दिया—'कालूचन्द चन्द को मालूम हो कि आदमी जा रहा है। फिह-

रिश्त के मुताबिक सारी चीजे इसे दे देना। दाम पीछे जायगा।' फिह-रिश्त के अन्त मे पुनश्च लिखा—'न हो तो मेरे नाम हिसाब खोल दो। आइदे सामान तुम्हारे ही यहाँ से आया करेगा। चैत और आश्विन, दो बार वकाये की वसूली दी जाया करेगी।'

नदू तव छोटा था। उसे वुलाकर महाशय ने कहा—जा, लोटन-मछुए को वुला ला। कहना जाल लेकर चार-पाँच आदमी से आये। तालाब से मछली पकडनी है।

और उहोने मशहूर पखावजी वसत मुखर्जी को वुलवा भेजा। कहला दिया, अपने साथ गवैये को भी लेते आवे।

रहे, गाना-वजाना ही रहे। जिंदगी के जो कुछ दिन वाकी रह गये है, वे हँसते-खेलते कटे। परमानन्द माधव को पाना न तो उनका भाग्य-फल है, न कर्म-फल।

पच्चीस

गली मे चाँदनी का जो लवा-सा टुकडा था, चाँद की चाल के साथ-साथ गली के अदर से वाहर निकलकर मोड पर तव भी दीवाल से टिका किसी आदमी-सा खडा था। वही गली शशाक के घर को जाती थी। उसी दीवाल से सटकर खडी शशाक की स्त्री ने उन्हे अभिशाप दिया था।

वनविहारी अकाल ही काल कवलित हुआ। लेकिन उसकी मृत्यु के कठोर आघात से विचलित और विह्वल होते हुए भी मन मे उन्होने पुत्रशोक को उस स्त्री का अभिशाप कहकर कभी कवूल नही किया।

खुद डाक्टर होते हुए भी वनविहारी ने मौत को न्योता दिया था—फिर मौत क्यो लौट जाती? लेकिन वुलाने के बाद उसे कैसा डर लगा था। उफ्। जीने की कैसी आकुलता। ठीक दाँतू घोषाल की तरह। मोती की माँ की तरह। जब इसकी याद आ जाती है तो शोक से दुःख ही ज्यादा होता है। जो आदमी मरना नही चाहता, डूबते हुए के समान शून्य मे

दो हाथ उठाकर 'मुझे बचाओ' 'मुझे बचाओ' चीखते हुए डूब जाता है, उसी के लिए मार्मिक शोक होता है, वरना शोक तो श्वेत, शात है—महातत्व है जीवन का। शात शोक कुछ दिनो के लिए जिन्दगी को गेरुआ वसन पहनाकर मनोहर बना देता है। वह बाऊल बैरागी के समान कानो के पास सत्य-सगीत की ध्वनि गुजाँ देता है। अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ति यममदिर। दूसरे वश, दूसरे कुल के लिए ऐसा शायद मुमकिन न हो, लेकिन महाशय-वश के लिए तो यह असभव नही था। उन्हें जवानी के दिनो मशहूर यात्रा-दल[1] के अभिमन्यु-वध नाटक देखने की याद आ रही थी। चडीयान के साधक महथ रघुवर गोसाई ने उस सिलसिले में दल के अध्यक्ष को कुछ बातें कही थी, जो उनके मन में गडी हुई हैं। सात रथियो के वारो से घायल सोलह साल का किशोर अभिमन्यु कुरुक्षेत्र की भूमि में गिरकर कातर स्वर मे रोया था। देखने में सुन्दर उस सुकठ छोकरे ने रोनी आवाज मिलाकर गया था—

घोर अन्याय-युद्ध में अकाल ही मेरे प्राण गये,
जिसके कि पिता तीसरे पाडव और मामा स्वय कृष्ण हो।

माता सुभद्रा, प्रियतमा उत्तरा का नाम ले-लेकर वह एक मर्मभेदी करुण सगीत। सभी देखने वालो की छाती आँखो के आँसू से भीज गई।

गीत खत्म हुआ। अभिमन्यु लडखडाते हुए उठकर रगमच से चला गया। अक समाप्त हुआ—सामूहिक वाद्य बजने लगा। रघुवर गोसाई ने गभीर स्वर से दल के अधिकारी को बुलाकर कहा—क्यो भैया, यह क्या हुआ?

जी?—अधिकारी ने कुछ समझा नही। प्रश्न के बदले उसने प्रश्न ही किया—आप क्या कहना चाहते है?

—भैया, यह अभिमन्यु इस तरह रोया क्यो? अर्जुन का बेटा, किसन जी का भाजा, वह इस तरह रोयेगा क्यो? और रोना ही था तो लडाई में काहे को आया—सात-सात वीरो से लोहा क्यो लिया? वह चाहता तो दोनो हाथ बढ़ा देता, बँधकर अपनी जान बचा लेता। फिर

---

१. वह नाटक कंपनी, जो बिना पर्दे के नाटक खेलती है।

रथ का टूटा पहिया लेकर क्यो मुकाबला करता रहा ? अभिमन्यु को तो रोना नही चाहिए। वीर बाप का बेटा, वह तो मौत को नही डर सकता। अधिकारी किंकर्तव्यविमूढ हो गया था। ऐसा सवाल कोई मामूली आदमी तो नही पूछ सकता। लोग देखकर रोने लगते है। धन्य-धन्य कर उठते है। उन्होने नम्रता से यही कहा था। कहा था—बाबा, मनुष्य रोता है—

उनके मुँह की बात छीनकर गोसाई ने कहा था—रोता है तो इसी तरह दु ख देकर, पीडा देकर ? रोना अच्छी चीज है—मन का मैल धो देता है, दिल साफ हो जाता है—ठीक है। लेकिन सिर पर डडा मारकर रोना ? प्रेम से रुलाओ, आनन्द से रुलाओ तब तो भैया। अर्जुन महा-वीर थे। किरात का बाना बनाकर शिव आये—उनसे लडे। और उनका लडका मृत्यु से डरे ? उसे तो कहना चाहिए—मरण, आ तू। मरण हाथ जोडकर आये। वह कहे कि आज मेरी नगरी धन्य हो गई, मै धन्य हो गया।—मरण के डर से कल्याण का मार्ग देखकर लोग रोये, तब तो भैया।

यात्रा के अभिमन्यु की अपेक्षा कई गुनी दीनता से कातर रोना रोकर मरा था वनविहारी। असल-नकल का फर्क अवश्य होता है, लेकिन यात्रा-दल की मृत्यु का वह अभिनय सत्य भी होता तो तुलना करना उनका गलत नही होता। वनविहारी की मौत हुई मलेरिया से। अपने रिपुओ के चलते उसने शरीर को वीजाणुओ के लिए ऊर्वर खेत-सा बना रक्खा था। जलनेवाली चीज मे एक चिनगारी जैसे विध्वसक अग्निकाड का रूप लेती है, ठीक उसी तरह मलेरिया मृत्यु-रोग बन गया। आर जी कर स्कूल से वह पास करके ही लौटा था। विलासी, उच्छृंखल। उस समय उसका खयाल था, वह धनी का बेटा है, जमीदार का लडका।

हाय री वह एक आना हिस्से की जमीदारी। उसने एक दिन खुद उनको भी अहकारी बनाया था। तिस पर वनविहारी की शादी एक मुख्तार की इकलौती बेटी से हुई थी, वह उनकी सपत्ति के भावी उत्तरा-धिकार का भी सपना देख रहा था। विवाह बेशक उन्ही ने कराया था। हॉ, पसद थी अतर बहू की। उन्होने इनकार नही किया। पिता की

एकमात्र उत्तराधिकारिणी लडकी को उन्होंने पसद किया था। श्वशुर कीमती साइकिल ले दी थी, दामाद कॉल में जायगा चढकर, अच्छी घडी दी थी कि उससे नाडी की, दिल की धडकन गिनेगा। पालिश की हुई आलमारी, कुर्सी, मेज, दवाखाने के सरजाम। आरोग्य-निकेतन के वगल की छोटी-सी कोठरी मे डाक्टर वनविहारी ने वैठना शुरू किया। 'सजीवन फार्मेसी' का नया साइन-वोर्ड लगाया। उन्होंने काम तो सभी किया था पर अपने से कुछ नही। मन मे शशाक की स्त्री की वात चक्कर काट रही थी। गोकि उस समय उसके पाँच साल गुजर चुके थे। मौत को आमन्त्रित करने की राह पर वनविहारी भी दूर तक वढ चुका। उसने शराव शुरू की।

जीवन महाशय आसान रोगियो को वनविहारी के पास भेज देते थे। लेकिन ताज्जुव था, वनविहारी मे कुलगत विद्या, वुद्धि का लेश भी स्फुरित न हुआ था!

होता भी कैसे! जिस ध्यान-योग से विज्ञान धारणा मे आता है, वह ध्यान ही उसने किसी दिन नही किया, करना नही चाहा। रोगियो से ज्यादा भीड मित्रो की लगती थी। नवग्राम के ब्राह्मण वावुओ के लडके उसके दवाखाने मे आते थे। चाय के प्याले पर प्याले आते। आतुरालय की नीरव उदासी हँसी की ध्वनि से चावुक-खाई-सी पल-पल त्रस्त हो उठती, चौंक पडती। मरीज वैठे रहते। मशयापन्न रोगियो के वुझते हुए जीवन-दीप की शिखा को चमकाने के लिए शास्त्रोक्त सजीवनी जैसी जो दवा है व्राडी, वही व्राडी यहाँ मौज के लिए चलती।

यहाँ पढते समय उसे व्यभिचार से व्याधि हुई थी। कलकत्ते मे पढते समय वह फिर रोग का शिकार हुआ था। वह वात उसने उनसे जाहिर नही की थी। उस समय सलवरशन इजेक्शन निकल तो चुका था, पर उसका प्रचलन नही हो पाया था। लहू की जाँच का वैसा प्रसार नही हुआ था, उसके सहज सुयोग भी नही थे। दो-तीन सुई देकर जख्म के छूटते ही सुई वन्द कर दी जाती थी। पहले महायुद्ध के वाद सलवरशन की कीमत वहुत वढ गई थी और वह मुश्किल से मिलता था। जख्म छट जाने पर लोग सालसा खाया करते थे। विलकिन्सन्स सारसा पेरिला।

उस समय खैराती अस्पताल के डाक्टर थे चक्रधारी घोष। वनविहारी से कुछ बडे थे, उसके मित्र थे। वनविहारी की मजलिस मे चक्रधारी शामिल हुआ करता था, तीसरे पहर यही चाय पीता; शाम को उसकी बैठक में वनविहारी जाया करता। वहाँ गाने-बजाने का दौर चलता—उद्वेगहीन, शात उल्लास। गाना-बजाना, पीना, खाना। बहुत रात बीतने पर वनविहारी घर लौटता। जिस दिन महाशय घर होते, उस दिन उसकी जकडी हुई आवाज उनके कानो जाती। वनविहारी की 'सजीवन फार्मेसी' मे भी कभी-कभी रात को अड्डा जमता—पान-भोजन चलता। सवेरे होने पर जीवन महाशय जूठे पत्तल पडे देखते, जूठन गिरा पाते; बरामदे के किनारे बदबू उठती होती, कै करने का निशान—खट्टी बू के साथ शराब की गध। मक्खियाँ भनकती होती। दो-एक कुत्ते उसे चाटते और महाशय को देखकर दुम हिलाते रहते। लेकिन कुछ कहने का उपाय नही था। इसमें उनके दामाद की भी साँठ-गाँठ होती। सुरमा-सुषमा का ब्याह हो चुका था।

दोनो ही दामाद पैसे वाले पिता की सतान थे—कुलीन घराने के। फिर क्या करते? तब के विचार से ऐसे ही लोग सुपात्र गिने जाते थे। फिर भी उन्होने आगा-पीछा किया था। अच्छा लडका मिला था। स्कूल मास्टर। लेकिन वह और किसी को पसद नही आया। चालीस रुपया तनखा की भी कोई बिसात है? लोगो ने निन्दा गुरू की—छि-छि; बीस-पचीस बीघे जमीन वाला परिवार क्या महाशय-वश के लिए कुटुब के योग्य है? सबसे ज्यादा बोली थी अतर बहू और वनविहारी। और वही क्यो, उनके मन ने भी उसमें हामी भरी थी। लेकिन एक बात में वे प्रतारित हुए थे, उसका जिम्मेदार आदमी नही, उन्हें काल ने दगा दिया था। वे समझ नही सके थे कि काल-धर्म से परपुरुष ने फटे कथे की तरह कुलधर्म का त्याग किया था। इस हलके के वैष्णव-धर्मोपासक कायस्थो के लडके समय की गति से शराब पीने लगे है या पियेंगे, वे यह नही अनुमान कर सके थे।

बडे समारोह से उन्होने लडकियो का ब्याह किया था। वे आते थे। उन्ही के आने के बहाने महाशय-वश की रसोई में मास का प्रवेश हुआ था।

पुरानी बाते याद करते-करते बूढे जीवन महाशय ने दीर्घनिश्वास फेका ।

चक्रधारी डाक्टर से महाशय ने पूछा था--चक्रधारी, वनविहारी इतना सारसा पेरिला क्यो पीता है, कहो तो ? क्या बात है ? पूछना तो उससे ।

चक्रधारी ने जवाब दिया था--वह तो खुद ही डाक्टर है । यह सब उसी पर छोड दीजिये ।

--हूँ । लेकिन--

--आप इन बातो की फिक्र न करे । वह सब ठीक हो गया है । सारसा पेरिला तन्दुरुस्ती के लिए पीता है । मै भी पीता हूँ । -- ठीक है ।

मगर प्रकृति अनाचार कब तक सहे ? असावधान अनाचारी वनविहारी मलेरिया का शिकार हुआ । अजीब-सी बात, डाक्टर वनविहारी कुनैन नही खाता, उसके बदले ब्राडी पिया करता । महाशय हरसिंगार के पत्ते का रस पिया करते, कभी-कभी कुनैन भी लेते । वनविहारी इस पर हँसा करता । इलाके मे उस समय जोरो से मलेरिया फैला था । सालो पहाडी नदी की बाढ-सा इलाके को तबाह कर रहा था । दाँतू को तरह बुखार होने पर वनविहारी मलेरिया मिक्स्चर के साथ दो-एक आउंस वाइनम ग्लेसिया मिला लेता था । खुद ही नुस्खा लिखता और अपने ही दवाखाने से मँगवा लेता । अपने यहाँ नही मिलता तो सीताराम की डिसपैसरी से मँगवाता । सीताराम उसका साथी हो गया था । वह भी अकाल ही में मर गया । अमिताचार के बुलाये मौत उसके जीवन मे कदर्यतम स्वरूप में आई थी । जाने कब उसे उपदश हुआ था, उसने छिपाकर रक्खा था । उसी के जहर से सीताराम के लहू ने कोढ के बीजाणुओ के आक्रमण के लिए गुप्त राह खोल दी थी । अभागा सीताराम !

अभागा वनविहारी ! धीरे-धीरे बदपरहेजी से रोग कठिन हो उठा । आयु भी क्षीण हुई, शरीर भी जर्जर हो गया ।

लीवर, प्लीहा, पुराना मलेरिया, रक्तहीनता, पीने का अजाम-- कुल मिलाकर एक अजीब पेचीदी बीमारी ।

जीवन महाशय ने मन-ही-मन वनविहारी की अकालमृत्यु का अनुमान कर लिया था। महाशय-वंश की आयु—महत् साधना वाली परमायु उसे नही मिल सकती, उसका वह अधिकारी ही नही। लेकिन वह इतनी जल्दी उठ जायगा, यह नही सोचा था उन्होंने। अचानक एक दिन नजर पड गई। सवेरे घर के अन्दर बरामदे मे वह चाय पी रहा था। आरोग्य-निकेतन से किस जरूरत से तो, शायद रुपये लेने के लिए वे अन्दर आये। धूप तापने के लिए बन्नू पूरब मुँह वाले कोठा घर के बरामदे पर बैठा था।

धूप से चमकते हुए उसके चेहरे की ओर देखकर वे ठिठककर खडे हो गये। चेहरे पर खून नही, फीका रग, थकी हुई दृष्टि और उस पाडुरता के ऊपर राख के रग की एक परत-सी पडी हो मानो।

उस रोज उन्होंने विधि-लक्षण का उल्लघन करके चुपचाप जाकर सोते मे वनविहारी की नाडी देखी थी। सावधानी से उसके हाथ को खाट पर रखकर अपने उतर आये थे। खुद चक्रधारी के यहाँ जाकर पूछा था—चक्रधारी, वनविहारी की बीमारी कम गई है? कैसा समझ रहे हो तुम?

चक्रधारी ने जरा चिंतित-सा होकर कहा था—मुझे कुछ और ही आसार नजर आ रहे है। आपसे कहूँ-कहूँ कर रहा था। वनविहारी से मैंने कह दिया है। मुझे लगता है, कालाजार है।

—कालाजार?

—जी हाँ। उसे एकबार कलकत्ते भेज दीजिये। दिखाइये किसी से।

—हाँ, तो कलकत्ते ही दिखाये। तुम जब कह रहे हो, जाय।

—एक दिन आप उसे अच्छी तरह से देखे।

—न। मेरा देखना ठीक नही। कलकत्ते से ही दिखा आये।

वनविहारी कलकत्ते गया। साथ गई अतर बहू। महाशय ने कहा था, बहू को भी साथ लिवा जाओ।

—बहू को? उसे क्यो! नही। उसी दईमारी को ब्याह कर तो मेरा बन्नू रोग से गल गया। नही। मै उसका निश्वास भी इसे नही लगने दूँगी।

महाशय ने फिर कहा था—छि, ऐसा नही करते अतर वहू। इससे वेटा-पतोहू, दोनो के मन मे तकलीफ होगी। मेरी वात मानो, वहू को साथ कर लो। तुम्हे भी मदद मिलेगी और वन्नू का भी जी लगेगा। इस ममय सवसे जरूरत है कि उसका मन लगा रहे।

उस दिन उन्हे शशाक की स्त्री की वात याद आई थी। मन-ही-मन वोले थे—मैंने तुम्हे मछली का माथा खिलाया था और चूँकि तुम्हे मैंने वचन दिया था, इसलिए अपनी वहू को स्वामी-सग के लाभ के लिए ही भेज रहा हूँ।

आसाम का कालरोग है कालाजार। कभी लोग इसे मौत लाने वाला मलेरिया ही कहते थे। वाद मे उसके अपने स्वरूप का पता चला। उसके वीजाणुओ का आविष्कार हुआ। डा. यू. एन ब्रह्मचारी ने उसकी दवा ईजाद की।

उनके पिता कहा करते थे—आसाम मे एक प्रकार का विपज्वर होता है, साक्षात् मौत ही कहो उसे। उसकी गति और प्रकृति महामारी जैसी होती है।—वनविहारी को वही वीमारी हो गई?

नही। ब्रह्मचारी नये डाक्टर है, नये रोग और नई दवा के लिए उन्हे लगन है। उन्होने नाडी देखकर वताया था—जीर्ण ज्वर, पुराना मलेरिया है। जिदगी को उसने खोखला वनाकर शेष सीमा पर पहुँचा दिया है। यह जो परत-सी पडी है चेहरे पर, यह अँधेरे मृत्युलोक की छाया का आभास है।

उन्ही की वात सच हुई थी। लहू की जाँच की गई, उसमे कालाजार के कीटाणुओ का विल्कुल पता न चला। कलकत्ते में वनविहारी के शिक्षको ने उसे जलवायु वदलने की सलाह दी—वार-वार कहा।

लेकिन वह वहाँ से और भी कमजोर होकर लौटा।

जव वीमारी मौत की वीमारी वन जाती है, तव रिपु ही प्रधान वन जाता है। वह अमृत वताकर जहर पीने की मति देता है। डाक्टर न पोर्टवाइन पीने की सलाह दी। वनविहारी दो दिन मे एक वोतल पी जाता और जल्दी ताकत आये, इसके लिए उसके साथ मुरगी खाना शुरू कर दिया था।

मरने के तीन दिन पहले महाशय ने अतर बहू से कहा था—छाती पत्थर करनी पडेगी अतर बहू ! बन्नू की बुलाहट आई है।

जैसे वज्रपात हुआ हो, अतर बहू कुछ क्षण काठ की मारी-सी रही फिर उस वज्राग्नि में लहक-सी उठी। बोली—यह कहने में तुम्हारी जुबान को सकोच नही हुआ ? बाप हो तुम !

—मेरा जन्म महाशय-वश में हुआ है अतर बहू। मेरा अपना फर्ज है। बन्नू को प्रायश्चित्त कराना है।

—नही-नही-नही !

यह बात बनविहारी के कानो पहुँची थी। वह फूट-फूटकर रोया था।

—मुझे बचाओ—बचाओ मुझे। प्रायश्चित्त मत कराओ। फिर तो मैं और नही बचूंगा।

—खैर। अगर खास कुछ खाने की इच्छा हो, तो देना।

अतर बहू से यह भी करते न बना।

उस रोज जब बुखार उतर गया तो बनविहारी ने खुद ही अचार माँगकर खाया था। अतर बहू ने नही दिया, दिया उसकी स्त्री ने। दूसरे दिन बनविहारी अच्छा रहा। चक्रधारी कुनैन दे गया।

जीवन महाशय को पता था कि इसके बाद उसे जोरो का बखार आयगा। कल तक—

कब तक आयेगा बुखार ?

उनीदे पडे थे। सोच रहे थे।

बहुत रात बीते उस दिन फिर बुलाहट आई थी।

—डाक्टर बाबू ! डाक्टर बाबू !

—कौन ?

—जी, मैं पच्छिम टोले के हाजी साहब के यहाँ से आया हूँ।

क्या है ? कैसा है लडका ?—वे उठ बैठे थे। हाजी के लडके की सान्निपातिक चिकित्सा वही कर रहे थे।

—जाना पडेगा। बहुत बढ गई है बीमारी।

—चलो, चलता हूँ।

फासला थोडा ही था। डेढ मील। लेकिन एक तो अँधेरी रात; फिर धान के खेतो के बीच से रास्ता। बजनी पाँवो से आवाज करते हुए महाशय सोचते-सोचते चल रहे थे। आदमी के हाथ मे लालटेन थी, माथे पर दवा का बक्स। यम और आदमी का सघर्ष, रोग और दवा की लडाई। याद है, सब कुछ भूलकर उन्होने महज यही सोचा था—स्ट्रिकनिन-डिजिटेलिस, एड्रेनेलिन। हर्ट, नाडी, रेसपिरेशन। गहरी चिंता मे डूबे महाशय उस रात मानो नीद के नशे मे चले जा रहे थे। रात का अँधेरा, अगल-बगल के खेत मानो थे ही नही। कभी-कभी नक्षत्रो से झलमलाते आसमान पर निगाह गई थी। जरा देर के लिए—उन्होने तुरत निगाह झुका ली थी।

वहाँ पहुँचे। रोगी के बिछावन के पास बैठकर नाडी देखी। बत्ती उठाकर उसके उपसर्गो पर गौर किया। शकल पर गौर किया, गध पर विचारा और बहुत सोच-विचार के बाद दवा दी। कुछ देर वहाँ रहकर दवा की प्रतिक्रिया देखी, तब कही घर लौटे। इसकी क्राइसिस कट जायगी। प्रशात लेकिन अवसन्न मन से आसमान की ओर ताककर उन्होने भगवान से बनविहारी की मगल-कामना की। जानते तो सब कुछ थे, फिर भी मगल-कामना की थी।

पूरब क्षितिज से पीली चाँदनी को ढँकते हुए अँधेरा बढ रहा था, दूर के गाँव अन्धेरे मे ओझल होते जा रहे थे। ठीक जैसे रोगी के शरीर में मौत के लक्षण का सचार होता है, नाखूनो के कोनें नीले हो गये, हाथ-पाँव और तालु का पीलापन धीरे-धीरे सारे शरीर मे फैलने लगा।

घर पहुँचकर एक बार ठिठककर खडे हो गये थे।

न'। बुखार नही आया है। बन्नू ठीक है। सब लोग गहरी नीद मे सो रहे हैं।

खुद भी सो पडे थे। अचानक नीद टूट गई। लगा, कोई दरवाजे के पास से उन्हे पुकार रहा है—बाबू जी!

बन्नू!

क्या हुआ बेटे?—उन्होने जल्दी-जल्दी दरवाजा खोला। सामनें आँगन मे घमक रहा था अँधियारा, गहरे सूने में झीगुर झी-झी कर रहे थे। कहाँ है बन्नू? किसने आवाज दी? शायद उनके मन के अन्दर का बन्नू

पुकार रहा था। एक दीर्घ निश्वास छोड़कर वे बन्नू के कमरे के पास गये। दरवाजे से पुकारा—अतर बहू !

ऐ !—आवाज पाकर जीवन महाशय चौक उठे थे। जग गई है। आ रही है वह।

—बन्नू कैसा है ?

—कह रहा है कि जाड़ा लग रहा है। शायद बुखार आयगा।

आ गया क्या, आयगा ! ओह्, जो गजब की कँपकँपी !

* * *

वही कँपकँपी बन्नू की आखिरी थी। उस दिन रात की अंतिम घड़ियों के आकाश की ओर ताकते हुए महाशय खड़े थे। खड़े थे आरोग्य-निकेतन के बरामदे पर। उत्तर-पच्छिम कोने में काली थान, बगल में कुँआ, कनेर की दोनों झाड़ियाँ फूलों से भरी। सामने ओस से भीजी धूल वाली सड़क पड़ी थी। वे तारे देख रहे थे। कहाँ, कौन-सा तारा ? कहाँ है सप्तर्षिमंडल, अरुंधती कहाँ है ? ध्रुव ? ध्रुव कहाँ चला गया ? शुक्र ? पूरब की तरफ दो पल पहले चाँद उग आया। बदी दूज का चाँद। तपेदिक का रोगी चाँद; पीला, दुबली काया, पाँच में से एक हिस्सा साबित, थकावट की कोई हद नहीं हो मानो। फीकी चाँदनी। आसमान में छिटक तो पड़ी थी, मगर चमक नहीं। नीलिमा पर भी जैसे पीलेपन की छाँह पड़ी हो। आसमान की तरफ ताकते हुए ही शशांक की स्त्री की बात याद आई थी। नजर झुकाकर उन्होंने उसके घर की गली की तरफ ताका। उस समय भी धुंधली मारकीन पहने किसी उदास नारी-मूर्त्ति की तरह चाँदनी का एक टुकड़ा दीवाल से लगा था; लेकिन उस समय उन्हें उससे शशांक की स्त्री या मंजरी का धोखा नहीं हुआ।

ठीक इसी समय बन्नू की चीख सुनाई पड़ी थी—

—गया, वह गया ! पकड़ो ! पकड़ो ! आ.। हा-हा-हा।

माँ ! माँ ! माँ !—भूल बकना शुरू कर दिया था उसने।

बेटे ! बन्नू !—अतर बहू पुचकार रही थी।

अन्त-अन्त में बन्नू को होश हो आया था। वह रोया था।

—मुझे नहीं बचा सके।

महाशय स्थिर होकर खड़े थे।

अतर वहू ने उनको पुकारा था—एक बार देख जाओ। कोई दवा दो। लोग कहते हैं, तुम्हारी दवा मे मौत लौट जाती है।

—नही लौटती मौत। किसी की दवा से नही लौटती। मुझे मत पुकारो।

चक्रधारी आया था। उसके सिरहाने वही बैठा था। दो बार सुई भी दी थी। लेकिन—। मौत को बुलाने से फिर वह कोई बाधा नही मानती। उस शक्ति का अभी तक आविष्कार नही हुआ है, कभी नही होगा। दवा तभी तक है, जब तक कि रोग है। रोग का हाथ पकड़कर मौत आ पहुँची तो सब बेकार।

उन्हें बनू के लिए तकलीफ हुई—वह रो रहा है!

उनको बात याद आई, जो हँसते-हँसते मौत को गले लगाते है।

ऐसे रोगी उन्होने देखे हैं। यदा-कदा नही—एक दो नही। बहुत-बहुत देखे है, आज के डाक्टर नही देख पाते, न देख पायेगे। उन्होने देखा है। बहुत-से और निहायत मामूली लोगो मे देखे है।

नवग्राम के राय-परिवार के भुवन राय की याद आ रही है।

जीवन महाशय के पिता का जमाना। उनकी जवानी की उमर। भुवन राय उस समय सब तरह से तबाह हो चुके थे। उन्होने जगत् महाशय को बुलवा भेजा—महाशय से कहो, एकबार मुझे देख जायँ।

भुवन राय उमर में जगत् महाशय से बहुत बड़े थे। बेचारे गरीब बूढे अपने टूटे-फूटे मकान की डेवढी में हुक्का लिये बैठे रहते। गरीबी इस कदर कि कोई चिलम पीता हुआ उधर से गुजरता, तो उसे बुलाते, कुशल-क्षेम पूछते और अन्त मे कहते, जरा अपनी चिलम तो दो, देखूँ।

जवान जीवन महाशय उस दिन भुवन राय की बुलाहट पर हँसे थे, अवश्य जगत् महाशय से कहने की उन्हे हिम्मत नही पड़ी थी। सोचा था, ओह, मनुष्य को बचने की कैसी लालसा होती है! इतनी उमर हो आई, दुनिया मे कही किसी पूर्णता की कोई उम्मीद नही, फिर भी भुवन राय मरना नही चाहता!

जगत् महाशय के साथ वे भी गये थे। फटे-मैले बिछावन पर पड़े-

पडे भुवन राय ने स्वागत किया था—आओ महाशय, बैठो।

—हुआ क्या है आपको ?

—अरे भाई, देखो कि जाना है या नही।

जाना तो पडेगा ही राय बाबू। उमर के मानी ही काल है—हँसकर वे बोले—वह बात भुवन राय नही भूल सकते जगत्। यही देखो कि मेरा वह काल पूरा हुआ कि नही। काल पूरा किये बिना असमय में मर जाना पाप है। भुवन राय ऐसा जाना भी नही जा सकता। लोग कहते है, उठ जाने से ही छुट्टी। अरे पगले, अवधि पूरी होने के पहले जेल से भाग खडे होने से छुट्टी मिलती है कही ? भागकर जाओगे भी कहाँ ? पकडकर फिर ठूँस देगा। देखो तो, समय अगर मेरा पूरा हो गया हो। कुछ कर्त्तव्य रह गये है, उन्हे कर लेना पडेगा।

जिन दिनो भुवन राय के पास जायदाद थी, उन्होने अपने मित्र से पाँच सौ रुपये लिये थे। उसकी कोई लिखा-पढी नही थी। उनकी गई-बीती हालत देखकर मित्र भी कभी तकाजा नही करते थे। लेकिन भुवन राय इसे नही भूल सके थे। इसके लिए जो करना चाहिए, उसकी इन्होने कई बार कोशिश की थी। कामयाब न हो सके थे। लेकिन सूझी थी! सोच रक्खा था, उनसे माफी माँग लेगे। किंतु माफी माँगना क्या आसान था ? सोचा था, मरने से पहले चाहे मित्र का हो, चाहे खुद का, माफी माँग लेगे। इसीलिए वे अपनी मौत की बात निश्चित रूप से जान लेना चाहते थे ताकि मित्र को बुलाकर हाथ बाँधकर कहे—भैया, मुझे मुक्ति दो।

एक बीघा निष्कर जमीन उन्होने जरूर रख छोडी थी और मन-ही-मन सकल्प भी रक्खा था कि वह जमीन अपने मित्र को दे देंगे।

तकिये के नीचे से एक रुपया निकालकर उन्होने महाशय को दिया। जगत् महाशय ने हाथ जोडकर कहा—मुझे माफ करे राय बाबू!

यह नही हो सकता जगत्! वैद को दक्षिणा दिये बिना मुझे मुक्ति नही मिलेगी।—फिर हँसकर बोले—आखिर मेरा श्राद्ध तो होगा किसी तरह का, उसी में तुम एक रुपये के बजाय दो दे देना।

मित्र से मुक्ति माँगकर भुवनराय का हँसते हुए आँख मूँदना दिनो

तक याद करते हुए लोग मन में भरोसा बटोरते रहे हैं। खद उन्होंने भी किया है।

और भुवनराय ही क्यो ? गणेश बजनिया। बीस वरस पहले की बात है यह। आरोग्य-निकेतन के बरामदे के सामने एक खुली गाडी पर बैठकर अस्सी-पचासी के बूढे गणेश का आना आज भी उनकी आँखो मे नाच उठता है। लबी लाठी टेक उतरकर बूढे ने उस रोज हल्ला मचा दिया था। सदा का बहरा, चिल्लाकर बाते करने की उसे शुरू से ही आदत थी।——छोटे महाशय कहाँ हैं ? पहले मुझे देख लो। दूसरे की गाडी माँगकर आया हूँ। उन्हे भी नवग्राम जाना है, लटकन की दूकान मे सामान लाना है। पहले इस बुड्ढे को रुखसत कर दो।

उसका रौब देखकर सब अवाक् रह गये थे।

महाशय भी पहले उसे पहचान नही सके——कौन है ?

दुबला-लबा कद का बूढा। है कौन ? गणेश बजनिया तो नही ? चितुरा का गणेश। हाँ, वही तो है।

उनसे भी बडा था गणेश। दस-पन्द्रह साल का बडा। उनकी शादी मे उसने ढोल बजाया है, माँ के चन्दन धेनु और पिता के वृषोत्सर्गश्राद्ध में ढाक बजाया है। उसका यह दावा है कि उसने दीनबन्धु महाशय यानी उनके दादा के श्राद्ध मे भी ढाक बजाया है। अस्सी-पचासी की उम्र होगी। इसीलिए गणेश उन्हे छोटे महाशय कहता था।

जीवन महाशय ने पूछा था——क्यो गणेश, तुम्हे क्या हुआ ?

ऐं।——कान दिखाकर गणेश ने कहा——जरा जोर से

गलती हो गई उनसे। गणेश सब दिन का बहरा है। बुढापे मे कुछ ज्यादा हो गया है। आप ही चिल्लाता है यानी आप अपनी बात नही सुन सकता। महाशय ने ऊँची आवाज मे पूछा था——क्या मामला है ?

——बीमार हूँ। रोग।

——आखिर तुझे भी बीमारी हुई ?

——होगी नही ? मुझे जाना नही है ?

—तुझे भी जाना है ?

—वही देखने को तो कह रहा हूँ। देखो। मुझे वैसा लग रहा है। समझे।

—बीमारी क्या है, पहले यह बताओ।

—पेट की गडबडी।

—पेट की गडबडी ?

हाँ।—अपना हाथ महाशय की तरफ बढाते हुए वह मुखर बूढा बोलता ही गया—समझा, मान-छै महीने शायद और बचता ! उस रोज कही ढाक बजाकर भतीजा खसी की एक टाँग ले आया। सो जी मे आया, दुनिया मे आया लेकिन जिंदगी मे कभी मास तो नही खाया। तमाम जिंदगी बाजा बजाकर प्रसादी मास मुझे बहुत मिला। मुँह पर नही रक्खा कभी। मगर इच्छा तो है। मास खाये बिना तो छुट्टी नही मिलने की। सो भैया, मैंने खा लिया। अच्छा ही लगा। लेकिन उसी से झमेला हो गया। पेट की बीमारी ने धर दबाया—दो दिन मरोड आती रही, उसके बाद एक दिन घाट गया, गया। वही शुरुआत हुई। अब दो महीने हो गये—चल रहा है। पेचिश हो गई। कैसा तो लग रहा है मुझे।

भँवें सिकोडकर जीवन महाशय ने कहा था—ऐसी हालत में तू यहाँ आया क्यो ? आना ठीक नही हुआ। खबर भेज देनी थी।

किसी ने कह दिया—लोग-बाग कहते है, तुम्हारे पास रुपये है। देते दो रुपये महाशय को।

—ऐ। क्या कहते हो, जोर से बोलो, जोर से।

—कहता हूँ कि तुम्हारे पास तो पूँजी है।

—रुपया है। पैंतीस गडा रुपया मेरे पास। गाडकर रक्खा है। उसी के लिए तो महाशय के पास आया हूँ। बताये महाशय। फिर मै जीवन-महोत्सव मना लूँ। लडका नही है—बीबी नही है, यह रुपया भतीजा ले लेगा और कुछ नही करेगा। जमीन है—वह उनलोगो का पावना है, जमीन वे लोग ले ले। रुपये से मै जलसा करूँगा, चडीथान बधवा दूँगा। अच्छा तो देखो। बताओ, और कितने दिन ?

—बैठ जा। सुस्ता ले जरा।

गणेश ने समझदार की तरह गर्दन हिलाई। कहा—हाँ। समझा, मैं इस रोग के होते ही भाँप गया। ताड गया कि ये हजरत जो-सो नही हैं। छह्यात यही है। मेरे मन ने ठीक बता दिया। फिर भी सोचा, अपने मूरख मनई ठहरा, क्या पता। चलकर महाशय से दिखा लूँ। महाशय से गलती नही होगी। तो फिर ठीक ही निकला। चडीथान की वेदी बनवाना शुरू करा दूँ—उसके बाद जलसा। मन रे, रामनाम बोल-रामनाम!

उसने महाशय को प्रणाम किया और दो रुपये रख दिये—देखो, 'ना' मत कहना। सब दिन सेत ही देखा है। इसी रुपये मे सब बाकी बसूल!

उनके जी मे आया था—गणेश ने क्या सच ही समझ लिया था?

शरत् चन्द की दादी की बात याद आई थी। बन्नू के मरने के कोई आठ महीने पहले का जिक्र।

नाडी देखने के लिए उन्हे बुलाया था।

वह भी समझ गई थी। पुकार सुन ली थी उसने। बुढिया को खाने-पीने का शौक सदा से था। खाने-पीने का आयोजन भी वह खासा कर सकती थी। उसके हाथ की बनी वरी और पापड बहुत मजे का होता। इसीलिए महाशय ने पूछा—क्या खाने को जी चाहता है?

जीभ काटकर वह बोली—हायरे मेरी फूटी तकदीर! तुमने यही पूछा!

—फिर तुम्ही बताओ, क्या इच्छा है?

—सिर्फ शरत् को देखना चाहती हूँ। नाडी देखकर बताओ कि कै दिन जिदा रहूँगी। शरत् के लौटने तक रह सकूँगी '?

शरत् बी ए का इम्तहान दे रहा था। उसकी माँ ने उनसे पूछा था—कहिये तो उसे टेलिगराम कर दूँ?

—नही-नही। अभी पन्द्रह दिनो तक तो ये हैं। शरत् सात दिन मे तो आ जायगा?

—हाँ।

--फिर ठीक है। पोते से भेंट हो जायगी। तकलीफ क्या है? दो-एक खुराक दवा?

--कष्ट तो एक ही है, कैसा तो लग रहा है। बस। लगता है, चली जाऊँ तो छुट्टी मिले। निश्चित हो जाऊँ।

ऐसे बहुतेरो को महाशय ने देखा है। इसी का नाम है जाना। ये है मृत्यु के आदर के अतिथि। आजकल मौत को शायद ऐसे अतिथि नही मिलते।

अब मिलेगे ही नही? ठीक इसी समय अतर बहू जोरो से रो पडी थी--बन्नू, मेरे बेटे!

* * *

विपिन के बारे मे वे नही कह सकते।

वनविहारी की तरह विपिन ने कातर होकर चीख-पुकार नही की--करने की बात भी नही। वह कर्मवीर है। रोयेगा नही। लेकिन खुशी-खुशी शात चित्त से अपने आपको मौत के हाथो सौप भी नही सकता। उसके दु ख-क्षोभ का हाहाकार फूट पडेगा।

अँधेरे मे खुदकुशी की तरह वे राह चल रहे थे। वास्तव मे स्थान-काल की उन्हें कोई खबर नही थी। नवग्राम बाजार की रोशनी से वे आपे मे आये।

चौमुहानी की दूकानो पर बत्तियाँ जल रही थी। पुराने समय के समान धुंधली बत्तियाँ नही--जगर-मगर। पेट्रोमेक्स, लालटेन, दीवालगीर--ढाई सौ, पचीस, चालीस बत्ती। उन्ही बत्तियो की रोशनी से उनकी चेतना लौट आई। सामने की एक मनिहारी दूकान की झकमक चीजें आँखो को चौंधिया रही थी। डाक्टर हरेद्र की दूकान में वे लोग कौन?

डाक्टर प्रद्योत की बीवी और उसका आया हुआ मित्र। इस समय निकले है ये दोनों? डाक्टर की स्त्री सुन्दरी है, तिस पर बन-ठनकर निकली है। अपने को मोहिनी बनाया है। महाशय खडे हो गये। टार्च जलाकर दाई ओर के अँधेरे को हटाते हुए वे दोनो चले गये।

चारो तरफ शोरोगुल। खरीद-बिक्री चल रही है। जिधर मद्धिम

रोशनी पड रही थी, चुनकर उसी तरफ से उन्होंने चौमुहानी को पार करके मोड लिया। फिर अँधेरी राह। जान मे जान आई। अगर कोई विपिन की वात पूछ वैठता तो क्या कहते ? काफी दूर पर आगे-आगे डाक्टर की स्त्री और उसके दोस्त जा रहे थे।

अँधेरे रास्ते की वालू-ककडियो पर महाशय के जूते से आवाज हो रही थी। यह जगह एकात पडती थी। आवादी नही है यहाँ। पीछे काफी दूर पर नवग्राम बाजार की रोशनी की छटा शून्य लोक मे तैर रही है। वाजार की हलचल यहाँ, इतनी दूर पर क्रमश· क्षीण होती जा रही है। वरसात के मेढको की टर्र-टर्र खेतो से उठ रही है। वोल रहे है सव। और वह क्या ? पीडा भरी आवाज। ओ, साँप ने मेढक को पकडा है। महाशय ठिठके, फिर चल पडे।

वडे पोखरे के वगल से वैहार मे एक रास्ते पर मुडते ही रोशनी दिखाई दी। अस्पताल के क्वार्टरो की खिडकियो से छनकर वरामदे पर रोशनी की छटा छिटक रही थी, अस्पताल के वरामदे पर रोशनी जल रही है। प्रद्योत के वगले पर पेट्रोमेक्स। वही तो, डाक्टर की स्त्री और उसके मित्र ! प्रद्योत वैठा है। चारु वावू। और भी कई आदमी।

—अब लौट रहे है डाक्टर वावू ?

अस्पताल के अहाते की दीवार के पास से कौन तो निकला।

—कौन ? विनय ? पहचान कर वे चकित हुए। वी के मेडिकल स्टोर्स का मालिक विनय ?

—तुम यहाँ खडे हो ? मामला क्या है ?

—डाक्टरो की मीटिग हो रही है।

—मीटिंग ?

—हाँ। मुझे वायकाट करने का विचार किया जा रहा है।

—वायकाट का—तुम्हे ?

—जी हाँ। कल मै आपके पास आऊँगा। मीटिग सिर्फ मेरे ही लिए नही हो रही है, आप भी है। सुबह सब वताऊँगा आपको। आऊँगा मै। यहाँ के सभी डाक्टर जुटे है—देखिये न। एक हरेद्र अभी नही पहुँचा है। चारु वावू और प्रद्योत वावू विपिन बाबू को देखने जा रहे है—उधर

से हरेंद्र को लेंगे। लौटकर मीटिंग करेंगे। आप विपिन बाबू को देख आये? रहे नही। ओ, आपको कहा नहीं शायद।

महाशय ने कोई जवाब नही दिया। न, वे कुछ नहीं कहेंगे।

विनय बोला—आज सवेरे किशोर भैया ने तो आपकी बडी तारीफ की। सारे गाँव में हलचल है।

इसका भी कोई उत्तर नही दिया उन्होने। विनय कहता गया, सुना कि डाक्टर प्रद्योत इससे बहुत बिगड उठे है।

अब महाशय ने कहा—मैं चलूँ विनय।

विनय चौंक उठा—जी हाँ। वे लोग आ रहे है। मै भी जाता हूँ। कल मैं आपके पास आऊँगा। दीवाल के बगल से वह फिर अँधेरे में गुम हो गया। चारुबाबू, प्रद्योत, प्रद्योत के मित्र बरामदे से उतरकर चले आ रहे थे।

छब्बीस

उस दिन प्रद्योत डाक्टर के यहाँ हलके के सभी डिग्रीधारी डाक्टर आकर जमा हुए थे। प्रद्योत ने ही सबको बुलाया था – एक को-ऑपरेटिव मेडिकल स्टोर्स खोलने का विचार करना था।

वास्तव में विनय की बायकाट करने की नीयत से नही; लेकिन इससे विनय को मुश्किल तो बेशक पडेगी। वही नही, वे लोग यहाँ एक छोटा-मोटा क्लिनिक भी खोलना चाहते है, प्रद्योत के वे दोस्त शहर में क्लिनिक-प्रैक्टिस करते हैं। विपिनबाबू के पेशाब और खून-जाँच की रिपोर्ट लेकर कल से ही आये है। विपिन की रिपोर्ट आशाजनक तो है, लेकिन डाक्टर को क्या तो सदेह हुआ है, वे फिर से अपने से उनका पेशाब और खून ले जायेंगे। उसी सिलसिले में इनलोगों की बैठक में भी शामिल हो गये हैं। शामिल हुए है प्रद्योत ही के अनुरोध से। डाक्टर प्रद्योत की राय है, आजकल क्लिनिक की सहायता के बिना इलाज करना अन्याय है;

इससे उस विज्ञान का ही उल्लघन होता है, जिसकी साधना की जाती है। मामूली मलेरिया या साधारण बीमारियो मे उपसर्ग देखकर, थर्मामीटर, स्टैथिस्कोप की मदद से इलाज किया भी जा सकता है, लेकिन मर्ज जहाँ जरा पेचीदा-सा लगता है, जहाँ जरा भी शुबहा होता है, वहाँ विज्ञान-सम्मत उपाय से खून, मल-मूत्र की जाँच किये बिना इलाज करने का, प्रद्योत घोर विरोधी है। नाडी-जाँच के ऊपर उसे यकीन नही। वायु, पित्त और कफ भी वह नही समझता। और आँखो से उपसर्ग देखकर, रोगी के बदन की गन्ध का विचार करके रोग का निर्णय करना दो-चार ही प्रतिभावान चिकित्सको के लिए सभव है, साधारण चिकित्सको मे वह शक्ति नही है। जो ऐसा करते है, वे कुछ केसो मे तो ठीक पहचान कर लेते है, कुछ मे भूल करके बाद में सुधार कर लेते है और कुछ मे तो भूल अन्त तक मालूम हो नही पडती। रोगी जब हाथ से निकल जाता है, तब लगता है, इलाज शुरू से आखीर तक भूल ही चलता रहा। बीमारी हकीकत मे मलेरिया नही थी, वह था कालाजार, या कालाजार नही था, था मलेरिया। मलेरिया को टी बी समझने की भूल करते भी देखा गया है। उस दिन खुद उन्ही से एक बच्चे के इलाज मे मार्मिक भूल हो गई है। जबसे वह लड़का मरा है, वे बहुत दुखी है।

विनय की दूकान मे नुस्खो पर दवाई देने मे मनमानी की जाती है। कोई दवा अगर मौजूद नही रहती तो अपने मन से ही उसका कोई विकल्प देकर काम चला दिया जाता है। वह भी नही होता तो उसे छोड ही देता है। कोई भी दवा नियम पूर्वक यथाक्रम तैयार नहीं की जाती। दवा की शीशियाँ स्थिर रहें तो साफ दीख पडता है कि भिन्न-भिन्न भेषज अलग-अलग तैर रहे है या नीचे जमे है। एक बार दवा लाता है और उसी से साल भर, छै महीने चला ले जाता है। तेज-हीन, निर्गुण दवा काम नही करती। जिस विशेष तापमान में पेनिसिलिन को रखना चाहिए, नही रक्खा जाता। जो दवाये प्रकाश-किरणो से नष्ट हो जाती है, उन्हें भी नियम से नही रक्खा जाता। जहाँ मनुष्य के जीने-मरने का सवाल है, वहाँ लापरवाही, अज्ञता और कुटिल व्यापार-बुद्धि के स्वेच्छाचार से जिंदगी आफत की शिकार होती है। इसके सिवा प्रद्योत का खयाल है, ये नकली

दवायें भी चलाते है ।

ऊपर से ज्यादा कीमत । बेचारे गरीब, सीधे-सादे गँवई लोग तबाह होकर लोलुपता की तलवार के नीचे लाचार हो अपनी गर्दन डाल देते है। कीमत ही क्या, उधार खाते मे बाकी रकम बढती ही चली जाती है । इनकी पीली पड़ी आँखो की दृष्टि देखकर प्रद्योत को दया भी आती है, गुस्सा भी होता है । कभी-कभी जी में आता है--मरे, मर जायँ ये कवख्त, मर-कर खत्म हो जाय । अनजान, मूरख--अपनी अज्ञता, मूर्खता, बुद्धि-हीनता किसी भी तरह कबूल नही कर सकते । लाख कहो, सुन नही सकते। समझा दो, समझने के नही, यकीन करने के नही । आज भी इनसे जतर-मंतर, जडी-बूटी, तावीज, कवच छोडते नही बनता । इनका विज्ञान-बोध जीवन महाशय के नाडी-ज्ञान तक पहुँच कर थम गया है ।

इसीलिए बहुत सोच-विचार के बाद यहाँ के डाक्टरो और अपने उस मित्र के सहयोग से वह यहाँ एक नई संस्था कायम करना चाहता है । दवा की एक बडी दूकान । उसके साथ एक छोटा-सा क्लिनिक ।

यहाँ की अवस्था से उसने जैसा समझा है, उसके मुताबिक एक बडी दूकान मजे मे चल सकती है । नवग्राम मे मझोले किस्म की दवा की एक दूकान, तीस साल से भी ज्यादा हो गये, मजे में चल रही है । उसके पहले एक आलमारी में दवा रखकर हरीश डाक्टर का अपना कारोबार चलता था । जीवन महाशय का आरोग्य-निकेतन भी बहुत दिनो तक बड़े ठाट से चलता रहा । और अब, उन्नीस सौ पचास ईस्वी में यहाँ क्लिनिक और दवा की बड़ी-सी दूकान नही चलेगी ?

नवग्राम ही में दो-दो एम बी , दो एल एम. एफ. डाक्टर है । दस-बारह मील के दायरे में और भी चार एल. एम. एफ. है । सबकी चल ही रही है किसी तरह । प्रद्योत ने उन सबको आमन्त्रित किया है । सब हिस्सेदार बनें और यह कारोबार चले । सबको लाभ है । व्यवसायियों की तरह तो हमलोग मुनाफा नही करेंगे, लेकिन जो भी लाभ होगा, सबको मिलेगा । जिनके जैसे नुस्खे होंगे, उनको वैसा कमीशन भी मिलेगा । लोग-बाग भी कुछ ही कीमत पर दवा पायेंगे ।

क्वार्टर के बरामदे पर कुर्सी-मेज डालकर बैठक का खासा इतजाम

किया गया है। शाम की चाय से शुरुआत हुई है। बीच मे जल रहा है एक पेट्रोमेक्स। रात मे खान-पान है। कुछ चिडियो का शिकार किया गया है—उनके साथ कुछ मुर्गियाँ। अस्पताल का रसोइया पका रहा है। मजु निगरानी कर रही है। बरामदे की एक तरफ एक आरगेन रक्खा है। कभी-कभी वह गीत गायगी।

यहाँ नवग्राम के आस-पास जो लोग भी प्रैक्टिस करते है, सबके सब इसी इलाके के लोग है। पिछले पचास वर्षो के अन्दर डाक्टरी भी पेशाओ मे अच्छा पेशा बन गई है। इसका मुख्य कारण मलेरिया का प्रकोप है। मलेरिया के साथ कुछ टाइफायेड, दस-पाँच रेमिटेंट, आमाशय, पेट की बीमारी। चेचक होता है, लेकिन महामारी का रूप धारण नही करता। हैजा बीच-बीच मे होता है। पहले हैजा महामारी की तरह होता था, अब टीका की कृपा से वैसा नही होता। इसके सिवा यह-वह, तरह-तरह की बीमारियाँ लगी ही रहती है। लिहाजा डाक्टर हो जाने मे खातिर जमा। आमदनी ही होगी। पहले जो लिखते-पढते थे, वकालत पढा करते थे। अगर नौकरी नसीब न हुई, तो वकालत करेगे। लेकिन वकील का पेशा अनिश्चित है। जिसकी तकदीर खुली सो राजा, और जिसकी नही चली वह फकीर। डाक्टरी मे ऐसी बात नही। किस्मत साथ दे तो फिर पूछना ही क्या। न दे तो कुछ-न-कुछ तो चलेगी ही। सबसे बडी बात कि घर बैठे रोजगार। दस साल आगे इलाके की चौहद्दी मे पास किये हुए दो डाक्टर थे। टुटपुँजिये तो कई थे, जो अपनी रोजी कमाते थे। आज यहाँ डिग्रीवाले डाक्टर छ है। किसी ने बर्दवान तो किसी ने बाँकुडा मे डाक्टरी पढी। चार ने कलकत्ते के कैंबेल और मेडिकल स्कूल से पास किया है। ये सभी विनय के थोक खरीददार है। उन्हे विनय के खिलाफ कोई शिकायत नही है, ऐसी बात नही है। विनय पुरानी दवा चलाता है। बहुत ज्यादा कीमत तो नही लेता लेकिन को-आपरेटिव में कीमत और भी कम होगी। क्लिनिक की लोग वैसी जरूरत नही महसूस करते। लेकिन अगर हो तो बेजा क्या है? सख्त बीमारियो मे कभी-काल जरूरत पड भी सकती है। फिर डाक्टर प्रद्योत को सतुष्ट रखने की भी उन्हे

जरूरत है। यदा-कदा दो-चार मरीज को लाने से, खासकर नश्तर के मामले में, अस्पताल में ये व्यवस्था कर देंगे। कुछ-कुछ विज्ञान का भी तकाजा है। सब लोग इतजार में है। विपिन बाबू को देखकर डाक्टर लोग लौटें, तो विचार-विमर्श शुरू हो।

विपिन के बारे में बातें करते हुए ही डाक्टर लोग लौटे। विपिन बाबू ने कहा—आपलोग साफ-साफ बतायें कि क्या समझ रहे हैं। मैं इस हालत में अब जिंदा रहना नही चाहता। जीवन महाशय कह गये है—मैं अब नही बचूंगा।

रतन बाबू ने कहा था—नही-नही, ऐसा तो उन्होने नही कहा है, उनके प्रति अन्याय मत करो।

विपिन ने दृढता से कहा—नही, अन्याय मैं नही करता। वे जिस तरह से कहकर चले गये कि 'मैं ठीक से समझ नही पा रहा हूँ', फीस लिये बिना ही चले गये—इसके मानी उसके सिवाय और कुछ नही हो सकता। आप ही बतायें उनकी राय से आपकी समझ में क्या आया ?

विपिन बाबू के लडके ने भी कहा—'हाँ', इशारे से वे लगभग यही कह गये।

विपिन बाबू ने कहा—अब आपलोग अपनी राय बतायें। और कितने दिनो में मैं बिस्तर से उठकर, कम-से-कम इनवैलिड चेयर पर थोडा, बहुत घूम-फिर सकूगा, बताइये। ढेरो काम पडे है। कभी-कभी जान पर बीतने से मवक्किल आ जाते है, आप मुझे उनसे मिलने तक ही की इजाजत नही देते। इसकी इजाजत ही कब देंगे, सो बताइये। Frankly कहिये। मैं जानना चाहता हूँ।

चारु बाबू ने समझाने की कोशिश की थी—कहा था—आप-जैसे भी आदमी अगर अधीर हो उठें तो हम क्या कर सकते है विपिन बाबू ! इस रोग का रवैया तो आप खुद जानते है। फिर आप उतावले हो रहे है, इससे नुकसान होगा।

—जानता हूँ। जानकर ही कह रहा हूँ। मुझसे अब इस तरह रहा नही जाता। जीवन महाशय अपनी बात बता गये है और एक प्रकार से चले ही गये है। अब आपलोगो की बारी है। आप लोगों का कहना है,

मै अच्छा हूँ। ठीक है। अव यह कहें कि मै कव तक उठ वैठूँगा। जानता हूँ कि मुझे वह पहला जीवन अव नसीव नही हो सकता। लेकिन उसका कुछ हिस्सा। कहिये।

प्रद्योत ने कहा—आपको कलकत्ते के डा चटर्जी ने देखा था। हम उन्ही के निदेशानुसार आपका इलाज कर रहे है। राय वही देंगे। आप उन्हे वुलावा भेजें। हम यही कह सकते हैं कि जीवन महाशय की राय से हम सहमत नही हैं। आप पहले से अच्छे है और यदि कोई वाधा नही पडी, तो धीरे-धीरे विल्कुल अच्छे हो जायेंगे। कवतक विल्कुल अच्छे हो जायेंगे, यह वताने के लिये डा० चटर्जी से मशविरा करना पडेगा।

—खैर। डा० चटर्जी को ही वुलाया जाय। हरेंद्र, तुम जाकर उन्हे लिवा लाओ। जो माँगेंगे, वही दूँगा। लज्जा और घृणा से मै जल रहा हूँ। मै अन्तिम वात जानना चाहता हूँ। और—

सिर उठाकर सामने की ओर ताकते हुए कहा—जीवन महाशय को वुलाया जाय। म यह नही जानना चाहता कि मैं मरूँगा या नही। मरना एक दिन सवको है। इस रोग मे मै वचूँगा या नही, यह जानना चाहता हूँ।

यह उहोंने अपने पिता को लक्ष्य करके कहा।

आपस मे इसी का जिक्र करते हुए वे लोग लौटे। नौकर ने चाय लाकर रक्खी। हरिहर कपाउडर ने चारुवावू के सामने काँच के ग्लास मे दो आउस व्राडी और सोडा की एक वोतल रख दी। को-ओपरेटिव मे चारु वावू ही सवसे ज्यादा उत्साहित हैं। सोसाइटी के प्रसिडेट वही होगे। व्राडी की चुसकी लेकर सिगरेट सुलगा कर जेव से घडी निकालकर वोले—नौ वजकर पाँच। प्रद्योत वावू, कार्यवाही शुरु कर दें। समय अच्छा है। दुर्गा-दुर्गा—सिद्धिदाता गणेश। आरम्भ कीजिये।

चारु वावू ने पहले से ही पत्रा देख रक्खा था। प्रद्योत यह सव नहीं मानता और मानना नापसद करता है, लेकिन यहाँ चारु वावू को वाधा नही दी।

कागज-कलम लेकर वह वैठ गया।

चारु वावू ने हँसकर कहा—यह कैसी मीटिग ? ओपनिग सोग तक तक नदारद। हारमोनियम—मिसेज वोस के रहते भी !

डाक्टर की स्त्री वडी सप्रतिभ है। उसने सिर झुकाकर अदव के साथ कहा—सभापति जी का आदेश शिरोधार्य!—वह आरगेन के सामने जा बैठी।

एक वाधा पड गई।

अचानक अस्पताल के फाटक पर चार-पाँच आदमी पहुँच गये। एक औरत छाती पीट-पीटकर रो रही थी—सोनारे, माणिक मेरे ·· अरे वेटे!

प्रद्योत ध्यान से लिख रहे थे। रोना सुनकर कागज-कलम समेट-कर धीरता से उठ खडे हुए। इतनी रात को इस तरह छाती पीटकर रो रही है, अस्पताल ले आई है—जरूर कोई एक्सिडेंट है। इमर्जेंसी वार्ड का केस। लेकिन इमर्जेंसी वार्ड के मानी यहाँ महज दो वेड हैं। एक ही वेड था। प्रद्योत ने आकर किशोर वावू के जरिये वडी-वडी कोशिशो के वाद एक और वढाया है। जव थाना हेल्थ सेंटर हो जायगा तो पाँच वेड हो जायेंगे। कुछ नई व्यवस्था भी की है उन्होंने। लेकिन इमर्जेंसी वार्ड की सबसे वडी जरूरत है लहू की। लहू है कलकत्ते के ब्लड-वैंक मे—यहाँ से डेढ सौ मील दूर।

अभी आया मैं। देख आऊँ, क्या वात है।—प्रद्योत चले गये।

चारु वावू ने कहा—एसा कर्त्तव्यपरायण आदमी मैंने देखा नही। मैं भी तो यहाँ कभी था। कडाई रखता था। समझ गईं मिसेज वोस, मै वडा सख्त आदमी था। मगर करता क्या? वह जमाना ही दूसरा था। उस समय अस्पताल वावुओ का था। डिस्ट्रिक्ट वोर्ड की मदद मिलती थी, वस। वावू लोग ही सर्वेसर्वा थे। डिसपेंसरी में काम कर रहा हूँ—आ पहुँची वावुओ की वुलाहट, तुरत आइये। लाचार, चल देना पडा। जाकर देखता क्या हूँ, छोटा वच्चा चीख रहा है। पचम मे। बाबू की वेटी का लडका, वारह साल की लडकी का लडका, समझा?

वारह साल की लडकी का लडका?—मजु के अचरज का ठिकाना न रहा।

—इसमें अचरज क्या है, उस जमाने मे यह तो होता ही रहता था। ग्यारह साल की लडकी को लडका, मैंने देखा है। चौदह की उमर

तक मे लडका नही होता तो हाहाकार मच जाता था घर मे। समझते अब नही होने का। देवता के मन्नत मानते थे।

मजु ने कहा—मेरी माँ की माँ की माँ—Great-grandma को तेरह साल की उम्र मे बच्चा हुआ था। यानी मेरी माँ की माँ पैदा हुई थी। जब सुनती हूँ, हैरत मे आ जाती हूँ मै। वह बुढिया आज भी जिदा है। उफ्, ऐसी बहरी हो गई है बुढिया! जानते है—अचानक एक भय-भरी चीख से सभी चौक पडे। क्या हुआ? चीख डाक्टर के घर से निकली।

कोई मानो बू-बू कर रहा है। कौन? आवाज रसोइये की लग रही है!

मजु दौडी गई। उसके पीछे-पीछे प्रद्योत का मित्र भी दौडा। चारु बाबू ने कहा—हुआ क्या, चोर तो नही है?

हरेंद्र ने कहा—क्या पता?

या कडाही उलट ली पैरो पर? जाने क्या हुआ?—चारु बाबू ने कहा—देख जरा हरेंद्र।

सभी दरवाजे की ओर उत्सुकता से देखते रहे।

चारु बाबू ने ब्राडी का आखिरी घूँट पी लिया। पुकारा—अरे ओ भाई, मिसेज बोस, हुआ क्या?

उधर रसोई मे जाने हौच-पौच करके क्या तो कह रहा है ठाकुर। खाक समझ मे नही आता। प्रद्योत का दोस्त उसे डाँट बता रहा है। डाक्टर की बीबी खिलखिलाकर हँस रही है।

चारु डाक्टर ने कहा—सुनो, हरेन्द्र।

—जी।

—भई, यह औरत कैसी है। हँस रही है सो देखो जरा। सुनते है, बन्दूक से शिकार भी करती है!

—जी हाँ। साइकिल भी चलाती है।

चारु डाक्टर बोले—गड्डल औरत है! डाक्टर आदमी अच्छा है, लेकिन आखीर तक इस औरत के पाले पडकर गाछ पर न बैठना पडे, दुम न निकल आय उसके!

सभी डाक्टर हँस पडे।

चारु बाबू ने अपनी गजी खोपडी पर हाथ फेरते हुए, कहा——मगर दोनो है मजे मे। कपोत-कपोती। वाह! हँसते है, खेलते है, गाते है। मजे मे है। कभी-कभी अफसोस हो जाता है भई। काश, इस जमाने मे पैदा होता! डाक्टर अबकी खुद ही हँसे।

उस हँसी के प्राय: साथ ही उधर से हँसती हुई, बरसाती झरने की तरह झरती हुई बाहर निकली डाक्टर की वह गद्दैल बीवी! डाक्टर का दोस्त भी हँस रहा था। वह बोला——इडियट कही का। जरा करतूत तो देखिये इसकी।

चारु बाबू ने कहा——हुआ क्या?

मजु ने कहा——भूत, चारु बाबू, भूत आया था। फिर वह उफन कर हँसने लगी।

भूत!——चारु बाबू का नशा हिरन हो गया।

——जी। नौकर खाने की जगह बना रहा है, उधर रसोई में ठाकुर घोलकर गरम मसाला डाल रहा है ·कतार से थाली-कटोरे रक्खे है। अचानक धुप्-धाप् गिरने लगे ढेले। ठाकुर ने खिडकी से उझककर बाहर झाँका——एडी से चोटी तक सफेद कपडा ओढ कौन तो खडा! ठाकुर को देखते ही कहने लगा, जरा-सा मास दो। दो जरा-सा। कहना था कि मारे डर के ठाकुर ऊँ-ऊँ करने लगा।

प्रद्योत के दोस्त ने कहा——जी में आया कि बेटे के गाल पर जड दूँ दो-चार तमाचे।

चारु बाबू बोले——ऊँहूँ। इस तरह टाल देने से काम नही चलेगा। यह जगह अच्छी नही है। बहुत बार बहुतेरे लोग यहाँ पहले इसी तरह डर चुके है। दो कदम आगे एक गाछ था। उसके बारे में तरह-तरह की अफवाहे थी। और जहाँ पर अस्पताल है, वहाँ मुसलमानो की कब्रगाह थी। इसी डर से पहले अस्पताल मे रोगी नही आते थे। सात साल में सात रोगी भी नही हुए। चार आये भी थे, वे सब मँगते थे——दो एक्सिडेंट केस——अनक्लेम्ड प्रोपर्टी की तरह। उन्हे भी किशोर बाबू के समाज-सेवा दल वाले उठा-जुटाकर ले आते थे। उनमे से एक को छोडकर बाकी सब मर भी गये। सभी रोगी यहाँ डरते थे।

मजु फिर खिलखिलाकर हँस पडी—आप भूत मानते हैं क्या डाक्टर वावू ?

चारु वावू ने कहा—हाँ । यानी मानता भी हूँ, नही भी मानता हूँ । नही मानता हूँ और मानता भी हूँ । मतलब, क्या है, क्या नही है, यह बडी मुश्किल है ।

प्रद्योत लौट आये । चेहरा गभीर । आस्तीन तक कुरता समेटा हुआ । डिसइफेक्टेंट की वू आ रही है । कुर्सी पर वैठ गये । कहा—नन्हा-सा वच्चा, छै-सात महीने का । गरम दूध गिरने से एकवारगी—अपने अजानते ही चारु वावू एक पीडा-कातर शब्द कर उठे—आ ।

वाकी लोग सिहर उठे—उफ!

प्रद्योत के दोस्त ने पूछा जी तो जायगा ?

मर गया । मेज पर सुलाने के वाद कई मिनट था जिंदा । उसके वाद दो-एक वार स्पाज्म—वस ! मैंने कुछ नही किया । खडा-खडा देखता रहा ।

मजु स्थिर हो गई । उसकी सारी चपलता, हँसी, कौतुक, सव कुछ मानो सूख गया ।

प्रद्योत के मित्र ने कहा—यहाँ एक और ही हगामा हो गया ।

—हगामा ? हगामा क्या ?

—तुम्हारे रसोइये ने भूत देखा था । ऊँ-ऊँ करके चीख रहा था । पूछो मत, एक काड हो गया !

—नानसेन्स । उल्लू का पट्ठा, शरारत कर रहा है । लगता है, मास-वास गायव किया है उसने । वाद को कहेगा, भूत उठा ले गया ।

चारु वावू ने कहा—उँहूँ । उसे इस तरह उडा मत दे आप ।—प्रद्योत हँस पडा ।—आप भूत मानते हैं क्या ?

चारु डाक्टर वोले—मैं मानता हूँ, इसके माने ? इस कब्रिस्तान में—उधर अपमृत्यु से आदमी का एक वच्चा मरा, इधर मास की गन्ध से घर मे ढेले गिरे, नकिया कर वाते की । ब्राडी का नशा टूट गया । मुझे एक आउस और दीजिये । सव मिट्टी हो गया । ज्यादा नही, एक औंस । वस-वस ।

प्रद्योत ने ग्लास बढाते हुए कहा—खैर, जो भी हो, भूत रहे या न रहे, उसकी हाय-हाय नही। काम की बात हो। तो हमलोगो की राय पक्की रही।

—हाँ। पक्की ही समझिये। क्यो भाई ?

—तो फिर इस कागज को देखकर सही बना दे ?

—आप पढिये डाक्टर—यू सी—ब्राडी पीकर चश्मा लगाने से मुझे बडा ऊँचा-नीचा दीखता है। इसीलिए मै कभी रात की बुलाहट में नही जाता। नेवर। रात को रोगी मरे तो चारु डाक्टर इज नॉट रेसपोन्सिबुल। पढिये, आप पढिये।

प्रद्योत कहने लगा। कम्पनी का नाम रहेगा—नवग्राम को-आपरेटिव मेडिकल स्टोर्स ऐंड क्लिनिकल लेबोरेटरी।

चारु डाक्टर ने कहा—गुड।

पूँजी होगी पाँच हजार रुपये। दस-दस का शेयर। चारु बाबू सौ शेयर ले रहे है। मजु बोस—सौ। मेरे मित्र निर्मल सेन सौ। हरेन्द्र बाबू पचास।

—नही मिस्टर बोस, मेरा पचीस लिखें।

—क्यो भई, यह क्या ? तुम्हारी तो खासी चलती है। जीवन महाशय तुम्हे बुलवाकर सुई दिलवाते है। उधर विपिन बाबू के एटेंडिग फिजिशियन—इन्ही दो केसो म तो पचास के दाम निकल आयेंगे।

हरेन्द्र का चेहरा लाल हो उठा। कुरनाहार के डाक्टर हरिहर पाल ने कहा—सो रामहरि को जीवन महाशय और हरेन्द्र ने खूब बचाया है। पगले शशि ने पहले मुझे ही बुलाया था। साफ-साफ कह दिया था, उसने वसीयत कर रक्खी है; गवाह बनना पडेगा। अँगूठे का निशान हम दे लेंगे, तुम गवाह हो जाओ। कोई हुज्जत नही होगी, डर की बात नही। और अगर हो भी कह देना, उसने होश में निशान बनाया था। साफ होश था। पचास रुपये मिलेंगे—अत तक सौ पर आया। लेकिन मै इन्कार कर गया। कह दिया, मै यह सब नही करता, माफ करना। ऐसे रुपये की मुझे जरूरत नही। मै जब देख आया था, अब-तब हालत थी। जीवन महाशय ने खूब बचाया है।

चारु बाबू ने कहा—जीवन महाशय का वही तो जादू है। मैं इसे जादू ही कहता हूँ। समझते हो न, बीमारी की पकड है। समझ सकता है। इसे नाडी-ज्ञान कहो या बहुदर्शिता कहो, जो कहो, वह आदमी ठीक-ठीक बता देता है सब। उसमें एक गुण है, है वह धार्मिक। लेकिन वही एक रोग है—यह बचेगा नहीं—यह निदान बताना, इसी की सनकसी है उसे।

प्रद्योत ने कहा—मैं मगर बीच मे बाधा दे रहा हूँ। हमलोग अपने विषय मे दूर हटते जा रहे है। हमे सब कुछ पक्का कर लेना है।

हरेन्द्र न कहा—तो मेरा चालीस लिख ले।

चारु बाबू बोले— तुम्हारे दस शेयर की कीमत अभी मैं दे दूँगा। तुम महीने-महीने मुझे चुकाना। अब एतराज न करो। बस खत्म! वन्-टू-थ्री।

मेज पर थाप मारकर वह हँसने लग। फिर बोले—साढे तीन हजार की रकम तो हो गई। बाकी रहा डेढ हजार। ये रकम ये लोग दे दें। पाँच जने है। वे दो-दो सौ, दो सौ यानी बीस शेयर। बाकी पाँच सौ खुला रहे—कुछ लोग हैं, अगर वे—

प्रद्योत ने दृढ स्वर मे कहा—मै लेकिन इसका विरोधी हूँ।—गजी खोपडी पर हाथ फेरते हुए चारु बाबू बोले—आपका अभी नया खून है प्रद्योत बाबू। बहुतेरे वैसे लोग बहुत अच्छा इलाज करते है—जैसे, जीवन महाशय को लीजिये।

प्रद्योत बाबू ने बाधा दी। बोले—मै इस पर बहस नही करना चाहता। लेकिन यह संस्था निखालिस पास किये हुए डाक्टरो की है। यहाँ विज्ञान के सिवाय हम छू मंतर के लिए गुंजाइश नही रखेंगे। आप इसे इनकार नहीं कर सकते कि यहाँ अभी भी दैवी दवायें बहुत चलती है। जतर-तावीज चलते हैं। धर्म ठाकुर के 'वात के तेल' की यहाँ बडी प्रसिद्धि है। कलकत्ते से उसके लिए लोग आते है। मगर डाक्टर होकर आप यह नुस्खा नही लिख सकते कि धर्म ठाकुर का तेल, एक औंस। और अपने दवाखाने मे उसे रखने को भी नही कह सकते। अपने मेडिकल स्टोर्स मे जतर-तावीज भी नही बिक सकता।

आपने मुझे दबा दिया ।—चारुबाबू गर्दन हिलाने लगे ।—आपकी दलीलो का जवाब नही। वकील होते तो खासे वकील होते आप ।—लेकिन....

बताइये, लेकिन क्या ?—खूब गभीर होकर प्रद्योत ने पूछा। और मेज पर हाथ रखकर आग्रह से उनकी ओर झुक भी गये ।

चारु बाबू हँस पडे । बोले—मगर यह कोई बात नही, यानी सोच रहा था, आप मियाँ-बीवी में झगडा जरूर होता होगा—उसमे जीतता कौन है ?

मजलिस के सारे लोग ठठाकर हँस पडे । सबसे पहले मिसेज बोस हँस उठी ।

हँसी जरा कम हुई, तो चारु बाबू ने कहा—तो वे पचास शेयर आम लोगो के लिए खुले रहें । एक से ज्यादा शेयर किसी को नही मिलेगा । जो खरीदेंगे, उन्हे कुछ कमीशन के साथ दवा मिला करेगी ।

—इसमें मै सहमत हूँ, बल्कि उसे पचास से सौ करने का पक्षपाती हूँ मै ।

—बस, लाइये, सही बना दूँ । सब कोई सही बनाइये ।

सही बनाकर प्रद्योत की ओर कागज को बढाते हुए चारु बाबू ने कहा—भोजन में और कितनी देर है मिसेज बोस ? अन्नपूर्णा के दरबार में शिव भिखारी होते है, उन्हें हाथ पसारकर चुप ही रहना पडता है । लेकिन शिव के चेले है भूत । वे भूख लगने पर चुप क्यो रहने लगे ?

—तैयार है । जगह करने को कह आई हूँ । कब का हो गया होता, डरकर ठाकुर ने सारा गुड गोबर कर दिया । नौकर उसे अगोरे बैठा है । रसोई से पहले सब कुछ इस कमरे मे ले आयगा, तब ।

—वही देखिये, भूतो का शोरगुल शुरू हो गया अब ।

—मै देखती हूँ ।

—रुकिये ।

—क्या ?

—मेरा ख्याल है, वह मास छोड ही दे तो अच्छा ।

—मास छोड दे । आप क्या पागल हो गये डाक्टर बाबू ?

—ऊँहूँ । एक तो मुसलमानो का कब्रिस्तान, तिस पर मुर्गी का गोश्त !

उँहूँ ! माने भूत माने या नही, हम ठहरे डाक्टर, भूत मानना हमारे लिए उचित नही, और भूत को माने भी क्यो ? लेकिन जब एक बात हो गई, यानी ऊँ-ऊँ करते समय ठाकुर का थूक-वूक उसमे पडा कि नही, कौन जाने या और भी कुछ हुआ कि नही, कौन जाने, ऐसे मे जरूरत ही क्या है ? माने, मैं—माने मुझे रुचि नही हो रही है ।

खाते समय यह देखा गया कि जितने भी डाक्टर मौजूद थे, मास में किन्ही की रुचि नही रही ।

प्रद्योत रसोइये पर जल-भुनकर आग हो गये ।—यह उसकी शैतानी है । आप लोग यह समझ नही सकते ? अब तो एक बारगी स्पष्ट हो गया । ऐसी एक हरकत कर दो कि आपलोग मास नही खाये । यहाँ का आदमी ठहरा, यहाँ का विश्वास-अविश्वास सब जानता है । उसने ठीक अटकल लडाई । अब मजे मे भकोसेगा ।

चारु बाबू ने कहा—उन्हे ही खाने दो । खाकर जायँ जहन्नुम मे । समझा नही, काफी मात्रा मे कैस्टर आयल पियेगा । लेकिन, समझा नही, हम लोगो की रुचि, माने कहा तो मैने । जो असली काम था, वह तो हो ही गया, नवग्राम मेडिकल स्टोर्स ऐंड क्लिनिकल लेबोरेटरी । आपने यह एक बहुत बडा काम किया । क्लिनिकल जाँच के बिना आज के जमाने मे एक कदम भी बढाना मुश्किल है । उचित भी नही । ऐंड—आपने वह जो कहा, मैं मानता हूँ । ठीक ही कहा है । जतर-मतर, दैवी दवा मे अगर लाभ होता हो, तो हमे एतराज नही, मगर हम उसे प्रश्रय नही देगे ।

एक-एक कर सब चले गये ।

प्रद्योत ने नौकर और रसोइये को बुलाकर कहा—तुम दोनो कल ही अपना हिसाब लेकर चले जाना ।

मजु ने कहा—यह अन्याय है तुम्हारा ।

—नही ।

—तुमने उस समय ठाकुर की शकल नही देखी । बेचारा थर-थर काँप रहा था । क्यो मिस्टर सेन ?

सेन ने कहा—डर बेचारे को बेशक लगा था । मिसेज बोस ठीक कर रही है । ही वाज स्ट्रम्बलिंग लाइक ए लीफ । पत्ते की तरह काँप

रहा था।

प्रद्योत ने कहा--अगर तुम्हारी बात मानूँ तो यह मानना पडेगा कि यह भूत का बडा विश्वासी है। यह कब्रिस्तान है, मुर्गी पका रहा है, लिहाजा कब्र मे से निकलकर भूत आयगा, साझ से ही यह कल्पना कर रहा होगा। और उसी से उसे धोखा हुआ--विज़न देखा। इस आदमी को मैं अस्पताल मे नही रख सकता। मेरे मरीज डरेगे। कल सवेरे ही इन्हे चल देना पडेगा।

सत्ताईस

रात भर जीवन महाशय को नीद नही आई। हर घडी एक आँधी-सी बहती रही मन मे। शशाक और उसकी स्त्री, विपिन और उसकी स्त्री, वनविहारी और उसकी स्त्री, अतर बहू, रतन बाबू--मानो उनकी खाट को घेरे रहे। रतन बाबू, विपिन, विपिन की स्त्री, उनसे पूछते रहे--मुझसे कहिये। शशाक, वनविहारी, उनकी स्त्रियाँ, अतर बहू भौहे सिकोड-कर इशारा करते रहे--ना-ना-ना।

अपने आपको भी उन्होने बार-बार विश्लेषण करके देखा। याद आया, उनके पिता ने कहा था, निदान देते हुए यानी मौत की घोषणा करते समय सबसे पहले मन में परमानन्द माधव को अनुभव करना चाहिए। उनकी कृपा से जन्म और मृत्यु, जीवन और मरण दिन और रात के समान अन्ध-कार और प्रकाश का खेल हो उठता है, परमानन्दमय लीला बन जाता है। तब वैसे हृदय से नाडी के तत्व को भी समझ सकोगे और बिना आगा-पीछा किये कह भी सकोगे। बिना पूछे किसी को निदान बताने का नियम नही है। लकिन कोई खास मौका होना है, उस मौके पर बिना पूछे ही अपने मन से बताना चाहिए। परमार्थ की खोज करनेवाले बूढे को बताना चाहिए--विश्वास के अनुसार मुक्ति के लिए या अपने वैराग्य को पूर्णता देने के लिए अगर किसी तीर्थ मे जाने की इच्छा हो, तो जाइये। कोई

गुप्त वात छिपी हुई दुश्चिता की तरह मन मे कैद हो, तो उसे जाहिर करके निश्चित हो लीजिये। भोग की कोई वासना या ममताजडित वासना मन मे अगर अतृप्ति वनकर स्मरण के वहाने नीद मे छला करती है, तो उसे पूर्ण करके तृप्त हो ले।

और एक स्थिति मे अपने मन से रोगी के सगे लोगो को, स्वजनो को वताना चाहिए।

वैसे मौके पर रोगी वूढा चाहे न हो, परमार्थ की इच्छा रखने वाला चाहे न हो, फिर भी वताना चाहिए। जो रोगी कर्मी हो, सपदशाली हो—जिस किसी घर मे, समाज मे वहुत-से कामो मे जिसका लगाव हो, जिस पर वहुतेरे निर्भर करते हो—ऐसे के लिए तुम्हे जरूर ही कहना चाहिए। उनके सगे-सवधियो को वता दो, क्योकि उस आदमी के मरने से वहुत-से कामो, वहुत-से लोगो का नुकसान न होगा। ऐसी स्थिति मे अगर लोगो को पहले पता चल जायगा, तो जितना भी प्रतिकार सभव है, हो सकेगा।

एक और स्थिति मे वता देना चाहिए। रोगी अगर प्रवृत्ति को अपनी दुश्मन वनाकर, मौत को न्योतकर समीप ले आता हो, तो उसे सावधान करने के लिए वता देना चाहिए। कह देना चाहिए कि भैया, अपनी प्रवृत्ति को सम्हालो।

हर स्थिति मे लेकिन परमानन्द माधव को अनुभव करना चाहिए। उस परमानन्द माधव को वे अपने जीवन मे नही पा सके। विपिन को वे कैसे वताये?—न, नही कह सकते। ममता की इस दुनिया मे भरोसा ही एक मात्र सहारा है, आशा ही असहाय मनुष्य की एक मात्र सुख की नीद है। ज्ञान के चैतन्य की कोई आवश्यकता नही।

कल ही हरेद्र से जाकर कह आयेगे कि मुझसे यह नही हो सकता। वह रतन वावू से जाकर कह दे कि महाशय की वुद्धि भ्रष्ट हो गई है, वे अव कुछ समझ नही सकते। वडी भूल हो जाती है उनसे। कल की नाडी की गति याद नही रहती। वहुत सोच-विचार करके ही उन्होने कहा है—वे नही जा सकेगे। तडके ही विछावन से उठे।

न। अव नही। विपिन भला-चगा हो जाय। मोती की माँ स्वस्थ होकर लौट आये। दाँतू वच जाय। उनकी सारी उपलव्धि, सारा दर्शन

भ्रम होकर, मिथ्या होकर रहे।

नीचे उतरकर नित्य-क्रिया से निवृत्त हो बरामदे पर बैठे। जीविका की समस्या रही। जीविका चल जायगी।

आमदनी उन्होंने बहुत की। लाख रुपये से ज्यादा कमाया—सब खर्च कर दिया। लगभग तीस-चालीस हजार रुपये दवा की कीमत के बाकी रह गये, जो वसूल न हो सके। लडकियों के व्याह में कर्ज लिया था। जिनसे कर्ज लिया था, उनके यहाँ इलाज किया, फीस नही ली। उम्मीद थी कि उसी मे सूद भर जायगा। लेकिन लोगो ने मिनहा नही किया। सूद-मूल सहित नालिश की, डिग्री करके जायदाद नीलाम करा ली। इसका उन्हे कोई अफसोस नही। लेकिन हाँ, जीवन मे जितनी भर जरूरत है, उतना रहता, तो अच्छा था। उतना भर रखना वाजिब था। मगर उनसे रखते नही बना। वे दुनियादार नही बन सके। लोग कहते है, जगत्बन्धु महाशय के सुख भरे ससार मे जन्म हुआ, खुद भी दोनो हाथो रुपये कमाये। नाडी पकडी, पैसे आये। हिसाब कब सीखे और हिसाब करे क्यो ? सोचा था, सदा ऐसा ही रहेगा। दो हाथो कमाकर चार हाथो बिखेरा है।

कुछ तो सत्य जरूर है यह—लेकिन सोलहो आने नही। नही-नही—अतर बहू कहती है—गिरस्ती मे महाशय का कभी जी ही नही लगा। सब दिन कडवी, जहर-सी लगी। मै जो कडवी हूँ, जहर हूँ ! वह होती, सब अमरित होता। फिर देखते। वह यानी मजरी।—कहके अतर बहू हँस पड़ती, ऐसी हँसी कि कोई समझ नही सकता, उनको छोडकर और किसी के सामने तो वैसी हँसी हँसती नही ?

यह भी थोडा-बहुत सत्य है। दीर्घनिश्वास त्यागकर महाशय भी हँसते है, मन-ही-मन कहते है—इसमें कोई सदेह नही कि गिरस्ती को तुम लोगो ने कडवा बना दिया। तुम, वनविहारी, लडकी, दामाद—सबने। सबने मिलकर। लेकिन तुम्हारी जगह मजरी होती, तो भी गिरस्ती अमृतमय नही होती—उसमे भी गिरस्ती के लिए आसक्ति नही होती मुझे। हर्गिज नही—नही।

उनके मन के एक कोने को तुम लोग कभी नही देख पाये। मन के

उस कोने मे उनके जीवन की श्मशान-साधना का आयोजन है। वहाँ उन्होंने आजीवन अपने को अमावस के अँधेरे मे ढँक रक्खा है। वहाँ सदा दोपहर रात है। मीत और मीत। जिंदगी भर वहाँ इसी नाम का जप करते रहे। उनके पिता ने कहा था--मृत्यु अमृतमयी होकर दीखती है।--जिसकी भावना उसी रूप को देखने के लिए चलती रही, वह विषय का लेखा, चीजो की हिफाजत कब करे? वरना जिदगी मे उन्होंने जितना कमाया, उससे तुम्हे पालकी पर चढाकर खुद सफेद घोडे पर सवार हो कादी से नही घूम आ सकते थे? सफेद घोडा तो जुट ही गया था। गहने भी तुम्हे कम नही मिले--पालकी-कहार मे कितना लगता? तुम तो यह नही जानती कि रोगी की मृत्यु-शय्या के पास से उठकर आते समय रोगी के अपने-सगे जब पुकारते--जरा रुकिये महाशय जी, आपकी फीस। हाथ पसारकर लेते--सोचते-सोचते चले आते उस विचित्र शक्लवाली को, आज भी आते है। यह परिणाम, महापरिणाम अनिवार्य, अमोघ। बार-बार पूछा है--क्या है? कैसी है? वर्ण, गध, स्पर्श, स्वाद मे वह कैसी है? कैसी है उसकी आवाज? पिताजी की कही हुई कहानी का रूप भी मन को सतुष्ट नही कर सकता।

अचानक धूमकेतु की तरह शशि आ धमका। इस आश्विन के महीने मे ही उसने अपना फटा ओवरकोट बदन पर लाद लिया है। हाथ मे हुक्का। सुबह ही हुई है और आँखे लाल-लाल! नशा है, लेकिन शराब की बू नही आ रही है, गाँजे की भी नही, शायद कैनेबिसिडिका पी है। बिना किसी भूमिका के कहा--कबख्त रामहरि आज वसीयतनामे की रजिस्ट्री कराने आ रहा है। आपको गवाह रक्खेगा। उसकी नई बीवी को कुछ दिलाना पडेगा आपको। मेरी फीस के बहुत रुपये बाकी है। खैर, सब जाय जहन्नुम मे, लेकिन बीसेक रुपये दिला दीजिये।

शशि जमकर बैठ गया।

सोच रहे थे कि शशि को क्या जवाब दे। अचानक साइकिल की घटी से खिचकर नजर घुमाई। साइकिल आजकल आम सवारी हो गई है--आस-पास के गाँवो के खेतिहरो के लडको ने भी साइकिल खरीदी है। फिर भी उसकी घटी मे एक आकर्षण है। इस गाँव मे बबू ने ही सबसे पहले

साइकिल खरीदी थी ।

दो साइकिले थी । प्रद्योत और उसका मित्र, दोनो जा रहे है । इतने सवेरे इधर कहाँ जायेंगे भला ?

प्रद्योत साइकिल से उतर पडे । उसके मित्र जरा आगे बढकर उतरे । शायद यो ही उतर पडे ।

——नमस्कार !

महाशय ने यह उम्मीद नही की थी । जरा चौककर ही उन्होने प्रति नमस्कार किया——नमस्कार !

——अहीन्द्र सरकार का मकान कौन-सा है ? मुझसे कह आया कि आप ही के घर के पास है ।

——अहीद्र का मकान ? बस वह रहा, इस गली से जाइये । उसके यहाँ जायेंगे ?

जी हाँ । ——प्रद्योत जरा हँसे ।——उनके दामाद मेरे सहपाठी है । दोनो साथ आई एस. सी पढे थे । उसके बच्चे की तबीयत खराब है ।

अहीद्र के दामाद का लडका ? नाती ? यानी अतसी का बेटा ? उस रोज जब मोती को माँ को गगा किनारे जाने की राय देकर लौट रहे थे, तो मदन के लडके बदन के साथ वह पानी उलीच रहा था । छोटा-सा लडका——आँखें जुडाने वाला, नन्ददुलाल-सी सलोनी सूरत । वही लडका ? उसीको तबीयत खराब है ? दरवाजे के पास ही मैं हूँ, मुझे नही बुलाया, नही दिखाया ? क्या हुआ है उसे ?

इतने मे प्रद्योत और उसके मित्र गली में जा रहे ।

——आजकल लोगो को पैसा बहुत हो गया है, बहुत । भला वे हमको-आपको क्यो दिखाने लगे ? लेकिन अहीद्र सरकार के दादा-परदादा के वक्त से आपलोग उसके यहाँ मुफ्त इलाज करते आ रहे है ।

महाशय अचानक बरामदे मे रास्ते पर उतर पडे । उसी गली की ओर चल दिये——अहीद्र के घर की ओर ।

शशि अवाक् रह गया । एक पल चुप रहकर बोल उठा——अकल बेच खाना इसी को कहते है । प्रद्योत डाक्टर गरदन पर हाथ रखकर निकाल बाहर करेगा ।

चार साल का बच्चा। बुखार से बेहोश-सा पडा है। इधर के कर्णमूल से उधर के कर्णमूल तक सूज गया है। सिंदूर की तरह लाल हो गया है।

प्रद्योत देख रहा है। उसका दोस्त भी देख रहा है। उसकी माँ सिरहाने बैठी है। अहीद्र और एक खूबसूरत-सा जवान पास मे खडा है। महाशय कमरे मे गये। चुपचाप पीछे खडे रहे। रोगी के वदन मे कठोर पीडा है, उसकी अनुभव-शक्ति क्षीण होती जा रही है। चेतना खत्म-सी हो रही है।

तीखी निगाहो देखते रहे महाशय। कोई छाया पड रही है? समझ नही पा रहे हैं। उनकी भी दृष्टि-शक्ति कमजोर हो आई है।

देखकर प्रद्योत खडा हो गया। चेहरा गभीर, चिंतित। उसकी नजर महाशय पर पडी।

—आप!

मैं जरा देखूँगा।—वे रोगी के बिछावन की तरफ बढे। बैठ गये।

अहीद्र सरकार अप्रतिभ-से हो गये। अतसी भी। शशि ने झूठ नही कहा है। तीन पीढियो से महाशयो के नेह-नाते के कारण उसके यहाँ इलाज का कोई खर्च ही नही रहा। आज उनको पूछा तक नही—

अहीद्र बोला—देखिये न, क्या से क्या हो जाता है। मेहमान कल आये। बच्चे को गोद लिया। बोले, एक फुनसी-सी हो आई है—जरा-सा चूना लगा दो। शाम को लडका रोने लगा, बहुत दर्द हो रहा है। वह फुनसी बिना मुँह के घाव-सी है, देखा, कुछ बडी हो गई है। उसके बाद सारी रात तडपता रहा, बुखार आ गया। सुबह देखा, तो मुँह सूजा गया है। बुखार से होश नही है। मैं आपको ही बुलाने जा रहा था। दामाद ने कहा, यह तो फोडे का बुखार है, जाने नश्तर लगाना पडे कि क्या हो, इसमे उन्हे बुलाकर क्या करेगे? ठीक भी कहा। फिर अस्पताल के डाक्टर बाबू उनके सहपाठी है। मैंने कहा, तुम्हारा बच्चा है, तुम जिसे चाह दिखाओ मैं इसमे क्यो दखल दूँ।

बच्चे को देखकर महाशय उठ खडे हुए। प्रद्योत इतने मे चला जा

चुका था। साइकिल पर दवा लाने गया था। सुई देगा। पेनिसिलिन।

बच्चे की माँ, अतसी, ने व्यग्र होकर पूछा—दादाजी, कैसा देखा? कैसा है मुन्ना? क्या हुआ है?

हँसकर वे बोले—गाल और गला सूज गया है। बुखार है। फिक्र क्या है? आजकल नई-नई दवायें निकली हैं, डाक्टर बाबू हैं—ठीक हो जायगा।

जिस तरह गये थे, उसी तरह लौट आये वे। अहीद्र उनके पीछे-पीछे गया। रास्ते पर उतरकर पुकारा—चाचा जी!

—अहीद्र?

—क्या देखा आपने?

—नाडी देखकर समझूँ भी कितना। तब ऐसा लगा कि बुखार बढेगा।

अभी भी तो—

उसके कहने के पहले ही महाशय बोले—दो के लगभग होगा, कुछ ज्यादा ही।

—हाँ, एक सौ दो पाइंट दो है। और चढेगा बुखार?

—लगता तो है।

—गाल और गला सूजा हुआ है, ऐसा लाल हो गया है! मामूली-सा तो फोडा है।

—वे लोग लहू की जाँच तो कर रहे है! देखो। नब्ज देखकर बताने से बेवकूफ बनना पडता है।

वे और नही रुके। लौट आये। उस समय दरवाजे पर दो गाडियाँ खडी थी। एक थी परानी मियाँ की, दूसरी रामहरि की। रामहरि वसीयत पर सही कराने आया था।

रामहरि को देखकर शशि रफू-चक्कर।

*　　　　　*

परानी की स्त्री गर्भवती है। परानी खुश है—जरा लज्जित भी। महाशय को यह अच्छा लगा। जी अच्छा रहता तो जरा मजाक भी करते। कम-से-कम मस्जिद-दरगाह मे मन्नत मानने कहते, कहते—तो एक दिन

खान-पान का इन्तजाम रहे। अबकी तुम्हारी सतान जियेगी। समझे गये ? और बीबी की भी सारी बीमारी जाती रहेगी। लेकिन जो उदास है। होश-बेहोश के बीचोबीच पडे हुए अतसी के बच्चे की चिता ने उनके मन को उदास कर दिया है ! यहाँ रिपु नही है प्रवृत्ति का अपराध नही है, प्रतिष्ठा, सपद, लालसा, लोभ, किसी के भी खास आकर्षण मे जीने की लालसा नही है। नई जिदगी बढने के लिए, पूर्ण होने के लिए प्रकृति की प्रेरणा से बचना चाहती है। कैसी घमासान लडाई। अपने हक मे वह लड रही है। प्रचड--प्रचडतम ! वैशाखी-आधी जैसी आई है यह कठोर व्याधि। जिसका आविर्भाव एक टुकडे मेघ मे है, वह कुछ ही क्षण मे फैलकर सब छाप लेगा, छापना शुरू कर दिया। अभी भी ताडव शुरू नही हुआ है। लेकिन उसमे बहुत ज्यादा देर नही है। नही है देर। नब्ज पकडकर उन्होने हवा की साँय-साँय का अनुभव किया है। दूर की भयानक ध्वनि का जैसे माटी मे अनुभव किया जाता है, घर के खिडकी-किवाड मे हाथ रखकर स्पर्श से अनुभव किया जाता है--ठीक उसी तरह उन्होने अनुभव किया है। इसके सिवा दूसरी मिसाल नही हो सकती। जहर की जर्जरता जैसी एक जर्जरता सारे शरीर मे फैल रही है। उसकी गति धीरे-धीरे बढती ही जायगी—आधी के साथ मेघ की तरह। बुखार के साथ यह जहरीली जर्जरता भी बढेगी।

गाडी आरोग्य-निकेतन के सामने आकर रुकी। वह कौन बैठा है ? शशि ? और वह ? शो के स्टोर्स का मालिक विनय ! उसने कल जाने को कही थी।

उन्हे देखते ही शशि उच्छ्वसित हो उठा।--आज मै छोडने का नही—चरणो की धूल लूँगा। जय गुरुदेव ! अखड मडलाकार व्याप्त येन चराचर--तत्पद दर्शित येन तस्मै श्रीगुरवे नम।

वसीयत मे महाशय ने रतो को पाँच बीघा जमीन देने के लिए रामहरि को राजी कर लिया है। शशि को भी उसने पद्रह रुपये भेज दिये है। महाशय ने उसे बचा लिया है--पूर्व जन्म के बाप है रामहरि के--उनकी बात भला वह टाल सकता है ? रामहरि वगैरह अजीब लोग है। ये सारी जिदगी पाप करते जाते है, कोई धर्म, कोई नीति ही नही मानते, किंतु

जिन एक-दो नियमो को मानते हैं, उनका कभी उल्लंघन नही करते ।

उसके बाद ? क्या खबर है विनय ? विनय चुप ही बैठा है । बातूनी है । जीवन की सफलता की उमग मे सदा तैरता चलता है, ऊधमी हवा की तरह । ऊधमी है लेकिन उद्धत हवा नही है विनय । कामयाब कारबारी, वर्षा के पानी भरे बादल जैसे सजल शीतल । मीठा बोलने वाला ।

विनय ने कहा—मुझे बहुत-बहुत बाते करनी है । ससार मे आदमी दो तरह के होते है—एक कमवक्ता, दूसरा उद्वक्ता । मैं एक तो उद्-वक्ता हूँ ही, तिसपर बाते बहुत हैं । पहले शशि डाक्टर की खत्म होने फिर करता हूँ मैं ।

—बाते ज्यादा हो तो कल आना विनय, आज मेरा मन ठीक नही है ।

—क्यो, क्या हुआ ?

—बैठो, अभी आया ।

महाशय वहाँ से चले आये । अतसी का बच्चा कैसा है ? आँखो मे उसकी वह सलोनी सूरत तिर रही है । उसकी आज की वह रोगक्लिष्ट, आधी चैतन्य, विह्वल दृष्टि याद आ रही है । ठुड्डी से लेकर कर्णमूल तक सूजन—बैशाखी-तूफान की बदली कितनी दूर तक फैली—कितनी दूर तक बढी वह आँधी ?

वहाँ से निकलकर भी महाशय ठिठक गये । जायँ । उचित होगा ? वह कौन वहाँ से निकला आ रहा है ? प्रद्योत डाक्टर का वह दोस्त तो नही ? हाँ, वही तो है !

आज महाशय ने ही नमस्कार किया । नमस्कार । फिर वहाँ गये थे ?

—नमस्कार । जी, गया था । उसका लहू लिया है । जाँच करूँगा ।

—लेकिन जाँच तो शहर ले जाकर करेगे । कम-से-कम कल से पहले तो नतीजा मालूम न हो सकेगा ।

—हाँ । लेकिन इसके सिवा और चारा क्या है । पेनिसिलिन की सुई पडी है । लगता है, स्ट्रेप्टोकॉकस इनफेक्शन हुआ है । वही

होगा। फिर भी देखूँ।

—स्ट्रेप्टोकॉकस इनफेक्शन ?

—जी। आपलोग जिसे सान्निपातिक कहते हैं। मटर जितने छोटे-छोटे दाने निकलेंगे गले के अन्दर।

—डाक्टरी थोडी-सी पढी थी घर मे। स्ट्रेप्टोकाकस मैंने सुना है। गले का घाव देखा है। अवश्य साधारण लोग उसे सान्निपातिक कहते हैं। लेकिन असल मे सान्निपातिक और ही चीज है। बहुत ही कठिन है वह। लेकिन—

—लेकिन क्या ? आपकी राय मे क्या है ?

—बुखार अभी कितना देखा आपने ?

—एक सौ तीन। कुछ कम। पेनिसिलिन की सुई पड रही है—उससे भी बुखार थोडा बढेगा।

—नहीं। यह बुखार उसका रोज ही बढ रहा है डाक्टर बाबू। डाक्टर बाबू, मैं डिग्रीवाला डाक्टर नही हूँ—लेकिन इलाज बहुत किया है। इसकी मियाद चौबीस से लेकर छत्तीस घटे है। लहू मे बडा ही भयकर जहर फैला है। सूजन कितनी बढी ?

बूढे की बात की हार्दिकता से डाक्टर अरुण अभिभूत हो गया था। उसे ज्ञान और अनुभूति का आभास मिला था। मन मे कुछ सोचते हुए उसने जवाब दिया, सूजन बहुत बढ गई है। बढ रही है। हमलोगो का खयाल है, स्ट्रेप्टोकॉकस इनफेक्शन बहुत ज्यादा है। शाम तक गले मे घाव हो जायगा। आप कह रहे हैं—

—मैं कहता हूँ, हमारे जमाने की चिकित्सा मे, इस रोग का आक्रमण जैसा प्रबल है, वह अच्छा नही होने का। मैं नही अच्छा कर सकता। आपलोग भाग्यवान हैं, आज अनोखी दवाओं की सहायता आपलोगो को मिली है। जो करना हो, जल्दी करें। रोग तूफान की तरह बढने वाला है। रोक सकेंगे तो ठीक, नही तो—। मेरा कहा मानें।

—मुझे यकीन है महाशय जी। मैं यकीन करता हूँ। प्रद्योत अवश्य जरा उग्र है। मैं कहता हूँ उससे जाकर।

साइकिल पर चढकर वह चला गया।

—क्या हुआ गुरुदेव ? प्रद्योत से फिर क्या हुआ ?

महाशय की घनी सफेद भौंहें सिकुड गई।—शशि, तू अब तक बैठा है ? जा, आज घर जा। जा।

—जाता हूँ। विनय के साथ ही जाऊँगा।

—विनय बाद मे जायगा। तू जा। तेरा काम तो हो गया।

विनय ने हँसकर कहा—शशि जायगा ? बिना किसी के साथ हुए नही जा सकता। अकेले गया नही कि उसकी माँ उसके पास-पास घूमेगी।

—कौन ?

—उसकी माँ। मर कर भी बेचारी बेटे की माया नही भूल पा रही है। जाने कहाँ खाई-खदक मे गिर पडे, जाने कहा पेड के नीचे सो जाय—इसीलिए साथ-साथ घूमती है। पूछिये न शशि से!

शशि शायद कहता है, उसकी मरी हुई माँ उसके आस-पास घूमती है। पहरा देती है। अवश्य, कोई रहता है, तो नही आती। लेकिन जैसे ही वह अकेला जाता है, वह समझ जाता है कि उसकी माँ उसके साथ चल रही है। उसकी बोली भी सुनता है वह वह। राह भटक जाता है या सामने नाला-वाला पडता है, तो वह सावधान किये देती है।—देखना, गिर जाओगे।

विनय हँसा। जीवन महाशय लेकिन नही हसे।

शशि की मा को ये लोग नही जानते। वे जानते हैं। ऐसी माँ मुश्किल से मिलती है। सतान को कौन माँ स्नेह नही करती ? मगर शशि की माँ-जैसा स्नेह उन्होने नही देखा।

शशि को केवल शशि कहने से ही उनका जी नही भरता था—उसे कहती थी—शशि चाँद। मेरा पगला! थोडी शराब की लत लग गई है, लग ही गई है, करे क्या ?

जवानी मे शशि भयकर शराबी हो उठा था। इलाके मे फैला मलेरिया। वह चैरिटेबिल डिसपेसरी का कपाउडर था। फीस थी चार आने, आठ आने। कुनैन और मैगसल्फ डिसपैसरी से ही ले आता। काफी चलती। उस समय वह इलाज भी अच्छा ही करता था। दवाखाने का काम खतम करके वह अपनी प्रैक्टिस में निकलता। सबमे पहले तो दो

ग्राउंस के करीब पी लेता शराब। उसके पहले डिसपेंसरी में भी दो-एक ग्राउंस चल चुकी होती। पीकर बोतल में पानी मिला देता। अगर वह नहीं मिलती तो रेक्टिफाइड स्पिरिट में ही पानी मिलाकर पी लेता। रोगी देखकर लौटते समय वह साहा की दूकान में घुसता। फिर या तो वहीं सो जाता, या सो जाता किसी पेड़ के नीचे कहीं। शशि की माँ घर की गली के मोड़ पर खड़ी रहती। फिर धीरे-धीरे चलकर पहुँच जाती साहा की दूकान में। शशि के लिए जो स्नेह था, उसके सामने उनकी लज्जा हार मान जाती। आकर बुलाती।

--साहा!

--कौन? माँ जी। यह है शशि बाबू--यहाँ।

--पुकारकर जरा होश में ला दो भैया।

माँ के पुकारने पर वह डगमगाता हुआ उठ आता। उसका हुक्का, चिलम, स्टैथिस्कोप माँ ले चलती। शशि ही कहता--यह सब ले चल।

वैशाख की चिलचिलाती धूप में माथे पर अँगोछा रखकर शशि की खोज में उनके बाहर जाने की एक स्मृति उन्हें याद है। बैलगाड़ी पर महाशय किसी रोगी को देखकर लौट रहे थे। धरती मानो जल रही थी। रास्ते में न आदमी, न आदमजाद। चिड़ियों की चूँ तक नहीं, जैसे हो ही नहीं, ऐसे ही वक्त शशि की गोरी-गोरी मोटी-सोटी माँ चली आ रही थीं, कभी-कभी रुक जाती थीं, इधर-उधर देख लेती थीं। उस रोज साहा की दूकान में उन्हें बेटे का पता न चला। साहा ने बताया, आज वह कहीं और जगह से पीकर आये, दूकान में नहीं रुके। इस रास्ते से गये हैं। माँ खोजती चल रही थीं--कहीं न कहीं रास्ते में जरूर पड़ा होगा।

पड़ा ही था वह रास्ते के किनारे एक पेड़ की छाया में कै करके कुरते-कपड़े, चेहरे में लगाये पड़ा था। एक कुत्ता बड़े ठाट से उसके चेहरे में कै किये हुए मादक मिले खाद्य को चाटकर मौज मना रहा था। माँ ने लाख पुकारा, पर उसे जगा न सकी। गाड़ीवान से उठवाकर जीवन महाशय ने उसे पहुँचवा दिया था।

नशे में चूर शशि उठा। जीवन महाशय को देखकर नमस्कार करके कहा था, आज भी जीवन महाशय को याद है, कहा था--महाशय बाबू,

गुरुदेव, आप जाइये । माँ ने छू दिया और मैं ठीक हो गया । मेरी माँ की आँखों का एक बूँद पानी धरती को डुबा दे सकता है। Yes डुबा दे सकता है । अलेक्जेंडर दी ग्रेट की बात Sir ! Antipodus does not know. ऐंटीपोडस नही जानता । मेरी माँ की आँख का एक बूंद पानी——!

डाँटकर जीवन महाशय ने कहा——जा, जा——घर जा ।

——जाऊँगा, जरूर जाऊँगा । आप ही जाऊँगा । किसी की डाँट नही सुनता मैं ।

शर्मिदा होकर माँ ने बार-बार केवल एक ही बात कही थी——घर चल शशि——घर चल ! शशि ! घर चल ।

वैसी माँ अगर मरकर भी शशि की चिता न छोड सकी तो इसमें——। और परलोक मिथ्या ही हो यदि, तो शशि, शशि ने अपनी माँ को न भूल सकने के कारण बिगडे दिमाग से यदि ऐसी कल्पना कर ली हो, अस्वस्थ दृष्टि से यदि माया को काया ग्रहण करते देखा हो तो ताज्जुब क्या है ?

जाने कितनी रातो को उन्होने अतर बहू को देखा है——देखा है कि वह वनविहारी के कमरे मे झाँक रही है । खुद आप ? उन्होने भी कभी-कभी देखा है कि !

इस अतसी का लडका अगर——।

महाशय ने कहा——कल, कल आना विनय । कल । कल । छत्तीस मे से अठारह घटे बीते । और अठारह घटे । ठीक बीचो-बीच ।

——कौन आ रहा है ? अहीद्र ?

बुखार बढ रहा है चाचा । डाक्टर के पास जा रहा हूँ । सूजन बढ़ रही है । मुँह ऐसा सूज गया है——। अहीद्र का कठ रुँध गया । आप एक बार——।

——नही । तुम डाक्टर के पास जाओ । अगर बचा सकते है तो वही बचा सकते है । हम लोगो के जमाने मे यह नही था ।

अट्ठाईस

बचा लिया ! प्रद्योत डाक्टर ने आखिर बचा ही लिया। धीर और साहसी, अपने विज्ञान में विश्वासी निडर तरुण डाक्टर।

दो बज रहे थे। खा-पीकर ऊपर के कमरे में महाशय लेटे ही थे कि अहींद्र आया—चाचा ! चाचा !

कौन ? अहींद्र ?—आवाज में ही पहचान गये थे वे। यानी कि तूफान आया। लेटे-लेटे ही उन्होंने दीर्घनिश्वास छोड़ा। प्रद्योत कुछ नहीं कर सके ? नई दवा—इतनी कीमत उसकी—उसमें भी कुछ न हुआ ?

—एक बार चलिये चाचा !

—क्या हुआ ?

—कुछ समझ नहीं आता। जोरों का बुखार है। सूजन इस कदर बढ़ गई है कि देखकर डर लगता है। बोलता नहीं। बेहोश पड़ा है। जरा चलिये आप !

ये जाकर करेंगे भी क्या बेटे ? डिग्रीवाले डाक्टर नहीं हैं, आजकल का इलाज भी नहीं जानते। टुटपुंजिया हैं। फिर ये जायँ और तुम्हारे डाक्टर आकर यह कह दें, कि मैं अब नहीं देखूँगा ?—मधुर लेकिन तीखे कंठ से ये बातें कहती हुई अंतर बहू बाहर निकलीं।—उसपर, तुम्हारे दामाद जो हैं, वे हैं पढ़े-लिखे हाल-फैशन के आदमी।

—चुप रहो अंतर बहू। छि। चलो अहींद्र, चलता हूँ मैं।

चुप रहूँ ? छि ?—स्वामी के चेहरे की ओर अचरज से देखती रहीं वे।

—हाँ, चुप रहोगी, और क्या !

कहते-कहते महाशय चल दिये। इस समय अंतर बहू की बात पर कान देने से काम नहीं चल सकता।

स्तब्ध उत्कंठा से कमरा मानो निशीथ रात के समान भारी हो उठा है। रोग के भयंकर हमले से मुन्ना बेहोश पड़ा है—आँखें मुंदी हैं, शिथिल पड़ा हुआ है। बुखार की तेजी से साँस-निश्वास से पंजरा और पेट उठ-गिर रहा है। जैसे हाँफ रहा है। निश्वास के साथ कभी-कभी स्फुट

कातर शब्द निकल पडता है। मुँह की सूजन को देखकर महाशय चौंक पडे। इधर सूजन छाती के ऊपर तक चली आई है और उधर दोनो कनपटी को पार कर गर्दन तक बढ गई है। चमडे के नीचे जैसे लहू-लुहान हो गया है।

घर के लोगों की जुबान पर शब्द नही, उत्कंठा और भय से भापा स्तब्ध हो गई है। अपलक भय-भरी दृष्टि से ताक रहे है। गहरी रात के तारो-जैसे जाग रहे है। ग्रह-उपग्रह सब बेबस है, वे देख रहे है कि एक नवजात ग्रह अजीब कारण से बुझा जा रहा है।

महाशय बिछावन के पास जाकर खडे हुए। सावधानी से बैठकर उन्होंने हाथ उठा लिया। अहींद्र ने कहा—चार है। आपको बुलाने जाने मे पहले देख गया हूँ मै। प्रद्योत के दोस्त डाक्टर अरुण जब लहू ले गये तब तीन था। तीन से कुछ कम ही था। डेढ बजे के करीब बेहोश-सा हो गया—पुकारो तो आवाज नही, सिर्फ ताके, बुखार देखा, एक सौ तीन पाइंट दो। दो बजे करीब चार हो गया—दो पाइंट कम। फिर एक सौ चार देखकर आपके पास गया।

महाशय ने उसका हाथ उतार कर बिछावन पर रख दिया।—डाक्टर के पास किसी को भेजा है?

—मेहमान खुद दौडे गये है।

—उन्हे आने दो। दवा वही देंगे।

—आप कोई मुष्टि योग—

—जब तक मेरा मुष्टियोग काम करेगा, तब तक बीमारी हाथ से बाहर हो जायगी। बीमारी लहू मे है। लहू मे सुई काम करेगी।—उन्हे आने दो।

—दादा जी, मेरा मुन्ना—?

—कोई बात नही। डाक्टर को आने दो। दवा देंगे। अभी तूफान आया है। कसकर पतवार पकडे रहो। डर क्या है? निप्पाप शिशु, दवा पडते ही लाभ होगा। बाहर आकर उन्होने अहींद्र से कहा—बुखार और बढ गया है अहींद्र, चार से भी ज्यादा। अभी और बढेगा।

—बढेगा?

—बढ़ रहा है। ना ही गये डाक्टर बाबू।

प्रद्योत को लेकर उनका दामाद आ पहुँचा। अहीन्द्र ने कहा बुखार और बढ़ गया है। चाचा ने नाड़ी देखी है—

कुछ कहा नहीं, अन्दर चला गया डाक्टर। ऐसा लगा कि महाशय के नाड़ी देखने से वह नाराज हुआ।

महाशय क्षुब्ध नहीं हुए। भीतर भी नहीं गये। खड़े रहे। वहाँ रोगी है एक शिशु। जीवन की किसी भूल से मृत्यु का निमंत्रण नहीं है। यही मृत्यु अकाल मृत्यु है। ऐसी मौत उन्होंने बहुत देखी है। लेकिन वहाँ उन्होंने प्रतिपक्ष के हिसाब से लड़ाई ली है। आज की लड़ाई रोग से नहीं, मौत से है। मौत रोगी के बहुत करीब आकर खड़ी हो गई है, सिरहाने या पास में, या पाँव के नीचे। शायद माँ की पीठ के पास खड़ी है। अन्धी, बहरी, भूरे बालों वाली!

डाक्टर बाबू!—महाशय ने पुकारा।

—कहिये।

—कैसा देखा? मैं इस बच्चे को प्यार करता हूँ डाक्टर बाबू!

आपने खुद तो देखा है।—प्रद्योत हँसा।—आपने जो देखा है। ठीक ही देखा है। बुखार बढ़ गया है। साढ़े चार के करीब!

—क्या समझ रहे हैं?

जरा चुप रहकर प्रद्योत ने कहा—चारु बाबू को बुलवाया है। उनसे जरा मशविरा करूँगा। मुझे जरा उलझन हो गई है। स्ट्रेप्टोकोकस में आमतौर से ऐसी सूजन नहीं होती। बुखार इतना है। सोचता हूँ, सप्स तो नहीं है।

—सप्स नहीं है डाक्टर साहब। यह मैं आपसे कहे देता हूँ। लहू विषाक्त हो गया है। देर नहीं करनी है, जो करना हो तुरत कीजिये।

—फिर क्या करना चाहते हैं आप? सेलुलाइटिस? इरिसिप्लास? नहीं बचेगा, कह रहे हैं आप?

—निदान-घोषणा की बदनामी है मेरी।—वह हँसे—मगर नहीं। मैं वह नहीं कह रहा हूँ। नाड़ी में वैसा आभास नहीं मिला है। बीमारी कभी-कभी मौत को साथ लेकर ही आती है और कभी-

कभी वह बढकर मौत लाती है। आप अपनी दवा दीजिये। मात्रा दूनी कर दीजिये। रोग हू-हू करके बढ रहा है।

—पेनिसिलिन दूँ ? आधा घटा हो चुका है। चितित होकर डाक्टर प्रद्योत कमरे में चला गया। फिर बाहर आया। अपनी साइकिल उठाकर चला गया। अभी आया। —कह गया। पेनिसिलिन लेकर आता हूँ। पाँच लाख चाहिए। ढाई लाख मेरे पास है।

विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से महाशय प्रद्योत की ओर ताकते रहे।

चारु बाबू के आने से पहले ही प्रद्योत पाँच लाख पेनिसिलिन देकर निकल गया। पीने को दवा तैयार करने लगा। रोगी की ओर ताकते हुए स्तब्ध बैठा रहा।

चारु बाबू आये। बुखार एक सौ चार पाइन्ट-छ हो गया। बोले, वही तो। मम्स कह रहे हैं ?

—नहीं, मैलुलाइटिस या—

आँखे तरेर कर चारु बाबू ने ताका। समझ गये। महाशय ने देखा है ?

—देखा है। मैंने पाँच लाख पेनिसिलिन दिया है।

—दिया है ? वही दीजिये। जो होना होगा, उसी से होगा। महाशय कहाँ है ?

महाशय जाकर बिछावन के पास खडे थे। सहसा बैठ गये। फिर से नाडी पकडी। देर तक देखते रहे। आँधी थमने के कुछ पहले वर्षा-मुखर धुँधलके में जैसे रोशनी की छटा झलकती है, वैसा ही लगा। तूफान के बढने मे रोक-सी पडी। मौत हटने लगी—धीरे-धीरे पीछे खिसकने लगी रात के तीन-चार बजे फिर एक बार आयगी।

महाशय बाहर आये। चारु बाबू जा चुके थे। प्रद्योत अपना बैग सम्हाल रहा था। महाशय बोले—बुखार ने रोक मान ली। अब उतरेगा।

—उतरेगा ?

—हाँ। नाडी देख आया।

—थर्मामीटर लगाया था ?

—नही आध घटे के बाद देखियेगा। अभी थर्मामीटर पकडा नही

जायगा।

कम गया बुखार। पाँच बजे एक सौ तीन पाइंट छै आया। रोगी ने आँखें खोलीं। बात की। लोगों की पलकें हिलीं—नजर में भाषा की मुखरता झलकी।

जीवन महाशय लाल नूतन की परिधि देखते रहे। व्याधि का विष पुंजीभूत मेघ की तरह जमा है—ज्वर का आवेग तब तक के लिए घट गया है। मौत अभी भी कमरे के अन्दर खड़ी है। शायद इस कोने में खड़ी है। बच्चे को देख रहे थे, मौत के बारे में अनुभव न हुआ, डरना नहीं है। चेतना लौट रही है, बोल रहा है, हँस रहा है, कभी-कभी चेतना बुझने पर शिथिल-सा पड़ा रहेगा। मुझे बचाओ, यह कहकर वह चिल्लायेगा नहीं, रोयेगा नहीं। अंतिम घड़ी में वह स्तब्ध हो जायगा—तरंगहीन, प्रशान्ति में स्थिर हो जायगा।

भारी गले की आवाज से महाशय सजग हुए।—महाशय हैं? महाशय!—बड़ी भारी आवाज मगर थकी-थकी-सी। ओ! राणा पाठक। लगता है, उसे तपेदिक ही हुआ है। लगता क्या है, वही हुआ है। उसी रोज उसे लौटाया आज इतनी रात को? महाशय बाहर निकले। वही है।

—क्यों भैया? इतनी रात को?

—अब मैं हार गया महाशय जी। बहुत जगहों की खाक छानी। अपने पारुलिया के कविराज के पास जाने को कहा था। वहाँ भी गया था। मगर गुजारा नहीं हुआ। कहीं पैसा, तो कहीं कुछ। जी नहीं भरा। आखिर फिर आपही के पास।

आरोग्य-निकेतन के अन्दर रोशनी जल रही है। सितार बैठा था। शतरंज बिछाकर अकेले ही दोनों तरफ की चाल चल रहा था। कमरे में राणा एक पुरानी कुर्सी पर बैठने जा रहा था कि हाथ नदारद देखकर बोला—टूट तो नहीं जायगी? तपेदिक का रोगी होने पर भी आखिर तो मैं राणा पाठक हूँ! ढाई मन वजन है। वह हँसा।

—यह भी नखुए का माल है भैया!

कपाल पर हाथ रखकर राणा बोला—मैं राणा पाठक हूँ—मैं कभी अपने

को राक्षस समझता था। छाती पीटकर और गले से कहता रहा हूँ मैं, अस्सी साल के पुराने ताड के गाछ की तरह तना रहूँगा, हाथी की तरह, गैंडे की तरह चलूँगा। दस-बीस कोस चल दूँगा। लेकिन—। होठो पर हताशा की हँसी झलक पडी—गर्दन हिलाकर अफसोस करते हुआ बोला-—पुराने ताड मे भी घुन लगता है—सडता है।

महाशय ने दिलासा दिया—इलाज कराओ भैया, नियम से रहो—ठीक हो जाओगे। डरना क्या ?

—डर ? हताशा की हँसी की दुबली-सी लकीर तो उसके होठो से लगी ही थी, उस हँसी की शकल पल मे बदल गई। यह हँसी मामूली आदमी नही हँस सकते। राणा-जैसे लोग ही हँस सकते है। बहुत दिन पहले एक भालू वाला मदारी आया था—बहुत बडा भालू लेकर। वह उस भालू से कुश्ती लडता था। उस समय राणा साल बीसेक का जवान था। उसने कहा था—भालू काका से मै लडूँगा। मरूँगा, काट खायेगा, लहू-लुहान कर देगा तो तुम जिम्मेवार नही होगे। और उसने धोती को लँगोट की तरह सम्हालकर ऐसी ही हँसी हँसकर कहा था—आरे बेटा भल्का, चला आ जगली जवान।—उसने दॉत और नाखून वाले उस खूँखार जानवर को पछाड दिया था। खुद भी जख्मी हुआ था, लेकिन उससे यह हँसी नही खोई थी।

डर ?—राणा ने कहा—नही-नही, डर क्या महाशय।

बाहर साइकिल की घटी बज उठी। कौन ? महाशय चकित हुए। फिर प्रद्योत डाक्टर आया ? क्यो ? अभी आने की तो वजह नही ?

राणा कहता गया—डर नही महाशय। बच्चे बडे छोटे है। असमय मे चल दूँगा आखिर ? रूपो और रसो की इस दुनिया मे आया। भोग नही कर पाया रूप-रस का। जाने को तो जाऊँगा—लेकिन एक पाप करके उसी के फलस्वरूप पापी की तरह जाना पडेगा ? यही होता है मन मे। अभी आते-आते रास्ते मे मोती लुहार की बुढिया माँ से मैने यही कहा।

मोती की मा लौट आई ?—वे चकित हुए।

उनकी जो नजर उत्कठा मे राह पर गडी थी, वह राणा के मुँह पर पडी।

जैसे एक झोका लगा उन्हे। विनय आया। बोला--मै देख आया हूँ, आ गई।

राणा ने कहा--एक पॉव मे सफेद-सफेद क्या तो देकर पट्टी-सी बाध रक्खी है। मोती और उसका लडका थर-पकडकर गाडी मे उसे उतार रहे थे। मै देखकर ठिठक गया। कहा, आखिर तूने एक तमाशा दिखला ही दिया! अच्छा है। बुढिया ने कहा, तमाशा ही है भैया! क्या कहने है। क्या घर, क्या रोशनी, कैसी व्यवस्था, कैसा इलाज! चीरा-फाडा, मुझे पता तक न चला। बाद मे कुछ दिन तकलीफ जरूर रही। पडे-पडे पेशाव-पाखाना। मगर सेवा कहो, भले घर की अच्छी-खासी लडकियाँ, सफेद पोशाक, माथे पर टोपी--दवा पिलाती, पथ्य खिलाती, मुँह धोती-पोछती---कहाँ तक गिनाऊँ, मैला-माटी का वर्त्तन तक हटाया, सब किया। डाक्टर कैसे-कैसे! महाशय ने तो मौत का ढिढोरा पीट दिया था, यह देखो, मै लौट आई। कहा है, तीन महीने के बाद यह सब खोल दिया जायगा, फिर एक महीना मालिश। फिर पाँव ठीक हो जायगा। मैने कहा, और क्या पाया? अमर वरदान नही पाया? इस पर मोती बिगड उठा। बोला, रहने भी दो ठाकुर, रहने दो। खुद बचने के लिए तो दर-दर भटकते चल रहे हो, इसके-उसके पास चक्कर काट रहे हो, इस देवता, उस देवता के पैरो माथा नवा रहे हो! मैने कहा, अबे मोती, तेरी माँ की उमर होती तो राणा पाठक जीना चाहता बे? मेरे दोनो बच्चे निहायत छोटे है, एक बच्ची है—और मेरे बडे भाई जो है, तुम्हारी की तरह मुँह बाये है। मै न रहूँ तो निगल जायेगे। समझा? नही तो राणा मरने मे नही डरता। कितनी ही बार मौत से लोहा लिया है। बाढ मे बहते हुए आदमी को मौत के मुँह मे छीन लाया है। जीता है बराबर। अब न हो तो हारूँगा। उसमे क्या?

जीवन महाशय सन्नाटे मे बैठे रहे। यह भी नही लगा कि उन्होने यह सब कुछ सुना। माटी की मूरत-जैसा स्थिर हो गये है।

उन्हे प्रद्योत डाक्टर की आज की शकल याद आ गई। धीर-निर्भीक, चिन्ता से आकुल दृष्टि, हाथ मे सिरिंज लिये स्पिरिट भर कर धो रहे है। बीच-बीच मे रोगी की तरफ गौर कर रहे है। ठुड्डी और होठ की रेखाओ

मे आत्मविश्वास ।

विनय ने कहा--ठहरिये अभी, अभी तीन महीने निकले है, तीन महीने बाकी है । महाशय ने छै महीने की मियाद बताई थी ।

नही--गर्दन हिलाकर महाशय बोले--मोती की माँ बचेगी ?

--जिये । रावण की माँ निकाष होकर जिये ।

नारायण ! नारायण !--महाशय बोल उठे । मानो सारा परिवेश अपवित्र, अस्वास्थ्यकर हो उठा ।--खैर । रहने दो ।

--रहने दीजिये । लेकिन आप मेरा इलाज कीजिये । जिये, जिये; न जिये । मरने मे मुझे डर नही है । निंदा भी मै नही करता । विनय ने मुझ पर दया की है । कहा है, जो भी दवा लगेगी, मैं दूँगा । आप इलाज कीजिये । मैने सुना, आज विनय ने बताया--परान के मुँह मे चुल्लू-चुल्लू लहू निकलता था । आपने उसे चगा कर दिया ।

याद आ गया । हाँ, उन्होने ही अच्छा किया था । लेकिन वह ऐसा काल-रोग नही था ।

विनय ने कहा--महाशयजी, आप देखे । बेचारे ब्राह्मण को बचा लें ।

--जब दवा तू ही देने को तैयार है, तो प्रद्योत को दिखलाना अच्छा होगा । अच्छा डाक्टर है, धीर, मैने आज देखा ।

--उँह । आप देखिये । राणाजी को बचाइये । रामहरि को बचा लिया । एक जौहर और दिखा दीजिये । सुबह आपने मुझसे बाते नही की । कहा, कल आना । मगर ये राणा पाठक मुझे आज ही पकड लाये फिर । आपको मेरे दवाखाने मे रोज एक शाम बैठना पडेगा । नया दवाखाना खोलकर ये डाक्टर लोग मुझे मार डालना चाहते है । आप मेरी जान न बचाये ।

महाशय अवाक् होकर विनय को ओर ताकते रहे ।

--महाशय !

--कल । कल बताऊँगा । आज नही । कल । राणा, तुम्हे भी कल जवाब दूँगा । आज नही । आज तो महीद्र के नाती ने ही सारे दिमाग को भर रक्खा है । कल आना ।

--प्रद्योत डाक्टर देख रहा है । बारह लाख पेनिसिलिन दिया

है आज । बचा लूंगा, इसी की खूब डींग हाँकी है शायद !

—विनय, कल ! कल आना । आज अब नहीं भैया । महाशय उठ खड़े हुए । ये सब लोग क्या यही सोचते हैं कि निदान बताने के सिवा महाशय कुछ नहीं करते । इसी में उन्हें आनन्द मिलता है !

सिताब अकेले ही शतरंज खेल रहा था । उसने मोहरों को समेट लिया ।—आज मैं भी चला जीवन ।

—जा । मेरा ध्यान आज उधर लगा है । खेल में जो नहीं लगेगा । लड़ाई चल रही है, समझा ?

सच ही लड़ाई चल रही है । मौत से आमने-सामने लड़ाई । अपनी जिंदगी में खुद भी बहुत लड़ी है यह लड़ाई । हारने में गौरव की हानि नहीं । लेकिन तकलीफ होती है । खासकर अतसी के लड़के के मामले में । घड़ी में 'ढग्' की आवाज हुई । एक बजा । प्रद्योत ने सिरिंज को दवा से भरकर रक्खा है । ठीक साढ़े बारह बजे आया है । सुई देकर, सिरिंज को धो-पोंछकर उसने नजर उठाई । महाशय नाड़ी देख रहे हैं । आँखें बन्द किये बैठे हैं ।

प्रद्योत ने कहा—मुझे जो करना था, करके जा रहा हूँ मैं । अब सुबह आऊँगा । इसे लेकिन सोने दीजिये । हिलायें-डुलायें नहीं ।

वह चला गया । और भी कुछ देर के बाद महाशय ने आँखें खोलीं । दरवाजे की तरफ ताका ।

कहा—अच्छा है ?

प्रद्योत डाक्टर यशस्वी योद्धा है । आज के आविष्कार गजब के हैं, अनोखे । अब नहीं । उनका समय लद चुका । और नहीं । उन्होंने मन-ही-मन कल के संकल्प को दृढ़ किया । अब नहीं ।

उनत्तीस

अब नही, कहकर उन्होने एक बार और भी इलाज करना छोड दिया था। वनविहारी के मरने के बाद। उस समय सोचा था—अब फिर पूर्णाहुति तो हो गई! कोई बुलाने जाता तो कहते—'समझ लो कि महाशय मर गये।' इसमे शोक-दुःख कितना है, यह वे आज भी नही बता सकते। चिकित्सक ठहरे, महाशय-खानदान की शिक्षा और भावना उनमें है—वे जानते है कि मृत्यु अनिवार्य है, यह भी जानते है कि शोक चिरस्थायी नही होता। जीवन के चारो ओर छः रसो की भरमार, हवा, शून्य, धरती पर छः ऋतुओ की चलती है लीला, मिट्टी के कण-कण में जल और उत्ताप की जैसी जगी रहती है प्यास, जीवों के जीवन में भी उसी प्रकार शरीर के एक-एक कोष मे रहती है रंग और रस की कामना। इसके बिना जिंदगी कायम नही रह सकती। मानव के मन में रहती है आनन्द की भूख! शोक टिक कैसे सकता है, कहाँ टिक सकता है? उन्होने शोक से नही, अफसोस और क्षोभ से नही, दूसरे ही कारण से इलाज करना छोडा था। पहला कारण यह था कि जिदगी की सारी कल्पानाये चकनाचूर हो गई थी।

वनविहारी के मरने के बाद ही उसकी स्त्री अपने इकलौते बच्चे को लेकर मैके चली गई। कुछ दिनो के अन्दर लौट आने को कहकर गई। वह अपने माँ-बाप की अकेली लडकी थी, उनकी जायदाद की उत्तराधिकारिणी। माँ-बाप उसे आदर से लिवा गये। लिवा गये कि उसके वैधव्य की पीडा कम होगी। लेकिन कुछ ही दिनो के बाद वहाँ से लिख भेजा—"मानो और मुन्ना अब यही रहे। हमारे तो और कोई नही है—वही है सहारे। आपके लडकियाँ है, नाती है। हमारे कौन है? कोई मौका होगा, तो जायेंगे। देखने की कभी खाहिश हो, तो आप इन्हें देख जाया करेंगे। मानो को वहाँ जाने में बडा खतरा लगता है। उसे डर है। वहाँ मुन्ना भी नही बच सकेगा। आप अन्यथा न सोचे, जहाँ रोग होने पर आरोग्य की फिक्र छोड़ मौत की घडियाँ गिनी जाती है, वहाँ आयु रहते भी आदमी मर जाता है।"

इसके सिवा अतर वहू पर भी इन्तजाम थे। 'उनकी तीखी झिडकियाँ किसी के भी वर्दाश्त के वाहर है।' आदि।

लिहाजा अब रुपये, पैसे, इज्जत कमाने की जरूरत क्या रही? आखिर किसके लिए?

दूसरे, उन्होंने अपने हृदय को कुल-धर्म की वेदी पर, परमानद माधव के चरणो में सौंप देना चाहा था। लेकिन यह भी उनसे न वना। इसके वदले वे अपने जीवन और मरण की सोचा करते थे। परलोक के रहस्य, चिकित्सा की वातें—सब कुछ मे वे उस महातत्व को जानने की कोशिश करते, जो प्रकट नही हो सका है। कैसी-कैसी वातें मन मे आती रही! आरोग्य-निकेतन के वगलवाले कमरे मे वैठे रहते। अन्दर जार-बेजार रोती रहती अतर वहू। काफी रात को उठकर वह वन्नू के कमरे के सामने चक्कर काटा करती। कभी वुत की तरह चुपचाप खडी रहती। उन्हें यह लगता था, जो वन्नू इतनी अतृप्ति लिये, जीने की वैसी लालसा लिये, 'वचाओ-वचाओ' की रट लगाये मरा है, क्या वह रात की निर्जनता मे छाया-शरीरी होकर सब कुछ को छूने-पाने के लिए नही आयेगा? कभी-कभी उत्तप्त मस्तिष्क से खुद भी सोचते—अगर वन्नू दिखाई दे तो उससे पूछें कि मौत क्या है? कैसी है मौत। क्या रूप है उसका? कैसा स्पर्श? कैसा स्वाद? वन्नू रोया। भुवन राय ने धीरता से जिंदगी का लेखा-जोखा चुकाया। गणेश वजनिये ने खुशी-खुशी जीवन-महोत्सव मनाया! इस विचित्र रूपिणी वहुरूपिया का असली परिचय आखिर क्या है?

लवे पाँच साल के अरसे तक उनके जीवन में कोई न रहा, कुछ भी न रहा। अपनी नाडी देखा करते, लेकिन कोई कूल किनारा नही पाया। यदा-कदा गाँव के किसी मरणासन्न रोगी के यहाँ से लोग वुलाने आते—एक वार देख लीजिये चलकर।

गये उसके यहाँ। जिसे चिंतन मे पकड सकना सभव न हो सका, जिसकी कभी आवाज नही सुन सके, नब्ज पकडकर उन्होंने उसके अस्तित्व का अनुभव किया है। ऐसे मे उन्हें लगता—उसे जानने का मार्ग यही है।

फिर एक दिन तीरथ को निकले। मौत का अता-पता न मिला तो परमानन्द माधव की खोज मे निकले। गया मे उन्होंने वन्नू को

अपने हाथो पिड दिया और वहाँ से सीधे वृन्दावन चले गये। वहाँ बन्नू की आत्मा की शाति की कामना से मदिर के आँगन मे सगमर्मर का एक पत्थर लगवा दिया। इसकी सूझ हुई उन्हे एक दूसरे पत्थर को देखकर। बहुत-से पत्थरो के बीच वह दिखाई पड गया। पहले तो चौक पडे।

कांदी निवासी भूपेन्द्रसिंह
की
आत्मा की शांति के लिए–
हे गोविन्द दया करके चरणों में स्थान दो।
—मजरी दासी

तीरथ से लौटकर नवग्राम स्टेशन पर उतरे। किशोर से भेट हो गई। तब वह दमकते भाल वाला युवक था। इन पाँच वर्षो की अवधि मे महाशय ने उसे देखा ही नही। अपने आपको उन्होने घर मे बद रक्खा था और किशोर को बन्द कर रक्खा था सरकार ने।

किशोर ने अचरज से कहा था—महाशय!

उन्होने भी अचरज से कहा था—किशोर!

—अभी उतर रहे है?

—लेकिन तुम्हे जेल से कब छुट्टी मिली? ओह, कितने बडे हो गये हो तुम!

उसने कहा—जी सो तो हो गया हूँ। अब मक्खन-मलाई नही खाता चुराकर।

वह समझता हूँ मैं।—हँसकर बोले थे—मौका कहाँ है? और रुचि ही कैसे रहे? अभी भगवान कसारि के साथ धनुर्यज्ञ के आमत्रण में जाने की तैयारी जो कर रहे हो!

ऐसे महत् परिचय की व्याख्या से किशोर थोडा शर्मिदा हुआ था। उस लज्जा के आवेश को थोडी ही देर मे दूर हटाकर सहज भाव से कहा था—इधर कुछ दिनो से आपको कितना जो याद कर रहा था मैं। आप आ गये—जान मे जान आई।

—आखिर क्यो भैया। तुम्हे मरण के ऐसे कौन-से भय ने अभिभूत किया था? मरने का भय तो तुम्हे नही होना चाहिए।

—हैजा फैल रहा है। अपनी मौत की तो कतई फिकर नही, औरों की मृत्यु, औरो का भय देखकर भय हो रहा है। आप तो जानते है, हैजे के रोगियो को देखने के लिए डाक्टर लोग जाना नही चाहते हैं—जाते है तो फीस दूनी चाहिए। चारु बाबू की फीस है छै रुपये—आठ रुपये। चक्रधारी की चार रुपये। मै थोडी-बहुत होम्योपैथी दवा दे देता हूँ, पर जानकारी तो वैसी नही है। आप आ गये, जान बची। जब मैं छोटा था और हैजा चला था, तब आपने ही गरीब-गुरबो को सहारा दिया था। आज भी आपके बिना कोई चारा नही।

तत्काल उत्तर नहीं दे सके थे महाशय। कुछ देर आसमान की ओर ताकते रह गये थे। बहुत पहले के, उन्नीस सौ पाँच ईस्वी के हैजे की बात याद आ गई थी। वही—वही अर्थी, बहरी, भूरे बालो वाली दोनो हाथ फैलाये बढती चली आ रही है, महाकाल के डमरु मे ताडव का बाजा बज रहा है, उसी की ताल पर उन्मत्त नृत्य मे अपने आपको भूलकर वह दौडी जा रही है और मौत के भय मे भयभीत लोग आग लगे वन के पशु-पक्षियो के समान आर्त्त चीत्कार करते हुए भागे जा रहे है! भाग रहे है और पीछे की लपलपाती लपटे झुककर फैलती हुई उन्हे लीलती जा रही हैं—आसमान मे उडकर भाग रही है चिडियाँ, आग की शिखा अपनी लपलप जीभ बढा-कर उन्हे खीचे ले रही है, चिडियो के डैने बेकार हो रहे है और वे बेबस होकर आग मे गिर रही है। वैसी ही बनी हुई है उस महामारी की स्मृति!

किशोर ने कहा था—महाशय!

—किशोर!

—आप चलिये, चलिये आप।

—मुझसे बनेगा? मुझमे क्या अब वह शक्ति, वह उत्साह रह गया है किशोर?

किशोर ने कहा था—यह आप कह रहे है? आप ठहरे महाशय-वश के महाशय।

किशोर के कहने पर उन्हे अपने पिता की याद हो आई थी। गुरु रगलाल की भी बात याद पडी थी। दूसरे ही क्षण उन्होने कहा था—

अच्छा, चलूँगा मैं। तुमने कहा है,---सिर-आँखों पर तुम्हारी बात।

उसी बार हैजे मे उन्होने इटरवेनस सेलाइन देखा था। कुछ ही दिनो के अन्दर कलकत्ते से मेडिकल वोलटियर्स आ पहुँचे थे। चाँद के टुकडो-से लडको की एक जमात। जिला-परिषद से लोग-बाग पहुँचे। सैनिटरी इन्सपेक्टर। और कुछ लोग आये, जाने क्या नाम था उनका? फावडा ब्रिगेड। कधे पर फावडा लिये पढे-लिखे नौजवान पहुँचे।

सूखे तालाब में कुआँ खोदकर उन्होने पानी निकाला। अच्छा! यह तो किसी को नही सूझा था! हर तालाब मे ब्लीचिंग पावडर छिडककर सेनिटरी इन्सपेक्टरो ने पानी को स्वच्छ किया। ऐंटी कॉलेरा वैक्सिन की सुई दी गई। हैजे का टीका लगाया गया।

सबसे ज्यादा अचरज हुआ था महाशय को---सैलाइन इजेक्शन से।

अविनाश बाउरी की बीवी---खासी सुन्दर और हट्ठी-कट्ठी औरत। उन्होंने देखा, बाबुओ के घर में वर्त्तन-बासन, झाड्-बुहारू, सारा काम-काज कर गई सुबह। दोपहर को खबर मिली, उसको हैजा हो गया। तीसरे पहर देखने गये। देखा, उस तन्दुरुस्त सुन्दर स्त्री के सर्वांग मे मानो किसी ने स्याही पोत दी है, हड्डियो का एक ढाँचा-भर रह गई है---जाने किसने उसके शरीर का सारा रस निचोड लिया है। देखकर सिहर उठे महाशय! अग-अग पर मौत की छाया थिरक रही है। नाडी नदारद, हाथ और पाँव के तलवे पीले पड गये है---घुटने और केहुने तक पाँव-हाथ बर्फ की तरह ठढे।

उन लोगों के साथ तब तक दो जवान डाक्टर आ जुटे थे। उनकी आँखो मे थे सपने, कलेजे मे विश्वास---ठीक किशोर की जात के थे वे। उन लोगो ने कहा---इसे सेलाइन देगे। सेलाइन का बक्स उन्होंने निकाला।

महाशय जानते थे कि यह मरीज बचने की नही। लेकिन उन्होने उन लोगो को बाधा नही दी। खडे रहे, गौर करते रहे। कुशल हाथो बडी सावधानी से वे काम करते गये। नस को काट दिया। उसके एक सिरे को बाँध रक्खा। दूसरे में सेलाइन की नली को डाल दिया। एक आदमी काच की नली की तरफ गौर करता रहा। बुलबुलो में से हवा न जाय। सावधानी से देखता रहा।

बुलबुलो मे से हवा गई नही कि मौत ! दूर से भौंचक्के लोगो की भीड खडी-खडी देख रही है। जीवन महाशय की नजरो मे कौतूहल—आनन्द। गजब है ! गजब ! उस औरत की देह पर से मौत की छाया खिसकने लगी—स्याही पुँछकर गोरा रग निखरने लगा। रस निचोडे हुए सूखे शरीर मे फिर से रस का सचार हो वह पुष्ट और कोमल हो उठने लगा। जीवन का लावण्य लौट आने लगा। गजब है ! सचमुच गजब है ! युगातर ! मौत लौट गई ?

मगर यह बहुत कठिन है। जाने की नही। महाशय हँसे। याद आ रही है !

इजेक्शन देना खत्म हुआ। वह औरत हँसती हुई खुद से घूघट काढकर करवट बदल कर सोगई। डाक्टरो ने अपने औजार समेट लिये। ब्लीचिग पावडर घोले हुए पानी मे वे हाथ धो रहे थे कि इतने मे,जैसे घडा फूट कर पानी छलक पडता है, वैसे ही लहमे मे बहुत-सा पानी वह निकला—मल होकर निकल पडा। और देखते-ही-देखने वह औरत फिर मौत की छाँह से ढँक गई, स्याह हो गई, ककाल की तरह सूख गई। अविनाश बाउरी की बीवी आखिर चल ही बसी। लेकिन उस रोज जीवन महाशय ने मृत्यु के साथ-साथ मनुष्यो को भी हाथ जोडे थे। मौत को जीता नही जा सकता, लेकिन अकाल मृत्यु को मनुष्य जरूर जीत लेगा। जरूर जीतेगा ! धन्य है आविष्कार ! उन्होने यूरोप के महापडितो को भी प्रणाम किया था।—'ठीक है, वेद के जानने वाले आज तुम्ही लोग हो।' यही कहा था उन्होने।

आज पेनिसिलिन की क्रिया और प्रद्योत के उत्साह को देखकर वे वही बात कर रहे हैं। तुम लोग धन्य हो।

उस दिन उनके जीवन के दूसरे पर्याय मे इलाज शुरू हुआ था। जहाँ तक याद है, उनका सकल्प था कि हैजे का प्रकोप रुकते ही वे फिर से घर बैठ जायेगे। लेकिन न हो सका। अजीब ढग से फिर जारी हो गया इलाज। डाक्टरो के साथ हैजा वाले मुहल्लो का चक्कर काटकर किशोर के यहाँ बैठते। हाथ-पाँव धोते। ब्लीचिग पावडर पर रगडकर जूते शुद्ध कर लेते। इतने मे दो-चार मरीज जमा हो जाते। बुखार, आमाशय,

पुरान अजीर्ण के रोगी ।

—जरा नाडी देखिये ।

पहले, पहले जीवन महाशय कहते—इन लोगो से दिखाओ ।

—नही, आप देखिये ।

वे दोनो डाक्टर आदमी बडे अच्छे थे । वे कहते—देखिये डाक्टर साहब, ये लोग आपको दिखाना चाहते है ।

देख लेते । कह देते—देखो, नौ या ग्यारह दिन मे तुम्हारा बुखार उतरेगा । दवा नही देते ।

फिर ईशानपुर के परानी कहार ने उन्हे एक दिन मैदान मे उतारा । दुनिया मे कैसी अजीबोगरीब घटनाये घटती है !

वह भी एक भयानक तूफानी अपराह्न था । ईशानपुर मे हैजा फैला । यह खबर पाकर वे किशोर और उन दो जवान डाक्टर स्वयसेवकों के साथ वहाँ गये थे । गाँव मे कदम रखते ही उठी आँधी । बिजली गिरी । पानी पडा । आखीर में ओले । गाँव के किनारे पहले ही घर मे उन लोगों ने पनाह ली थी ।

एक ही कमरा । सटा हुआ एक बरामदा । बरामदा यानी थोड़ी-सी छौनी की हुई जगह । बगल मे तीन-चारेक हाथ का एक टट्टियों का घर । बरामदे में भी जगह नही । उसे घेरकर जच्चाखाना बनाया गया था । अन्दर से किसी ने कमजोर कंठ से कहा था—कहाँ खडे होगे भैया ? बरामदे पर मेरी बीवी के बच्चा हुआ है । अन्दर मै पडा हूँ—बीमार ! तीन सूअर है—पाँच-छै बतखे । बल्कि किनारे कही खडे हो जाओ किसी तरह ।

वैसे ही खडे रहे थे वे । स्याह बादलो से ओले गिर रहे थे—अविराम ! अजीब था वह नज्जारा ! शून्य-मडल को परिव्याप्त कर अजस्र धारा मे झर रही थी शिलायें । ऐसी शिलावृष्टि बहुत दिनो से नही हुई । हरी धरती पर सफेद बिछौना बिछ रहा था । महाशय सोच रहे थ, खतो म जाने आज कितने लोग, कितने जीव-जन्तु घायल होगे । मरेगे । पृथ्वी फिर जी गई, शांत हुई, शीतल हुई ।

जन सेवक होते हुए भी किशोर कवि है । बचपन से ही पद्य लिखता है । उसने जवानी कविता लिख डाली थी—उसका एक बन्द आज भी

याद है—

"उस पगले के सनक सवार हुई है—

नाच नाचना शुरू कर दिया क्षण मे।"

इतने मे किवाड के फाँक से वडी ही कमजोर, थकी हुई, अचरज-भरी आवाज मे किसी ने सवाल किया था—महाशय जी, आप ?

दरवाजा खुल गया। किसी तरह बैठे-बैठे ही घिसटकर निकल आया था एक ककालसार आदमी। जवान है कि वूढा, कुछ समझ मे नही आया। वाल उसके काले थे, सिर्फ इसी से अनुमान किया जा सका था कि वह वूढा नही है, वीमारी से जर्जर हो गया है।

—कौन है ?

वह आदमी फूट-फूटकर रो पडा था—मुझमे हिलने की भी कूवत नही है वावूजी। आप मुझे पहचान नही रहे है ?

—कौन ? ठीक से चीन्ह तो नही पा रहा हूँ। क्या हुआ है ?

—मैं हूँ परानी कहार। हटकोडे का वेटा। आपका रैयत !

हटकोडे का वेटा परानी !

उन्ही के गाँव का है—रैयत है। ठीक ही है। जवाँमर्द है। कई साल पहले मुहब्बत मे पडकर माँ-वाप, सगे-सवधी सवको छोडकर एक दूसरी जाति की अपनी प्रियतमा के साथ इसने गाँव छोड दिया था।

उसी परानी की ऐसी शकल देखकर महाशय सिहर उठे थे।

तेरी ऐसी शकल हो गई परानी ? वीमारी क्या है ?

—मुँह से खून आता है सरकार। उलटी होती है।

खून आता है। टी-वी।—नये डाक्टर सिहर उठे।

—जो नवग्राम के अस्पताल के डाक्टर ने बताया—यह राजरोग है। तपेदिक। उसने तो जवाव दे दिया।—वह फिर फफककर रो उठा। महाशय की तरफ देखकर वोला—लेकिन अव मैं वच जाऊँगा। ईश्वर ने आपको मेरे घर वुला दिया है। मेरा नसीव ! आप मुझे बचा ले। वेचारी फूरी के कोई नही है।

फूरी उसकी प्रियतमा थी, जिसके लिए उसने सब कुछ को छोडा था। परानी भी उसे छोड जायगा, तो उसके कोई नही रहेगा—परानी

की यही धारणा थी। लेकिन फूरी फिर से शादी कर लेगी। वह भी उसी गाँव की लड़की है। महाशय उसकी भी बात जानते है। वह मन-चली है। उसके मोह मे बहुतेरे लोग पडे थे, लेकिन परानी की तरह अपने गले बांधकर कोई नही कूदा इस तरह। उनके होठो पर करुणा-भरी हँसी ही खेल गई थी। मगर पल में वह हँसी गायब हो गई।

जच्चा घर के दरवाजे पर आ खडी हुई थी फूरी।—महाशय जी! बाबा मेरे! मेरे और कोई भी नही है बाबा।

उसे देखकर महाशय अवाक् रह गये थे। यही है वह फूरी? उसमे स्वेच्छाचारिणी का कोई भी चिन्ह कही नही रह गया था। अभी-अभी उसके बच्चा हुआ था, इसलिए कुछ दुबली-सी थी, पीली-पीली, लेकिन रूप की कमी न थी। लावण्य था, तन्दुरुस्ती थी, पानी था। आँखों की दृष्टि और बनावट में एक माधुर्य था उसके, वह माधुर्य अभी भी था। एक ही चीज नही थी, वह थी उसकी चपलता, जिससे फूरी पहचानी ही नही जा सकती थी। ओठ के पास गाल में वह क्या है? तिल? यह तो महाशय ने कभी देखा ही नही था! फूरी को उन्होने रास्ते मे गुजरते जरूर देखा था—दूर से ही लेकिन, उनके जैसे आदमी के सामने फूरी जैसी औरत शायद ही आती थी! उन पर नजर पडती तो अदब से बगल होकर खड़ी हो जाती। इसका तिल, बनविहारी की स्त्री के ओठ के पास के तिल-जैसा ही है। हू-ब-हू।

ओः, बनविहारी की स्त्री के, उनकी बहू के धनी माँ-बाप है। इस औरत के सच ही कोई नही। माँ-बाप गुजर गये है। और इसके अन्दर जो एक स्वेच्छाचारिणी थी, जो एक प्रियतम को छोडकर दूसरे को गले लगा सकती थी, वह भी मर चुकी है। परानी मर जायगा, तो उसके और कोई न रहेगा, इसमें उन्हें सदेह नही रह गया।

वे बरामदे पर जाकर परानी की नाडी देखने लगे थे।

यहीं शुरू हुआ उनका नये सिरे से नब्ज पकड़ना। उन्होने परानी को बचा लिया था।

उसे तपेदिक नही हुआ था। पुराना मलेरिया और रक्त-पित्त

की साँठ-गाँठ से यह गत हुई थी। चारु बाबू और चक्रवारी ने खून की कै और बुखार के उपसर्ग से ही उसे भयकर गैलोपिग टी-बी समझ लिया था। इसमे शुबहा नही कि इन दिनो टी बी काफी फैल रही थी, लेकिन खून आना और बुखार का रहना देखकर ही डाक्टर टी बी समझ लेते थे। विशेषज्ञ मिलते नही थे और शहर जाकर दिखाना परानी की औकात के बाहर था। महाशय ने इसके इलाज का जिम्मा लिया था। आप ही देखने जाते थे। अपने हाथो दवा बनाकर देते थे। परानी चगा हो गया और वे धन्वन्तरि हो उठे। उनके जीवन मे नये सिरे से सौभाग्य के सुरज का उदय हुआ। कुछ महीने बाद जब वह कधे पर फावडा रखकर मजदूरी करने निकला तो लोगो के अचरज का ठिकाना न रहा।

उसके बाद ही एक दिन परानी के गाँव, रामपुर के सैयद साहब का खटोला आरोग्य-निकेतन के सामने आ लगा।

बूढ़े सैयद अबू ताहिर साहब पुराने जमाने के काश्मीरी काम किये हुए शाल की टोपी, सफेद पायजामा, शेरवानी पहने कहारो के कधो का सहारा लेकर कुर्सी पर आकर बैठे थे, जिस पर आज राणा बैठा था।—आपकी खिदमत मे हाजिर हुआ हूँ महाशय! आपने परानी कहार की वैसी सख्त बीमारी अच्छी कर दी। मेहरबानी करके अब मुझे राहत दिलाये। मैंने आपको बुलाया नही, खुद ही हाजिर हुआ। आया कि आपसे अर्ज करूँ। मुझे बीमारी से राहत दिलाये।

उन्होंने बाये हाथ से महाशय के हाथ को दबा लिया था। बात ही से महाशय ताड गये थे कि म्याँ को बीमारी कौन-सी है। उनकी बात जकडती-सी जा रही थी। लकवे की शिकायत शुरू हो रही थी। दाहनी आँख की पलक झुक पडी थी, दायाँ ओठ टेढा हो गया था, दायाँ हाथ उनकी गोद पर टिका पडा था। दाये पाँव की भी वही हालत।

फीका हँसकर महाशय ने कहा था—इस उमर मे इस रोग के मालिक परमात्मा है सैयद साहब! समझिये कि वह आँख, वह हाथ, वह अग उन्ही की खिदमत मे हैं। अपने पास इसका इलाज नही। वैसी किस्मत भी नही।

जरा चुप रहकर सैयद ने कहा—ठीक ही कहा है आपने! घर के आदमी जैसी बात कही है। मगर बात यो है, इस आखिरी वक्त मे खुद

ही वला मोल ली है, मुकदमे में पड गया हूँ। दाहना अग उनकी खिदमत मे लगाकर वेफिक्री से रह कहाँ पा रहा हूँ ! कोई तरकीव नही निकाल सकते ?

अचरज से महाशय वोले—आप पर किसने मुकदमा किया ?

रामपुर के मियाँ लोग उस हलके के मुसलमान-समाज के धर्म-गुरु हैं। उनकी जायदाद पर लगान नही लगती। कोई लगान नही, कोई झमेला नही। अपने लवे जीवन मे महाशय ने रामपुर के किसी सैयद को अदालत जाने की वात नही सुनी। वे खुद किसी को लगान नही देते, पाते वहुतो से हैं। लेकिन उनका खानदानी रवाज है, न तो लगान पर सूद लेते हैं, न कभी उसकी तमादी होती है। इस रवाज को उनके रैयत भी सदा से मानते आये हैं। ऐसे में मुकदमा किसने किया उनपर ?

सैयद साहव वोले—और कौन करेगा महाशय, किया है अपने वेटे-दामाद ने। अपने घर की ढेकी ही मगर वन गई ! इसीलिए तो आपके पास आया। दाहना अग ही न रहेगा तो मैं लड़ूँगा किस तरह, मुकावला कैसे करूँगा ?

मगर काम आपने अच्छा नही किया है सैयद साहव, आपके लिए यह वाजिव नही था।—महाशय ने अदव के साथ कहा।

पाँचेक साल पहले सैयद ने नई शादी की। तीन-तीन सयाने लडके, लडकी, दामाद, पोता-पोती, नाती-नतनी, दो वूढी वीवियाँ—सवके अछेते अचानक एक जवान लडकी से शादी कर ली। फिर वह लडकी भी उनके खानदान के योग्य कुल की न थी। वीवी-वेटो को जुदा करके, जायदाद का वँटवारा करके अपनी अलग गिरस्ती जोडी है। सतान भी हुई है एक। वेटो ने एक होकर मुकदमा कर दिया है। और इधर सैयद का एक अग वेकार हो गया है।

सैयद ने एक लवी साँस लेकर कहा था—आज ऐसा करना वेशक शिकायत की वात है, लेकिन उस जमाने के आदमी आप भी हैं, मैं भी। हमलोगो के समय के आदमो के लिए पचपन-साठ की उमर भी कोई उमर है ?

जरा देर चुप रहकर वे फिर वोले थे—यह वात कहूँ भी किससे ?

हमउम्र यार-दोस्तो के आलावा किसी से कही भी कैसे जा सकती है। जब निहायत कच्ची उमर थी अपनी--महज सोलह-सत्रह की--तब, उस कच्ची निगाह मे एक किसान की लडकी से मुहब्बत हो गई थी। उसके लिए मेरा दिल दीवाना हो गया था। तै कर लिया था, उसी से शादी करूँगा। वालिद तो सुलगकर आग हो गये। आपको तो मालूम है, हमारे खानदान मे बादी या रखैल रखने की मुमानियत है। वरना रखैल ही रख लेता उसे। मै जिद पकड बैठा। आखिर हार-पार कर वालिद ने उस लडकी की शादी करा दी और उसे रुखसत करा दिया। दो जिले के पार भेज दिया उसे। इतने दिनो के बाद उस दिन यक-ब-यक एक लडकी पर नजर पडी। हू-ब-हू वैसी ही शक्ल, गोया नई जवानी लेकर वही लौट आई है। बेशक लोग यह नही देखते। देखे भी किस तरह? मेरी आँखे तो वे देखते नही! सो भैया, उस लडकी से निकाह किये बिना नही रहा गया मुझसे!

महाशय जरा हँसे थे।

सैयद बोले--आप भी हँस रहे है महाशय? तो फिर बता दूँ आपको कि इस शादी से मै सुखी हुआ हूँ। जी हाँ। ऐसा लगा कि दुनिया मे जो मिलना चाहिए, मुझे वह मिल गया। जी। अफसोस सिर्फ इस बात का है कि उमर खत्म होती आ रही है, एक अग को फालिज मार गया है, दुनिया के हमलो से उस बेचारी को बचा नही पा रहा हूँ मै।

उनके चेहरे पर, आँखो मे जो एक चमक खेल गई, उसे देखकर महाशय दग रह गये। उस बूढे की दोनो आखे जल-सी उठी थी। लगा था कि उनका सारा अन्तर आँखो की उन दो खिडकियो पर आकर खडा हो गया है--कह रहा है, सच है या झूठ, सो देखो!

सैयद बोले--मेरा अर्ज है महाशय आप मेरा इलाज करे, उसके बाद मेरा नसीब! समझ गये?

काँपते हुए दाहने हाथ को उठाने मे जब वे नाकामयाब रहे, तो बाये ही हाथ की अँगुली को कपाल से लगाकर कहा था--इसको टालने की ताकत किसी मे नही है। होना है सो होगा। इसके लिए आप नाहक सोच रहे है। जो तपेदिक के मरते हुए रोगी को जिला सकते है, उनसे

अगर यह एक मामूली-सी बीमारी ठीक करते न बनेगा तो उसका दोष लोग आपको नही, मेरी तकदीर की लिखावट को देंगे ।

सुनकर भी महाशय इस बात को समझ नही सके ।

वे सुदूर अतीत में खो गये थे । अंतरतम की किसी छिपी हुई आग की आँच महसूस की थी उन्होने । हलके धुएँ की गन्ध-सी लग रही थी, आँखों में जलन हो रही थी जैसे । सचमुच ही उनकी आँखों में पानी भर आ आया था । मजरी याद आ गई थी ।

वह मियाँ की निगाहो से न बच पाई । उन्होंने कहा—इसीलिए तो आपके खानदान को लोग महाशय-खानदान कहते है—इसीलिए लोग आपको इतना चाहते हैं । बीमारी की दुख-तकलीफ मे जिस हकीम की आँखें गीली हो आती हैं, हकीकत में वही धन्वतरि है ।

उसी दम महाशय की चेतना लौट आई । आँख पोंछकर उन्होंने मन-ही-मन इष्ट-देवता का स्मरण किया था । उन्ही को याद करके उन्होने सैयद साहब के इलाज का भार भी उठा लिया था । बोले थे—खैर, वही सही । इलाज मैं करूँगा । फिर आपका भाग्य और भगवान की दया । इमकान भर करूगा । खैर । हाथ लाइये तो ।

उन्होंने खुद ही उनका हाथ उठा लिया था ।

और इस तरह इलाज का सिलसिला शुरू हो गया ।

लोगो ने कहना शुरू कर दिया था—पाँच साल मौन रहकर महाशय वाक्‌सिद्ध हो गये हैं । जिसकी नाडी पकड कर वे कह देते हैं कि बच जाओगे, मौत उसके सिरहाने भी खडी रहती है, तो लौट जाती है । और जिसे वह कह देते हैं, बचोगे नही, उसके लिए मौत घर से चलकर आती है और सिर-हाने खडी हो जाती है ।

बूढ़े की नब्ज पकडते ही चौंक थे वे । मौत का साफ-साफ लक्षण अनुभव कर रहे थे । ध्यानमग्न होकर उन्होने महसूस किया और लंबी उसाँस लेकर बोले—आप कह रहे थे कि मुकदमे में उलझ गये हैं । उसका आप निपटारा कर लीजिये सैयद साहब । मामला लडने का समय आपको नही मिलेगा । एक सौ अस्सी दिन । छै महीने ।

—छैः महीने ? मुकदमे का निपटारा कर लूँ ?

—मुझे यही लग रहा है।

पाँच महीनें के आखिरी दिन सैयद ने शरीर छोडा था। महाशय को खुद ही इस पर ताज्जुब हुआ था। इतना साफ,हिसाब-जैसा इतना ठीक अनुमान पहले कभी नहीं होता था। जिस भूरे वालो वालों को, घर बैठे ध्यान-चितन द्वारा आभास तक मे नही पा सके थे, उसका उन्होंने चिकित्सा-शास्त्र की साधना से विचित्र ढग से अनुभव किया। नाडी की धडकन मे, रोगी के शरीर की गन्ध में, उसके उपसर्ग मे, रग मे यहाँ तक कि अगुली के छोर के लक्षण से उस भूरे वालो वाली के अस्तित्व का वे अनुभव कर रहे हैं। वीच-वीच मे इससे भी अजीव अनुभूति उन्हें होती है और हुई है। आज ही अतसी के लडके के पास वैठकर उन्होंने ऐसा अनुभव किया है कि उसका अशरीरी अस्तित्व दरवाजे के पास से पा-पा चलकर वढता आया है। उसका पीछे हट जाना भी उन्होंने साफ महसूस किया। चूँकि वह निष्पाप शिशु था, इसीलिए वह दवा को मानकर लौट गई। जो हो, प्रद्योत वहादुर है। वीर के समान सामना किया उसने। वैसे ही शक्ति-शाली हैं हथियार उसके। अद्भुत।

उन्हें यह अफसोस रह गया कि डाक्टरी नही पढ सके। अगर पढी होती तो इस उमर मे भी इस हथियार से वे रोगो से सघर्ष करते। एक, सिर्फ एक दई मारी के चलते उनकी वह मुराद पूरी न हुई।

दीर्घ निश्वास छोडकर वे आप ही आप वोले—छोडो इन वातो को।

तीस

नीद आने मे रात का तीसरा पहर निकल गया। रात के डेढ वजे सुई देकर डाक्टर प्रद्योत अपने घर गये थे। उसके वाद वच्चे की नाडी देखकर तव लौटे थे महाशय। विछावन पर पडे-पडे वहुतेरी वाते याद आती रहीं, नीद आने मे तीन से ज्यादा वज गये। फिर भी नीद सवेरे ही टूट गई। वच्चे के लिए उद्विग्नता नही रह गई थी। स्थिति को वह

रात ही समझ गये थे। संकेत की घडी आते-आते भी नही आ सकी, दवा ने उसे मोड दिया। फिर भी नीद टूट गई। बुखार कितना है, सूजन कितनी रही, किस ढग से कम गई—देखना चाहिए। रात को ठीक से देख नही सके। प्रद्योत को बधाई देनी होगी, खुले दिल से बधाई। वह घडी के काँटे-सा समय पर पहुँच जायगा, सुई देगा।

अतर बहू उनसे पहले ही जग चुकी थी। नीचे एक किश्त बकझक कर चुकी। सुबह काली थान मे जल चढ़ाने गई तो मोती लुहार की माँ से मुलाकात हो गई। कालीथान के पास ही उसका घर पडता है। मोती की माँ अपनी खिडकी खोलकर मदिर की तरफ देखती हुई कातर स्वर मे पीडा दूर होने के लिए प्रार्थना कर रही थी। उसके प्लास्टर किये हुए पाँव का दर्द कल किसी वजह से बढ गया है। वर्दवान से यहाँ आते हुए रास्ते में कोई बदपरहेजी हो गई होगी। उस पर नजर पडते ही अतर बहू ने रात के रूँधे हुए गुस्से को उसी पर उतार दिया।

मनुष्य को जीने की ऐसी ललक ? मरने का इतना दु ख, इतना डर ? झिडकियो मे उन्होने मोती की माँ के सामने ये सारे चिरतन प्रश्न खडे किये। घर आई तो पति को ऊपर से उतरते देख ठिठक गई। पूछा—इतना सवेरे जग गये ? दो बजे के बाद तो रात सोये हो !

—उचट गई नीद। जरा उस बच्चे का हाल पूछूँ। कैसा है।

—वहाँ भी कुछ घोषणा कर दी है क्या ?

गभीर स्वर से महाशय बोल उठे—नारायण—नारायण !

—रहने भी दो अपना नारायण-नारायण ! अपने बेटे को मरते समय जो दवा की जगह दूध और गगाजल देता है, उसका कुछ एतबार नही ! लेकिन वह समय और था। आज का दिन होता और इस डाक्टर की तरह डाक्टर होता तो अपना बन्नू हर्गिज नही मरता। मोती की माँ को देख आई। कोठे की खिडकी खोलकर काली माता को प्रणाम कर रही थी।

महाशय क्षुब्ध नही हुए। हँसे जरा। अतर बहू से क्या कहे वे ? ये जीवन की कभी ठीक न होने वाली बीमारी की तरह असाध्य लेकिन अक्षम है। मौत की शाति नही दे सकती, केवल दर्द और तकलीफ देती

रहेगी जीवन भर।

पति के होठों पर हँसी देखकर अंतर वह भी हँसी। हँसकर कहा—रतन बाबू के बेटे को देखकर क्या कह आये हो ? छि-छि-छि। ऐसा मत कहा करो, कहना नही चाहिए ऐसा। उमर हो गई है। अब भूल हुआ करेगी। यह तो समझना चाहिए। कल उस समय काफी रात जा चुकी थी। तुम उस समय अहींद्र सरकार के घर थे। रतन बाबू का आदमी चार रुपये और एक चिट्ठी दे गया है। मैं उतावली हुई—कहीं अभी ही बुलाहट न हो। विनय बैठा ही था, उसे बुलाकर मैंने पढवाई चिट्ठी। उसने बताया—महाशय को जाने के लिए मना किया है। सभी डाक्टरों ने बताया है कि विपिन अच्छे हैं। एक महाशय ने ही कहा है, जबान से कहा नही, इशारे से बताया है, हाल अच्छा नही है। विपिन बाबू नही चाहते। यह लो चिट्ठी। रात मैंने दी नही। आखिर आदमी का मन ठहरा।

उन्होंने पत्र और चार रुपये रख दिये। महाशय ने रुपयों को नही छुआ। चिट्ठी ही उठाई। हाँ, रतन बाबू ने यही लिखा है। माफी भी माँगी है। लिखा है—मैं जानता हूँ कि तुमने जो इशारा किया है, वह ध्रुव सत्य है और उस सत्य को सहने के लिए अपने आप को मैं तैयार भी कर रहा हूँ। लेकिन विपिन बाबू को यह सह्य नही। प्रद्योत बाबू वगैरह दूसरे डाक्टरों की राय दूसरी है। उनका खयाल है—विपिन अच्छा है। उन्होंने कलकत्ते से बडे डाक्टर चटर्जी बाबू को बुलाने की सलाह दी है। विपिन भी यही चाहता है। लिहाजा—

खैर। छुट्टी मिली। उन्होंने दीर्घ निश्वास फेंका। लेकिन छुट्टी भी कहाँ ? विपिन तो—। उसने उन्हें जाने को मना किया है, ठीक है, नही जाऊँगा। लेकिन वह भूरे बालोंवाली तो नही लौटती। विपिन के लिए दुःख से उनका जी कैसा तो उदास हो उठा।

—महाशय जी ? जग गये ? महाशय जी ?

भारी आवाज, खींचकर बोलने का ढंग, राणा पाठक होगा। आज बुलाया था उसे।

—महाशय जी ?

लगता है, वह उतावला हो पडा है ।

—कल रात कुछ ज्यादा खून आ गया है ।

—ऐसी हालत मे तुम्हारा पैदल आना अच्छा नही हुआ ।

—क्या करता मैं, आपने आज बुलाया जो था ।

जरा देर चुप रहकर महाशय बोले—लेकिन मैं इस रोग मे कर भी क्या सकता हूँ भैया !

—अगर परमायु होगी मेरी तो बचा लेंगे, न होगी तो समय पर बता देंगे, देवी का नाम लेकर तैयार हो जाऊँगा । जितनी बन सके, तकलीफ कम कर देंगे आप, और क्या करेंगे ?

महाशय कुछ देर और चुप हो रहे । आसमान की ओर देखते हुए सोचने लगे—क्या करूँ ?

—महाशय !

—राणा !

—मेरी नाडी देखें । सोच क्या रहे हैं आप ?

—सोच रहा हूँ, प्रद्योत डाक्टर को दिखाकर—

बाधा देकर वह बोला—जी नही । उस आदमी का नाम भी न लें मेरे पास । उसका भी नही, चारु बाबू का भी नही । उन दोनो के पास मैं गया था । मैंने आपसे वह सब कहा नही है । सिर्फ इतना ही कहा था कि उन्होंने एक लबी सूची बना दी है । लेकिन बात और भी है । मैंने कहा था, आप एक्स-रे की कह रहे हैं, लें लीजिये एक्स-रे । ब्राह्मण के नाते, गरीब कह कर . । अस्पताल के डाक्टर ने कहा, ब्राह्मण-ब्राह्मण मैं नही मानता । और गरीब के नाते ही तुम पर क्यो दया करूँ ? तुम बदचलन हो । एक औरत से तुमने यह बीमारी मोल ली है । चारु बाबू ने कहा, तुम्हारे यहाँ तो कालीजी हैं, काफी आमदनी होती है । फिर बोले, काली के आगे ही धरना दो, वह नही अच्छा कर देंगी ? —मैं उनके पास नही जा सकता ।

महाशय के चेहरे पर उदास हँसी थिरक गई । राणा के हृदय के क्षोभ को वे समझ गये । राणा की जात ही और है । ऐसी बात वही कह सकता है ।

राणा कहता गया—आपको बताऊँ मैं, मेरे जैसे राक्षस के बदन में यह बीमारी एक औरत के जरिये आई। कलकत्ते की थी एक अभागिन औरत। दंगे के समय गुंडे उसे लूट ले गये थे। फिर यहाँ-वहाँ ले जाकर उसकी लाञ्छना की हद नहीं रहने दी थी। कहाँ बिहार, वहाँ तक ले गये उसे। वहाँ से फिर कलकत्ता—कलकत्ते में हमारे गाँव के पास के एक गुंडे रहमत खाँ को वह मिली। रहमत उसे बुरके में यहाँ ले आया। नदी में उसे उसने नाव पर बिठाया। मैंने लग्गी थाम रक्खी थी। गले में जनेऊ। यह हट्ठा-कट्ठा शरीर। तिस पर लग्गी में झटका देकर मैंने आवाज लगाई—जै काली मैया की! हरि-हरि बोलो। नाव में लगभग सभी हिंदू बैठे थे। सबने उसे दुहराया। बेचारी औरत को इससे हिम्मत पड़ी। उसने बुरका उतार फेंका और चिल्ला उठी—मुझे बचाओ। मैं हिंदू हूँ। ये मुझे पकड़े लिये जा रहे हैं। रहमत छुरा निकाल रहा था। लेकिन मेरे हाथ की लग्गी तब तक उठ चुकी थी। ललकारा। राणा पाठक को रहमत खूब पहचानता था। बेटा कूद पड़ा नदी में। उसका साथी भी कूद पड़ा। औरत को मैं अपने घर ले गया। मुसलमान लोग मेरे पास आये। बोले, उस औरत को लौटा दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा। मैंने कहा, राणा बुरे से नहीं डरता। यह तुम सब जानते हो। अगर कूवत हो तो ले जाओ। वही औरत घर लौटने को राजी न हुई। उसके बाद आग और घी का संयोग। खाक भी खबर न थी कि उसे यह रोग है। वह भी वास्तव में नहीं जानती थी। धीरे-धीरे पता चला। लेकिन तब उसे छोड़ना मेरे बूते के बाहर था। लोग बदचलन कहते हैं, तो कहें। मैंने एक तरह से शादी कर ली है उससे। शादी कर ली है। उसे मैंने प्यार किया है। प्रेम करते हुए मुझे रोग हुआ, उसका रोग मैंने लिया, इसके लिए मुझे शरम नहीं। जो जी चाहे, कहें। मरकर भी मुझे सुख ही होगा। चारु बाबू काली की कहते हैं। नहीं जानता, उनके पास यह रोग अच्छा होना है या नहीं। देवी की कृपा हो, तो अच्छा हो जाय। लेकिन मुझसे यह नहीं कहा जा सकता कि माँ, मेरी बीमारी अच्छी कर दो। काली से मैं यह माँगता हूँ कि काल से न डरूँ मैं। उसीका नाम है मोक्ष। काली से उसकी गोद की भीख माँगता हूँ। मैं जानता

हूँ, आप न तो मुझसे नफरत करेंगे, न काली की बात पर मेरी खिल्ली ही उडायेंगे, इसीलिए आपसे ज्यादा आशा करता हूँ।

महाशय ऐसा नही करेंगे। कर नही सकते। उनके पिताजी कहा करते थे—रोगी को बीमारी के लिए कटु बात मत कहना। श्लेष मत करना। पाप-पुण्य की इस दुनिया में लोग पुण्य ही करना चाहते है, मगर उनसे बनता नही। शासन करना, धमकी देना, जरूरत पडे तो डराना भी। लेकिन उसके जी को चोट पहुँचाने वाली बात मत कहना और वह अगर शरण आ जाये तो लौटा मत देना।

गुरु रगलाल कहा करते थे—जीवन, आदमी बडा बेबस है। कभी गुस्सा मत होना, नफरत भी मत करना।

बहुत बार गुरु रगलाल ने रोगियो के गाल पर चपत तक जड दी है। भूपी बोस को उन्होने मारा था। एक शौकीन तान्त्रिक लीवर की बीमारी लेकर उनके पास पहुँचा था। उन्होने शराब पीने को मना किया था। वे साफ कहा करते थे, कहा था, शराब पिओगे तो नही जिओगे। शराब छोडनी ही पडेगी। रोगी ने कहा था—लेकिन मेरा साधन-भजन? रगलाल ने कहा था—बिना शराब के। काँसे के बर्त्तन मे नारियल का पानी देकर करना। बकरे की बलि न देकर उडद बिखेरकर भी तो होता है। उस आदमी ने जीभ काटकर कहा था—बाप रे! तब तो देवी-दर्शन हो नही देने की। वह माँ का आदेश है। उन्होने दर्शन देकर मुझसे कहा है डाक्टर बाबू। झट रगलाल डाक्टर ने उनका झोटा पकडा और कहा—क्या कहा? माँ ने दर्शन देकर कहा है? झूठा कही का? माँ शराब पीती है? शराब पीने को कहती है? वह शराब, जिससे लीवर सडता है?

जीवन महाशय समझते थे कि यह रोगी बचने का नही। जबर्दस्त रिपु के प्रभाव से वह बेबस है। और वह बचा भी नही।

आदमी बेबस है। बडा ही बेबस। प्रवृत्ति की ताडना से वह मर्मातक कलक-कहानी रचता चलता है। आज कहानी रचता है—कल पछताता है, स्वय अपने को शाप देता है। मन में सोचता है, आकाश का सूर्य बुझ जाय, उसकी जरूरत नही—रोशनी नही चाहिए। सब कुछ अँधेरे से

ढँका रहे। बहुत-बहुत देखा है उन्होने। कमाऊ बेटे की मृत्युशय्या पर बहू को वचित करके पिता को वसीयतनामा कराते देखा है। इससे भी घोर पाप करते देखा है। भाई-भानजा की तो बात ही नही लेते। बेटे को भी क्षमा करते है। स्त्री मर रही है और उधर स्वामी व्यभिचार मे मशगूल—ऐसा इतिहास बहुत है। स्वामी की मृत्युशय्या पर स्त्री भी व्यभिचार करती है—भ्रष्टा स्त्री। जो भ्रष्टा नही है, ऐसी बहुतेरी स्त्रियो को ऐसी परिस्थिति मे चुराकर मछली खाते देखा है। केवल माँ का पुण्य अक्षय है।

आदमी बडा बेबस है।

महाशय ने एक दीर्घ निश्वास छोडा। राणा ने पुकारा—महाशय जी !

—जरा सुस्ता लो भैया। बात न करो। बडी दूर से चलकर भी आये हो। जरा देर मे देखता हूँ। बैठो। मै पास के घर से बच्चे को देख आऊँ।

अतसी का बच्चा आज अच्छा है। बुखार कम है—सूजन भी कम हो गई है, सूजन पर जो लाली थी, उसका भी गाढापन घट गया है। उसकी परिधि जरूर कम नही हुई है, पर बढी भी नही है। रुक गई है। कल सुबह बुखार एक सौ दो के करीब था, आज एक सौ एक से कम है। उसकी जागरुकता पर शिथिलता का जो एक पर्दा-सा पड रहा था, वह हट गया है। दो-चार शब्द कहने लगा है। ठीक सात बजे डाक्टर प्रद्योत की साइकिल की घटी बज उठी। सबेरे पाँच की गाडी से शहर से डा० अरुण ने खून-जाँच की रिपोर्ट भेजी है। बडी कठिन बीमारी। जान-लेवा हमला था। उसने रिपोर्ट मे लिखा है—'विथ् ए टेडेसी टु इरिसिप्लस।' उसका इलाज ठीक हुआ है। इस रिपोर्ट के लिए कल दिन-रात वह कैसा उद्विग्न रहा। दुनिया मे केवल अमृत ही दवा नही होता, जहर भी दवा है। कल रात-दिन ऐसी ही कई दवाये उसने दी। बूढे महाशय ने ही कहा था, पर उस पर उसकी दिलजमई नही हुई। वैज्ञानिक जाँच मे भी कितनी बार भ्रम हो जाता है। बहुत बार तो दो-तीन बार एक रोग ही की पहचान नही हो सकती। कल तीसरे पहर जब उसे मम्स का सदेह हुआ और बूढे महाशय ने कहा—"मम्स नही है, कठिन विष की जर्जरता से लहू दूषित हो गया है,

रोग आँधी की तरह बढ रहा है—बढेगा", तो प्रद्योत को कुछ क्रोध हो आया था। बूढे कही 'मृत्यु-रोग' कह देते तो मारे क्रोध के प्रद्योत आपे से बाहर हो जाता। मृत्यु-रोग की निर्णय-शक्ति के सुपीरियरिटी कम्प्लेक्स ने बूढे का दिमाग खराब कर दिया है।

दॉतू घोषाल अच्छा है। विपिन बाबू अच्छे है। मोती की माँ बर्दवान से कल लौट आई है। कल रात बुढिया के पाँव का दर्द कुछ बढ गया है। अभी जब वे यहाँ आ रहे थे, राह मे सूखा चेहरा लिये मोती खडा था। कहा— डाक्टर साहब, रात माँ के पैर का दर्द बढ गया! तो—?

प्रद्योत को समझने मे देर न लगी कि मोती जो कहना चाहता है, लेकिन उसके मुँह से फुट नही रहा है, वह क्या है? एक बार उसके जी मे आया कि कह दे, तो महाशय ने जो बताया था, वही करो। मृदग-मजीरा बजाते हुए उसे गगा के किनारे ले जाओ। लेकिन अपने को जब्त कर गया। कहा, लौटने के समय देखूँगा। कुछ नही है, आते समय ट्रेन मे पाँव हिल-डुल गया है—उसी से दर्द बढ गया है।

महाशय ने ही प्रद्योत का स्वागत किया—आइये। आपका रोगी मजे मे बोल रहा है। अच्छा है।

माथे मे हाथ लगाकर प्रति नमस्कार करके वे रोगी के बिछावन पर बैठ गये।

महाशय ने कहा—मैने देखा है—

बीच मे ही प्रद्योत ने कहा—मै देखूँ!

—आफत निकल गई है।

—नही—प्रद्योत ने पूछा—रात पेशाब कैसा हुआ बताइये तो।

महाशय समझ नही सके, दवा की प्रतिक्रिया है, पेशाब बन्द हो सकता है, पेट फूल सकता है।

पेशाब बहुत कम ही हुआ है। रात के बारह बजे से सवेरे तक मे एक बार। पेट थोडा फूला हुआ है। कई बार पतले दस्त भी लगे। पेट मे विकार हुआ है। प्रद्योत ने ध्यान से देखा, फिर इजेक्शन का सिरिंज निकाला।

इंजेक्शन देकर प्रद्योत उठे।--कहाँ है? महाशय कहाँ है?

नही है। चले गये।--ग्रहींद्र ने बताया--ग्रारोग्य-निकेतन से कोई बुलाने ग्राया था।

प्रद्योत ने खड़े होकर जरा सोचा। उसने कोई रुखी वात तो नही कह दी? नहीं।

ग्रहींद्र ने कहा, मुझे बुलाकर उन्होंने कहा--खतरा टल गया है। ग्रापकी बडी तारीफ कर गये। कहा, बडा सामना किया। साहब खूब है। खूब धीर है।

प्रद्योत ने कहा--पेशाब पर जरा ध्यान रक्खेंगे। कुछ देर मे ही होगा। लेकिन ख़याल जरूर रक्खे। पेट कुछ फूला हुग्रा है--उस पर भी खयाल रक्खेंगे। ग्रगर लगे कि बढ रहा है तो मुझे तुरत खबर देंगे। एक बात ग्रौर। महाशय बार-बार नाडी देख रहे है, यह ठीक नही। इससे ग्राप लोगो को भी घबराहट हो सकती है, मेरा भी मन खराब हो सकता है।--वह निकल पडे।

साढे ग्राठ बजने लगे। ग्रस्पताल मे काम कितना है! हरिहर कपाउडर यही का है। उमर हो ग्राई है। बडा ग्रालसी-सा है। हो रहा है, होगा--यही स्वभाव है। दस-पाँच मिनट मे क्या ग्राता-जाता है? नर्सो को भी सहूलियत होती है।

मजु को निगरानी के लिए कह ग्राये है। वह नजर रक्खेगी। नियम से वह यह सब देखा करती है। इस खयाल से वह भाग्यवान है। मजु ने उसके कामो का बोझ उसके सिर पर उठा लिया है। रोज सवेरे ग्रपने ग्राप रोगियो की खोज-खबर लिया करती है, मीठी बातो से उन्हे दिलासा दिया करती है। ग्रस्पताल की सफाई पर खास ख़याल रखती है। ग्रौरत मरीजो के लिए वह मजु की वजह से निश्चिन्त है। सबकी दीदी! साठ साल की रोगिणी भी दीदी ही कहती है।

ग्रौर इस कमबख्त दाँतू घोषाल की तो बन ग्राई है। ग्रस्पताल के भात के साथ मजु की भेजी हुई सब्जी न हो तो लगता चीखने। दुनिया भर के भूतो का किस्सा सुनाकर उससे पटरी बैठा ली है। बडा बेहूदा है। ग्रस्पताल मे भी वह कैसे जो गाँजा पी लेता है, कहाँ पाता है, प्रद्योत को

समझ नही आता। उसे वह निकाल बाहर करता। लेकिन महाशय ने चूँकि निदान बता दिया है, इसीलिए रक्खे हुए हैं। उसे देखना है।

आरोग्य-निकेतन के पास से जाते हुए नजर आया—महाशय किसी का हाथ देख रहे है। गर्दन जरा झुक गई है। शायद आँखें बन्द कर रक्खी हैं। प्रद्योत हँसे। उसे पता चला है, विनय ने महाशय को अपनी दूकान पर बैठने के लिए कहा है। तब तक के लिए, जब तक कि कोई दूसरा डिग्रीवाला डाक्टर नही आ जाता।

महाशय राणा का हाथ देख रहे थे। भुजंग गति। साँप की आँकी-बाँकी चाल। गेंहुअन है—देह-विवर मे उसने अड्डा जमाया है। उसके जहरीले निश्वास से सारा शरीर हर घडी ज्वर से जर्जर है। शरीर की गंध से भी यह बात समझ मे आ रही है। जो विष का वैद साँप के बदन की गन्ध पहचानता है, उसे बिल के बाहर बैठे-बैठे ही उसकी महक मिलती है। वह महक उन्हें भी मिल रही है। धीरे-धीरे उन्होंने आँखें खोली। राणा के चेहरे की तरफ देखा। आँखो के चारो तरफ स्याह छाया पड गई है, थकावट से दोनो आँखें अँधेरे पाख के चाँद-सा उदास, उसके चारो ओर राहु के ग्रास की तैयारी-सा गाढा कृष्णा मडल।

राणा के हाथ को छोडकर फीका हँसकर उन्होने कहा—बीमारी तो वही है भैया।

राणा ने हँसकर ही कहा—वह तो मुझे मालूम ही है। शुरू से ही तो कह रहा हूँ। लेकिन आज कैसा समझ रहे है? बच सकूँगा? चगा हो जायगा? नही।—फिर जरा हँसकर बोला, तो यह बताइये कि मरना ही है, तो कब तक? आप निःसकोच कहें। राणा को मरने का डर नही।

महाशय चुप बने रहे। सोच रहे थे स्ट्रेप्टोमाइसिन की बात, जो अभी, अभी निकली है। वह अव्यर्थ दवा है।

राणा ने फिर कहा—बेपरवाह कहिये आप। आप क्यो हिचक रहे हैं?

महाशय बाहर की तरफ ताकते हुए सोच रहे थे। अचानक एक लंबा निश्वास छोड़ते हुए बोले—आज भी कुछ नही बताऊँगा, भैया। कल आना। तीसरे पहर। यहाँ नही, सीधे विनय की दूकान पर। मैं वही

मिलूंगा। लेकिन आज की तरह पैदल मत आना। बैलगाडी पर आना। चलना, मेहनत, मसक्कत, यह सब अभी बन्द रक्खो। और उस औरत का साथ बिलकुल छोड देना पडेगा। समझ गये ?

राणा खुश हो गया। बोला—जी। आप जो भी कहेंगे, मैं करूँगा। कल गाडी से विनय की दूकान पर ही आऊँगा। मेरी एक बात आपको रखनी पडेगी।

कैसी बात, कहो ?—महाशय हँसे।

—उस औरत की बीमारी मुझसे भी सख्त है। नही बचेगी। लेकिन बीमारी तो आखिर एक ही है। उसे भी मेरे साथ ही देखे। आप यकीन करे, मैं उसे छूऊँगा भी नही। लेकिन जब उसे पनाह दी है· उसका । उस उन गुडो मे छीन कर लाया हूँ। कुछ जिम्मेदारी तो है। आज उसे भगा दूं तो मुझे पाप नही लगेगा ? वह अभागिन जाने कहाँ, किसके घर जायगी, जहर फैलायेगी !

—उसे भी ले आना। देखूंगा।

राणा चला गया।

महाशय ने विनय से कहा—राणा को मैं इसीलिए इतना प्यार करता हूँ।—विनय ने हँसकर कहा—प्यार मुझे भी करते है आप। दूकान पर बैठने के लिए राजी होकर आपने मेरी क्या पत रख ली है, क्या बताऊँ मैं।

इंदिर आया। हाथ मे उनके एक चिट्ठा दिया। बोला—एक बारगी महीने भर का सामान ले आया !—

महाशय हँसे। बोले—ठीक है। बहू को दो, रख देगी। जी चाहे, फेंक देगी। अगर कमीशन से भर गया तो ठीक ही है, नही तो विनय को ताड का पेड दे देने से काम चल जायगा—विनय की दूकान पर शाम को बैठना उन्होंने मजूर कर लिया है। अहींद्र के यहाँ से लौटे और राणा के पास विनय को बैठे देखकर ही कहा—आ गया तू ? अच्छा, पक्का रहा। बैठूंगा तेरी दूकान पर।—इंदिर के जाते ही महाशय ने सिताब से कहा—कहा था न, ससार-चक्र ! देखो, विनय ने महीने भर का सामान भेज दिया है।

सिताब कमरे के कोने मे बैठे थे। शतरज बिछा कर दोनो तरफ

के मोहरे सजाकर अकेले खेल रहे थे।

अब उन्होंने गर्दन उठाई। पूछा—ताड का गाछ बेचने पर राजी हो गई धरनी?

पोखरे पर जीवन महाशय के पच्चीस पेड हैं ताड के। लबे, सीधे, पडे, पुराने पेड। इलाके मे इन पेडो का वडा नाम है। सभी मानते हैं। ऐसे पुराने और सीधे पेड आज कल मुश्किल से मिलते हैं। ये पेड अतर बहू की पूँजी हैं। उनका पजरा भी कहे तो अत्युक्ति नही।

लडाई के पहले ही इनमे से एक-एक की कीमत तीस रुपये थी। अब तो अस्सी-नव्बे रुपये तक लोग हँसकर देना चाहते हैं। मगर अतर बहू देती नही। बददिमाग लक्ष्मी के दुश्मन भाग्यहीन पति पर उनकी आस्था नही। पच्चीस मे से दस अपनी और दस पति की परलोक-क्रिया के लिए रख छोडा है उन्होंने। और पाँच को आपद-विपद के लिए रक्खा है।

जीवन महाशय ने हँसकर कहा—बीस तो भव-सागर पार करने की नाव है और पाँच हैं खाई-खदक पार करने के सहारे। विनय ने कह-सुनकर एक के लिए राजी कर लिया है। कहा है, रुपये डाक-घर में जमा कर दूँगा।

इकत्तीस

'यह लाज रखने की मेरे पास जगह नही। मरने से पहले ही मारे शरम के मर गया मै। मैंने आपको तकलीफ पहुँचाई। एक दुश्मन बेटे का काम किया मैंने।'

ये विपिन बाबू के अन्तिम शब्द थे। अपने पिता से कह गये वह। इधर एक प्रचलित-सी धारणा है। वह यह कि पिछले जन्म का शत्रु पुत्र होकर जन्म लेता है, पलकर बड़ा होता है, माँ-बाप के हृदय में असीम आशायें जगाता है और बाद मे एक दिन मर जाता है; उनको ठेस लगाकर पूर्वजन्म का शत्रु इस तरह बाप से बदला चुका जाता है। मौत के पहले

काफी पढे-लिखे विपिन को भी इनके सिवा कहने को दूसरे शब्द नही जुटे।

कोई बीस दिन वाद की वात।

महाशय विनय की दूकान पर वैठे थे। किशोर कह रहा था। कल रात साढे ग्यारह वजे विपिन चल वसा। दस दिन पहले डाक्टरो ने कहा था—विपिन अच्छे हैं। कम-से-कम इस वार तो खतरा निकल गया। अगर हालत विगडी नही तो धीरे-धीरे अच्छे हो जायँगे। आठ दिन पहले कलकत्ते से डाक्टर चटर्जी आये थे। उन्होने डाक्टरो की राय पर हामी ज़रूर भरी थी, लेकिन उत्साह के साथ नही।

रतन वाबू ने उनके आगे महाशय की चर्चा छेडने की कोशिश की थी। कहा था—हमारे यहाँ एक नाडी-विशेषज्ञ हैं। तीन पीढियो से नाडी देखने का यश है। उनका निदान—।

वीच में टोककर प्रद्योत ने कहा था—उनकी वात का यकीन किया जाय तो—

भौहे सिकोडकर डाक्टर चटर्जी ने कहा था—क्या वताया है उन्होने? निदान-घोषणा की है क्या?

—जी नही। वैसा कुछ तो नहा वताया—लेकिन—

डा० चटर्जी वोले थे—हाथ देखने पर मै अविश्वास नही करता। शुरू-शुरू में उसी पर वहुत हद तक निर्भर करना पडता था। हम लोगो में से वहुतेरे डाक्टर काफी अच्छी तरह नाडी देख सकते थे। आज भी देख सकते हैं। लेकिन इलाज जव हम लोग कर रहे है, तो हमारी वातो का यकीन कीजिये। वे शायद यह वताये कि मर्ज लाइलाज है। इतने दिनो के अन्दर—कुछ होगा।—हमकहते हैं—कुछ नही भी हो सकता है। हम मर्ज को लाइलाज नही कहेगे। आखिरी दम तक जूझेंगे। अगर उनकी वात पर विश्वास करें तो रोगी के अपने-सगो को सारी उम्मीदे छोडकर सिर्फ उस चरम दुर्घटना का ही इन्तजार करना पडेगा।

उसके वाद फिर कहा था, अवश्य हंसते हुए ही कहा था, मै भी इसी देश का आदमी हूँ, यह जरूर है कि मैं डाक्टरी करता हूं। लेकिन उन्होने जो वताया है—उसे तो समझता हूँ। वह वेशक एक वड़ी वात है। वीमारी

कष्टसाध्य है, कठिन है। किसी तरह बच भी जायँ तो जीवित-मृत होकर जिन्दा भर रहना। और ससार में, जहाँ जन्म होने ही से मृत्यु अनिवार्य है, वहाँ अगर आसानी से जीर्ण और निकम्मे शरीर के पतन को काम्य समझ सकें, तो वह एक बडी चीज़ है। यह बात आप लोगों के पक्ष की है। उसे हम लोग क्यों कहे ?

डा० चटर्जी के जाने के तीन दिन बाद एकाएक बीमारी टेढी हो गई। पेशाब का रग खराब हो गया, उसकी मात्रा भी कम हो गई। पेशाब-जाँच से शका पैदा हो गई। दिल की अवस्था बिगडी। धड़कन का परिमाण हुआ एक सौ तीस। और भी बढने का झुकाव।

हरेन्द्र फिर कलकत्ते दौडा। डा० चटर्जी ने कहा—इसी की आशका थी मुझे। आखिर वही होकर रहा! अब—।

कुछ सोचकर बोले—अब कोई बस नही।

बारंबार गर्दन हिलाते रहे—न.। कोई बस नही रहा।—अन्त मे कहा—डिजिटिलिस इटरवेनस देकर देखो।

हरेन्द्र डर गया। डिजिटिलिस ? इटरवेनस ? फिर तो आप चलिये।

—मै ? मै चलकर क्या करूँगा ? मैंने कह दिया—हालत नाजुक है। ध्रुव ही समझो। अब चास लेकर आजमा सकते हो। अगर दवा काम कर गई, क्राइसिस जाती रहेगी। फिर अगर जरूरत होगी तो मै जाऊँगा।

मगर वह हिम्मत यहाँ किसी ने नही की—हरेन्द्र, चारुबाबू–किसी ने नही। प्रद्योत ने कुछ सोचा तो जरूर। आखीर तक वह भी पस्त-हिम्मत हो गया। मन में बेचैनी की भी हद न थी।

विपिन बाबू के तब तक भी होश था। जब कलकत्ते का डाक्टर नही आया, तभी समझ गये थे वे। अपने को उस आसन्न खतरे के लिए तैयार करते हुए पिता से उपर्युक्त बातें कही थी उन्होने।

—यह लाज रखने की मेरे पास जगह नही। मरने से पहले ही मारे शरम के मर गया मै। आपको मैंने तकलीफ पहुँचाई। एक दुश्मन बेटे का काम किया मैने।

रतन बाबू भी गजब के आदमी है। उदास हँसी हँसकर अपने बेटे के माथे पर हाथ फेरते हुए उन्होने कहा—तुम मेरे वीर पुत्र हो। जीवन-

सग्राम से तुम डरे नही, पीठ नही दिखाई, साँस नही ली—लडते-लडते ही खेत रहे—इसमें शर्म की कौन-सी बात है ?

—शर्म ? शर्म इस बात की कि इस बुढापे में फिर आपको वर्म धारण करना पडेगा, हथियार सम्हालना पडेगा। मै आपको इससे बचा न सका। यही शर्म। यह मेरी सबसे बडी हार है।

बेटे के माथे पर हाथ रखकर आँखो मे आँसू लिये होठो में अजीब हँसी हँसकर उन्होने कहा था—किससे हार हुई ? जिससे तुमने शिकस्त खाई, उससे राम, कृष्ण, बुद्ध से लेकर भीष्म, द्रोण—नेपोलियन, हार चुके है। इसकी फिक्र न करो।

गर्दन हिलाकर विपिन ने कहा—नही। आप अपने से मेरी हार हुई है। डा० चटर्जी मुझसे बारहाँ कहते रहे। कहते रहे कि आप अपने धदे से बाज आये। यह रजोगुण का रोग है, राजसिकता को छोडकर सात्विक जीवन बिताये बिना यह जा नही सकता, बल्कि बढता रहेगा।

इसके बाद किशोर कमरे के अदर नही रह सका था। निकल आया था बाहर। दूसरे ही दिन से विपिन का पेशाब बद हो गया था। उसी से आच्छन्न होकर तीसरे पहर तक वह बेहोश पड़े रहे। रात के ग्यारह बजे मृत्यु हो गई।

सारा गाँव, गाँव ही क्यो, सारा इलाका विपिन की मृत्यु से मुरझा गया। ऐसा एक कर्मवीर, स्वनामधन्य आदमी। उनकी मृत्यु से यह स्वाभाविक ही था। सुबह जब शवयात्रा का समय आया, लोगो की भीड टूट पडी। सब उदास। इलाके भर के आसमान पर मानो छाया-सी पड गई हो। जीवन महाशय भी उदास आँखो बाहर की ओर ताकते रहे। धरती मृत्यु से सतत मुखर है। ऐसी कोई घडी नही, जबकि लय न होता हो, मृत्यु का रथ न चलता हो। जीवन जन्म से मौत को छाप लेना चाहता है। फिर भी उसे जाना नही जा सकता, जानने का उपाय नही। इसीलिए उससे इतना डर लगता है। बीच-बीच में वह डर दूर होता है, मृत्यु-भय को लोग जीतते तो है—उसे गले लगाने को दल के दल लोग दौड पडते है। तब तो मृत्यु अमृत हो जाती है। विपिन जिस कोटि के मनुष्य थे, जैसी शिक्षा पाई थी, उससे देश के लिए मौत को गले लगाना उनके लिए

ताज्जुब की बात नही थी—अगर वे वही करते, तो भी क्या ऐसी ही छाया पड़ती ? नही पड़ती । अकस्मात् महाशय को पता चला, किशोर जाने कब चला गया है ! उन्होंने एक लंबा निश्वास छोड़ा । फिर अपनी नब्ज पकड़ कर बैठे ।

कुछ पता चलता है ? कोई आसार ? कोई इशारा ? नही ।

—अपना हाथ देख रहे हैं ?—विनय आया ।

—हाँ ।

—जी कुछ—।

नही ।—महाशय हँसे ।

—कदरू आया है । आज इंजेक्शन की बारी है ।

—कहाँ है ?

जी सरकार ।—बुड्ढा मोची सामने आ खडा हुआ ।

विनय के यहाँ कदरू ही उनका पहला मरीज़ है । राणा के आने से पहले ही यह पहुँचा था । आमाशय का रोगी । पुरानी बीमारी । मगर गजब का आदमी । ऐसा सावधान रोगी शायद ही मिलता है । बीमारी ठीक होने वाली नही । आज तक अच्छी नही हुई । लेकिन उसे शय्याशायी नही कर सकी कभी । रोग के बढ़ते ही वह खाना-पीना छोड़ देता । डाक्टर कहे कि पाव भर खाना तो आध पाव से ज्यादा नही खा सकता ।

दवा का उसे नशा-सा है । बारहो महीने कोई-न-कोई दवा उसे चाहिए । डाक्टरी, हकीमी, कविराजी, टोटका—जो भी हो । बारी-सी बँधी है । कुछ दिन डाक्टरी दवा, उसके बाद कविराजी ।

कदरू उनका पुराना मरीज है । इधर का आदमी नही है वह । शायद बिलासपुर का है । चमड़े का कारबारी । उनकी जब पहली जमात इस इलाके मे आई थी, कदरू उसमें था । तब वह नया जवान था । साथ में बीवी थी, एक बच्चा था ।

उस समय महाशय ने उसके बच्चे को कठिन रोग से बचाया था । इसलिए वह जब भी महाशय को रास्ते में देखता, सामने खड़ा हो जाता—जूते में पालिश लगा दूँ ।

जूता साफ कराये बिना छुट्टी नही मिल सकती थी । एक ही जाना

पड़ता । चाहे जहाँ हो । हाट, बाजार, स्कूल के सामने, सबरजिस्ट्री ऑफिस के पीपल के नीचे—बारी-बारी से कदरू सब जगह एक-एक दिन बैठता । उधर से गुजरना हुआ तो जूते में उससे पालिश लगवा ही लेना पड़ता ।

लेकिन महाशय पैसा दे देते थे । उसके आग्रह की कीमत नही चुकाई जा सकती । वनविहारी की मृत्यु के बाद, जिन दिनो महाशय घर से बाहर नही निकलते थे, उन दिनो भी उसने घर जाकर उनके जूतो में पालिश लगाया है । किसी दिन पैसा मिला, किसी दिन नही मिला । इधर कई वर्षो से बुढापे से कदरू लाचार हो गया है । रजिस्ट्री आफिस के पीपल के नीचे के अलावे और कही नही जाता, जा नही सकता । विनय की दूकान सबरजिस्ट्री ऑफिस के पास ही है । सो कदरू ठीक आ पहुँचा है । जूता भी साफ कर दिया । अबकी उसकी बीमारी बढ गई है ।

कदरू के मरने का समय ठीक समझना मुश्किल है । वह रोग को गुंजाइश नही देता । सावधान आदमी है । लेकिन लग रहा है कि उसकी बीमारी धीरे-धीरे सग्रहणी का रूप लेती जा रही है । अब किसी दिन उसके पैरो की आहट सुनाई पडने लगेगी ।

इस बार कदरू ने कहा है—सुई दीजिये महाशय जी । ताजा और तेज दवा की सुई ।

सुई ? इजेक्शन ?—महाशय हँसे—जल्दी आराम होना चाहते हो ?

—हाँ बाबा, मसक्कत न कर सकूँगा तो रोटी कैसे चलेगी ?

कदरू के बेटे सयाने होकर उसे छोड और कही चले गये है । बीवी मर चुकी है । निरा अकेला है । लिहाजा मेहनत तो करनी ही पडेगी !

महाशय ने कहा था—बेहतर है कि तू अस्पताल चला जा कदरू । अपने साहब से कह दे, बस ।

कदरू का साहब है किशोर । जाने क्या बात है कि छुटपन से ही कदरू किशोर को साहब कहता है । वह भी एक आदमी है जो कदरू का प्यारा है । कदरू उसे बहुत प्यार करता है ।

फुटबॉल की मरम्मत के चलते कदरू की किशोर से जान-पहचान हुई । उस समय हाफपैंट और जरसी पहनकर किशोर फुटबॉल खेला करता

था। अपने दल का कैप्टेन था, हो सकता है इसलिए साहब कहता हो। बाद में खद्दरधारी होने पर किशोर ने उसे लाख मना किया, कभी-कभी डाँट भी बता दी, मगर कदरू ने उसे साहब बाबू कहना नही छोड़ा।

कदरू अस्पताल जाने को तैयार न हुआ—नही, माँ-बाप, मै अस्पताल नही जा सकता। वहाँ सब बाबू लोग है, मेम साहब लोग दवा पिलाती हैं—फिर दिन-रात पडे रहना और उन सबका सेवा-टहल लेना मेरे जैसे चमार का काम है ?

—अरे भई, इसी के लिए तो वे लोग है। अस्पताल तो सबके लिए है। रोगी ही तो अस्पताल के देवता है। उसके लिए तू सकोच मत कर।

—नही बाबा, नही।

—क्यो ? मै कह रहा हूँ, वही बेहतर होगा। तू जिस तरह नियम से रहता है कि झट अच्छा हो जायगा। रोग होने पर तो पड़ा ही रहना चाहिए।

—वही तो करता हूँ। पेड के नीचे चटाई डालकर पड़ा रहता हूँ, बैठे-बैठे काम करता हूँ। नीद लगती है तो सो जाता हूँ।

—तो फिर अस्पताल में ही सोना।

—मै दवा का दाम दूँगा सरकार।

—दाम के लिए मै नही कह रहा हूँ कदरू। वहाँ जाने से अच्छा रहेगा।

—नही सरकार, अस्पताल जो जायगा सो मरेगा—मैं कहे देता हूँ।

—क्यो ?

—अस्पताल में देव है, देव। रात में चक्कर काटता है। कब्रस्तान पर अस्पताल है, कबर में से भूत निकलता है।

महाशय को याद आ गया। उस रोज शायद प्रद्योत के यहाँ भूत ने गोश्त माँगा था। डाक्टरो में से किसी ने गोश्त नही खाया। दूसरे ही दिन दाँतू घोषाल अस्पताल से चम्पत हो गया।

महाशय ने भँवें सिकोडी। एक बात उन्हे याद आ रही है। याद आ रही है, लेकिन रहे वह बात। उन्होने एकबार भूत देखा था ! वह भूत मछली खा रहा था। रात एक बजे का समय। वे रोगी देखकर लौट रहे

थे। नवग्राम में प्रवेश करते ही मोड़ पर, बगीचे वाले पोखरे के घाट के पास पेड़ के नीचे एड़ी से चोटी तक सुफेद कपड़ा ओढ़े एक मूर्ति खड़ी थी, कुछ खा रही थी। चांदनी में दीख रहा था कि हाथ मुंह के पास है।

मारे भय के गाड़ीवान जम-सा गया था। उन्हें डर नहीं लगा। वे गाड़ी से उतरकर आगे बढ़ गये थे। देखा, प्रेत ही है। मछली खा रहा है। वह तसवीर मानो आंखों में तैर रही है। कहा है उन्होंने।

उनके चेहरे पर अक्सर एक अजीब तरह की हंसी दिखाई पड़ी। इस दुनिया में सब कुछ है। भूत, प्रेत, ब्रह्म, दैत्य—सब। नहीं है, कौन कहता है? अगर सच ही वैसी नजर हो तो देख सकता है।

इंजेक्शन से ही उन्होंने चिकित्सा शुरू की। कल कई सुई दी। आज सुई की बारी है। वह आ पहुंचा है। महाशय ने पूछा—कैसा है?

उहूं—उसने गर्दन हिला दी—अच्छा नहीं हूं। थोड़ा-बहुत बुखार भी है।

—ला, हाथ दिखा। अरे, बेहद कमजोर हो गया है तू। बीमारी बढ़ गई है। बहुत टट्टी होती है?

—नहीं सरकार। टट्टी तो कम है।

—फिर? खाना क्या है?

—क्या खाऊं हुजूर। थोड़ा-सा बार्ली का पानी। बस। और कुछ नहीं। कुछ भी नहीं।

—लेकिन खाना तो पड़ेगा। बिना खाये ही ऐसा हुआ है।

—डर के मारे खा नहीं सकता हूं माय-बाप।

—डर से काम नहीं चलेगा। खाना पड़ेगा। भूखा रह-रह कर मर जायगा तू।

—मरने को नहीं डरता बाबू। बीमारी की तकलीफ को डरता हूं। अगर खाने-पीने से बढ़ जाय? पेट का दरद कहीं बढ़े? आखीर में क्या मैली मिट्टी से लतपत होकर मरूंगा बाबा?

महाशय ने आज भी कहा—तू अस्पताल चला जा। तेरे साहब तो हैं ही। वे कहेंगे कि सब ठीक हो जायगा। और जिस तरह का मरीज है तू, सहज ही ठीक हो जायगा।

कुदरू ने कहा—वही तो वह वाबू चला गया। इतना वडा वावू, इतनी वडी किस्मत—कच्ची उमर में उठ गया। इतनी दवा हुई, इतने वडे-वडे डाक्टर आये। क्या किया हुजूर ? कुछ नहीं। हुजूर ही की वात सच निकली।

कौन-सी वात ?—आर्त चकित स्वर में महाशय ने पूछा।

—हुजूर ने कह दिया था कि बाबू बचेगा नही, वही बात तो सच निकली। कलकत्ते से डाक्टर आया, कुछ नही हुआ।

महाशय का सर्वांग झन-झन कर उठा। कह क्या रहा है कदरू ! चुप वैठे रहे। अपने को जब्त किया।

कदरू कहता गया—और भी वात है बाबा। उस रोज आपको बताया था, विनय वावू भी जानता है, अस्पताल में पिरेत रहता है। वहाँ कोई नही वचेगा।

विनय वाहर खडा था, अंदर चला आया। बोला—कदरू ने झूठ नही कहा है। उस दिन प्रद्योत वावू के यहाँ डाक्टरो का खान-पान था। गोश्त पकाया गया था। खिडकी के बाहर से भूत ने गोश्त माँगा था। डाक्टर के रसोइये ने अपनी आँखो देखा है। गणेश भट्टाचार्य की लडकी का अस्पताल में प्रसव हुआ था, डाक्टर ने वह केस खूब बचाया। लेकिन वह लडकी मारे डरके मरनेपर हो गई। गणेश उसे लेकर वहाँ से भाग आया।

महाशय को मानो आग की चिनगी छू गई। वेचैन हो गये। भँवे सिकोडकर तीखे स्वर में कहा—भूत ?

विनय ने कहा— दाँतू ने देखा है। कब्रस्तान से—

—दाँतू ?

—हाँ। आज सवेरे उसने अस्पताल में वड़ा हो-हल्ला किया। नही रहेगा। कल तमाम रात वह डर के मारे सो नही सका।

इस बात पर महाशय ने जो किया, वह विनय के लिए कल्पनातीत था। वह उवल पडे। दाँतू मरेगा। निदान में मुझसे भूल नही हुई है। प्रेत ? दाँतू को ले जाने के लिए प्रेत ने दर्शन दिया है। यह प्रेत दाँतू के साथ-साथ घूमता है। और कोई नही देख पाता, मैं देखता हूँ।

सुनकर कदरू और विनय भौचक्के रह गये। विनय को लगा, महाशय का दिमाग तो नही खराव हो गया ?

महाशय ने कहा--और जो रोगी हो, उन्हे वुला। अब मैं जाऊँगा। सिताव अभी तक क्यो नही आया ?

आजकल शतरज लिये सिताव दूकान पर ही आ जाते है। यही जम जाते है। खासी मजलिस लग जाती है।

* * *

सिताव नही आया, उसके वगल मे निशि ठकुराइन की भतीजी मर गई है। वही पद्रह साल की लडकी---दो-दो वच्चो की माँ, प्रसूति से जिसकी देह का रग तीसी के फूल-सा हो गया था। जिसकी नाडी देखकर महाशय ने उसकी निश्चित मृत्यु का अनुमान किया था। आखीर में निशि ने शशि का इलाज कराया था। शशि ने अपनी विचित्र चिकित्सा-पद्धति से वडी जल्दी ही उसे किनारे लगा दिया---पार पहुँचा दिया।

आखिरी तीन दिन, जव उसकी हालत वहुत ही विगड गई, निशि ने डाक्टर हरेंद्र को वुलाया था। उसने कई सुई भी दी। दामी दवा।

अव निशि हरेंद्र को गालियाँ दे रही है।

घर लौटते हुए महाशय सिताव के यहाँ गये थे। एक उसाँस भरकर लौट गये। कल रात विपिन का स्वर्गवास हुआ, शव-यात्रा में इलाके के आबाल-वृद्ध-वनिता ने सडक के किनारे-किनारे भीड कर दी---श्मशान तक जनता गई थी। सारे दिन जीवन की ज्योति पर एक मैली छाया पडी रही। लोग थक गये, शोक से चूर हो गये। अव नही। अपनी भतीजी की लाश के पास निशि विलख कर रो रही है, डाक्टर को गालियाँ दे रही है। दो-तीन पडोसिनें पास वैठी है। वाहर किशोर और किशोर-पथी तीन-चार जवान खडे है। लाश वही लोग ले जायँगे।

आज वाजार भी उदास है। कुछ ही वत्तियाँ जल रही है। डाक्टरो के को-ओपरेटिव स्टोर्स में दो वत्तियाँ जल रही है। एक अदर और एक वाहर। अभी सारी दवाइयाँ पहुँच नही सकी है---थोडी-वहुत-से दूकान खोल दी गई है। चारु वावू वाहर वैठे है। हरेंद्र भी है। विपिन का ही जिक्र चल रहा है।

महाशय सोच रहे थे निशि की भतीजी की बात। उस दिन उसे जैसे ही देखा, वैसे ही उन्हे अपनी नाडी-परीक्षा की दीक्षा का दिन याद आ गया। एक कठिन रोगी को देखने गये थे उनके पिताजी। उन्हे भी साथ लिवा गये थे। ऐसी ही रोगिणी। हू-ब-हू। यही उमर, ऐसे ही दो बच्चों की माँ—एक सन्तान गर्भ मे। लौटते समय रास्ते में पिता ने कहा था—यही है मृत्यु-रोग की नाडी! यह लड़की नही बचेगी बेटे। और एक लक्षण देखा तुमने? इसकी रुचि उन्ही चीजो से है, जिनसे रोग बढता है। उसके हाथ में तेल के बडे-पकौडे का निशान और बू उनकी नजर से नही बच सकी थी। निशि की भतीजी ने भी उस दिन अचार चुराकर खाया था। उफ, उस दिन उसे बच्ची कहने से जो हँसी थी वह! बारह की उम्र में ही उसे पहला बच्चा हुआ था। साढे तेरह की उम्र में वह दूसरे बच्चे की माँ हुई। और पन्द्रह में उस लड़की ने तीसरे को अपने गर्भ में धारण किया है और वह बच्ची है!

वह हँसती तो उसके गाल के दोनो ओर दो गड्ढे पडते थे। अँधेरी रात में छायामूर्ति के समान कौन तो मनश्चक्षु के सामने खडी हो गई। पीठ भरकर घुँघराले बालो का गुच्छा। यह भी मुँह में कपडा डालकर हँसती है। हँसने से गाल में गड्ढे पडते है।

मंजरी शायद मर चुकी है। बीच-बीच में एकान्त क्षणों में ठीक इसी तरह अचानक तिर उठती है फिर खो जाती है।

अस्पताल के अहाते में प्रद्योत डाक्टर के बरामदे पर रोशनी जल रही है। आज प्रद्योत चुप बैठा है। शायद सोच रहा है। सभी डाक्टर सोचा करते हैं। सोचते है, और कही कोई भूल-चूक हुई है या नही।

अगर भूल हुई होती है तो पछतावा करता हुआ चुप बैठा रहता है। उसका हृदय हाय-हाय करता रहेगा। अगर चूक नही होती है, तो ऐसी ही ग्लानिहीन उदासीनता से बैठा रहता है। मन शून्य हो जाता है। सहसा शून्यमडल में हवा लगती है। दीर्घ निश्वास छोडकर डाक्टर सोचता है—असहाय है, मनुष्य बडा ही असहाय है। किसी के मन में बिजली की कौध-सा प्रश्न चमक उठता है—Death! What is Death!

बत्तीस

बिछावन पर पडे-पडे भी महाशय जाग रहे थे। नीद नही आई। मन में उदासीनता। नीद नही आ रही है। विपिन की और निशि की भतीजी की मौत ने उनके मन को आच्छन्न कर रक्खा है। दांतू के लिए जो कडवापन था, मन के किसी कोने में वह ढँक गया है। पास के बिस्तर पर अतर बहू सो रही है। बगल की खिडकी से थोडा-सा आसमान दीख रहा है—शरत् के गहरे नील, नक्षत्रो से भरे आसमान का थोडा-सा हिस्सा। झींगुर की अविराम झी-झी कानो में आ रही है। महाशय भी सोच रहे थे—मौत क्या है? अनिवार्य परिणति, एक दुर्ज्ञेय रहस्य : इन जवाबो से जी नही भरता। पुराण की उस भूरे बालो वाली की कहानी से भी सन्तोष नही होता। बेहोश पडा मरता हुआ रोगी अनोखे ढग से जी उठा। ऐसे लोगो में से दो-चार आदमी अजीबोगरीब किस्से सुनाते है। कोई कहता है, वह मानो अनन्त शून्य में उडता जा रहा था, लौट आया। अजीब है वह शून्यलोक। कोई कहता है, वह समुद्र में तैरता जा रहा था। दोनों के अनुभव एक नही है। इसमें भी तरह-तरह के सवाल उठते है। जी नही भरता। एक किशोर की बात याद आ रही है। उसने जो कहा था, वह अजीब तरह से उनके मन में गुंथा हुआ है। बहुत दिनो की बात है। नवग्राम के गोविन्द पाठक का लडका नसीराम। मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। मरने से कोई पन्द्रह मिनट पहले कहा था। किस कदर चल रहा था पसीना उसे! अपने इतने लम्बे चिकित्सक-जीवन में वैसा पसीना उन्होने कभी नही देखा। सभी तीमारदार अबीर और सोठ मलते-मलते थक गये—अबीर और सोठ की बुकनी खत्म हो गई! दलदल से जिस तरह पानी निकलता रहता है, लोमकूपो से लगातार पसीना निकल रहा था। जीवन का चिराग धीरे-धीरे गुल होता जा रहा था, लेकिन उसे होश था। अपलक आँखो महाशय खडे-खडे देख रहे थे। नाडी नही थी। किसी ने उसे आवाज दी थी—नसू, नसू-नसू! ओ नसू—!

धीरे-धीरे उसकी मुन्दी पलकें थोडी खुल गई थी—नजरो मे जवाब का इशारा झलक पड़ा था। बहुत ही धीमी आवाज में उसने कहा था—ऐं?

—क्या तकलीफ है ? बहुत कष्ट हो रहा है ?

—कष्ट से गर्दन हिलाकर कहा था—नही ।

जरा देर चुप रहकर आँखें बन्द करते-करते कहा—लग रहा है—मैं—

—क्या ?

—मानो बड़ी दूर चला जा रहा हूँ। तुम लोगो की बातें ठीक से सुन नही पा रहा हूँ—तुम्हे ठीक से देख—

गर्दन हिलाकर उसने बताने की कोशिश की थी कि वह देख नही पा रहा है। कोई पर्दा-सा गिरता आ रहा है और वह पर्दा धीरे-धीरे गाढा होता जा रहा है !

इससे और अच्छा ब्योरा उन्होने नही सुना ।

ठीक ऐसे ही समय किसी ने बाहर से पुकारा—महाशय !

—कौन ? केहुनी के सहारे उठकर खिड़की से राह की तरफ देखा। लालटेन लिये दो आदमी खड़े थे। कौन है ये ? किसे क्या हुआ ?

—कौन है ?

—जी हम है। परानी मियाँ के यहाँ से आये है।

—क्या हुआ ? बीवी मजे में तो है ?

—जी नही। मुसीबत है। लगता है, बीवी ने जहर खा लिया है।

जहर खा लिया है ? आफत !—वे जल्दी से उठ खडे हुए। ताज्जुब है ! आदमी जहर भी खाता है, फाँसी भी लगाता है, कपड़े में आग लगाकर जल भी मरता है, पानी में कूदता है।

* * *

परानी दोनो हाथो अपना सिर थामे चुप बैठा था। चेहरा बड़ा खौफनाक हो उठा था उसका। बीवी ने कनेर के बीये को पीसकर पी लिया है। महाशय को देखकर वह खडा हो गया। उसकी भी आँखें लाल हो आई है। बोला—अस्पताल के डाक्टर ने ठीक ही कहा था महाशय जी। रोग का तो निरा बहाना है—यह औरत शैतान है। चूँकि मेरे-जैसा बूढा आदमी उसे छूता है, इसीलिए रोग का बहाना बनाये पडी रहती थी। जहर खाकर आप ही सब बात उगल रही है।

बँधे हुए जगली भैसे की तरह माथा हिलाकर गरजते हुए परानी ने कहा—और वह हरामी, गुलाम, सामने मिले तो उसकी गर्दन की नली नोच डालूँ मै। हरामी का बच्चा हरामी। और उसकी माँ। हरामजादी! नौकरानी! कभी वह हरामजादी मेरी—।

परानी ने अश्लील शब्द कहे।

महाशय बोले—अभी इन बातो को रहने दो। उसे बचाने की कोशिश करनी चाहिए।

—जहन्नुम में जाय वह। मर जाय। शैतान, रडी। आप सिरफ उसके मुँह से यह सुन लें कि उसने खुद से जहर खाया है और उस कम्बख्त नफर, हरामी रब्बानी के लिए खाया है। नही तो ये लोग मुझे फँसा देंगे।

परानी ने मुट्ठियो से अपने बाबरी बाल उखाडकर बिना दाँत वाले मसूडो से दबाकर कहा—आह, मैंने अपने आप अपने घर मे शैतान को जगह दी। आ, अस्पताल के डाक्टर ने ठीक ही कहा था।

उसकी बीबी आप ही सब कह रही है। तकलीफ से वह अजीब तरह की आवाज कर रही हे और उसीके साथ कहती जा रही है—जली तकदीर मेरी! इस जली तकदीर के दिये हर कुछ को तो किसी तरह कबूल कर लिया था! मगर तुमने रब्बानी को क्यो रक्खा? उसकी माँ को क्यो रक्खा और रख लिया तो रख लिया, उसे फिर दूर ही क्यो हटा दिया?

बात यही है।

कल तीसरे पहर से परानी की बीबी कै करने लगी थी। पहले सबो को यह गर्भ का ही एक लक्षण लगा। लेकिन लगातार कै—कै के साथ कैथा के टुकडे, लाल मिर्च के छिलके—यह सब निकलने लगे। इस पर से लोगो को सन्देह हुआ, बीबी को यह सब कहाँ से मिला? किसने ला दिया?

तब तक वह बेहोश-सी हो गई थी। खोज शुरू हुई। खोज हुई तो केंचुआ की खुदाई मे साँप निकल आया। बीबी की खास दाई रब्बानी की माँ ने बडे आदर-जतन से कैथा, गुड, मिर्च, नमक मिलाकर चटनी बना दी थी। जगली बेर भी दिये थे। यह आज ही की बात न थी। कई दिनो

से लगातार यह हरकत हो रही थी। कभी वाजार की मिठाई, तो कभी पकौडियाँ तो कभी और कुछ। कुछ-न-कुछ रोज ही चल रहा था। लाकर पहुँचाता रहा रव्वानी और अपने हाथो उसे खिलाती रही सकीना वेवा। वुढिया ने शायद उसे नक्शा कोर की नई साडी भी दी है। यह पता परानी की वडी वीवी ने वताया। उसने अपनी आँखो रव्वानी को साडी लाकर माँ को देते देखा है और उस साडी में उसने वीवी को भी देखा है।

परानी के कलेजे में किसी ने लाठी-सी मारी थी। मारे क्रोध के उसने वड़ी वीवी का झोटा पकडकर कहा था—झूठ कह रही हो तुम।

वडी वीवी ने अल्ला की कसम खाई थी। उसने वीवी का झोटा छोड दिया और सकीना वेवा तथा उस वाँदी के वच्चे रव्वानी की तलाश की। लेकिन दोनो के दोनो फरार हो चुके थे। परानी ने इस वात को लेकर ज्यादा शोर-गुल भी न करना चाहा। आस-पास के गाँवो में हिंदू-मुसलमान, दोनो ही जात के लोगो में उसके दुश्मन है। चार-पाँच साल से एक नई ज़मीन के लिए उन लोगो से मुकदमेवाजी चल रही है। इसमें कोई शुवहा नही कि अपनी माँ के साथ ,रव्वानी ने उन्ही लोगो में से किसी के यहाँ पनाह ली है। सो, विषदतहीन साँप-जैसा झुँझलाकर परानी ने नई वीवी की खूव खवर ली। वह वेहोश-सी पडी थी। उसी हालत में उसकी लटे खीच-खीचकर वार-वार उसे होश में ले आने की कोशिश करता रहा। शायद मारकर ही दम लेता। लेकिन वडी वीवी ने रोका—अरे, क्या कर रहे हो म्याँ, मर जायगी। फाँसी पडेगी तुम्हे। उसे निकाल वाहर करो।

लेकिन परानी से तलाक देते भी नही वना। यह हरामजादी खुशी-खुशी जायगी और रव्वानी के यहाँ पहुँच जायगी। यह वर्दाश्त नही हो सकेगा। उसने उसे कमरे में वद कर दिया था। आज शाम को घाट जाने के लिए नई वीवी ने निहोरा किया। वडी वीवी ने कमरा खोल दिया, घाट पर उसकी निगरानी जरूर रक्खी गई। घाट के पास कनेर के पेड थे। पहरेदार की आँख वचाकर वह उसके कई फल तोड लाई थी। जाने कव उन्हें खा गई। अव लगभग वेहोश पडी है। मर जाय तो वला ही जाय। ऐसी वदचलन औरत जहन्नुम में जाय, रडी, खानगी, हरामजादी।

महाशय सिर्फ अपने कानो इतना सुन रक्खें कि इस हरामजादी ने खुद ही जहर खाया है। परानी कुछ नही जानता। वह बेकसूर है।

* * *

खूबसूरत जवान औरत। जहर के असर से अर्द्धचेतन दशा। पीडा से अँतडियो में उमेठन। दम मानो घुटता आ रहा है। मुँह और नाक से फेन निकल रहा है, कलेजे में तनाव-सा, जैसे छाती फटकर चौचीर हो जायगी। अधमुँदी-सी दोनो आँखे, लाल,—सर्वनाश का नशा सवार। अधनगी-सी पडी है—लटें बिखरकर धुल में लोट रही है चारो तरफ। लोगो के झकझोरने और चिकोटी काटने से बीच-बीच में होश आ जाता है और तब वह मुखर हो उठती है।—आ, मरने भी नही देते मुझे। मरने पर भी अपना अख्तियार नही। हाय रे नसीब ! हाय रे नसीब !

हँसकर बोली—नही रोक सकोगे म्याँ, मुझे नही रोक सकोगे। रब्बानी शेख के साथ भले ही न जाने दो, लेकिन अबकी जिससे आशनाई की है, तुम उसका हाथ नही छुडा सकोगे—नही-नही। आह, छोड दो मुझे। जरा सो लूँ।

आ.—आ।

कहते-कहते फिर जहर की खुमारी ने उसे आच्छन्न कर दिया। शिथिल-सी हो गई। सिर लुढक पडने-सा हो गया।

महाशय बोले—परानी, बीबी को तुम अस्पताल ले जाओ।

—अस्पताल ? जी नही। मैने तो कह दिया कि

—दिमाग मत खराब करो। मै तुम्हारे ही भले के लिए कह रहा हूँ। मै अब वह महाशय नही रह गया हूँ। जब पचायत का प्रधान था, तो ऐसे जाने कितने मामले मेरे हुक्म से मिटे है। अब वह दिन नही रहा। आज जब तुमने मुझे बुला लिया है, मै आया हूँ और आकर यह सब देखा है, तो मुझे ही थाने पर इत्तला देनी पडेगी। फिर मै ठहरा चिकित्सक। मै रोगी को जिलाने के लिए जाता हूँ, खडे रहकर उसकी मौत देखने के लिए नही।

परानी कई मिनट तक गुम-सुम बैठा रहा। उसके बाद बोला—गाड़ी ले आ रे हनीफ ! जल्दी। लेकिन आप साथ चले !

रात के दो बज रहे थे ।

महाशय ने आवाज दी—डाक्टर साहब ! डाक्टर साहब !

डाक्टर बाहर निकले ।—कौन ?

—मैं हूँ जीवनदत्त ।

—आप, इतनी रात गये ?

—एक औरत ने जहर खा लिया है । कनेर का बीया । उसी को लिवा लाया हूँ । परानी मियाँ की बीवी है ।

—अभी आया मै । उधर नर्स-कपाउंडर वगैरह जग गये हैं ? उन्हे पुकारा है आपने ?

—हाँ पुकारा है ।

—बस, एक मिनट में आया मैं ।

—अंदर जाकर उसने हाफशर्ट पहना और निकल आया । न कुछ पूछा-आछा, न कुछ कहा । अस्पताल के सामने ही हरिहर कपाउडर को देखकर पूछा—सब कुछ ठीक-ठाक करने में कितना एक वक्त लग जायगा ?

—पंद्रह एक मिनट तो लग ही जायगा । मैंने पोटाश परमागनेट लोशन पिला दिया है थोडा-सा ।

डाक्टर कमरे के अंदर जा रहा था । परानी बोल पडा—मै चल दिया डाक्टर साहब । अगर यह औरत बच जाय तो पुलिस के हवाले कर देंगे, न बच सके, तो लाश सदर को भेज देगे । वहाँ चीर-फाडकर जैसा समझेंगे, करेंगे लोग । सलाम !

अचानक पीछे की तरफ घूमकर फिर बोला—काश, उस समय आप पर मैने गुस्सा नही किया होता—आपसे ही इलाज कराया होता ! महाशय जी उस जमाने के आदमी है । नाडी देखकर मौत का पता कर सकते हैं । यह सब नही समझ सकते । वह चला गया ।

प्रद्योत अंदर गया । महाशय चुपचाप खडे रहे । इस अभागिन को छोड़कर जाने में उनके कदम गोया उठ नही रहे थे । इसकी ऐसी हरकतें होगी, यह नही समझ सके थे वे । इस बात को वे सौ बार कबूल कर सकते हैं । लेकिन उन्हे पता था, बूढे पति के लिए जवान बीवी का ऐसा रुख उनका अजाना नही, परंतु उसके ऐसे विचित्र प्रकाश के स्वरूप

का अनुमान वे नही कर सके थे। परानी के जरूरत से ज्यादा दुलार और पत्नी-प्रेम को ही उन्होंने इसका कारण समझा था। और प्यारी लडकी के दुलार को पिता जिस स्नेह की नजर से देखता है उसी नजर से देखा था। उनका खयाल था, सतान होने पर उसके स्नेह से जीवन की वह अपूर्णता पूरी हो जायगी। सो वे उसकी सतान-धारण की शक्ति को ही सबलतर करने की कोशिशे करते आये। उनकी वे कोशिशें कारगर भी हुई। लेकिन वह चेष्टा जवानी से प्रभावित मन की प्यास की ताडना से इस कुटिल और जटिल उपाय से सफल हो सकती है, यह नही सोच सके थे वे। महाशय ने एक दीर्घ निश्वास छोडा। उस औरत से गोया वे सैकडो ममता से जकड-से गये हैं। कितनी ही बार गीली आँखो उनकी ओर ताक कर इस औरत ने कहा है—समझ नही पाती महाशय बाबा, लगता है रोग यहाँ पर है, यहाँ पर, यहाँ। हर जगह। कही एक जगह नही। कौन-सी बीमारी है, यह भी नहीं जानती। कनकनी है, दर्द है। ऐसा लगता है, बदन में ताकत नही। कभी-कभी छूती हूँ तो चिहुँक उठता है। कहते-कहते उसकी आँखो से आँसू बहने लगते। कितनी बार उसने पूछा है—मैं बच तो जाऊँगी महाशय बाबा ?

उन्होंने उसकी आँखो में देखा है, असीम भय।

उसी औरत ने आज जहर खा लिया है। बेहद बोलने लगी है। कहा है—नही रोक सकोगे म्याँ, नही रोक सकोगे। जिस यार का अबकी हाथ पकडा है, उसके हाथ से मुझे नही छीन सकोगे।

हरिहर ने बाहर आकर कहा—महाशय जी, आप बैठेंगे ?

—हाँ। बैठूंगा। परानी तो चला गया। मुझसे जाया नही जाता। इस अभागिन की आखिरी दशा देखे बिना नही जाया जाता।

दरवाजा खोलकर प्रद्योत बाहर आया। कपाउडिंग रूम से जाने क्या तो ले आया। हरिहर ने कहा, ये अभी ठहरेंगे सर।

—ठहरेंगे ! ठीक तो है। अकेले बैठेंगे बाहर ? आइये, अदर आइये।

हँसकर महाशय बोले—बाहर ही रहूँ मैं। ठीक ही हूँ।

शेष रात के आसमान की ओर देखते हुए बैठे रहे। आसमान में

नक्षत्रो की जगह बदल रही है। काल पुरुष काफी खिसक गया है। वृश्चिक की टेढी दुम का छोर वहाँ दीख रहा है। सत भैया घूम रहा है। वह, वहाँ पर वशिष्ठ के नीचे अरुधती। जो देख पाता है, उसकी आयु छै महीना तो जरूर ही बढ जाती है। यानी और छै महीने तो वे निश्चित रूप से जियेंगे। यह तो वे अपनी नाडी देखकर भी बता सकते हैं। लेकिन? अचानक उनके जी मे आया, अगर इस औरत की तरह जहर भी पी लें, तो भी जियेंगे? नाडी देखकर यह तो नही कहा जा सकता। अरुधती को देखकर ही क्या ऐसा कहा जा सकता है? अवश्य जहर वे नही खाने के। कभी नही। ज्यादातर लोग नही ही खाते हैं। कितना ही बडा शोक, दुःख, असफलता हो, जहर नही खाते। मौत को लोग बहुत डरते हैं। शराब पीकर मरते हैं, व्यभिचार करके मरते हैं, अनाचार करके मरते है। बनविहारी की तरह। निशि की भतीजी की तरह। इन लोगो के साथ विपिन का नाम नही लेंगे। लेकिन विष खाकर ये भी नही मर सकते। उसकी जात ही अलग होती है। इस लड़की की जात। औरतो में ही यह जात ज्यादा पाई जाती है।

नारायण-नारायण! हे गोविंद!

गंभीर कंठ से एकाएक बोल उठे महाशय। गोविंद ने पत रख ली, नही तो भूपी को नही पाने से वह इसी तरह जहर खाकर मरती। हाँ, वह खा सकती थी। इसी जात की औरत थी वह।

घबराकर महाशय बरामदे से उतरकर खुले आसमान के नीचे खडे हुए। परमानंद माधव!

अस्पताल के लंबे कमरे के दरवाजे से छनकर रोशनी का आभास आ रहा था। रोगी सो रहे है, तद्रा में कोई-कोई करवटें बदल रहा है। आस-पास के क्वार्टर स्तब्ध-से हैं। अंधेरे में काली तसवीर जैसे दीख रहे हैं। कब्रस्तान के बीच के बरगद के पत्तो से हवा के वेग के कारण लगातार एकसाँ साँय-साँय की आवाज। अचानक पाँव के नीचे 'पट्' की आवाज हुई। ए हे! मेढक है।

—कौन? अस्पताल के बरामदे पर सफेद लिबास में एक नारी-मूर्ति।

महाशय ने पूछा—कौन!

धीमी-सी आवाज आई—मैं नर्स हूँ। आप बाहर खड़े हैं ? बैठिये।

—ठीक ही हूँ। कैसी है वह ?

—अच्छी नही।

हे नारायण !—महाशय ने गभीर स्वर से फिर नाम लिया। नर्स कमरे के अदर चली गई।

उनके पैरो से दबकर वह मेढक पिचक कर मर गया। अजीब है। अभी वही बन गये मौत के दूत। कहाँ नही है मौत ? किसमें नही है मौत ?

—महाशय जी !

—कौन ? हरिहर ?

—जी।

—क्या हुआ ?

—खत्म हो गई। किये कोई नतीजा न निकला।

प्रद्योत बाहर निकला। कहा—कुछ नही कर सका मैं। आप देखेंगे ?

—न। फिर मै जाऊँ ?

अच्छा !—प्रद्योत ने सहसा पूछा—उसके घर जाकर तो आपने इसे देखा था। नाडी से आप समझ गये थे कि यह नही बचेगी ?

—मैंने उसकी नाडी नही देखी थी डाक्टर साहब।

—नही देखी थी ?

—नही। मैंने अस्पताल की ही व्यवस्था की थी। आप देखें, इलाज करें। आप लोगो का इलाज आधुनिक है। मैंने नाडी नही देखी थी।

तैंतीस

दो दिन के बाद महाशय आरोग्य-निकेतन के बरामदे पर बैठे थे। सामने पडी थी एक चिट्ठी। छपी हुई चिट्ठी। सफेद कागज के चारो ओर काले किनारो से घिरी। विपिन के श्राद्ध की चिट्ठी। महाशय के अन्दर से बाहर निकलने के पहले ही रतन बाबू का आदमी रख गया।

कृती, प्रतिष्ठावान विपिन का श्राद्ध उचित मर्यादा से ही करना चाहिए। वैसा ही करेंगे रतन बाबू। महाशय ने ऐसा सुना कि रतन बाबू ने कहा है—वैसा किये बिना काम कैसे चलेगा। परानी की बीवी की लाश पोस्ट-मार्टम के लिए भेज दी गई। अभागिन को कब्र भी न मिली।

कल शाम नवग्राम में एक शोक-सभा भी हुई। महाशय उसमें शामिल नही हुए। ऐसी सभा-समितियो में उन्हे कैसी घुटन-सी तो लगती है। सभा का आयोजक था किशोर। सभा में गाँव और गाँव के बाहर के लोग आये थे। डाक्टर तो सभी थे। विपिन अस्पताल को पाँच हजार रुपये का दान दे गया है। उन रुपयो से लहू आदि की जाँच के लिए क्लिनिक खोला जायगा। अपने योग्य ही काम कर गया है विपिन। रोग से पीडितो के मित्र का काम कर गया है। अकाल मृत्यु की गति रुक सके—जिसमें बाप को बेटे का श्राद्ध न करना पड़े।

नवग्राम के एक नौजवान ने जो वकील हुआ है, अपने व्याख्यान के सिलसिले में कहा—हमारे यहाँ डाक्टर आये हैं, अस्पताल खुल गया है, दवा-दारू भी पहुँचा है, फिर भी हमारे यहाँ से टोटका-युग का अँधेरा नही गया है। विपिन बाबू के दान से अब वह अन्धेरा दूर हुआ।

बात गलत नही है। ज्यादातर डाक्टर हाथ देखना नही जानते, जो जानते हैं, उसे वास्तव में नाडी-ज्ञान नही कहा जा सकता। फिर भी यह बात महाशय को लगी।

नारायण-नारायण! उन्होने लबा निश्वास फेंका। जी में कुछ चुभने लगा। उस नौजवान की डाक्टर प्रद्योत से मिताई जरा गाढी है।

आठ-दस रोगी पहुँच गये हैं। इधर फिर एक-दो करके रोगी बढ रहे हैं। इसका सूत्रपात उसी दिन से हुआ है, जिस दिन से वे विनय की दूकान में बैठने लगे हैं।

विनय बीच-बीच में हँसकर कहता—देखिये! मलेरिया कम हो गया है। डी.डी.टी छिड़ककर मच्छरो के वंश का नाश कर दिया गया। रहे कहाँ? टाइफायेड यहाँ कम है। उधर अस्पताल हो गया है। वैसी बीमारियो में रोगी अस्पताल पहुँच जाते हैं। चारु बाबू, हरेंद्र मक्खी मार रहे

है। आपके यहाँ मरीज बढ रहे है।

सच ही बढ रहे है। कुछ पुराने रोगो के मरीज उनके पास आते है। वे अच्छा कर सकते है। खासकर पुराने रोगो में, जब डाक्टर लोग रोग को न पहचान सकने के कारण खून-जाँच, एक्स-रे आदि की फरमाइश करते है, तो रोगी यहाँ चले आते है। इलाके के कुछ विचित्र रोग वाले आते है। जिन रोगो के नाम तक देशज है, जिनका ठीक परिचय भी अभी तक नये विज्ञान में शामिल नही हो सका है, महाशय रोगियो को देख-देखकर विदा कर रहे थे कि कधे पर भीख की झोली, हाथ मे लकडी लिए मरी वैष्णवी आ खडी हुई।

—जय गोविंद। महाशय बाबा, पा लागी।

जमीन तक झुककर उसने प्रणाम किया। छोटे-छोटे छँटे सिर के बाल, कपाल पर तिलक। पचास-साठ साल की प्रौढा मरी बडे दिनो में आई है अबकी। कभी रोज ही आती थी। उसके बेटा और बेटी, दोनो को तपेदिक हुआ था। उनके लिए दवा लेने आती थी। बहुत दिन हो-गये इसके। मरी का वैष्णव भी तपेदिक से ही मरा। लेकिन इसे कुछ नही हुआ। इतने दिनो के बाद इसे उसी काल ने पकडा है क्या? इतने दिनो के बाद?

मरी को यहाँ का कायदा-कानून मालूम है। महाशय भी उसका रग-ढंग जानते है। अभी उससे जहाँ पूछा कि तुम्हे क्या हुआ है, तो वह कहेगी, पहले सबको विदा कर लीजिये, तब बताती हूँ।

सबका हो चुकेगा, तब उनके दोनो पैरो पर हाथ रखकर वह कहेगी बाबा धन्वतरि, आपके पास अमृत का भडार है। मै अभागन हूँ, पापी हूँ, मेरे भाग्य मे विष बदा है, उसी विष की ज्वाला से तडपकर आपके पास आई हूँ। कृपा कीजिये।

कृपा से लेकिन उसकी ज्वाला जुडाई नही। पति, पुत्र, कन्या सब तपेदिक के ग्रास बने।

मरी बेटे-बेटी की मौत बैठी देखती रही। रोई नही। कहा—जिसके धन है, उन्होने ही इन्हे उठा लिया, रोकर मै क्या करूँगी? मै नही रोऊँगी। देवता तुम्हारे चरणो मेरी एक ही विनती है, मुझे बुलालो।

आश्रय दो। बड़ी जलन है। प्रभो, चरणों की छाया में मुझे जगह दो—एक तरफ, किसी कोने में।

आखिरी मरीज को विदा करके महाशय ने कहा—तुझे क्या हुआ रे? बुलाहट आ गई क्या? अचानक आ पड़ी तू?—मरी आगे बढकर ठीक पहले की तरह उनके पाँव पकड़कर बोली—नही बाबा! मरी के वह भाग्य कहाँ? छुटपन में बारहो महीने बीमार रहती थी—दो-एक बार तो अब मरी, तब मरी हो गई, इसीलिए माँ-बाप ने नाम रख दिया मरी। सो सारे रोगों का भोग छुटपन में ही भोग लिया है—अब मरी पक्के ताड के पेड़-सी मजबूत हो गई है। मैं आपके पास काली के सेवायत ओझा जी की लडकी अभया के लिए आई हूँ बाबा। आपके बंधु मिसिर जी के बेटे की बहू—शशांक की बहू?

अधीर हो उठे महाशय।—शशांक की स्त्री!—सारे शरीर में एक कँपकँपी-सी दौड गई।

—हाँ बाबा, उसी ने भेजा है। कहा, तुम जरा महाशय चाचा के पास जाओ। दो दिन के बुखार में मेरे स्वामी की नाड़ी देखकर—

—हाँ—हाँ। लेकिन क्यो, किसलिए?

बहुत बीमार है। कहा, उनसे कहना, एकबार मुझे देख जायँ। मुझे बतादें कि मेरे और कितने दिन बाकी रह गये हैं?

—गोविंद-गोविंद! नारायण-नारायण। लेकिन हुआ क्या है?

—रोग बहुत है। घुप-घुस बुखार, खक्-खक् खाँसी। छै महीने से चल रहा है। लक्षण सब उसी काल रोग का।

—तपेदिक?

—डाक्टरो ने यही बताया है। हरेंद्र ने देखा है, चारु बाबू ने भी देखा है। अभी उस रोज अस्पताल का डाक्टर प्रद्योत भी देख आया है। सुई बहुत पड़ चुकी। कई लाख पेनिसिलिन। कोई लाभ नही हुआ। खाँसी वैसी ही बनी है। बुखार भी नही गया है। जटिलता की कोई भी ऐंठन ढ़ीली नही पड़ी है।

मरी ने फिर कहा—आप तो जानते हैं, बेचारी का स्वामी चल बसा। उसका बाप सारी जायदाद बेचकर नकद रुपये की थैली लिये बेटी को

अपने यहाँ ले गया। वहाँ भी मालकिन-सी होकर रही। भाई के बेटो की देखभाल और माँ काली की सेवा-पूजा। इसी मे भूली रही। आखिर बाप चल बसा, माँ गई, भाई-भाई अलग हो गये, अभया ने जिस भतीजे को पाला-पोसा था, उसकी शादी कराके उसके साथ सबसे अलग रहने लगी। अभी सारी जमा-पूंजी भतीजे के हाथ में है, उसके पास फूटी कौड़ी भी नही। अब जब यह सुना कि उसे यह बीमारी हो गई है, तो भतीजे ने उसे अलग कर दिया है। क्या बताऊँ बाबा, गुहाल के एक कमरे को साफ-सुथरा करके उसको इसी में डाल रक्खा है। कोई भी पास नही फटकता, उसकी साँस लगने से बीमारी फैलेगी।

यहाँ आकर मरी हँसी। हँसकर कहा—मैंने सब सुना। सुनकर कहा, मेरे स्वामी, पुत्र, कन्या, तीन-तीन जने इस बीमारी से मरे हैं। मैं उनके बिस्तर पर बैठी रहती थी। मुझे तो कुछ नही हुआ। खैर। मैं ही रहती हूँ। ब्राह्मण की बेटी है, अनाथ है, जीवन के अन्तिम दिनो को उसी के पास बिताऊँ। कल उसने अचानक ही मुझसे कहा—मरी, एकबार महाशय जी के पास जाओ। मुझे तो चलकर जाने की जुर्रत नही है। भतीजे बैलगाडी भी नही देंगे। उन्ही से कहो, आकर मुझे देख जायँ एकबार। और कुछ नही, सिर्फ यह देखें कि कितने दिन रह गये हैं।

* * *

वैशाख के खेत-जैसी धूल भरी, सूखी, रूखी, चेहरे पर, आँखो में, कही भी सरसता की जरा भी निशानी नही। सारे शरीर पर जैसे एक आवरण पड गया है। दुबली देह टूट-सी गई है। फटे-चिटे, मैले बिछावन पर पडी है। घर के चारो ओर अधेरा जमा है। शशाक की बहू ने हँसकर ही पूछा—जरा देख दीजिये, कितनी दूर है मुक्ति मेरी ? कब तक छुटकारा पाऊँगी ? आपके सिवाय और कोई तो बता नही सकेगा।

सारी बाते साफ-साफ समझ में नही आई। खाँसी से स्वरभग हो गया है। कठ की नली जैसे बद हो गई है। स्वर की विकृति से रुँधे गले की आवाज दब गई है। फटी धौंकनी में जैसी फस्-फस् आवाज होती है, वैसी ही आवाज की तरह बात कठ-स्वर में खो जाती है। उसने अपना

हाथ महाशय की तरफ बढ़ा दिया।

—देखता हूँ। जरा ठहरकर।

वे उसकी तरफ देखते रहे। मरी पास खड़ी थी। उससे कहा—जरा दरवाजे को अच्छी तरह खोल तो दे मरी।

खुले दरवाजे से अभया के चेहरे पर रोशनी आकर पड़ी। उसके प्रकाशित कपाल पर महाशय ने हाथ रक्खा। अभया हेमंत के आकाश की ओर ताकती रही। उसमे थकावट है, तकलीफ के चिह्न हैं, लेकिन क्षोभ नही है, भय नही है। दृष्टि प्रसन्न है।

देर तक एकटक देखकर उन्होंने उसका हाथ उठा लिया। एक के बाद दूसरा।

और कितने दिन ?—हाथ को छोड़ते ही अभया ने पूछा।

—समझ लूँ पहले !

सवाल-जवाब से सारा ब्योरा जानकर अच्छी तरह से जाँच करके एक लंबा निश्वास छोडकर महाशय ने कहा—दुनिया क्या बहुत-ही कड़वी हो गई है बिटिया ? बर्दाश्त नही कर सकती ?

अभया जरा हँसी। अजीब हँसी। ऐसी हँसी अभया जैसी औरतें ही हँस सकती है। सभी औरतें नही हँस सकतीं। अभया बोली—कड़वा खाकर ही तो जनम बीता बाबा। यह तो नही कहती कि बर्दाश्त नहीं होता।

—यह मैं जानता हूँ बेटी। वैसा होता तो जिस दिन शशांक गया था, तुम उसी रोज कुछकर बैठती। पोखरे में पानी की कमी न थी, घर में रस्सी का अभाव नही, दुनिया में जहर का अकाल नहीं पड़ा। इसी से तो कह रहा हूँ। और भी सहना पड़ेगा। तुम्हारी बीमारी जटिल है। एक साथ कई रोग जुट पड़े हैं। यह मृत्यु-रोग नही है। तपेदिक नही है यह।

नही है ?—अभया उठ बैठी

—नही।

—सभी डाक्टर तो एक ही बात कह गये।

—उन्होंने एक्स-रे करने की कही है न ?

—जी।

—एक्स-रे की जरूरत नही। वे रोग को समझ नही सके। इलाज गलत हुआ है। तुम एक ही डेढ़ महीने में अच्छी हो जाओगी। दुनिया में तुम्हे कुछ दिन रहना पडेगा।

अभया स्तब्ध होकर बैठी रही।

—मैं दवा भेज दूंगा। नियम के लिए तो तुमसे कहना ही नही है। तुम निर्लोभ हो, नियम से रहती हो, मैं जानता हूँ।

अचानक उसकी आँखो के दो कोने से आँसू की दो धारायें वह निकली। पानी उमड निकला। लेकिन जिस तरह से वह अपलक आँखो वाहर के शून्य को देख रही थी, उसी तरह देखती रही।

—बिटिया !

—उस रोज आपने मुझे वाप के समान स्नेह से न्योता किया था—मैं—।

—उन वातो को भूल जाओ वेटे ! थोडे ही दिनो में तुम चंगी हो जाओगी। एक दिन बीच करके मैं तुम्हे देख जाया करूंगा।

अभया ने फिर कहा—जब वनविहारी भाई साहव वीमार थे, मैंने काली माता की मन्नत मानी थी, पूजा चढाई थी। जी में आया था, पूजा का फूल उनके माथे से लगा आऊँ। लेकिन नही वन पडा। वे मर गये तो मेरे मन में आया था कि अपनी जीभ को काटकर फेक दूँ।

महाशय ने कहा—तुम इन वातो की फिक्र मत करो वेटे। आदमी के शाप से आदमी नही मरता। आदमी मरता इसीलिए है, क्योकि उसका मरना ध्रुव है। हाँ, अकाल मृत्यु होती है। वनविहारी अपने कर्म-फल से मरा है।

वाहर अभया का भतीजा खड़ा था। वह, जिसे अभया ने गोद के वेटे-सा पाला, जिसने उसका सर्वस्व लेकर तपेदिक के भय से घर से निकालकर वाहर डाल दिया। उसे देखकर महाशय जल-भुन उठे। तुरन्त अपने को जब्त किया उन्होने। वेचारे के मुँह पर कैसी उत्कठा है, कितना डर !

—देखा आपने ?

—देखा। डर की कोई वात नही। एक ही डेढ महीने में वह ठीक

हो जायँगी।

—और ये डाक्टर जो बता गये—

—तपेदिक ! नहीं-नहीं, तपेदिक नहीं है। बने तो एक्स-रे लेकर देख लो। वह न बने तो महीना भर इन्तजार करो। पन्द्रह दिन। पन्द्रह ही दिनों में मालूम पड़ जायगा।

कहते-कहते महाशय को खुद ही संकोच हो आया। आवाज कुछ ऊँची हो गई, बात कुछ ज्यादा कठोर हो गई।

नारायण-नारायण ! मन-ही-मन उन्होंने नारायण को स्मरण किया।

चौंतीस

देखो, विनय, दुनिया में मृत्यु ध्रुव है, जो जन्म लेता है, उसका मरना जरूरी है। मौत के रास्ते बहुत हैं—वह अनिवार्य है। कोई रोग से मरता है, कोई चोट से। कोई अपनी इच्छा से मरता है—खुदकुशी करके। लेकिन रोग ही मौत के सिंह दरवाजे की पक्की सड़क है। रोग कोई हो, वह मौत का स्पर्श लाता है; सब रोग से आदमी मरता नहीं है, लेकिन वह उसे मौत की तरफ थोड़ा और बढा देता है; जीवनी-शक्ति घटाकर जरा ढकेल देता है उसकी तरफ। चिकित्सक इलाज करता है, अपने जानते उसे। जिसके जीने की उम्मीद लगती है, उसे वह मरने की नहीं कहता। रोगी के मरने की आशंका होती है, तो कोई इंगित-इशारे से बताता है, कहता है, बड़े डाक्टर को बुलाइए, कोई अपनी राय साफ जाहिर कर देता है।

विनय की दूकान पर ही बातें हो रही थीं। एक दिन बाद। महाशय ने शशांक की स्त्री को देखकर जो कहा है, उससे खासी सरगर्मी आ गई है। नवग्राम के डाक्टर हरेन्द्र, चारु बाबू, प्रद्योत—तीनों ने नाक-भौं सिकोड़ी। प्रद्योत ने कहा है—हाथ देखकर बताया है, तपेदिक नहीं है ?

यह हलचल शशि ने मचाई है। वह कहता फिर रहा है—शतमारी

भवेद् वैद्य, सहस्रमारी चिकित्सक। दो-चार हजार बेचारे रोगियो की जान लेकर आखिर जीवन महाशय बीमार को बचाने चले है। रामहरि को अमाशय से बचाया, अब शशाक की बहू को तपेदिक से बचायेंगे। राणा पाठक को बचायेगे।

शशि की हाँ-मे-हाँ मिला रहा है दाँतू। विनय ने कहा—वह गरीब ब्राह्मण कल अस्पताल से आकर शशि के साथ जा जुटा है। शशि ने उससे कहा है—दाँतू, जब जीवन महाशय तपेदिक अच्छा कर सकते है तो मैं तेरी बदहजमी नही ठीक कर सकूँगा ? कैनेविनिडिका पिलाकर चंगा कर दूँगा तुझे।

महाशय चौंके। दाँतू अस्पताल से भाग आया है या डाक्टर ने उसे छोड दिया है ?

जबर्दस्ती चला आया है। भूत का हल्ला हुआ था अस्पताल में, सुना तो होगा। तिस पर परसो रात अस्पताल की मेज पर विष खाकर परानी की बीवी मरी। दाँतू एकरारनामे पर सही बनाकर चला आया है।

महाशय अचानक अनमने हो उठे। खिडकी से बाहर गाछ के पत्तो पर टँगे आकाश की ओर देखने लगे। उनका मन मानो शून्यलोक की अन्तःहीनता में कुछ खोजने लगा। चेहरे पर हँसी की हल्की रेखा खिच आई।

—महाशय !

भारी गले से पुकारकर राणा पाठक अन्दर आया।

—मैं पहले से कुछ अच्छा हूँ। दो-तीन दिन से बुखार घट गया है। कल तो शायद था ही नही। वह आकर बेंच पर बैठ गया। लगभग पाँच सेर की एक मछली उसने जमीन पर रख दी।

महाशय राणा की ओर ताकने लगे। देखने लगे उसे। उसके चेहरे पर कुछ फर्क नजर आता है कि नही। राणा ने कहा—हरेन्द्र, चारु बाबू और अस्पताल के डाक्टर को आज मैं खरी-खरी सुना आया।

उसकी ओर देखते हुए भँवें सिकोडकर कहा—क्या कह आये ?

राणा ने कहा—को-ओपरेटिव या फो-ओपरेटिव क्या तो एक दवाखाना खुला है उन लोगो का। वही बैठे वे शशाक की स्त्री की बीमारी, मेरी बीमारी की चर्चा करते हुए आपकी निन्दा कर रहे थे। मैं खडा-

खड़ा सुन रहा था। मैंने भी कह दी दो बात। झट से उस नये डाक्टर ने कह दिया---लाख करो, तुम बचोगे नही। महाशय तुम्हें नही बचा सकेंगे। अगर जीना चाहते हो तो किसी टी. बी. अस्पताल में जाकर भर्ती हो जाओ।---सो मैंने भी सुना दिया।

—कटु बातें कही ?

—दो-चार जरूर कही। वैसी कटु नहीं। कही मगर दो-चार। कैसी कठिन बीमारी आपने अच्छी की है, सो कहा। उस कहार के तपेदिक का किस्सा सुनाया, जिसके मुँह से खून आता था।

—नही-नही। उस कहार को तपेदिक नही हुआ था। रक्तपित्त था।

—मगर चक्रधारी ने तो तपेदिक ही बताया था। चारु बाबू ने भी।

—हर आदमी से भूल होती है भैया।

—शशांक की स्त्री को भी तो उन लोगों ने तपेदिक ही बताया था। आपने कहा, तपेदिक नही है।

—हाँ। मेरे खयाल से इसमें भी उन लोगो ने गलती की है। वह अच्छी हो जायगी। एक्स-रे करें, तो तुरन्त मालूम हो जायगा। अच्छा नाड़ी-ज्ञान होता तो भी पकड़ सकते थे। हकीकत में, चकुल का दोष है। विधवा ठहरी, शरीर पर बेहिसाब जुल्म करती है, बेर करके खाती है, तीन-चार फाके कर लेती है महीने में। लीवर की खराबी से ही खाँसी हुई है। ऊपर से है पुराना ज्वर। वे लोग समझ नही सके।

—मुझे तो तपेदिक है। मै पहले से अच्छा हूँ।

—अच्छे हो ?

—लग तो रहा है। दो दिन से बुखार कम गया है। थोड़ा-थोड़ा है—बहुत ही थोड़ा, नाम को। खुद भी तो नाड़ी देखना आता है। उनकी पारे की छड़ी नही लगती मुझे। नियम से खाता-पीता हूँ। कुछ अच्छा लग रहा है। फिर उस दईमारी ने मेरा पिंड छोड़ दिया है।

वह मर गई।---राणा आशान्वित हो उठा है।

—हाथ देखिये न।

हाथ, छाती सब देखकर महाशय बोले---वही दवा चलने दो। इसी तरह नियम से रहो। देखो!

—कैसा देखा ? मुझसे कुछ छिपाने की जरूरत नही। राणा को तो आप जानते हैं। मृत्यु का डर नही है। मरने का शौक भी नही। मरने की सुनकर रो नही सकता। हाँ, अगर अच्छा हो सकूँ, कुछ दिन और जी सकूँ, तो क्यो न चाहूँ भला। जब तपेदिक हुआ है, तो समझता हूँ कि मेरे जाने का नोटिस तामिल हो चुका। अभी अगर जमानत पर दस दिन की छुट्टी मिल जाय तो मन की मुराद पूरी कर लूँ। यही और क्या ! आप बेखटके कहें।

—अभी कहने का वक्त नही आया। इतना कह सकता हूँ कि कुछ बिगड़ा नही है। तुम अब पन्द्रह दिन के बाद आना।

—खैर। पन्द्रह रोज पर ही आऊँगा। यह मछली आपके लिए लाया था।

—क्या जरूरत थी इसकी ? मेरे यहाँ कौन खायगा ?

—रास्ते में मिल गई, ले आया। इच्छा हो गई। नदी में मछुए शिकार कर रहे थे। नदी अपना इलाका है। मालगुजारी मिलती है। खड़े होकर देखा, काफी मछली आई—दो-ढाई मन। यह मछली जँच गई। फिर आप याद आ गये, उठा लाया। घर ले जायँ, विनय वगैरह को दे दें। मुहल्ले में बाँटें। मुझे बस, आशीर्वाद दीजिये। जीना-मरना जो भी हो, जल्द निपटारा हो जाय। ज्यादा झेलना न पड़े। खैर, मैं चला।

—गजब का आदमी है राणा। कोई डर नही। मगर वह बचेगा नही।

विनय बोला—तो रात आप ही के यहाँ रहा खान-पान। और-और सामान खरीदकर बहूजी को भिजवा दूँ मछली।

महाशय हँसे—भेज दे !—विनय चला गया।

घर में अकेले बैठे अपनी नाडी देख रहे थे। आजकल अक्सर देखा करते हैं। अगर सुन पायें मौत के कदमों की आहट ! इन दिनों एक यही कामना उनके मन में प्रबल होती जा रही है। मौत को वे सब इंद्रियों से प्रत्यक्ष करेंगे। सजग होकर बैठे रहेंगे। उसकी पगध्वनि, उसका रूप, उसका स्वर, उसका स्वाद, सब कुछ को प्रत्यक्ष करेंगे। रूप होगा तो देखेंगे उसे, स्वर होगा तो सुनेंगे, स्पर्श होगा तो अनुभव करेंगे। और अगर बन पड़ा तो यह बता जायेंगे।

वह अतर बहू है ? मंजरी है वह । वह कैसी है ? कौन है ?

*　　　*　　　*

एक जवान औरत उनके कमरे में दाखिल हुई । अचरज से वे उसके चेहरे की ओर ताकते रहे ।

बड़ी-बडी आँखें, शांत दृष्टि, हँसता हुआ चेहरा, गोरा रंग, उम्र बाईस-तेईस की । सफेद ब्लाउज, फीता कोर की सफेद साडी, गले में हार की एक लडी झकमका रही है, दोनो कलाई गहनो से खाली, बायें हाथ में काले फीते में बंधी हाथ घड़ी । अग-अग में प्रसन्नता की छाप ।

देखकर आँखें जुडा-सी गई ।

उसने कहा—मैं यहाँ नर्स होकर आई हूँ । आपका नाम सुना है, अस्पताल के सामने से आते-जाते देखती हूँ । आपसे बातें करने को बड़ा जी चाहता है । बाजार आई थी । देखा कि आप अकेले बैठे हैं ।

—बैठो बिटिया, बैठो । बाते करने आई हो तो खडी रहने से काम कैसे चलेगा ? मेरे जैसे बूढे आदमी से सकोच भी क्या ? बैठो । उस दिन रात में अस्पताल के बरामदे पर तुम्ही खड़ी थी ?

—आपको मैंने देखा था ?

—मुझको ?

—आपके बारे में बहुत किस्से सुन रक्खे है ?

—किससे ?

—अपनी माँ से । मेरी माँ को, मुझको आपने बचाया था । तब मैं निहायत छोटी थी । मेरा जन्म यही हुआ है । आप ही के गाँव में ।

कौन हो बिटिया तुम ? मै तो—उनके अचरज की सीमा न रही ।

—आप कैसे पहचानेंगे ? मेरी माँ के पिता जी यहाँ नौकरी करते थे। आपको कैसे याद रह सकता है ? बहुतो को बचाया है आपने, सब याद है ? मगर जो आपकी कृपा से जी उठे हैं, उन्हें याद है ।

है याद ?—जीवन महाशय हँसे ।

—मुझे तो है । मै तो एक तरह से मर ही चुकी थी । माँ कहती है । इसीलिए अस्पताल में सबसे झगड़ पड़ती हूँ मैं । लोग कहते हैं, डाक्टरी पास नही की है । यों ही हैं !

महाशय हँसे।

वह बोली, मैं कहती हूँ, नही। यो ही वे नही हैं। माँ से मैंने सुना है आप महाशय हैं। यानी महाशय-वश के हैं।

आश्चर्य का ठिकाना न रहा—तुम्हारी माँ! कौन?

वह चुप रही। जरा देर बाद कहा—किसी दिन आऊँगी मैं। बताऊँगी सब।

झुककर उसने पाँव छूकर उनको प्रणाम किया। महाशय व्यस्त-से हो उठे।

—मुझको प्रणाम कर रही हो। मैं कायस्थ हूँ। तुम ब्राह्मण या या वैश्य तो नही हो?

—नही। और अगर हुई भी तो क्या हुआ। आप महाशय हैं।

—खाक महाशय! महाशयत्व अब गया! लेकिन अचरज की बात। दुनिया में ऐसी कृतज्ञता भी होती है! जाने कब, किस जमाने मे उसकी याद की सीमा के बाहर किस बीमारी से तो चगा किया था उसे। उसके लिए ऐसी कृतज्ञता!

—तो आज मैं आज्ञा माँगती हूँ।

महाशय सजग हो गये। बोले—तुम्हारा परिचय तो नही मिला। लेकिन नाम?

—सीता।

—सीता?

वह धीरे-धीरे वहाँ से चली गई।

महाशय!—कदरू आकर खडा हो गया।—मैं पहले से अच्छा हूँ दवाई चाहिए।

पैंतीस

कई महीने बाद चैत का महीना। गर्मी खूब पड़ गई है। तीसरे पहर आरोग्य-निकेतन के बरामदे पर महाशय सिताब के साथ शतरंज खेलने बैठे थे।

लगातार हार रहे थे महाशय। बायें हाथ से दाये हाथ के कब्जे को पकड़कर चाल सोच रहे थे। एकाएक कहा—नः, मात से बचने की गुंजाइश नही। हार गया।

सिताब ने कहा—तुझे हो क्या गया है, बता तो?

महाशय हँसे।

—खेल में जी नही लगता। आज-कल हो क्या गया है? और नाड़ी देखते रहते हो। बायें हाथ से दायें हाथ की नाड़ी थामे ही बैठे रहते हो।—अचानक थकित होकर सिताब बोल उठा—जीवन?

महाशय ने हँसकर कहा—कुछ नही रे, कुछ नही। लेकिन अब अच्छा नही लगता है। इसीसे देखा करता हूँ। लेकिन नही, नाड़ी में कुछ मिलता नही है।

दीर्घ निश्वास फेंककर सिताब उदास हो रहा। शतरंज की गोटियाँ बैठाना उसे अच्छा नही लगा।

इसी समय अंदर से सीता निकली। वही नर्स। चाय के कटोरे दोनो हाथो लाकर उसने नीचे रख दिये। बोली—तो मैं जाती हूँ दादा जी! आज साँझ ही से ड्यूटी है।

जाओ—महाशय ने स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरा—कल कब आओगी?

—सुबह नहा-धोकर एक नींद सो लूँगी, तब।

—चलो, विनय के यहाँ जाते हुए कदरू को देखता चलूँ।

वह लड़की चली गई।

गर्दन हिलाकर उत्साह दिखाते हुए सिताब ने कहा—इस कदरू को तो अस्पताल के डाक्टर ने खूब बचाया।

—बेशक, कोई सोच भा नहीं सका था कि नश्तर करके डाक्टर उसे

मौत के मुँह से निकाल लेंगे। चारु वाबू, हरेंद्र किसी ने यह कल्पना नही की थी। चारु वाबू ने तो यह कहा था, इस बुड्ढे पर छुरी चलाकर मश्क कर ले। कदरू भी मरेगा तो जी जायगा। स्ट्रेंगुलेटेड हार्निया का भी यहाँ आपरेशन हो सकता है? हो क्यो नही सकता। सव होता है। साहस चाहिए। प्रद्योत में वह है।

कदरू को स्ट्रैंगुलेटेड हार्निया हुआ था। पहले तो वह पेट का दर्द समझकर घर ही पडा रहा। किशोर को खवर मिली तो उसने उसे जवर्दस्ती अस्पताल में दाखिल करा दिया। आपरेशन नही होता तो भी वह मरता। प्रद्योत ने किसी की न सुनी। आपरेशन किया। कदरू वच गया। धीरे-धीरे वह अच्छा हो गया। महाशय रोज एक वार देख लेते हैं। प्रद्योत से अक्सर भेंट होती है। हँसकर नमस्ते करके कहता है–आपका कदरू अच्छा है।—एक दिन वोला—आप उसकी नाडी देखकर उसे एकबार कह दें कि वह अच्छा है। नही तो वह यकीन ही नही करता। ऐसा मरीज पाना सौभाग्य की वात है।

सिताब ने फिर मोहरे सजाने शुरू कर दिये। कहा—लेकिन इस लडकी से बेवजह जकडा जा रहा है तू।

सिताब ने सीता के वारे मे कहा। उससे इन कुछ ही महीनो में बड़ी घनिष्ठता हो गई महाशय-परिवार की। मतलव कि न केवल महाशय से वल्कि महाशय की स्त्री से भी।

महाशय हँसे।–इस पर इन्सान का भी कोई वस चलता है सिताव? मै दाँतू की शिकायत करता था। लोभ और लोभ। देख रहा हूँ, यह भी माया है। माया को छोडने का कोई उपाय नही। छोड़ने की सोचो तो जी तडपता है। गाँठ और मजबूत होती है।

उदास आँखो महाशय आकाश की नीलिमा को देखने लगे। सिताव बुत वने बैठे रहे। इतनी घनिष्ठता सिताब को भी खलती है। उसी छोर से मानो सैकडो वधन में वँध गया जीवन। जीवन अगर जवान होता, जवान क्या प्रौढ भी होता और महाशय नही होता, तो लोग उसे बदनाम करते। फिर भी लोग पूछ ही बैठते है—आखिर इतना सरोकार क्या है?–सिताब ही से सवाल करते। महाशय को बचाने की नीयत से सिताब

जवाव देता—इतना भी नहीं समझते भैया ? बेटा-बेटी, नाती-पोते, सबं-ने जव छोड़ दिया, तो यह आ टपकी, इन लोगों ने भी इसे अपना लिया।-मगर लोग सुनने क्यों लगे। कहने लगे—इस नर्स-वर्स की जात-पाँत का क्या ठिकाना।—सिताव कहता—यह सव भैया वीते जमाने की वात है, आज की नही। जीवन की स्त्री भी उस लड़की को प्यार करने लगी है। अतर वहू का प्यार करना मामूली वात नहीं है। वह रोज आती है। किताव पढ़कर अतर वहू को सुनाती है। अतर वहू का दुखड़ा सुनती है। इन सबके वावजूद सिताव को सदेह होता है कि वह लड़की एक ही सयानी है। बूढे दपति के जीवन के सूनेपन का लाभ उठाकर वह उनका शोषण कर रही है। रुपये-पैसे भी लेती है। ये लोग भी—कम-से-कम जीवन देता है।

जीवन के अंतिम दिनों में जीवन महाशय की तकदीर मानो लौट आई। नाम-गाम भी लौट आया। शुरुआत हुई थी इसकी रामहरि को चंगा करके, उसके वाद शशाक की स्त्री की बीमारी में उनका इलाज देख-कर लोग दंग रह गये। डाक्टरों ने तपेदिक वताया था। जीवन महाशय ने कहा था—नही तपेदिक नहीं है। मैं इसे एक ही डेढ महीने में नीरोग कर दूँगा। उनकी वात अक्षरश: सत्य हुई। डेढ ही महीने में शशांक की स्त्री एक वारगी अच्छी हो गई। उसमें जो लगन, जो निष्ठा जीवन महा-शय ने दिखाई, अद्भुत है। अपने हाथों दवा तैयार की। एक दिन वीच करके दो मील राह तै करके उस टूटे-फूटे मकान के सामने जाकर सवेरे आवाज देते—विटिया !

मरी वैष्णवी मानो उनके इतजार में ही रहती। हँसती हुई कहती—आइये।

—विटिया जग गई ?

—जी हाँ तड़के से ही वैठी राह देख रही है। पूजा-पाठ हो चुका है।

विना कोर की सफेद साडी पहने दुवली-दुवली-सी वह गोरी-गोरी औरत घूंघट को थोड़ा-सा खींचकर हँसती हुई उनका स्वागत करती—आपने आने की तकलीफ क्यों उठाई ? दवा भेज देने से ही तो चल जाता काम। मैं अच्छी हूँ।

—जरूर अच्छी रहोगी। तुम्हारी बीमारी पेचीदी हो जरूर गई है, मगर कठिन नही है। फिर तुममें सहने की अपूर्व क्षमता। उसी से शरीर की अपेक्षा तुम्हारा मन ज्यादा दुरुस्त है। नाडी देखनी है। इसी के लिए आ गया।

वह लजा जाती। कभी-कभी कहती—मुझे बचाने के लिए इतनी कोशिशे क्यो करते है आप ? मुझे शर्मिन्दा होना पड़ता है। मेरी जिंदगी खत्म नही होने की। आखिर इतनी तकलीफ कौन झेलेगी ?

महाशय ने कहा था—दुनिया सुख-दुख की है। जितना सुख है, उतना ही दुख है। यहाँ सहने के लिए जन्म होता है।

हँसकर वह बोली थी—ठीक है बाबा, जितना कड़वा, उतना मीठा। न उगलते बने, न निगलते।

—बजा कह रही हो तुम। मुझी को देखो। जो भी हो, दुनिया में मरने की कामना नही करनी चाहिए। और मौत के डर से दुनिया को पकड़कर रोना भी नही चाहिए। दोनो पाप है।

—उसी पाप के डर से तो। वरना—

एक दिन महाशय ने कहा था—पाप तो नही, अन्याय कुछ करती हो तुम। मुझ पर गुस्सा न होना—

वह चौंक उठी थी—कौन-सा अन्याय बाबा ?

—बेटी, यह आत्मा जो है, जिस पर मनुष्य का सारा कुछ है, वह दरअसल देहाश्रयी है। अगर देह न हो तो वह बेपनाह, बेसहारा हो जाय, कुछ भी न रहे उसका। तुम उसी देह की हिफाजत नही करती। जिस मदिर में देवता रहते है, अगर उसकी उपेक्षा हो, तो उसमें देवता कैसे रह सकते है ? शरीर को दुखाकर समय से पहले ही जाने को उसे मजबूर करना भी एक तरह की आत्महत्या है। उसकी थोड़ी हिफाजत करनी होगी।

शशाक की स्त्री ने इस बात की रक्षा की।

अगर कभी महाशय सवेरे नही जा सके, तो दोपहर की चिल-चिलाती धूप झेलकर उसके यहाँ पहुँचे।

आखिर वह चगी हो गई। फिर अपने भतीजे के साथ हो गई।

घर लिवा जाने के पहले उसके भतीजे ने शहर में उसका एक्स-रे कराया। सब प्रकार से निस्सन्देह होकर तब घर ले गया। जीवन महाशय ने जो कहा था, एक्स-रे से वही साबित हुआ। आज भी मरी भीख की झोली लिये 'जय गोविंद' कहती हुई उनके पास कभी-कभी आ जाती है। झोली में से निकालकर मिठाइयाँ देती है—अभया ने प्रसाद भेजा है।

महाशय का कहा और भी सही निकला है। दाँतू घोषाल मर गया। भूत के डर से वह जबर्दस्ती अस्पताल से भाग आया था। पड़ गया शशि के फेरे में। दो-ही-चार दिन बाद बड़ी धूमधाम से विपिन का श्राद्ध हुआ। उसमें दाँतू ने खाया, खाया सो गजब का खाया !

पडा बीमार।

उसका आखिरी इलाज फिर जीवन महाशय ने ही किया। दाँतू ने और किसी को बुलाया भी नही। उन्ही को बुलवाया था। शशि बुलाने आया था।

महाशय के दोनो हाथ पकड़कर दाँतू रोया था।

महाशय ने कहा था—मैं क्या कर सकता हूँ दाँतू ! और कोई भी क्या कर सकता है। श्राद्ध का भोज खाने के लोभ से तू अस्पताल से भाग आया ?

दाँतू ने इनकार किया—गुरु की कसम महाशय, ईश्वर की शपथ। भूत के डर से भागा था। अस्पताल के डाक्टर के यहाँ भी—

दाँतू !—झिडक कर महाशय ने कहा था—दाँतू !

दाँतू तुरत चुप हो गया था। महाशय ने कहा—वह तू था। डाक्टर की खिड़की के पास से भूत बनकर गोश्त तूने माँगा था ! मैं खूब जानता हूँ। मगर यह कसूर तेरा नही। लोभ तेरा दुश्मन बन बैठा है। तू नही छोड़ सकता—हरगिज नही। मैं तेरा इतिहास जानत हूँ। इसीलिए इस विश्वास के साथ कहा था कि यह तुझे ले डूबेगा। अस्पताल के डाक्टर तेरी रामकहानी नही जानते हैं, शायद मेरी तरह वे यकीन भी नही करते उस पर, इसीलिए तुझे बचाने की कही थी।

दाँतू फफक-फफककर रोया था। महाशय ने कहा था, खैर, डरना क्या है। मरना तो एक दिन सबको है। मैं भी मरूँगा। मनुष्यजन्म

लेता है, उससे क्या, उसके नसीब में सुख कितना है, दुख कितना है, कोई नही कह सकता, सब कुछ अनिश्चित है, निश्चित केवल एक ही बात है, वह यह कि उसे एक दिन मरना होगा। तेरी उमर भी तो कम नही है। धीरज रख, भगवान का नाम ले। मृत्यु से जितना ही डरेगा, उतना ही रोना पडेगा। डर मत, फिर पता चलेगा कि मौत ही तेरा वास्तविक सुख है। आखिर इस गये-बीते शरीर को लेकर करेगा भी क्या ? बदल डाल इसे, बदल डाल।

बडी देर तक रोने के बाद दाँतू ने कहा था—अबकी बार मुझे बचा लो, अब मैं लोभ से ऐसा हर्गिज नही खाऊँगा। हर्गिज नही।

महाशय हँसे थे। कहा था—कोशिश तो जरूर करूँगा। लेकिन खोलकर कही देना ठीक है, तेरे शरीर में अब कुछ रह नही गया है। नाडी बता रही है—

छिः-छि-छि। छिः-छि-छि।

बीच ही मे दाँतू चीत्कार कर उठा था। उसकी मौत के समय भी महाशय उपस्थित थे। आखिरी दम तक उसे ज्ञान था, वह सिर्फ रोता रहा था। आँखो से अनर्गल बहते रहे थे आँसू। महाशय ने एक बार पूछा था—क्या हो रहा है तुझे ?

गर्दन हिलाकर उसने कहा था, पता नही। डर लगता है। वही बात पुराने समय की, आदि काल की पुरानी बात। महाभय! महा अंधकार! महाशून्य! साँस लेने की हवा नही। खड़े होने की जगह नही। कुछ भी नही। कोई नही—मैं नही।

जरा देर के लिए महाशय को भी उसकी छूत लग गई थी मानो। गभीर स्वर से वे पुकार उठे थे—परमानद माधव हे!—महाशय के साथ सिताब भी थे। उनका भी चटशाले का सहपाठी था दाँतू। ये उसे देखने गये थे। सिताब ने महाशय का हाथ कसकर पकड लिया था।

तब से जिंदगी के दिन अच्छे जा रहे हैं। आमदनी भी बढ गई है। सिताब का खयाल है, इन्ही बातो से यह सीता महाशय से इस तरह चिपट गई है—आलोक लता की तरह पुराने सखुए पर फैल गई है, उसका रस

खींच रही है। सिताब इसीलिए संतुष्ट नहीं है। वह कहता है, आज भी कहा—फिर भी मैं यह कहूँगा जीवन, तुम्हारी यह हरकत लोगों को खल रही है। जाने किस खानदान की, कहाँ की लड़की और कहाँ तेरा महाशय-वंश !

हँसकर महाशय बोले—महाशय-वंश की दशा भी उस लड़की ही जैसी है। फर्क क्या है बता ?—और—। कुछ और भी कहने जा रहे थे, महाशय, अचानक थम गये।

रुककर वे उत्कर्ण हो उठे।—कोई रो रहा है न सिताब ?

—रो रहा है ? हाँ। किसकी तबियत खराब थी ? हाँ, रो ही तो रहा है !

महाशय उठ खड़े हुए। कहा—शतरंज उठा लो। देखूँ ज़रा।

बूढ़े सिताब इन मामलों में निरासक्ति की सीमा पर पहुँच गये हैं। उन्होंने कहा—जाने किसे क्या हुआ ?—उन्होंने हुक्का सम्हाला।

—शायद मोती लुहार के यहाँ किसी को कुछ हुआ है। उसकी माँ को उस बीमारी के बाद से सिर्फ वही लोग मुझे नहीं बुलाते हैं। बात-बात में अस्पताल। और किसी के यहाँ कुछ होता तो मुझे जरूर खबर होती।

इसके लिए महाशय को अफसोस नहीं है। मोती पर उन्हें कोई गुस्सा नहीं। वे जानते हैं, उनसे अच्छी तरह और कोई भी इस बात को नहीं जानता कि वे लोग जो महाशय को नहीं बुलाते सो अविश्वास से नहीं। शरम के मारे नहीं बुलाते हैं। मोती की माँ निदान को झूठ बनाती हुई बच गई, इसी शरम से वे इन्हें नहीं बुला सकते। मोती तक उनके सामने नहीं आता—कतराकर निकल जाता है। लेकिन बात क्या हुई ?

जल्दी-जल्दी पाँवों में जूते डालकर महाशय निकल पड़े। कुछ दूर जाकर ठिठक गये—मोती की माँ ही तो नहीं चल बसी ? नहीं—।

रोना-धोना मोती के ही यहाँ चल रहा था। लेकिन सबकी आवाज के ऊपर मोती की माँ की चीख।—हे भगवान्, यह क्या हुआ ? मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती—मेरे पोते को बचा दो, नहीं तो मुझे क्यों बचा लिया तुमने ? महाशय तेजी से चलकर उसके मकान के सामने जाकर खड़े हुए।

ठीक इसी समय अस्पताल के डाक्टर उसके यहाँ से बाहर निकले।

महाशय से उनकी आँखें मिल गई। पीछे से पगली-जैसी बाहर निकली मोती की माँ। लँगडाती हुई दौडी-दौडी डाक्टर के सामने आकर खड़ी हुई। पैरो पर पछाड खाकर गिर पडी। लाचार डाक्टर को रुकना पड़ा। कहा—छोडो, जाने दो।

मोती की माँ चिल्ला उठी—तो मुझे मारकर जाओ। जहर दे दो। मरने की दवा दो।

जीवन महाशय ने गम्भीर आवाज मे कहा—मोती की माँ!—उनकी ओर देखकर मोती की माँ ने नये सिरे से विलाप करने की कोशिश की। लेकिन उसी गम्भीर आवाज में महाशय बोल उठे—उठो, चुप हो जाओ। हर कुछ की एक हद होती है। मगर हुआ क्या है? किसकी तबियत खराब थी?

मोती की माँ चीखकर ही कुछ कहा चाहती थी। महाशय ने कहा—इस तरह से नही, ऐसे नही। धीरज धरो, धीरज धरकर बोलो।

अस्पताल के डाक्टर बोले—मोती का बडा लडका मर गया। आ छि! छि.!—महाशय बोल उठे। बारह-तेरह साल का लडका। पत्थर का बना हो जैसे, ऐसा मजबूत! क्या हुआ था उसको?

—शायद मैलिगनेंट मलेरिया। महज दो दिन का बुखार। हर्ट फेल कर गया।—डाक्टर कह रहे थे, लेकिन मोती की माँ बीच ही में आर्तनाद कर उठी।—अरे मेरे सोना! मेरे राजा बेटे!

छाती पीटने लगी, सिर धुनने लगी।—तूमने मुझे क्यो बचाया, मुझे क्यो बचाया?

डाक्टर अजीब उलझन में पडे। उधर उनकी साइकिल की हवा निकल गई थी। चारो तरफ लोग जमा हो गये। धीमे-धीमे कहने लगे—क्या बात है? रोग को समझ ही नही सके क्या?

जीवन महाशय ने मोती को पुकारा।

मोती दोनो हाथो से सिर थामे बैठा था। जोरो से रो पडा—महाशय चाचा, आपको दिखाता तो मेरा बच्चा—जीवन महाशय ने बीच ही में टोका—नही। मुझको दिखाने से ही वह बच जाता यह किसने कहा? डाक्टर-वैद रोग अच्छा कर सकते है, मृत्यु-रोग को

अच्छा नही कर सकते।

मोती की माँ फिर चीख उठी—मुझे बताओ मैं क्या करूँ?

—करना क्या है, सहो। दुनिया में जब परिवार बढ़ जाता है, तो या तो छुटकारा लेना चाहिए, या सहना चाहिए। मौत का यहाँ विराम नहीं, मौत बालक-बूढ़ा नही पहचानती। क्या करोगी, बरदाश्त करो।

—मुझे क्यों बचाया? मुझे क्यों बचा लिया?

—इसलिए कि यह शोक तुम्हारे नसीब में बदा था। तिस पर तुमने जीना भी चाहा था मोती की माँ।

कोई बोल उठा—यह तो सदा का नियम है। कोई बूढा अगर मृत्यु-शय्या लगाकर उठ बैठता है तो उस पर किसी-न-किसी को सोना पड़ता है। कर चुकाना होता है।

जीवन महाशय चुपचाप चलने लगे, पीछे-पीछे अस्पताल के डाक्टर एकाएक बोल उठे—अभी तो यहाँ मैलिगनेंट मलेरिया नहीं है। मुझे उसका संदेह नही हुआ। इन लोगो ने कहा भी नहीं। आज बताया कि कई रोज पहले लड़का ननिहाल गया था। वहीं से ले आया।

एक लंबा निश्वास छोड़कर जीवन महाशय ने कहा—रोग के विवरण में भूल, डाक्टर के इलाज में भ्रम, दवा का न मिलना—यह सब मृत्यु-रोग के उपसर्ग चाहे न हो, हेतु हैं। नहीं तो चिकित्सा-विज्ञान—हम लोगों में आयुर्वेद को पंचम वेद कहा जाता है। विज्ञान वेद है, यह झूठ नहीं। झूठ इन्ही कारणों से होता है। मौत आती है। अवश्य, आज की रोग-परीक्षा की और भी उन्नति होगी। तब की बात नही कह सकता मैं कि क्या होगा। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि भूल जरूर होगी।

जरा चुप रहकर प्रद्योत ने कहा—नाड़ी देखकर आप समझ लेते कि यह मैलिगनेंट मलेरिया है?

—ऐसी स्थिति में शायद नही समझ सकता। और समझ भी जाता तो बचा नही सकता।

—यह सही नही। लाखो-लाख लोग चिकित्सा के बिना असमय में मर रहे हैं।

—हाँ, सो मर रहे हैं।

इसके बाद दोनो चुपचाप चलते रहे। महाशय डाक्टर की ही सोच रहे थे। मरते हैं, असमय में, इलाज के बिना बहुत-से लोग मरते हैं।

अचानक प्रद्योत ने निस्तब्धता भग की। कहा—लेकिन आपने मोती की माँ से आज जो बातें कही, मुझे अच्छी लगी। ठीक ही कहा आपने, जब समय पहुँच जाय, तो मुक्ति लेनी चाहिये। मेरी सास की एक नानी है। तीनो कुल के सब जा चुके—एक वही रह गई हैं। मैं जभी जाता हूँ कहती हैं—तुम तो डाक्टर हो, मेरे आँख-कान तो ठीक कर दो! वैसी ही है मोती की माँ। अगर आपरेशन नही होता, तो वही होता, जो आपने कहा था। मरती वह। लेकिन आपने जो गगा के किनारे जाने की कही, सो उसके रोने की पूछिये मत! मेरे पैर पकड कर कहने लगी—मुझे बचाओ डाक्टर बाबू! इस रोग से मैं नही मर सकूँगी—इससे मरकर मुझे शाति नही मिलेगी। मेरी गति नही होगी।

—डाक्टर साहब, यह सब है छलना। आदमी जहाँ माया-मोह से बेतरह जकड़ जाता है, मौत के भय से भयभीत हो जाता है, वहाँ वह बहुत-से बहाने बनाता है कि मैं इस वजह से अभी जीना चाहता हूँ। मुझे बचालो। मौत से डरना बडे शर्म की बात है, इसीलिए आदमी उसे छिपाता है।

—ठीक कहा आपने। मोती की माँ ने यही कहा था। कहा था—एक इच्छा रह गई है। पोते की बहू को देख जाना चाहती हूँ।

महाशय हँसे। बोले—मोती की माँ अगर फिर बीमार पडे, तो किसी और ही कारण से अब जीना चाहेगी। लेकिन इस लडके की मौत तो बडी मार्मिक है। बडी अच्छी तदुरुस्ती थी। जीता तो बडा बलवान आदमी होता। स्कूल में पढता, बाप की मदद करता, हथौडा पीटता। उसे देखते ही मुझे मगल काका के बालक कालकेतु की याद आ जाती थी।

अकाल मृत्यु से बढकर दुखद और कुछ नही। इसे रोकना ही संसार का सबसे बडा कल्याण है। सुख की सबसे बडी बात है। यही मौत की मौत है, बुढापे में वह अमृत है।

अस्पताल के डाक्टर ने कहा—आज की ये बातें मुझे सदा याद रहेंगी। मैं बड़ी उलझन में पड़ गया था।

—नहीं-नहीं। उलझन की क्या बात। कोशिशों में तो आपने कुछ उठा नहीं रक्खा। आप क्या कर सकते थे?

वे अस्पताल के करीब जा निकले थे। डाक्टर का नौकर अंदर से दौड़कर निकला। फाटक खोल दिया। डाक्टर की स्त्री बरामदे पर आ गई। अचरज से देख रही थी शायद। कुछ हटकर अस्पताल के बरामदे पर सीता खड़ी थी। वह भी देख रही थी।

डाक्टर ने कहा—आइये। जरा देर बैठेंगे नहीं? आप बहुत बार अस्पताल आये, अब भी आते हैं, कदरू को देख जाते हैं। मैंने कभी नहीं बुलाया। आज जरा देर मेरे यहाँ नहीं बैठेंगे?

हाथ जोड़कर महाशय ने कहा—आज माफ करें डाक्टर साहब! फिर आऊँगा।

प्रद्योत जरा देर चुप रह गया। उसके बाद बोला—शायद आपके प्रति मुझसे कोई त्रुटि बन पड़ी है। मगर यकीन मानें, वह त्रुटि मैंने जानकर नहीं की है। आपकी और मेरी चिकित्सा-प्रणाली में बड़ा प्रभेद है। अपने मत को छोड़ आपके मत का मैं विश्वास नहीं कर सकता। उसमें मैं उलझन में पड़ जाता हूँ। इलाज नहीं कर पाता। लेकिन हाँ मोती की माँ का निदान सुनकर और उसे उस बुरी तरह से रोते देख मुझे गुस्सा हो आया था। आज मैंने यह जरूर महसूस किया कि वह मर ही गई होती, तो अच्छा था। लेकिन हम लोग तो ठीक-ठीक उसी निगाह से नहीं देखते।

हँसकर महाशय बोले—जानता हूँ। हम लोग पहले इसी नजर से देखा करते थे। खासकर अगर रोगी बूढ़ा होता और रोग कठिन होता, तो पीड़ा कम करने की ही कोशिश करता, मौत से छीना-झपटी करके उसे बचाने की चेष्टा नहीं करता। कह देता था, इशारे से, साफ-साफ भी—अरे भई, और क्यों? बहुत कुछ तो देखा, बहुत उपभोग किया, अब इस धूल की धरती से नजर उठाकर ऊपर की ओर ताको। साधारण आदमी, आकाश के सूनेपन में पकड़ने लायक तो कुछ पाता नहीं, इसलिए

राय देता, तीरथ जाओ, देवता के मंदिर के कगूरे की तरफ ताकते रहो।
हाँ, बुढापे में भी जो बहुतो के आश्रय रहे, बहुत काम के रहे, उनके लिए मौत से लडाई नही लडी हो, ऐसी बात नही। लडी है।

प्रद्योत ने कहा—और कोई दिन होता, तो उलझ पडता मैं। आज नही। मैंने अपनी ही ननिया-सास का जिक्र किया। हमी कहते है, बुढिया मर जाय तो छुटकारा मिले। उसे भी, हम लोगो को भी।

महाशय ने कहा—बेशक, ऐसा भी होता है। दुनिया का वह भी एक पहलू है। सुखी जीवन, रग-रस से भरपूर जीवन भला जीर्ण वस्तु को कैसे बर्दाश्त करे ?

प्रद्योत ने कहा—कई केसो में मैंने आपको हाथ नही देखने दिया है। मुझे डर लगता था, जाने क्या कह बैठेगे आप। आपके हाथ देखने का मुझे डर लगता है कभी-कभी। अहीन्द्र सरकार के नाती की बीमारी में लगा था।

—उसे तो गजब बचाया आपने। गजब का इलाज किया। पहली ही बार जो नाडी देखी, मुझे मौत के पैरो की आहट मिली थी। मैंने उसका हाथ बार-बार क्यो देखा, पता है आपको ? मौत को मैंने पीछे हटते हुए देखा था!

प्रद्योत अवाक् होकर महाशय के चेहरे की ओर ताकता रहा। ऐसा नही कि वह समझता नही, लेकिन इसे वह इस तरह से जाहिर नही करता—इस ढग से अनुभव नही करता है वह।

—तो आज मैं चलूँ।

—हाँ, एक बात और। राणा के बारे में क्या है ?

—वह नही बचेगा डाक्टर साहब! राणा को यह मालूम है। वह भी एक गजब का आदमी है। मरने को तो वह डरता नही है। शायद हो कि आप लोगो की चिकित्सा से उसकी जान बच जाती। लेकिन वह कहता क्या है, जानते हैं ? कहता है, चगा भी होऊँगा तो वह मैं नही रह जाऊँगा। लाचार की कोटि में रहकर जीना पडेगा। डर से लाग पास नही फटकेंगे। बाल-बच्चे डरते रहेगे। उस तरह का जीना जीने के लिए आखिर इतनी तकलीफ क्यो उठाऊँ, इतना खर्च क्यो करूँ ? उससे तो यही बेहतर है कि जो भी बने आप ही करें।

एक दीर्घ निश्वास छोडते हुए फिर वोले—अव तो राणा मुझे भी नही दिखाता है। अव मदिर की दवा खाता है।

सोचते-सोचते ही महाशय घर लौटे। काश, राणा को वचा पाते!

राणा को प्रद्योत-जैसे लोग वचा सकते थे। वचा सकते थे! उनके पास इसका इलाज भी था—उस इलाज की व्यवस्था उनके पास नही है—वैसी शक्ति भी नही—नही थी वैसी शक्ति!

यह चिकित्सा-शास्त्र वडल्ले से वढ रहा है। अणुवीक्षण ने दिव्यदृष्टि खोल दी है। एक के वाद दूसरे वीजाणु का आविष्कार होता जा रहा है। रोगो के होने की जो धारणा है, उसका आमूल परिवर्तन हो रहा है। आज सभी रोग आगतुक की कोटि मे आ गये हैं। सवका मूल वीजाणु है। वीजाणु, जीवाणु, कीटाणु—वाइरस। भोजन में, पानी में, हवा में विचरण करते हैं। मनुष्य के शरीर में वेहद वढ़ते है ये। अपने शास्त्रों में उन्होंने पढा है—दक्ष-यज्ञ में रुद्रमूर्ति शिव के रोप का जव अन्त हुआ तो ज्वर की सृष्टि हुई। वहुत-वहुत आकार, वहुत-वहुत प्रकार। उनकी प्रकृति का निरूपण करके आचार्यो ने उनका नाम रक्खा था। चन्द्रमा पर दक्ष प्रजापति का अभिशाप था, उसी से यक्ष्मा की उत्पत्ति हुई थी। अतिरमण को ही यक्ष्मा के आक्रमण का वडा कारण माना जाता था। आज भोजन की कमी उसका मूल कारण है। प्रत्येक ज्वर के कारण को उन लोगो ने अणुवीक्षणता से प्रत्यक्ष किया है। ज्वर भी कितने प्रकार का! काला-ज्वर तो उन्ही के समय में पकड़ में आया।

काला ज्वर की दवा व्रह्मचारी महोदय की सुई है। प्रंटुसिल, सल्फा-ग्रूप, उसके वाद पेनिसिलिन, टेरामाइसिन—दवा-पर-दवा। हरेन्द्र से उस दिन सुन रहे थे। पेनिसिलिन को आँखो देखा है, वाकी दवाओ को देखा नही है। और भी जाने वहुत-सी दवायें निकली हैं—उन्होने उनका नाम भी नही सुना है शायद। अल्ट्रावायोलेट किरण की चिकित्सा!

लहू, कफ, पीव, थूक, मल-मूत्र की जाँच।

व्लडप्रेसर की जाँच।

एक्स-रे परीक्षा। तपेदिक के रोगी के फेफड़े नजर आते हैं। और

वैसी ही उसकी दवा ।

स्ट्रेप्टोमाइसिन टी. वी की जोरदार दवा है। उसके सिवा भी कोई पी. ए एस दवा निकली है। सुना है। दोनो के एक साथ इस्तेमाल से आश्चर्यजनक लाभ होता है। और शल्यचिकित्सा की भी सुनी है।

अचानक एक पुरानी वात याद पड गई।

गुरु रगलाल से हैजे का नुस्खा लेने गये थे। मौत के डर से डरे हुए लोगो के सिलसिले में कहा था—मौत मानो दोनो हाथ पसारे पागल की-सी भयावनी मूर्ति धारण किये खेद रही है, आदमी भाग रहे हैं, आग लगे वन के पशुओ-जैसे दिशा-ज्ञानशून्य होकर भाग रहे है।

रगलाल डाक्टर ने कहा था—तुम्हारी नजरो में सिर्फ मनुष्य का भागना ही आया, मनुष्य उससे हर पल जूझ रहा है, यह नही देखा तुमने ? वह सदा पीछे जरूर हटता रहा है, मगर पीठ दिखाकर नही। उसने नये-नये हथियारो का ईजाद किया है। उसकी इस कोशिश का अन्त नही है। मौत को रोका नही जा सकेगा, मौत रहेगी। लेकिन रोग का वह निवारण करके ही रहेगा। लोग योगी की तरह परिणत अवस्था मे मरेंगे। चिकित्सक के पास जाकर कहेगे—वस। अव छुट्टी चाहिए। सोना चाहते है। पुट मी टु स्लीप प्लीज। उस दिन जीवन ने मन-ही-मन कहा था—हाँ। निद्रा नही, महानिद्रा !

छत्तीस

अप्रत्याशित तो नही थी, लेकिन खबर मानो अचानक मिली। महीने भर वाद। वैशाख के आखिरी हफ्ते में।

राणा पाठक मर गया ।

किशोर ने खवर दी। वह वहाँ गया था। राणा ने वुलवा भेजा था। नवग्राम के कुछ मछुए मछली मारने गये थे। उन्ही में से एक को उसने कह दिया था—जरा किशोर वावू से कह देना एक वार आ जायँ। मै

शायद एक ही दो दिन और हूँ। समझ गये।

आखिरी दिनों राणा गाँव से वाहर घाट-किनारे एक झोपड़ा डालकर रहता था। घाट उसी के इजारे पर था। घाट उसकी वड़ी प्यारी जगह थी। अपने जीवन के श्रेष्ठ आनन्द और उल्लास का उसने उपभोग भी वहीं किया है। नदी में तैरा किया है, रात को किनारे के झोंपड़े या नाव पर वैठकर शराव पी है। औरत के साथ मौज मनाया है, गाना-वजाना, खान-पान किया है। वहुत-कुछ किया है। खुद मोटे गले से जी खोलकर काली का नाम-गान किया है। इन दिनो वह संन्यासी हो गया था। संन्यासी की तरह वहीं रहता था। गेरुआ कपड़े पहनता, दाढ़ी-मूँछ वढ़ा ली थी, नियम से रहा। दवा देवी थान की ही खाता। गजव का विश्वास! उसे टस-से-मस नहीं किया जा सकता। मरते दम तक भी उसने कवूल नहीं किया। कहा—मेरे नसीव में वदा ही यही है, तो देवता क्या करेंगे?

किशोर ही को वताया था। किशोर जव पहुँचा, आखिरी हालत थी उसकी। महज छै घंटे जिंदा रहा था। किशोर ने डाक्टर-वैद को वुलाना चाहा। राणा ने उसी के जवाव में कहा—डाक्टर-वैद के लिए आपको नहीं वुलाया है किशोर वावू! आपको जिस वास्ते वुलाया है, सो सुनिये। रात को मेरे पास रहने के लिए एक आदमी चाहिए। वक्त पर पानी पिला दे और गीदड भगाता रहे। नदी-किनारे के लाश खाने वाले स्यार कम्वख्त वड़े खूँखार हैं। दो-तीन दिन से अगल-वगल चक्कर काट रहे हैं। नखत पर लाठी पटक कर, डाँटकर कल भी भगाया है। आज मुझसे भगाते न वनेगा। और—

कहते समय राणा जरा हँसा। हँसकर वोला—मरने से पहले तो सभी आते हैं। राणा मगर डरने वाला नहीं। नहीं डरने का। सामर्थ्य रहती तो कहता—आ एक हाथ रहे। लेकिन सामर्थ्य नहीं है। कोई आदमी मिल जाय तो अच्छा हो। यह रहा नंवर एक। नंवर दो—लाश के संस्कार का इन्तजाम। तपेदिक का रोगी ठहरा। गाँव वाले पास तक नहीं फटकेंगे। इसकी व्यवस्था हो जाय। नंवर तीन—वाल-वच्चे। माँ पहले ही चल वसी है। वाप भी चला। आप यहाँ के प्रभावशाली आदमी

है, अगर बने, तो इन पर जरा निगाह रखियेगा। और नंबर चार यह कि इलाज की बाबत महाशय का मेरे जिम्मे कुछ बाकी है। उनसे कहिये, मुझे इसके लिए माफ कर दें। बस।

महाशय ने विनय की दूकान पर यह सुना। सन्नाटे में आ गये। उनकी आँखो से आँसू की दो बूँद टपकी और शिव की जटा में गगा की नाईं उनकी घनी लबी दाढी में खो गई। वे बडी देर तक चुप रहे। फिर बोल उठे—गोविंद! गोविंद!

—जय गोविंद!

आवाज से ही ताड गये कि मरी वैष्णवी आई है। लेकिन इस असमय में? अक्सर वह सबेरे आती है। भीख को निकलती है, अभया की भेजी हुई प्रसाद की मिठाई आरोग्य-निकेतन में महाशय को देकर अपनी राह लगती है। आज शाम को कैसे आ पहुँची और वहाँ विनय की दूकान में? बात क्या है? अभया फिर बीमार पड गई क्या? राणा का अंतिम सस्कार करके थका-मादा किशोर बगल की कुर्सी पर बैठा-बैठा ही सो गया है। अकेले में महाशय अपनी नब्ज देख रहे थे। यह अब उनकी आदत-सी हो गई है। मरी की आवाज जो सुनी, सो अपनी नाडी झट छोड़ दी। पुकारा—मरी!

—प्रणाम बाबा!

—अभी कैसे आई तू?

उसने हँसकर कहा—लौट रही हूँ। अपनी झोली में से उसने पाँच आम निकाल कर रख दिये।

हँसकर बोली—अभया के पेड के आम हैं। पहले-पहल पके हैं। काली माता के लिए सबसे पहले कई रख लिए फिर ये पाँच मेरे हवाले करती हुई बोली—पहुँचा आ मरी। आज गोपीनाथपुर में अष्टयाम-हरिनाम था। रसोई-पानी करके वैष्णवो की सेवा से अपना हाथ पवित्र करने गई थी। सोचा, दिन को तो ये बर्बाद नही होगे बल्कि घुलकर खाने के लायक हो जायेंगे।

मरी-जैसी वैष्णवियो की बात-चीत का यह सलीका अब दुर्लभ होता जा रहा है—बात और स्वर की यह मिठास एव मधुरता सदा दुर्लभ है। मरी

में दोनों ही विशेषतायें हैं। महाशय को बड़ी तृप्ति मिलती है।

मरी ने कहा—गोपीनाथ पुर से लौट रही हूँ। मैं जानती थी कि आज-कल शाम को आप यहीं बैठते हैं। इसीलिए यहीं आई।

बीजू आम, लेकिन श्रद्धा और कृतज्ञता की मिठास से अमृत। एक पल पहले जो धरती वैराग्य के गेरुए में उदासीन दीख रही थी, गहरी ममता की हरियाली से कोमल हो उठी।

मरी ने कहा—अभया ने और एक बात कही है।

—वह क्या ?

—जेठ में सावित्री चतुर्दशी का व्रत है। उस दिन का न्योता रहा।

उन्हें याद आ गया, शशांक की मृत्यु निश्चित जान उन्होंने अभया को न्योता करके भरपूर खिलाना चाहा था। गली के मोड़ पर हाथ में चिराग लिए खड़ी अभया की वह तसवीर आँखों में थिरक गई। माँग के सेंदूर पर छिटक कर पड़ी है दीये की जोत—आँखों की पुतलियों पर उसकी परछाईं। महाशय सिहर उठे। आँखें बंद कर ली।—सावित्री-चतुर्दशी का खान-पान रात को होता है। बुढ़ापा है। रात को तो नहीं जा सकूँगा मैं।

मरी ने कहा—मैंने कहा था उससे। वह बोली—समझती हूँ मैं, मगर मेरी बड़ी इच्छा है। एक बार आग्रह तो कर आ तू। एक बात और।

—बता।

—थोड़ी-सी मछली के इन्तजाम के लिए कहा है। इस साल उसके तालाब में मछली नहीं है।

महाशय खुश हो उठे—अभया ने मछली माँगी है ? भिजवा दूँगा—भिजवा दूँगा।

—ये आम आप जरूर खायें…

—जरूर खाऊँगा—जरूर !

मरी पृथ्वी को मधुर बनाकर चली गई।

उन्होंने उसे फिर पुकारा—मरी ! अरी ओ मरी !

बाबा ! —वह लौटी।

—उससे कहना, मै आऊँगा। सावित्री-व्रत के मौके पर आऊँगा। इन्दिर को साथ ले लूँगा—आऊँगा मैं।

धरती से मानो सारा सकोच धुल गया है, सारी कटुता पुँछ गई है। जायँगे वे।

* * *

मनमें उनके नाम-गान की कड़ियाँ लहराने लगी। रात काफी हो चुकी है। नवग्राम बाजार की बत्तियाँ मंद पड गई है। लालटेनो की चिमनियो पर कालिख पड गई है, बत्तियो पर फुलियाँ जम गई है। किसी की बत्ती मे से दो लौ निकल रही है, किसी की एक ही शिखा धुमैली और ऊँची हो गई है। पेट्रोमेक्सो का भी वही हाल है। उनके मैंटल लाल-से हो आये है, कुछ-कुछ स्याह—दपदपा रहे है। ज्यादातर गल्लो में ताले लग चुके है—बक्स पर लाल खरए की बंधी जमा-खरच बहियो का ढेर। कोई-कोई पानी छिडककर धूप दिखा रहा है, हाथ में ताला-कुजी लिये आदमी खडा है। बद करेगा दूकान। धज्जू दत्त की दूकान खासी बडी है—वहाँ अभी भी अठन्नी-चवन्नी की थाक लगी है, नोटो की गड्डी गिनी जा रही है। दूकान के पास खुली जगह मे कई बैल-गाड़ियाँ है—बैल खुले है। गाडी के नीचे पुआल का बिछौना लगाया गया है। चौमुहानी पर जो चाय की दूकान है, उसमें अभी भी चार-पाँच आदमी जमे बैठे है। एक ओर साधु खाँ के एक मजिले मकान के बरामदे पर चारु बाबू और प्रद्योत बैठे है। उनका को-ऑपरेटिव मेडिकल स्टोर्स यही है। इनकी रोशनी नई है, अभी भी तेज जल रही है।

डाक्टर प्रद्योत कब लौट आया ?

मोती के लडके के मरने के बाद ही वह छुट्टी लेकर सपरिवार कलकत्ते चला गया था। लोगो ने अफवाह उडा दी थी कि मोती के लडके के मर जाने से प्रद्योत को मन-ही-मन खूब चोट पहुँची है। उसी शरम के मारे अपनी बदली कराने के लिए छुट्टी लेकर कलकत्ते गया है।

लेकिन सीता ने कहा था, नही। वे यहाँ के क्लिनिक खोलने के सिलसिले मे कलकत्ते गये है। उसके लिए विपिन बाबू पाँच हजार रुपये दे गये है। वे रुपये सरकार के जिम्मे देकर कुछ और रुपयो की मजूरी

कराके जिसमें जल्दी-से-जल्दी क्लिनिक खुल जाय, इसी की पैरवी के लिए गये है। वहाँ वे विधान-सभा के किसी सदस्य के जरिये डा० बी० सी० राय से मिलेंगे। कह गये है कि बहरहाल जितने रुपये है, उनका सामान खरीदकर ही कलकत्ते से लौटेंगे।

आदमी विचार का पक्का है। सामान लेकर ही लौटा होगा।

सीता ने यह भी कहा—लेकिन मन-ही-मन वे मायूस हो गये है। जबानी जो भी कहा हो आपसे, लेकिन भीतर-ही-भीतर आप पर नाराज हैं।

अच्छा! महाशय को यह बात ठीक-ठीक याद नही आ रही थी। उन्होने सीता की बात का तीखा तो नही, हलका विरोध किया।—नही-नही। तुम भूल कर रही हो।

गर्दन हिलाकर सीता बोली—उँहूँ। आप उस भले आदमी को ठीक-ठीक नही पहचानते डाक्टर साहब! एक भी बात वे भूलते नही। बडे ग्रह वाले आदमी है। किसी भी डाक्टर को अच्छा नही कहते। यह भी बता दूँ, मैं जो आपके यहाँ आती हूँ, इसीलिए वे मुझ पर भी नाराज हैं।

सुनकर महाशय को तकलीफ हुई थी।

एक मामूली-सी लडकी बेचारी। मैंने कभी उसे बचाया था, इसलिए वह मेरी एहसानमद है। इसके लिए भी नाराजी! एक अदना नर्स! उसकी कृतज्ञता, उसकी प्रशसा···मूल्य भी कितना है उसका? जाने कब, बचपन में उसे चगा किया था। खुद को भी याद नही है वह बात। उस लडकी ने ही इसकी याद दिलाई। उन्नीस सौ तीस साल।

सब-रजिस्ट्री ऑफिस में एक हेडक्लर्क आया था—रामलोचन सरकार। अपनी इकलौती विधवा बेटी, स्त्री और बेटी की एक नन्ही बच्ची के साथ, इसी गाँव में आकर रहा था। कुल आठ महीने यहाँ था। उसकी विधवा बेटी बहुत बीमार होकर आई थी। किसी को भी यह उम्मीद नही थी कि वह बचेगी। महाशय ने इलाज करके उसे अच्छा किया था। सीता तब एक नन्ही-सी बच्ची थी—हड्डियो का एक ढाँचा। उन्नीस सौ इकत्तीस मे बच्चो के लिए जो मलेरिया महामारी आई उसके चपेट मे यह

बच्ची भी अब मरी, तब मरी हो गई। उससे इस बच्ची को भी उन्होंने ही बचाया था। उस रोज घर बैठकर जब वह सारा किस्सा कह गई, तब भी महाशय ने उसे नही पहचाना। पहचाना अतर बहू ने। बोली—अरे, तू वही लडकी है? ऐसी हो गई? मैंने तुझे कितना गोद खिलाया है, तेल लगाकर धूप में रक्खा है!—तब धीरे-धीरे उन्हें याद पडने लगा। बडा अच्छा लगा था। मानो धूप से जलते हुए आसमान पर से विधाता ने सहसा मधु की एक बूंद डाल दी। दुनिया में यह दुर्लभ है, लेकिन कीमत तो इसकी कुछ भी नही! कभी-कभी उनके मन में आता, चिकित्सक जीवन में निदान-घोषणा का जो पावना है, उसे विधाता ने शशांक की बहू के शाप से चुकाया है, और रोगी का पावना चुकाया है इस सीता की कृतज्ञता से। इसे तब होश भी न आया था। माँ से कहानी सुनकर याद रक्खा है इसने।

—महाशय है?

रोशनी से जगमगाते हुए चौरास्ते से छिपकर जाना असभव है। चारु बाबू की निगाह पड गई। रुकना पडा। मुडकर बोले—जी हाँ। बैठे हैं? अच्छा, प्रद्योत बाबू कब लौटे? नमस्ते।

प्रति नमस्कार करके प्रद्योत ने कहा—जी, चार दिन हो गये।

—चार दिन? हुए होंगे। आज कई दिनो से सीता नही आई।

जरा इधर तो आइये। आप ही के लिए हम लोग बैठे हैं।—चारु बाबू ने कहा।

—मेरे लिए?

महाशय को शका हुई। फिर जाने कौन-सी शिकायत? क्या हुआ? कौन-सी भूल बन पडी? मन-ही-मन बहुत ढूंढा उन्होंने। नही, किसी की निदान-घोषणा तो नही की है। फिर? राणा की चर्चा? आखिर क्या कहेंगे ये कि चूंकि मैंने उसे कोई उम्मीद नही बँधाई, इसलिए ना उम्मीद होकर बिना इलाज के दम तोड़ा उसने? या यह कहेंगे कि मैंने ही उसे देवस्थल जाने को प्रेरित किया था?

चारु बाबू बोले—प्रद्योत की स्त्री को बुखार आया है, आपको एक बार देखना पडेगा।

—प्रद्योत की स्त्री को बुखार है ? मुझे देखना पड़ेगा ?

—जी। कलकत्ते से ही बीमार लौटी है। कैसा तो लग रहा है। एंटारिक तो खैर है ही। टायफायेड के भी लक्षण हैं। लेकिन चार दिन और बीते बिना तो लहू-जाँच से पता नही चल सकेगा। आप जरा नाड़ी देखें। टाइफायेड भी होगा तो बडा वेरुलेंट टाइप होगा। चार ही दिन हुए हैं, पहला हफ्ता है, लेकिन बुखार एक सौ तीन चल रहा है। प्रद्योत बाबू ने मुझे बुलाया था, मगर मैं बिल्कुल ही ठीक नही बता सकूँगा। आप कह सकेंगे। नाड़ी देखकर आप बता सकते हैं, यह मैं जोर गले से कहा करता हूँ। इनसे भी कहा है। चारु बाबू ने उँगली से प्रद्योत की तरफ इशारा किया।

अब जाकर प्रद्योत बोला—डायोगनेसिस आपका गजब का है। आप सिर्फ यह बता दें कि यह टाइफायेड है या नही !

महाशय ने जरा हँसकर प्रद्योत की ओर देखा। अब तक वे सिर झुकाये खड़े थे। बोले—चलिये।

* * *

लावण्यमयी छरहरी-सी वह तरुणी निश्चेष्ट पड़ी है। ज्वर के उत्ताप से चेहरा जरा लाल और भारी-सा हो उठा है। भौंरे-से उसके घुंघराले बाल कुछ तो तकिये के नीचे बिखरे पड़े हैं, कुछ कपाल पर उड़ रहे हैं। कपाल पर गीले कपड़े की पट्टी है। आँखें बंद किये पड़ी है। तन्दुरुस्त है। घर में से एक अजीब गंध आ रही है। धूप-बत्ती, ओडीकोलोन, फिनाइल, दवा, सबकी मिली-जुली गंध। सिरहाने नर्स बैठी है। सीता ! हाँ वही बैठी है।

अपने नाड़ी-विद्या के गुरु, अपने पिता जी को स्मरण करके उन्होंने उसका हाथ उठा लिया। एक के बाद दूसरे को उठाया। देखकर उसे भी रख दिया। बुखार तेज है। एक सौ साढ़े तीन से भी ज्यादा। चार के लगभग।

सीता उनके चेहरे की तरफ देख रही है। इंतजार में है—क्या कहते हैं। स्त्री के सिर के पास झुककर मृदु स्वर में प्रद्योत ने आवाज दी—मंजु !

भँवो को जरा ऊपर उठाकर आँखें बंद करके उसने जवाब दिया—ऊँ।

—यहाँ के जीवन महाशय तुम्हे देखने आये है।

उसने आँखें खोली। बडी-बडी दो आँखें। महाशय को एक बार ऊपर से नीचे तक देखकर उसने फिर आँखे वद कर ली।

प्रद्योत ने कहा—अपनी जीभ दिखाओ तो!

उसने जीभ दिखाई।

चारु वावू ने सीता से कहा—थर्मामीटर ले आओ।

महाशय ने कहा—रहने दीजिये। अव से पहले कितना था?

डाक्टर ने एक कापी लाकर सामने रख दी—एक सौ तीन पाइंट चार।

महाशय कमरे से वाहर निकले। वोले—बुखार कुछ वढ गया है। आधी डिग्री।

प्रद्योत उनके पास आकर खडा हुआ। धीरे मे पूछा—टाइफायेड?

जीवन महाशय को दुविधा हुई। वोले—आज ठीक नही कह सकूँगा। कल देखकर वताऊँगा। आज मेरा मन चचल है।

—लेकिन मै जो क्लोरोमाइसिटिन देने की सोच रहा हूँ। पहला हफ्ता है—वह कमरे की तरफ मुडे—सीता, कितना है वुखार?

थर्मामीटर लेकर सीता आई और प्रद्योत को देखकर चुपचाप लौट गई। लेकिन एक हलकी हँसी से उसका चेहरा खिल पडा था। क्योंकि थर्मामीटर की काली लकीर एक सौ चार के निशान से एक सूत इधर थी। देखकर प्रद्योत ने कहा—हाँ एक सौ चार ही है।

जीवन महाशय वोले—वुखार आज अव इससे ज्यादा नही वढेगा। मै कल सवेरे ही आऊँगा।

—मै क्लोरोमाइसिटिन ले आया हूँ। दे पाता तो—

—कल। आज नही। इस वीमारी में आठ घटे में ऐसा कोई फर्क नही पडेगा।—और वे हँसे।—आप नाराज तो नही होगे?

—जी नही। कहिये।

—आप उतावले हो पडे है। आपका इलाज करना उचित न होगा।

—जी नही । मै ठीक हूँ । चिकित्सा मै नही कर रहा हूँ चारु बाबू कर रहे है ।

दूसरे दिन सवेरे उसकी नब्ज पकड़कर जीवन महाशय बडी देर तक ध्यानस्थ रहे ।

सवेरे का समय । हँसती किरणो से घर भर गया है । खिडकियाँ खुली हैं । कमरे को वीजाणु-नाशक दवा के पानी से धोया जा चुका है । एक ओर धूपवत्ती जल रही है । खाट के पास तिपाई पर दवा की शीशी फीडिंग कप, दो-चार संतरे, टेंपरेचर का चार्ट रखा है । मरीज अभी पहले से अच्छी है । बुखार कम हो गया है । होठ सूखे हैं । सुस्ती कम है । फिर भी आँखें बद ही किये लेटी है । कभी-कभी खोलती है फलकें फिर झुक आती हैं । माथे पर पानी की पट्टी नही है । कपाल और मुँह लाल और सूखे पडे है । खुली रोशनी की प्रसन्नता और वैशाखी-प्रभात की स्निग्वता के बावजूद मानो उसे चैन नही है । रह-रहकर नाक कुरेदती है ।

उन्होने नाडी की गति महसूस की । धीरे-धीरे साफ पता चलने लगा—

मंद-मद शिथिल शिथिल व्याकुल व्याकुल वा—

बहुत धीमे, मथर गति से बोझिल पैरो स्खलित गति से चल रही है—वेवस वेकली की छाप । मानो—मानो व्याकुल जीवन-स्पदन भयभीत होकर कही आश्रय ढूँढ रहा हो । सान्निपातिक ज्वर के सारे लक्षण साफ नजर आ रहे हैं । त्रिदोष का तीखा प्रकोप । लगता है—खैर, वह बात रहे । जीवन महाशय ने आँखें खोलकर प्रद्योत की ओर देखा । वे उन्ही की ओर देख रहे थे । सावधानी से मरीज के हाथ को बिस्तर पर रखकर वे बाहर निकल आये । साबुन-पानी और तौलिया लेकर नौकर खड़ा था । हाथ धोकर तौलिये से पोछते हुए जीवन महाशय ने कहा—यह टाइफायेड है ।

अस्पताल के डाक्टर ने कहा—संदेह मुझे भी हुआ था । लेकिन मंजु ने मुझे आगा-पीछा में डाल दिया । हम लोग नियम से टाइफायेड का टीका ले लिया करते हैं । चार महीने पहले यह और एकबार कलकत्ते गई थी । महीना भर रही थी वहाँ । इसी बीच टीका लेने का वक्त निकल

गया। मैंने तो यहाँ ले लिया। इसे लिख दिया—वही टी० ए० बी० ले लेना। इसने लिखा था ले लिया है। मैं यकीन कर गया। जब यहाँ आई तो मैंने पूछा भी था। इसने कहा था—ले लिया है। आज सुबह इसने बताया कि टीका नही लिया है। मैंने जब कहा कि महाशय मुझे बता गये कि यह टाइफायेड है, तो इसने खोलकर कहा। खैर, अब निश्चित होकर क्लोरोमाइसिटिन दूंगा। चारुबाबू, हरेन्द्र बाबू दोनो ही आ रहे है, उनसे भी राय ले लूं।

सीता कमरे में आई। नहा-धोकर वह मानो सजीवित होकर लौटी है। आज वह बेहद खुश है। शायद प्रद्योत डाक्टर की इस स्वीकृति से वह फूली नही समा रही है।

चारु बाबू आये। महाशय को देखकर बोले—महाशय ने बताया! फिर क्या, दीजिये क्लोरोमाइसिटिन। बेखटके दीजिये।

क्लोरोमाइसिटिन। नये युग का ईजाद। अद्भुत दवा। दु साध्य टाइफायेड—साक्षात मृत्यु की सहचरी व्याधि। बरसाती पहाडी नदी-जैसी प्रचड गति—रोकी नही जा सकती, लौटाई नही जा सकती। बाढ की तरह मनमानी बहकर अपने को नि शेष करके तब दम लेती है। उस वेग के चुक जाने पर जिन्दगी रहती है, तो रोगी टिकता है। टिकता भी है, तो ठीक उस बगीचे की तरह, जिसकी सारी उर्वरा-शक्ति को बाढ का पानी मिट्टी के साथ बहा ले जाता है। उसकी दशा ऊसर जमीन-सी हो जाती है।

ब्रजलाल बाबू के नाती की बीमारी में उन्होंने बैक्ट्रिओफाज देखा था। उस बार उससे कोई लाभ न हो सका था। बाद में फाज के लाभ देखे है। क्लोरोमाइसिटिन शायद अमोघ है। सान्निपातिक मृत्यु को तर्जनी दिखाकर रोकने की क्षमता रखती है यह दवा। बूढे जीवन महाशय उत्सुक होकर उसे देखने के लिए बैठे रहे। उसकी शीशी उन्होंने देखी है। विनय की दूकान मे है। एक केस के लिए तीन शीशियाँ काफी है। कल से ही बुखार कम होने लगेगा। तीसरे दिन बिल्कुल उतर जायगा। आश्चर्य ही तो है।

प्रद्योत ने कहा—मजु! मजु! मुँह खोलो। टैबलेट है।—सीता तौलिया और पानी लिये खडी। उसने मजु के मुँह मे पानी डाला। चारु

बाबू ने टैबलेट खिला दिया।

शाम को जीवन महाशय फिर गये। नाड़ी देखी—बुखार बढ गया है। साढे चार होगा। सिरहाने आज दूसरी नर्स बैठी है। सीता की छुट्टी होगी शायद।

दूसरे दिन भी बुखार कम न हुआ। पिछले दिन से भी ज्यादा हो गया।

सुस्ती भी ज्यादा बढ गई।

तीसरा दिन। आज बुखार उतर जाना चाहिए, लेकिन कहाँ। महाशय गम्भीर दृष्टि से देखते रहे—दवा की क्रिया कहाँ गई?

प्रद्योत, चारु बाबू, हरेन्द्र—सबके मन चिन्तित हो उठे। वही तो। तो क्या—?

जीवन महाशय ने दृढ स्वर में कहा—टाइफायेड है। नाड़ी में बड़ी प्रबलता है—इतना ही कह सकता हूँ मैं।

प्रौढ चारु बाबू थोड़े ही में भडक उठते हैं और थोडे ही में उत्साहित हो उठते हैं। वे पस्त पड गये हैं—वही तो! संसार में मुनि से भी भ्रान्ति होती है!

जीवन महाशय ने दृढता से गर्दन हिलाई—नहीं। मुझे भ्रम नहीं हुआ है।

प्रद्योत के दोनो जबडे सख्त हो गये। बोले—फिर से क्लोरोमाइसिटिन दीजिये चारु बाबू।—उन्होंने अपने हाथों शीशी खोली। दवा चारु-बाबू को दी।

जीवन महाशय जब शाम को पहुँचे, तो देखा, प्रद्योत दोनों हाथों से कनपटी थामे बरामदे पर बैठे हैं। मरीज के सिरहाने सीता बैठी है। सीता ने बताया—लहू के दस्त आये हैं। बुखार एक-साँ है।

जीवन महाशय आप ही कमरे के अन्दर गये। बिस्तर के पास बैठकर उसकी नाड़ी देखी। बाहर आकर प्रद्योत के कन्धे पर हाथ रक्खा।

प्रद्योत ने नजर उठाई—महाशय!

—हाँ। आप मायूस न हों। लहू के दस्त लगे तो क्या हुआ? इस बीमारी में होता है वैसा। और होता भी है तो अच्छा होता है रोगी।

मैंने नाड़ी देखी। त्रिदोष का प्रकोप बहुत कुछ कम हो गया है। अच्छी है मरीज। आप फिक्र न करें। मुझसे भूल नही हुई है।

डाक्टर एकटक उनकी ओर देखते रहे। —मैं आपको झूठा दिलासा नहीं देता।

प्रद्योत देर तक चुप बैठे रहे।

स्टेशन से एक बैलगाडी आई और अहाते में घुसी। दो औरतें उतरी। दोनों ही विधवा। एक बेहद बूढी। डाक्टर आगे बढे—माँ!

—मजु कैसी है बेटे?

—बीमार ही है। मगर—इन्हें क्यो लिवा लाईं? —प्रद्योत खीझ-से उठे। उस बुढिया को लक्ष्य करके कहा।

—फेंक कहाँ दूँ बेटे? यह तो मुझे छोड़ने की नही।

—लेकिन मैं रक्खूँ कहाँ इन्हें? क्या करूँ?

—पडी रहेगी कही। अब उत्पात नही करती। कुछ दिनो से कैसी तो हो गई है। चुप ही रहती है। नही तो साथ नही लाती।

—आइये।

जीवन महाशय की ओर मुड़कर प्रद्योत ने कहा—आप ठहरें डाक्टर साहब, मैं अभी आया। मेरी सास की नानी यही हैं। एक तो यह रोग का झमेला—ऊपर से आ पड़ी यह।

जीवन महाशय बैठे रहे।

वैशाख का आकाश। कल दोपहर को हलका-सा आँधी-पानी आया था। आज आसमान में धुमैलापन नही है। तारे झलमला रहे हैं। उसी आसमान की ओर नजर गडाये वे बैठे रहे। ऐसी स्थिति में मन कैसा तो सूना-सूना हो जाता है। अगर किसी चीज पर नजर को गड़ाकर न रक्खा जाय तो मन दौड़ने लगता है। किससे क्या होगा! हजार तरह के सवाल। हाँफ उठेगी जिन्दगी। दौड नही सकती, फिर भी दौड़ेगी, दौड़ना पडेगा।

आकाश की जगमगाहट में खो जाने का सुयोग पाकर मन को छुट-कारा मिल गया है।

—मा:। मा:।

—मंजु! बिटिया। आ गई मैं।

—क्या है बेटे ? कहाँ तकलीफ है—क्या तकलीफ है ?

—एँ: । मा: ।

—क्या है बेटे ?

—बाबा: । आँ ।

जीवन महाशय हँसे ।

माँ ! माँ कह रही हैं कि यह रही मैं । फिर भी मरीज पुकार रही है । शायद करवट लेकर पुकार रही है । अपने इस लम्बे जीवन में ऐसा कितना देखा ! हाय रे मनुष्य ! वह माँ क्या तुम हो ? वह माँ तो वह है, जो आरोग्यरूपिणी है । उनके अंग-अंग में अमृत है—उनके स्पर्श से जुड़ा जाता है रोगी का रोग—जर्जरता । जलन कम हो आती है, आकुल अधीरता शान्त हो आती है, सुस्ती की खुमारी मिटाकर जगती है चेतना; जीव-कोषों में दाव-दाह की आग-भरी ज्वाला स्निग्ध होकर प्रदीप-सी जल उठती है । सभी पीड़ा हरने वाली, सारे सताप मिटानेवाली आरोग्यरूपिणी माँ वही हैं; वह कौन हैं—पता नही । लेकिन वह अमृतरूपिणी हैं, अभया हैं—उन्हें देखकर मौत दूर ही से नमस्कार करके लौट जाती है । महाशय जरा देर के लिए चंचल हो उठे । लगा, मौत कमरे में आकर खड़ी है । किसी कोने में अँधेरे से मिलकर खड़ी है वह । मरीज सम्भवतः उसीका आभास पाकर उस अमृतरूपिणी को पुकार रही है । चौकन्ना होकर उन्होंने रोगिणी की तरफ देखा ।

सैंतीस

दूसरे दिन सवेरे ।

आरोग्य-निकेतन के बरामदे पर खड़े थे जीवन महाशय प्रद्योत यहाँ जाना था । अचानक प्रद्योत ही साइकिल पर आ पहुँचे । बरामदे की सीढ़ी पर पाँव रखकर साइकिल को रोका । उतरे नही । हाँफ रहे थे ।

—बुखार आज निन्यानवे पर आया है ।

—उतर गया ?

—जी हाँ। निन्यानवें पाइंट दो। सुबह से ही मंजु मजे में बातें कर रही है। कहती है, ठीक हूँ।

—ईश्वर की दया और आपका अनोखा साहस–दृढता।

इस प्रशंसा का जवान डाक्टर ने कोई विरोध नही किया। हँसते हुए नि संकोच उसे स्वीकार किया। केवल इतना कहा–आपके नाडी-ज्ञान की अगर मदद नही मिली होती, तो इतनी हिम्मत नही कर सकता मैं। खैर। मैं चलता हूँ। खुशी के मारे कहने के लिए दौडा आया था।

साइकिल मुड गई। डाक्टर तेजी से निकल पड़े। सुबह की हवा में उनके रूखे बाल फुर-फुर उडने लगे।

परमानद माधव ! परमानद माधव हे ! परमानंद माधव !—कडी को अधूरा ही छोडकर महाशय एक ही साथ हँसे, दीर्घ निश्वास छोडा।

संसार में जो थोडे-से लोग परम सुखी है, उनमें से एक यह है। इस तरुणी को उसने हृदय भर कर पाया है। दोनो मिलकर मानसरोवर है।

उस रोज किशोर ने कहा था—यही प्राप्ति तो सर्वोपरि है। यह पाना जो पाता है, उसका सब-कुछ पाना हो जाता है डाक्टर साहब। सृष्टि तब मानसरोवर हो जाती है।

उन्होने किशोर से पूछा–सुना मैंने कि शादी कर रहे हो तुम। मगर हुआ क्या उसका ?

उसने कहा था—डर लग गया !

—ब्याह करने से बीवी मिल जाती है, लेकिन जो पाने के लिए आदमी ब्याह करता है, वही नही मिलता। नारी और प्रकृति—दोनो ही एक सत्य है। दो ही दिनो के बाद छाती पर पैर रखकर अपनी राह चल देती है। कभी अपनी गर्दन आप ही काटकर रक्त-स्नान करती है और तब अपने स्वामी को ग्रास करके धूमवती बन जाती है। फिर कभी बाप के मुँह से पति की निन्दा सुनकर जीवन त्याग देती है। मनुष्य के पूर्ण प्रेम के हाथो शायद पकड़ाई पडती है शात, अचचल होकर। जिनके भाग्य में ऐसा पाना बदा होता है, उन्हे और कुछ की भी जरूरत नही रह जाती। प्रतिष्ठा, प्रशसा, साम्राज्य—यहाँ तक कि मुक्ति भी नही। इससे

बड़ी प्राप्ति दूसरी नही । यह शायद ही कोई पाता है । सो कदम बढ़ाकर भी डर से खीच लिये । क्या पता, हम दोनो में कहाँ कौन-सी फाँक हो । फाँक पड़ जाने से खैरियत नही । फाँक हो तो नारी नदी की तरह दौड़ पड़ेगी और दोनो भुजायें फैलाकर सागर तक दौड़कर भी उसे नही पा सकूँगा । रहे । बाहु-बंधन में बँधते ही वे मानसरोवर हो जाती हैं ।

जीवन महाशय ने बार-बार मन में कहा—बात बिल्कुल सत्य है ! शाम को प्रद्योत के बरामदे पर खड़े होकर इस सत्य को और भी अच्छी तरह महसूस किया उन्होने । शाम को उसका बुखार उतर गया ।

सीता ने हँसकर डाक्टर की पत्नी से कहा—ओः जिस खौफ में डाल दिया था आपने ।

—तुम्हें बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी—न ? डाक्टर-पत्नी के होठों पर दुबली मुस्कान खेल गई ।

बच्चे की तरह दौड़कर डाक्टर कम्पाउण्डर से कह आये । नर्सों की तरफ गये । अस्पताल की रसोई के नौकर मोतिया से कह आये, अरे मोतिया, बुखार उतर गया ।—उन्हे जीवन महाशय की उपस्थिति की भी सुध न रही ।

मरीज के कमरे में डाक्टर की सास पहुँची—

—ऐसा डरा दिया था तू ने कि क्या बताऊँ !

—क्या पता ! तीन-चार दिन की मुझे कुछ भी याद नही !

—याद कैसे हो ! बेहोश तो पडी थी बिल्कुल । माँ-माँ कहकर पुकारती रही—मैंने कहा, यह रही मै । मगर तुमने ताका तक नही ।

—तुम कब आईं, इसकी मुझे खाक भी खबर नही ।

—इधर तुम्हारा यह हाल और उधर बेचारे दामाद की कुछ न पूछो । उसकी शकल देखकर मुझे तो रोना मुहाल हो गया । ऐसा लगा, मंजु को अगर कुछ हो गया, तो यह तो पागल हो जायगा ।

—पागल नहीं होता । या तो संन्यासी हो जाता या आत्महत्या करता ।

बरामदे में खडे-खडे जीवन महाशय ने अपने मनश्चक्षु से देखा, रोगिणी के होठों पर हँसी की रेखा खिच आई है, वदी चौदस की शेष रात के

एकाकी चन्द्रोदय-जैसी हँसी। और इस हँसी से वह लज्जा नही अनुभव कर रही है। परिपूर्ण तृप्ति से जिस प्रकार गौरव-सहित खिलता है फूल, वैसी ही विकसित हो उठी वह अकुण्ठित हँसी से।

परमानद माधव हे!

डाक्टर आ रहे हैं। कदमो में उल्लास।

—धरा। धरित्री! सुनती है?

साथ की वह बुढिया डाक्टर की सास को पुकार रही है। आज कई दिनो से वे इस आवाज को सुन रहे हैं। अन्दर के बरामदे से आती है यह आवाज। धुँधली निगाहो में आती है—एक लबे कद की प्रौढा विधवा सूनी आँखो चुपचाप बैठी रहती है। कभी-कभी पुकारती है-धरा, धरित्री!

इधर से कोई जवाब नही देता। रोगी के सिरहाने से कोई जवाब भी कैसे दे? वह औरत चुप रह जाती। उन्हे देखने से लगता है, कभी उनमें जीवन-महिमा रही थी। थोड़ी देर तक वह चुप रह जाती, फिर पुकारने लगती—धरा, धरित्री, अरी ओ धरित्री! अरी यह तो बता कि तेरी बेटी कैसी है? मुझे कमरे में जाने को मना किया है—नही जाती हूँ मै। मगर उसका हाल तो बता।

इनका भी जवाब कौन दे? चुप रह जाती बेचारी।

वही आज भी पुकार रही है। वही आवाज। आज धरित्री ने जवाब दिया—कहो, क्या चाहिए?

—चाहिए फिर क्या? तू ठहरी मेरी नतनी, मेरी बेटी की बेटी और तुम्हारी लडकी हुई मजु। उसके यहाँ आई हूँ, यही तो बहुत बड़ी शर्म की बात! उस पर फिर चाहूँ क्या?

—फिर? क्या कह रही हो?

—कह रही हूँ कि मजु तो अच्छी है। जरा उस कमरे में जाऊँ, उसे देखूँ! आँखो तो देख नही सकती, जरा हाथ फेरदूँ उसपर।

ओडीकोलन नही लगाओगी?—मजु की आवाज। वह हँसी कमजोर लेकिन जोरो की हँसी।

—देगी तो लगा लूँगी। कई दिनो से आई हूँ—तेल नही लगा पाई। नहाते वक्त नारियल का तेल देते हैं। वह तो मैं लगा नही सकती।

क्या करूँ रूखे सिर ही नहा लेती हूँ। ओडीकोलन न सही, जरा खुशबू-तेल देना।

—चुप हो जाओ। दामाद आ रहे हैं।

मंजु की माँ ने डाक्टर को आते देखा;—बुढ़िया को उन्होंने सावधान कर दिया।

जीवन महाशय जरा दुखी-से हो गये।

—कहाँ, कहाँ हैं तेरे दामाद? जरा उन्हे मेरे पास भेज देना आज मैं राह की धूल से भी गई-बीती हो गई हूँ, चाहे मेरे जाने से कमरा गंदा होता है, छूने से तुम लोगो का हाथ मैला होता है; लेकिन कभी मेरे भी रूप-यौवन था—इज्जत-कदर थी। सब दिन ऐसी ही तो नही रही। फिर मैं ठहरी मंजु की माँ की माँ की माँ। इस नाते भी तो मुझसे बोलना चाहिए।

—क्या कह रही हैं, क्या?—डाक्टर ने ये बातें सुनी। बरामदे पर खड़े होकर सारा कुछ सुना। मंजु की माँ को ऐसी हालत में सावधान कर देने का भी मौका न मिला। डाक्टर का मन खुशी से उमड़ रहा था। उन्होने हँसकर कहा—क्यों नही, जरूर बात करूँगा आपसे। आप गुरुजन हैं। लेकिन मंजु की बीमारी से—

—हाँ भैया—सो तो है। मुझे जो शर्म, जो डर लगा कि क्या बताऊँ। सोचा, आखिर मैं आई ही क्यो? मैं सर्वनाशी हूँ। स्वामी को खाया, उन्हें खाकर बेटी के घर गई—उसे भी खाया। उसी दामाद के यहाँ तुम्हारी सास को मैंने पाला-पोसा। लड़की की सौत आई। उसकी झिड़कियाँ खाकर वहाँ रही। उसके बाद धरित्री का व्याह हुआ उसके यहाँ पहुँची। वह विधवा हो गई। अब आई हूँ यहाँ—क्यों आई? जिस कारण से आई हूँ, वह तो जानते ही हो। बड़े डाक्टर हो, मेरी आँखें ठीक कर दो।

—अच्छा। कल ही दवा दूंगा।

—दवा नही, आपरेशन कर दो।

—इसका आपरेशन थोड़े ही होगा। मोतियाबिंद तो नही है।

—उँहूँ। आपरेशन के बिना ठीक न होंगी आँखें; उसी से ठीक होंगी।

बहुतो के अच्छी हुई है ।

—खैर । कल से ठीक से जाँच करूँगा । तो मैं बाहर जाऊँ ? आपको कोई तकलीफ तो नही है यहाँ ?

—तकलीफ तो है भैया ! लगाने के लिए कोई अच्छा तेल चाहिए। ये कपडे मेरे बडे पुराने हो गये हैं ।

शर्मिदा होकर कमरे के अदर से डाक्टर की सास ने कहा—उसका उपाय भी क्या है ? कपडे पर कट्रोल है—कपड़े की कमी से सारी दुनिया फटा-चिटा पहनकर दिन काट रही है ।

—हाँ, सो तो है। खैर । एकाध मजु के ही पुराने कपडे देना । वही पहनूँगी।

मजु हँस उठी।—रगीन, डोरिया साडी—

—हाँ, वही पहन लूँगी । लेकिन यह लत्ता तो नही पहना जाता ।

बरामदे पर जीवन महाशय को देखकर डाक्टर जरा शर्मिदा हुए। उन्हे जीवन महाशय के होने का खयाल ही नही था । खुशी से इस बात को बिल्कुल ही भूल गये थे ।

—मुझे देर हो गई महाशय ।

—कोई बात नही ।

—अरे भैया मजु के दुलहा ! सुनते हो ?

मुसीबत है।—प्रद्योत अब खीझ उठे। यह सोचकर शायद गरम हो उठे हो कि उस बुढिया की बाते जीवन महाशय ने सुन ली है। बुढिया पर तो खीझ ही उठे, शायद जीवन महाशय पर भी नाराज हो गये । खडे-खडे सुनना उचित नही था, उन्हे चला जाना चाहिए था ।

जीवन महाशय बोले—तो आज अब मै जाऊँ ?

—थोडी देर बैठेंगे नही ?

—कल आऊँगा ।

—अच्छा । जिस दिन मजु को पथ्य मिलेगा, दावत दूँगा ।

—ठीक तो है ।

—यह लेकिन आपको ही बताना पडेगा कि पथ्य किस दिन दिया जाय । क्लोरोमाइसिटिन से बुखार उतरता है, लेकिन रिलैप्स का डर बना

रहता है। आप जब कहेंगे कि नाडी बिल्कुल निर्दोष है, पथ्य दिया जा सकता है, उसी दिन पथ्य दूँगा। जब लहू के दस्त आये है तो जरूर ही इटेस्टाइन मे परफोरेशन हुआ है। पथ्य खूब सोच-समझ कर देना होगा।

उधर वह बेचारी बुढिया पुकारती जा रही है—अरे ओ भैया, सुनते हो ?—जरा देर चुप रह कर फिर—मजु के पति !—फिर—डाक्टर साहब !

दबी आवाज से मंजु की माँ ने कहा—नानी ठहरिये जरा, वह अभी महाशय से बात कर रहे है।

—महाशय से ? महाशय कौन ?

—जो नाडी देखने में बडे प्रवीण हैं—यहाँ के कविराज !

अच्छा।—बूढी कुछ गहरी चिंता में मग्न हो गई।

कुछ ही देर में सजग होकर पुकारा—धरा, उनकी बात खत्म हो गई ? मै एक बात कह रही थी।

अबकी शायद प्रद्योत क्रोध से पागल हो उठा। मुड़कर तुरन्त बोला—कहा तो मैंने, कल आपकी आँखे देखूँगा, फिर जैसा होगा, किया जायगा।

—नही भैया, वह नही कहती मैं।

—तो फिर कपडे ? कपडे भी ला दूँगा।

—नही-नही।

—फिर क्या ?

—ये महाशय जो है, सुनते है, नाडी बडा अच्छा देखते हैं—

—हाँ। लेकिन वे क्या करेंगे ? वे तो आपरेशन करने से रहे !

—एक बार अपना हाथ दिखाती उनसे।

—हाथ क्या दिखाना। अच्छी-खासी तो है। कोई बीमारी नही।

—बीमारी मुझे बहुत है। तुम लोग पकड नही पाते। पुराने आदमी ठीक समझ सकेगे। जरा कहो तो उनसे। तुम्हारे लिए तो मै बडी गई-बीती हूँ। उनसे कहो, कहो कि मैं कादी के जमीदार फलाँ बोस की स्त्री हूँ। फलाँ बोस को न चीन्हता हो, ऐसा आदमी इस इलाके मे नही है। और, यह सब तो अपनी ही जमीदारी थी। ज़रा कह देखो उनसे, देखो कि कैसे आदर से देखते है। इसके सिवा मेरे पिता—उनके—

प्रद्योत के धीरज का बाँध मारे क्रोध के टूट गया। मगर कहे भी क्या, बाहर महाशय खड़े हैं।

मंजु की माँ ने बूढी का हाथ दबाकर कहा—नानी, चुप रहो—चुप रहो।

बाहर से महाशय ने आवाज दी—प्रद्योत बाबू!

प्रद्योत बाहर आया। सबसे पहले वह हाथ जोड़कर बोला—उनकी बातों का आप कुछ ख्याल न करें। वे पुराने युग के ज़मीदार घर की बहू हैं। दिमाग खराब हो गया है।

हँसकर बाधा देते हुए महाशय ने कहा—नही-नही। आपको इस कदर सकोच क्यो हो रहा है? वे हाथ दिखलाना चाहती हैं, चलिये देख दूँ। इसी से तो उन्हे खुशी होगी। कादी के किसके यहाँ की बहू हैं—किसकी स्त्री?

—भूपेन बोस की। लोग उन्हे भूपी बोस कहते थे। जैसे ही अमिताचारी थे, वैसे ही अमितव्ययी। सब कुछ गँवा बैठे, पर शराब नही छोड़ी।

—मैं हाथ दिखाऊँगी। सुना है, हाथ देखकर वे निदान घोषित करते है। मुझे जानना है कि मै कब मरूँगी। तुम उनसे कहो, मंजरी है, मंजरी का हाथ देखना है। मै उनके मास्टर की बेटी मंजरी हूँ। कादी के अमुक बोस की स्त्री! वे मुझे पहचानेंगे।

जेठ की रात का रूखा, मेघहीन आकाश अचानक कोमल नीलाभ दीप्ति से भर गया और उसमें से शायद एक उल्कापात हुआ। जीवन महाशय स्तब्ध खडे रहे।

मंजरी!

अस्पताल के डाक्टर ने पूछा—आप उन्हे पहचानते थे?

—क्यो नही। खूब जानता हूँ। आपको एतराज़ न हो तो मैं उनकी नाडी देखूँ।

—ठीक तो है। आज ही देखेंगे?

—हर्ज क्या है। देख ही लूँ।

प्रद्योत ने कहा—उनके बहुत रोग हैं। बहुत-सा जहर तो पति ही दे

गय हैं। सब कुछ तो बताया। आप भी तो जानते हैं।

—जानता हूँ।

—उनके अमिताचार का जहर लहू में है। अपनी जीभ के लोभ के चलते स्टोमक-इंटेस्टाइन रोगग्रस्त हो गया है, पुष्टि की कमी से देह-कोष जर्जर है। मन की अशान्ति भी काम कर रही है। आँखो से दीखता नही। कानों से कम सुनती हैं। कोलाइटिस तो लगा ही हुआ है, जाड़ों में दमा, माथे में दर्द रहता है, बीच-बीच में बुखार। मगर गजब का है शरीर, इतना सब कुछ है, फिर भी जी रही हैं—चुराकर खा लेती हैं।

डाक्टर रुक गये। उन्हे लगा, और ज्यादा कहना उचित न होगा।

मजरी चुराकर खा लेती है, चुराकर खुशबू तेल लगा लेती है, टटोल-कर जिसके भी हो चाहे, साफ-सुथरे कपडे पहन लेती है।

ये सारे तथ्य इन कई रोजो में उन लोगो की बात-चीत से महाशय ने जान लिये हैं।

उन्होने प्रद्योत से कहा, चलिये।

प्रद्योत ने कहा—उस दिन मैने उन्हे मोती की माँ का किस्सा सुनाया। आपने जो कहा था, वह भी बताया। मगर किससे कहना—कौन सुनती है? बोली—मजु का एक लडका इन आँखों से देख लूँ, उसके बाद··· उसके बाद।

मरी नही कि किस्सा खतम।

* * *

मंजरी के सामने जाकर कुछ देर तक महाशय स्थिर खडे रहे। ललाट पर कतार से रेखायें खिच आईं, आँखों में निखर आई एक अनोखी दृष्टि! जेब से चश्मा निकालकर पहना। गौर से देखा। दूर से तो उसे आज कई दिनो से देख रहे हैं, आज चश्मा लगाकर अपलक दृष्टि से करीब से देखा। उहूँ, उसका कतरा भी साबित नहीं बचा है।

—अपना हाथ दीजिये तो।

नाड़ी में बुखार है। व्याधि से जर्जर है अंतर, उद्वेग से कातर है चित्त। नाडी की हर धड़कन बताती है। देह के कोष-कोष में आकाश के तारो की तरह प्राण-देवता की आरती उतारती हुई जो जीवन-शिखायें

जलती है, जलकर मधुमय उत्ताप से अभिषिक्त करके प्राण को जाग्रत करती हैं, वे बुझ चली है, बहुतेरी बुझ ही गई हैं। प्राण-देवता के चारो ओर छाया घिर आई है और हिम-स्पर्श बिखेर रही है। अन्तिम सीमा-बिंदु पर पहुँचने की राह अब नाम को ही बाकी है। नाडी के स्पन्दन में जो जीवन-संगीत जगता है, वह क्षीणतर हो आया है और अपने विलंबित छंद से परिसमाप्ति की शीघ्रता की घोषणा कर रहा है।

उन्होंने उस हाथ को रखकर दूसरा हाथ बढाने को कहा।

एक ही हाल। वही छंद वही ध्वनि।

—क्या देखा? आँख-कान सुधर जायँगे? चंगी कर सकेंगे मुझे?

—नही।

—सिर का दर्द, माथे की पीडा?

—अच्छा अब नही होगा। लेकिन इधर बडी अच्छी-अच्छी दवायें निकली हैं। खाइये, पीड़ा कम होगी। मैं एक टोटका बता दूँगा—उससे कुछ कम हो जायगी। मगर बिल्कुल ही ठीक तो न हो सकेगा।

—और पेट की गडबडी?

—वही तो आपकी असली बीमारी है।

—ठीक कर दीजिये।

—ठीक?

—हाँ-हाँ मंजु के बच्चे को देख लूँ।

—जन्मान्तर पर विश्वास रखती हैं? आप ही बच्ची होकर उसकी गोद में लौट आये, यह तो और अच्छा रहे!

जरा चुप रहकर बुढिया बोली–यानी कि आप जाने को कह रहे हैं। नही बचूँगी? लेकिन–लेकिन मुझे डर जो लगता है बडा।

—डर किस बात का? यह तो मुक्ति है।

—मुक्ति?

—हाँ, मुक्ति नही तो क्या? वहाँ आपके पोते, माँ-बाप, भाई, लडकी, दामाद, सब आपकी राह देख रहे हैं।

बूढी की आँखें दमक उठी। दृष्टिहीन आँखो से सामने की ओर ताकती हुई खोई बैठी रही।

महाशय खड़े हुए। कुर्सी को खिसकाने की आवाज से बुढ़िया सजग हो गई। बोली—तो आप भी कह रहे हैं, मुझे जाना पड़ेगा। कितने दिनों के अंदर ?

प्रद्योत वहाँ है, महाशय इस बात को ही भूल गये। उन्हें इसकी भी याद न रही कि प्रद्योत को निदान से बड़ा एतराज है। वे फिर बैठ गये। एक बार फिर बूढी का हाथ अच्छी तरह देखा और कहा—तीन से छै महीने के अन्दर। इसी अर्से में आपको मुक्ति मिल जायगी। लेकिन आजकल की दवा का सेवन करें तो हो सकता है और कुछ दिनो तक झेलना पड़े। आज बड़ी सशक्त दवायें निकली हैं।

—न। दवाई अब नही खाती। आपने मुझे अच्छी याद दिलाई कि वहाँ वे मेरा इन्तजार कर रहे हैं। जितनी जल्दी मुझे मुक्ति मिले, उतना ही अच्छा। आज तक किसी ने भी मुझे इस अच्छी तरह से यह बात नही समझाई थी। उफ्‌...जाने कबसे वे लोग मेरी बाट जोह रहे हैं। और मैं—।

बूढी की आवाज काँपने लगी। ज्योतिविहीन दोनो आँखें अपलक हो उठी—अब आँसू आये।

महाशय उठकर चुपचाप चले आये।

आँखें फेरकर एक दीर्घ निश्वास फेंकने ही जा रहे थे कि चौंक उठे। सामने के आईने में उनकी अपनी परछाईं पडी थी। सफेद बाल, शिकन से भरा कपाल, पीला चेहरा—स्थविर-से खडे हैं। एक बात याद पड़ गई उन्हें। पिताजी ने कहा था—हर जन्म मौत को साथ लाता है। दिन-दिन वह बढता है और अपनी इस वृद्धि में ही वह अपना क्षय करता चलता है। अपने को उसकी ओर ढकेलता चलता है। इस तरह जीवन की लडाई में जिस दिन वह थक जाता है, उसी दिन बुढापा आता है, बुढापे के बाद आता है अन्त। यानी यो कहे कि आज का मैं सूर्योदय के साथ जन्म लेता हूँ और मरता हूँ नीद के साथ दिन डूबे रात के अँधेरे में—फिर नये जन्म के प्रभात में जन्म लेता हूँ।

महाशय को इस तल्लीनता से देखते हुए देखकर प्रद्योत अचरज में आ गये थे। कुर्सी को थोड़ा खिसकाकर बोले—बैठिये।

महाशय का रुँधा हुआ दीर्घ निश्वास बाहर निकल पडा। उन्होने मुडकर कुर्सी को देखा और बैठ गये। पूछा—क्या तकलीफ है ?

बूढी ने पूछा—आप जीवन महाशय है ? नवग्राम देवीपुर के जीवन-दत्त ? मै मजरी हूँ। कादी के वकिम की बहन—मास्टर नवकृष्णसिंह की लडकी।

हँसकर महाशय ने कहा—सुनते ही पहचान गया मै। वड़े दिनो की बात है। धुँधली-धुँधली-सी याद आती है।

—ठीक ही कहते है। धुँधली-धुँधली। यहाँ आकर जीवन महाशय, जीवन महाशय सुनती रही। नवग्राम। चीन्हा-चीन्हा-सा लगा। सुना-सुना-सा नाम। फिर आपकी बात सुनकर—वैसा ही जोर दे-देकर बोलते हुए सुनकर समझ गई—आप वही है। वे भी तो महाशय ही थे। घर भी उनका नवग्राम था। दिमाग तो सही नही रहता, अभी कुछ याद आया, अभी भूल गई। अन्त मे सोचा, वे हो या और ही कोई हो, इतने बड़े कविराज है, हाथ दिखा ही लूँ—अच्छी हो जाऊँ कही।

अस्पताल ही से वे बाहर निकल आये। डाक्टर प्रद्योत फाटक तक साथ आये। बोले—यही है आप लोगों की निदान-घोषणा ?

महाशय खोई-खोई निगाहो से उनकी तरफ ताकते रहे। उनकी समझ में नही आई यह बात। प्रद्योत ने कहा—आपसे सीखने की इच्छा होती है।

* * *

महाशय के मन में उस पिगलवर्णा कन्या की बात घुमड रही थी। पिगलवर्णा, पिगलकेशा, पिगलनयना कन्या—कौषेयधारिणी, सर्वाग में पद्मबीज के गहने—अन्धी, बहरी। हर घडी वह साथ है, काया के साथ छाया जैसी। श्रम के साथ जैसे विश्राम, शब्द के साथ जैसे सन्नाटा, सगीत के साथ जैसे समाप्ति, गति के साथ जैसे पतन, चेतना के साथ जैसे रहती है नीद। मृत्यु का दूत उनके पास पहुँचा है और वह अन्धी-बहरी देवी सर्वाग में अमृत का स्पर्श कर देती है। अन्तहीन, तलहीन शान्ति से जीवन जुडा जाता है। मजरी मानो उसी तरह से जुडा देती है और मृत्युदूत, वह मानो भूपी बोस का रूप धारण करके आता है।

परमानन्द माधव ! सृष्टि में बिखरा जो तुम्हारी माधुरी का मधु है,

वह मृत्यु में अमृत है।

उन्होंने अपनी नाडी पकडी। लहू की गति आज तेज है, छाती की धड़कन बढ़ गई है। प्रत्येक रोम-कूप में पसीना झलक उठा है। ऐसी उत्तेजना उन्होंने जमाने से नहीं महसूस की। क्या हैं वे—क्या है उनका ? लेकिन उनका मृत्युदूत किस रूप में आयगा ? मंजरी नही, वह जीवन की भ्रान्ति है। मिथ्या है। अतर बहू के वेश में ? उनके पिता जगत महाशय के रूप में ? गुरु रंगलाल की मूर्ति धरकर ? या वह गाढे अँधेरे में छिपी होगी, उसे देखते न बनेगा ?

—वनविहारी ?

—कौन ?

वे आरोग्य-निकेतन के सामने आ पहुँचे थे। एक बत्ती जल रही थी। कौन बैठा है। भँवें सिकोडकर पूछा—कौन है ?

—महाशय बाबा ! मैं हूँ मैं—मरी !

—मरी वैष्णवी ! इतनी रात को ? क्या बात है मरी ?

—आज सावित्री चौदस है बाबा ! अभया ने कहा—तुम किसीको साथ लेकर महाशय के पास जाओ।

सावित्री चतुर्दशी ! कभी वैधव्य के दुःख की कल्पना करके उन्होंने पितृ-सुलभ स्नेह से अभया को खिलाना चाहा था। उसने उन्हे शाप दिया था। आज वह अवैधव्य व्रत के उपलक्ष में उन्हे भोजन करायेगी। बेटी-जैसी श्रद्धा के साथ ही उसने न्योता दिया है।

भौं सिकोड़कर तिर्यक् भगी से उन्होंने अन्धकार में ही एक बार ताका। कदाचित् आप ही अपने से सवाल किया। फिर बाँये हाथ से एक बार दाँयें हाथ के गट्ठे को जोर से दबाया, लेकिन तुरन्त छोड़ दिया। बोले—चलो।

शेष

चार महीने के बाद ।

उन्नीस सौ इक्यावन ईस्वी का सितम्बर महीना । साँझ का समय । डाक्टर प्रद्योत अपना बैग और रक्तचाप मापने का यन्त्र लेकर कही जाने को बरामदे पर तैयार बैठे हैं । पास ही एक छोटी-सी मेज पर चाय का प्याला रक्खा है ।

अन्दर से मजु निकली । वह भी शायद बाहर जा रही है । चाय के प्याले की तरफ देखकर बोली—अरे, चाय नही पी ?

—न । अच्छी नही लगी ।

—अच्छी नही बनी ? मैं बनाकर ले आऊँ ?

—नही । जी नही चाहता ।—उसने एक दीर्घ निश्वास छोडकर कहा—आखिर इस भले आदमी से इतना जकड गया ! तुम्हारी बीमारी के वक्त मदद तो सभी डाक्टरो ने की, पर सहायता से महाशय का स्नेह बडी बात रही ।

जरा देर तक चुप रहकर कदाचित कुछ सोचकर कहा—यह खूबी प्रवीणो मे ही होती है । हमसे नही हो पाता । उमर हुए बिना ऐसा नही हो सकता । लेकिन— ।

स्त्री की ओर देखकर कहा—लेकिन आज अभी-अभी तो आई हो तुम, गाडी से उतरे घटा भर हुआ होगा । आज नही ही जाती तो क्या था । तुम्हारी सेहत अभी उतनी अच्छी नही हुई है ।

बीमारी के बाद उन्होने मजु को हवा-पानी बदलने के लिए भेजा था । आज ही तीसरे पहर की गाडी से लौटी है । महाशय की तबीयत खराब है । प्रद्योत उन्हे देखने जा रहा है । वह भी साथ चलने के लिए तैयार हो गई है । महाशय बीमार है । लगभग चार महीने से चल रहे है इसी तरह । कभी-कभी खाट भी पकडी । इधर तीन दिन से तबीयत ज्यादा खराब है । रक्तचाप की बीमारी—ब्लडप्रेसर । कलेजे में आक्रमण । कोरोनेरी थ्रम्बसिस ।

मजु ने कहा—नही-नही, कोई हर्ज नही । मै ठीक हूँ ।

ठीक हो ?—प्रद्योत हँसा। मन के इमोशन को समझना मुश्किल है।—महाशय बीमार हैं, यह सुनकर जब मैं पहले दिन उनके यहाँ गया तो पीडा और तकलीफ में भी हँसकर उन्होने कहा था, स्नेह, दया, प्रेम कुछ भी चाहे दीजिये, कितना भी दीजिये, वह क्षमा नही कर सकते डाक्टर साहब। पाप के लिए हो चाहे पुण्य के लिए हो, जीवन पर उत्पीडन करने से ही उस छिद्र के सहारे उसका छूत आकर शरीर में वास करता है। मेरे शरीर में भी वह प्रवेश कर चुका है। मेरा समय अब आ गया।

बाँये हाथ से अपने दाँये हाथ की कलाई पकडकर नाडी देखते हुए कहा था—लग रहा है, गाँव के बाहर, गाँव में प्रवेश करने की राह पर वह आ चुकी है। गाँव में आ रही है।

उस दिन मन की अजीब हालत थी।

जब मजरी को देखकर बाहर निकले थे। तब उनके जर्जर शरीर की शिरा-उपशिराओ में लहू की रफ्तार बहुत तेज हो गई थी।

उस समय हृदय ने उपलब्धि के एक विचित्र स्वाद का अनुभव किया था। अनूठा ही था वह उल्लास!

तिस पर अस्पताल के डाक्टर ने फाटक पर उनसे कहा था—यही आप लोगो की निदान-घोषणा है? यह तो सीखने की इच्छा होती है मेरी!

घर लौटते समय उनके जी में हुआ—उस अधकार मे वे वनैले हाथी की तरह मौत की माद की खोज में निकल पडे। धू-धू कर रहा है, दिशा-शून्य जनहीन प्रातर या घनघोर विशाल वन धम्-धम् कर रहा है; अनगिन झीगुरो का सामूहिक स्वर गूँज रहा है; लगता है, मृत्यु की महाशून्यता में जन्म-जन्मातर से जीवन का प्रवाह चल रहा है, वही उस महागह्वर में नये जन्म की आशा लिये उल्लास के साथ कूद पड़े। वे अपनी नाडी पकडकर चल रहे थे लेकिन आनन्द के आवेश से अनुभूति थिर न हो सकी। पहुँचते ही घर पर मरी वैष्णवी मिल गई। तुरत उसी के साथ न्योता पूरने चल दिये।

अतर बहू ने मना किया था, लेकिन उन्होने मना न माना। न

सचमुच ही बढ गया था। दूसरे दिन प्रेसर की गति उर्द्धमुखी हो
यी। शाम को लगभग बेहोश हो गये थे। आज से चार-पाँच दिन
तीसरी बार आक्रमण हुआ।

डाक्टर प्रद्योत ने कहा—कल से प्राय. ध्यान में बैठे है। आँखे बद
अधसोये बैठे हैं। मुझसे कहा, मुझे नीद की दवा न दीजियेगा—
ीद में नही मरना चाहता, सचेतन अवस्था में विदा होना चाहता हूँ।
मजु ने कहा--आपने मेरी माँ की नानी के मरने का समाचार सुना ?
या है तुमने ?
—मैने कहना तो चाहा था, उन्होने सुना नही। चिट्ठी साथ ले आया
अपनी जेब मे। कहा, मेरी सास की वह बूढी नानी दादी के भूपी
र की स्त्री जिनकी नाडी देखी थी आपने । हाथ हिलाकर उन्होने
ा किया। कहा—वह सब रहने दीजिये।

* * *

तकिये के सहारे अधलेटे-से, आँखे बद किये महाशय धीर होकर पडे
। मौत का इतजार कर रहे थे। जानते है कि वह आ रही है। उन्होने
के पैरो की आहट सुनी है। जिस दिन ब्लडप्रेसर का पहली बार हमला
ा, उसी दिन से जानते है। लेकिन इतने से ही तो नही होता, अन्तिम
ी में उसके आमने-सामने होना चाहते है। यदि उसे रूप होगा, तो उसे
ेंगे, स्वर होगा तो सुनेंगे, अगर उसके गध होगी, तो आखिरी साँस
उस गध को ग्रहण करेगे और स्पर्श हो, तो उस स्पर्श का अनुभव करेगे
। बीच-बीच मे सब कुछ जैसे घने कुहरे से ढँक जाता है—सब कुछ जैसे
ता जा रहा है। अतीत, वर्तमान, स्मृति, आत्मपरिचय, स्थान, काल—
। फिर लौट-से आते है वे। आँखें खोलकर देखने लगते है। आ गई
? ये सब कौन है ? बडी दूर के छाया-चित्र-जैसे कौन है ये सब ?
वडे ही क्षीण भाव से उनकी आवाज उनके कानो में पहुँचती है।—
ा कह रहे है ? क्या ?
—क्या हो रहा है ?
महाशय ने गर्दन हिलाई—नही जानता। गर्दन हिलाते हुए ही उनकी

आँखो की पलके फिर झुक आईं। प्रद्योत ने देखा, उनके शीर्ण मुखमंडल पर एक अगाढ शाति की छाया छितरा रही है।

महाशय ने क्या देखा, प्रद्योत समझ नहीं सका।

उसी मुहूर्त में अतर वहू ने महाशय के मुखमडल को पकड़कर कहा–ध्यान समाप्त हो गया? माधव के चरणो मे शान्ति मिल गई? और मैं? मुझे भी अपने साथ कर लो।

शात आत्मसमर्पण की नाईं वे स्वामी के विछावन पर लुढक पडी।

• • •